प्रवचन -क्रम

1. स्रोतापन्न बन 2
2. प्रथम दर्शन 12
3. सम्यक दर्शन 25
4. सम्यक जीवन 41
5. प्रवेश द्वार 53
6. क्षांति 64
7. घातक छाया 80
8. अस्तित्व से तादात्म्य 95
9. स्वामी बन 110
10. आगे बढ़ 128
11. मन के पार 143
12. सावधान ! 158
13. समय और तू 173
14. तितिक्षा 188
15. बोधिसत्व बन ! 201
16. ऐसा है आर्य मार्ग 214
17. प्राणिमात्र के लिए शांति 225

समाधि के सप्त द्वार
पहला प्रवचन

स्रोतापन्न बन

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 9 फरवरी

हे उपाध्याय, निर्णय हो चुका है, मैं ज्ञान पाने के लिए प्यासा हूं।
अब आपने गुहय मार्ग पर पड़े आवरण को हटा दिया है और महायान की शिक्षा भी दे दी है। आपका सेवक आपसे मार्गदर्शन के लिए तत्पर है।
यह शुभ है, श्रावक तैयारी कर, क्योंकि तुझे अकेला यात्रा पर जाना होगा। गुरु केवल मार्ग-निर्देश कर सकता है। मार्ग तो सबके लिए एक है, लेकिन यात्रियों के गंतव्य पर पहुंचने के साधन अलग-अलग होंगे।
ओ अजित-हृदय, तू किसको चुनता है? चक्षु-सिद्धांत के समतान अर्थात चतुर्मुखी ध्यान को या छह पारअमताओं के बीच से तू अपनी राह बनाएगा, जो सदगुण के पवित्र द्वार हैं और जो ज्ञान के सप्तम चरण बोधि और प्रज्ञा को उपलब्ध कराते हैं?
चतुर्मुखी ध्यान का दुर्गम मार्ग पर्वतीय है तीन बार वह महान है, जो उसके ऊंचे शिखर को पार करता है।
पारमिता के शिखर तो और भी दुर्गम पथ से प्राप्त होते हैं। तुझे सात द्वारों से होकर यात्रा करनी होगी। ये सात द्वार सात क्रूर व धूर्त शक्तियों के, सशक्त वासनाओं के दुर्ग जैसे हैं।
हे शिष्य, प्रसन्न रह और इस स्वर्ण-नियम को स्मरण रख। एक बार जब तूने स्रोतापन्न-द्वार को पार कर लिया--स्रोतापन्न, वह जो निर्वाण की ओर बहती नदी में प्रविष्ट हो गया--और एक बार जब इस जन्म में या किसी अगले जन्म में तेरे पैर ने निर्वाण की इस नदी की गहराई छू ली, तब, हे संकल्पवान, तेरे लिए केवल सात जन्म शेष हैं।

इस जगत में जो भी जान लिया जाता है, वह कभी खोता नहीं है।
ज्ञान के खोने का कोई उपाय नहीं है। न केवल शास्त्रों में संरक्षित
हो जाता है ज्ञान, वरन और भी गुहय तलों पर ज्ञान की सुरक्षा और संहिता निर्मित होती है। शास्त्र तो खो सकते हैं; और अगर सत्य शास्त्र में ही हो, तो शाश्वत नहीं हो सकता। शास्त्र तो स्वयं ही क्षणभंगुर है। इसलिए शास्त्र संहिताएं नहीं हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है, तभी ब्लावट्स्की की यह सूत्र-पुस्तिका समझ में आ सकेगी।
ऐसा बहुत पुराने समय में भारत ने भी माना था। हमने भी माना था कि वेद संहिताओं का नाम नहीं है, शास्त्रों का नाम नहीं है; वरन वेद उस ज्ञान का नाम है, जो अंतरिक्ष में, आकाश में संरक्षित हो जाता है, जो इस अस्तित्व के गहरे अंतस्तल में ही छप जाता है। और होना भी ऐसा ही चाहिए। बुद्ध अगर बोलें और वह केवल किताबों में लिखा जाए, तो कितने दिन टिकेगा? और बुद्ध का बोला हुआ अगर अस्तित्व के प्राणों में ही न समा जाए, तो अस्तित्व ने उसका कोई स्वीकार नहीं किया।
करोड़ों-करोड़ों वर्ष में कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। वह
जो जानता है, वह इस जगत का जो गहनतम अनुभव है, जो रहस्य है, इस जगत की जो आत्यंतिक अनुभूति है, यह पूरा जगत उसे सम्हाल कर रख लेता है। इस जगत के कण-कण की गहराई में वह अनुभूति छा जाती है, समाविष्ट हो जाती है। यही अर्थ है कि वेद शास्त्रों में नहीं, वरन आकाश में लिखा जाता है। शब्दों से नहीं, बल्कि जब बुद्ध जैसे व्यक्ति के प्राणों में सत्य की घटना घटती है तो साथ ही साथ उस घटना की अनुगूंज आकाश के कोने-कोने में छा जाती है। और जब भी कोई व्यक्ति बुद्धत्व के करीब पहुंचने लगेगा, तब प्राचीन बुद्धों ने जो जाना था, उनके प्राणों में आकाश के द्वारा, उस अनुगूंज की फिर से प्रतिध्वनि हो सकती है।
ब्लावट्स्की की यह किताब साधारण किताब नहीं है। उसने उसे लिखा नहीं, उसने उसे सुना और देखा है। यह उसकी कृति नहीं है, वरन आकाश में जो अनंत-2

अनंत बुद्धों की छाप छूट गई है, उसका प्रतिबिंब है। ब्लावट्स्की ने कहा है कि यह जो मैं कह रही हूं, यह आकाश-संहिता से मुझे उपलब्ध हुआ है। ऐसा मैंने आकाश से पाया और जाना है।
आकाश से अर्थ है, यह जो चारों तरफ घेरे हुए है हमें, जो हमारे भीतर भी
है और बाहर भी। जो हमारी श्वांस में है, जिसके बिना हम नहीं हो सकते; और हम नहीं थे, तब भी जो था; और हम नहीं होंगे, तब भी जो रहेगा। आकाश से अर्थ है इस परम अस्तित्व का। ब्लावट्स्की ने कहा हैः इस परम अस्तित्व ने ही मुझे बताया है, वही इस पुस्तक में मैंने संगृहित किया है। लेखिका वह नहीं है, उसने सिर्फ संग्रह किया है।
यही वेद के ऋषियों ने कहा है कि हमने सुनी है यह वाणी। और हमने अपने हाथों लिखी है, लेकिन हमारे हाथों से कोई और ने ही उसे लिखवाया है। जीसस ने भी यही कहा है कि मैं जो कह रहा हूं; वाणी मेरी हो, लेकिन जो उस वाणी से कहा जा रहा है, वह परमात्मा का है। मोहम्मद ने भी यही कहा है कि कुरान मैंने सुनी है, उसका इलहाम हुआ, उसकी मुझे प्रेरणा हुई; और किसी रहस्यमई शक्ति ने मुझे पुकारा और कहा कि पढ़।
और मुहम्मद के साथ तो बड़ी मीठी घटना है, क्योंकि मुहम्मद पढ़ नहीं सकते थे, गैर-पढ़े-लिखे थे। और जब पहली बार उन्हें ऐसी भीतर कोई आवाज गूंज गई कि पढ़, तो मुहम्मद ने कहा, मैं हूं बे-पढ़ा-लिखा, मैं पढूंगा कैसे? और कोई किताब तो सामने नहीं थी, जिसे पढ़ना था! कुछ और था आंखों के सामने, जिसे गैर-पढ़ा- लिखा भी पढ़ सकता है; जिसको कबीर भी पढ़ लेते हैं। कुछ और था, जो पढ़ना नहीं पड़ता है दिखाई पड़ता है। कुछ और था, जिसका इन आंखों से कोई संबंध नहीं है, किसी और भीतर की आंख का संबंध है। मुहम्मद ने समझा कि इन आंखों से मैं कैसे पढूंगा, मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं। लेकिन कोई और भीतर की आंख पढ़ सकी और कुरान का जन्म हुआ।
ब्लावट्स्की की यह पुस्तक "समाधि के सप्तद्वार" वेद, बाइबिल, कुरान; महावीर, बुद्ध के वचन की हैसियत की पुस्तक है। इसका भी उसे आकाश से अनुभव हुआ है। इसके संबंध में दो-चार बातें ख्याल में ले लें, फिर हम पुस्तक में प्रवेश कर सकें।
एक तो साधारण व्यक्ति भी लिख सकता है, और कभी-कभी बहुत श्रेष्ठ बातें
भी लिख सकता है। लेकिन वे कल्पनाजन्य होती हैं, सोच-विचार से निर्मित होती हैं। अनुभूति से उनका
कोई संबंध नहीं होता। वे ऐसी ही होती हैं, जैसे अंधा भी प्रकाश के संबंध में कोई गीत गा सकता है। सुना है, समझा है प्रकाश के संबंध में, लेकिन देखा नहीं है। तो अंधे की बातें प्रकाश के संबंध में कितनी ही सही मालूम पड़ें, सही नहीं हो सकती हैं। वह जो मौलिक आधार है सत्य होने का, वही अनुपस्थित है।
यह पुस्तक, आंखवाले व्यक्ति की बात है। किसी सोच-विचार से, किसी कल्पना से, मन के किसी खेल से इसका जन्म नहीं हुआ; बल्कि जन्म ही इस तरह की वाणी का तब होता है, जब मन पूरी तरह शांत हो गया हो। और मन के शांत होने का एक ही अर्थ होता है कि मन जब होता ही नहीं। क्योंकि मन जब भी होता है, अशांत ही होता है।
मन अशांति का नाम है।
और जब भी हम कहते हैं मन शांत हो गया, तो उसका अर्थ है कि मन अब नहीं रहा। न रह जाए मन, तभी शांत होता है।
जहां मन खो जाता है, वहां आकाश के रहस्य प्रगट होने शुरू हो जाते हैं। जहां तक मन है, वहां तक हम अपनी सूझ-बूझ से चलते हैं। और जब मन नहीं है,
तब परमात्मा की सूझ-बूझ हमसे प्रगट होनी शुरू हो जाती है, तब हम नहीं होते हैं; या होते हैं तो बस एक उपकरण की भांति होते हैं, एक माध्यम, एक वाहन होते हैं। जैसे हवा का झोंका आपके पास आए और फूलों की सुगंध आपके पास बरसा जाए। हवा का झोंका सिर्फ लाता है सुगंध को। ऐसा ही जब मन नहीं रह जाता, तो आप भी एक हवा के झोंके हो जाते हैं। और अनंत की सुगंधि आपसे भरकर फैलने लगती है; वह दूर-दूर लोगों तक आप पर सवार होकर यात्रा कर सकती है।

ब्लावट्स्की की यह पुस्तक ऐसी ही है। हवा का एक झोंका है ब्लावट्स्की। और कोई उससे बहुत महानतर शक्ति उस पर आविष्ट हो गई है, और वह हवा का झोंका इस सुगंध को ले आया है।
मैंने इस पुस्तक को जानकर चुना। क्योंकि इधर दो सौ वर्षों में ऐसी न
के बराबर पुस्तकें हैं, जिनकी हैसियत वेद, कुरान और बाइबिल की हो। इन थोड़ी दो-चार पुस्तकों में यह पुस्तक है "समाधि के सप्तद्वार"। और इसलिए भी चुना कि ब्लावट्स्की ने जरा सी भी भूल-चूक नहीं की है आकाश की संहिता को पढ़ने में। ठीक मनुष्य के जगत में उस दूर के सत्य को जितनी सही-सही हालत में पकड़ा जा सकता है, उतनी सही-सही हालत में पकड़ा है। प्रतिबिंब जितना साफ बन सकता है, उतना प्रतिबिंब साफ बना है। और यह पुस्तक आपके लिए जीवन की आमूल क्रांति सिद्ध हो सकता है। फिर इस पुस्तक का किसी धर्म से भी कोई संबंध नहीं है। इसलिए भी मैंने चुना है। न यह हिंदू है, न यह मुसलमान है, न यह ईसाई है। यह पुस्तक शुद्ध धर्म की पुस्तक है। और धर्म को जितना निवयक्तिक गैर-सांप्रदायिक ढंग से प्रगट किया जा सकता है, उस ढंग से इसमें प्रगट हुआ है।
मनुष्य खोज करता है एक ही बात की, कि कैसे वह जगह आ जाए जीवन में, जहां
और कोई दौड़ न रहे; कैसे वह बिंदु आ जाए, जहां सारी वासनाएं क्षीण हो जाएं और पाने को कुछ भी शेष न रहे। क्योंकि जब तक पाने को शेष है, तब तक रहेगा संताप, चिंता, पीड़ा, दुःख। और जब तक पाने को कुछ शेष है, तब तक आनंद असंभव है।
आनंद है उस क्षण का नाम, जब कोई व्यक्ति वहां पहुंच गया, जहां से आगे जाने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। जहां कोई फिर आगे का तनाव नहीं है, जहां कोई भविष्य नहीं रहा, जहां समय खो जाता है, और यही क्षण, "अभी और यही", का क्षण सारा अस्तित्व हो जाता है, सब कुछ इसी क्षण में समाविष्ट हो जाता है। उस पुलक का नाम ही आनंद है, और उस पुलक का नाम ही परमात्मा की अनुभूति है या कहें मोक्ष, या कहें निर्वाण। ये सारे भेद शब्दों के भेद हैं।
इस पुस्तक के एक-एक सूत्र को समझपूर्वक अगर प्रयोग किया, तो जीवन से वासना ऐसे झड़ जाती है, जैसे कोई धूल से भरा हुआ आए और स्नान कर ले तो सारी धूल झड़ जाए। या कोई थका-मांदा, किसी वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम कर ले, और सारी थकान विसर्जित हो जाए। ऐसा ही कुछ इस पुस्तक की छाया में, इस पुस्तक के स्नान में, आपके साथ हो सकता है। लेकिन इसे बुद्धि से समझने की कोशिश न करें। इसे हृदय से समझने की कोशिश करें। क्या है फर्क दोनों में? बुद्धि से समझने की कोशिश का अर्थ होता है, हम सोचेंगे, विचारेंगे, ठीक है या गलत। लेकिन अगर हमें पता ही होता कि क्या ठीक है, और क्या गलत, तो इस पुस्तक की कोई जरूरत ही न थी। हमें पता नहीं कि क्या ठीक है। इसी की तो हम खोज कर रहे हैं। तो बुद्धि कैसे निर्णय करेगी कि क्या ठीक है और क्या गलत? निर्णय के लिए तो पहले से पता होना चाहिए। अगर पता ही है, तो खोज की कोई जरूरत नहीं; और जब खोज है, तो पता हमें नहीं, बुद्धि व्यर्थ है इसलिए। इस तरह की खोज में तो हृदय से उतरना।
हृदय से उतरने का अर्थ है, हम सोचेंगे नहीं कि क्या है ठीक और क्या है गलत। हम करके ही देखेंगे, हम प्रयोग ही करेंगे। और प्रयोग का अर्थ है कि हम हृदयपूर्वक अपनी समस्त श्रद्धा से उतर जाएंगे और जानेंगे कि कहां ले जाती है यह किताब। इस किताब के साथ चलेंगे और यात्रा करेंगे, बहेंगे इस नदी में। और चलेंगे उस सागर की तरफ जिसका यह आश्वासन देती है। और मैं आपको कहता हूं कि यह नदी सागर-तट पर ले जाती है। इस नदी का भरोसा किया जा सकता है। लेकिन भरोसा ही किया जा सकता है आपकी तरफ से। इस भरोसे का नाम ही श्रद्धा है।
बुद्धि तो करती है संदेह, हृदय करता है भरोसा।
इस किताब के साथ चलना हो, तो हृदयपूर्वक चलना होगा। और बुद्धि का
अगर उपयोग भी करना हो तो इतना ही करना, केवल चलने में सहयोगी हो, भरोसे
को मजबूत करे, श्रद्धा को गहराए। और ऐसा लगे कि बुद्धि श्रद्धा को तोड़ती है, तो बुद्धि छोड़कर ही चलना। एक बार अनुभव हो जाए, फिर पूरी बुद्धि से परीक्षा कर लेना, फिर कोई डर नहीं है।

हमारी तकलीफ ऐसी है कि हमारे पास सोना तो नहीं है, लेकिन सोने को कसने
की कसौटी है। और हम मिट्टी को ही उस पर कसकर देखने लगते हैं। और तब मिट्टी मिट्टी है, और यह कसौटी भी धीरे-धीरे मिट्टी कसते-कसते मिट्टी जैसी हो जाती है। सोना हो, तभी कसौटी पर कसा जा सकता है।

बुद्धि कसौटी है, लेकिन सोना आपके पास नहीं है और कसौटी से सोना
पैदा नहीं होता है, ध्यान रखना। कसौटी से सोना जांचा जा सकता है। लेकिन जांचने से पहले सोना होना चाहिए।
हृदय से सोने का जन्म होता है, वह खदान है। और एक बार सोना आपके हाथ में आ जाए, फिर खूब कसना और परखना। हमारी मुसीबत, हमारी तकलीफ यही है कि कसौटी हमारे पास है, सोना हमारे पास नहीं है। हम कुछ भी कसते रहते हैं, और उस पर सब गलत हो जाता है। और सब गलत हो जाता है, तो धीरे-धीरे हम यही मान लेते हैं कि सब गलत है, सही कुछ है ही नहीं। अनुभव का सोना चाहिए, फिर बुद्धि की कसौटी का पूरा उपयोग कर लेना। तो यह प्राथमिक बात ख्याल में ले लें।
इस शिविर में हम हृदयपूर्वक प्रयोग करने इकट्ठे हुए हैं। हम सोने की खोज में हैं और सोना मिल जाए, तो कसौटी हमारे पास है, हम उसे कस लेंगे। लेकिन सोना पास न हो, तो व्यर्थ ही कसौटी को हर किसी पके भीतर है। इसलिए मैं कहता हूं, भरोसा देता हूं, कि वह खोजी जा सकती है, उसे आपने कभी खोया भी नहीं है। लेकिन उसकी पहली शर्त यह है कि हृदय से उसे खोजना; फिर बाद में मस्तिष्क से, बुद्धि से, उसे कस लेना, जांच लेना, निकष का उपयोग करना; लेकिन जब अनुभव हाथ में आ जाए, तभी। अब मैं इन सूत्रों पर आपसे बात शुरू करूं। "हे उपाध्याय, निर्णय हो चुका है, मैं ज्ञान पाने के लिए प्यासा हूं।
अब आपने गुहय मार्ग पर पड़े आवरण को हटा दिया है और महायान की शिक्षा दे दी है। आपका सेवक आपसे मार्गदर्शन के लिए तत्पर है।"
खोजी, अभीप्सु अपने गुरु से कह रहा हैः हे उपाध्याय, निर्णय हो चुका है। मैंने निर्णय कर लिया कि मैं तैयार हूं, अब जहां आप मुझे ले चलें। यह निर्णय जिज्ञासु को साधक बना देता है। इतना ही फर्क है जिज्ञासु और साधक में। लेकिन यह फर्क बड़ा है, यह फर्क इतना बड़ा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि जिज्ञासु पूछता रहता है, पूछता रहता है, प्रश्न करता रहता है, और कहीं नहीं पहुंचता। उसकी तलाश, उत्तर की तलाश है, समाधान की नहीं। वह पूछता है एक प्रश्न, ताकि उत्तर मिल जाए। एक प्रश्न का उत्तर मिल जाता है, तो उस उत्तर से दस नए प्रश्न खड़े हो जाते हैं। उन दस के उत्तर खोजने निकल जाता है। कभी हो सकता है दस के उत्तर भी मिल जाएं, तो दस हजार प्रश्न उन उत्तरों से खड़े हो जाएंगे। क्योंकि पूछनेवाला प्रश्नों के उत्तर से मिटता नहीं। पूछनेवाला तो भीतर है, जिससे प्रश्न पैदा होते हैं। हम प्रश्न को मिटा लेते हैं लेकिन पूछनेवाला तो भीतर खड़ा है।
जैसे कोई वृक्ष की एक शाखा को काट दे, तो दस नई शाखाएं पैदा हो जाएंगी, क्योंकि शाखाओं को जिस जड़ से रस मिल रहा है, वह नीचे जमीन में दबी है। जिज्ञासु पत्तियों को तोड़ता रहता है, शाखाओं को काटता रहता है; प्रश्न तोड़ता रहता है, उत्तर मिलते जाते हैं, और नए प्रश्न निर्मित होते जाते हैं, क्योंकि प्रश्न निर्माण करनेवाला भीतर है।
जिज्ञासु कभी समाधान को उपलब्ध नहीं होता।
जिज्ञासुओं से दर्शन का जन्म हुआ, फिलासफी का। इसलिए दर्शन किसी निर्णय पर नहीं पहुंचता।
अगर निर्णय प्रथम ही नहीं है, तो अंतिम भी नहीं होगा; और निर्णय अगर प्रथम है, तो ही अंत में भी निर्णय हो सकेगा। अंत में उनमें वही प्रगट होता है, जो प्रथम छिपा था, मौजूद था। जो आदि में था, वही अंत में प्रगट हो सकेगा। जो बीज में है, वही वृक्ष में प्रगट होगा। बीज में ही जो नहीं वह वृक्ष में प्रगट नहीं होगा। जिज्ञासु प्रश्न पूछता है, उत्तर पा जाता है, लेकिन समाधान नहीं। समाधान के लिए तो स्वयं को बदलना पड़ता है।
यह जिज्ञासु जब कह रहा है कि हे उपाध्याय, निर्णय हो चुका है, तो यह कह रहा है कि अब मैं साधक बनने को तैयार हूं; अब मैं पूछना ही नहीं चाहता हूं,

अब मैं उत्तर ही नहीं चाहता हूं, अब मैं बदलना चाहता हूं स्वयं को, अब मैं समाधान चाहता हूं।
और समाधान तो उसे मिलता है, जो समाधि को उपलब्ध होता है।
हल उसका होता है, जो स्वयं भीतर के सारे द्वंद्व को हल कर ले। और ऐसी घड़ी ले आए अपने भीतर कि जहां कोई प्रश्न नहीं उठते हैं। तब ही असली उत्तर उपलब्ध होता है।
"निर्णय हो चुका है, और मैं ज्ञान पाने के लिए प्यासा हूं।"
कहते तो हम भी हैं, ज्ञान पाने की हमारी प्यास है, लेकिन अगर कोई यह कहे कि यह रहा सरोवर, दस कदम चल लें, तो दस कदम चलने को भी हम तैयार नहीं हैं। उससे पता चलता है कि प्यास झूठी है। क्योंकि प्यासा तो दस हजार कदम भी चलने को राजी होता है। प्यास का तो मतलब ही यह है कि अब नहीं अगर पानी मिला तो मरूंगा। प्यास का क्या मतलब? प्यास का मतलब है कि जीवन दांव पर है--या तो पानी या मृत्यु; या तो मुझे जल का सरोवर मिले, जलस्रोत मिले या मैं मर रहा हूं, मेरी श्वासें घुट रही हैं, और एक-एक पल मुश्किल है जीना। हम भी कहते हैं कि सत्य की हमें प्यास है, लेकिन दस कदम चलने की हमारी तैयारी न हो, तो पता चलता है कि प्यास कितनी है। प्यास नहीं है, हम शब्द का अर्थ ही नहीं समझे। कहना चाहिए हमें भी दर्शन की, हमें भी सत्य की, धर्म की, परमात्मा की वासना है, प्यास नहीं।
वासना से मेरा मतलब है गैर-जरूरत की चीज की इच्छा। मिल जाए तो खुशी होगी, न मिल जाए तो हमें कोई तकलीफ नहीं है; नहीं मिले तो हमारा कोई जीवन संकट में नहीं है। मिल जाए तो हम खुश होंगे। क्योंकि हमारे अहंकार को और एक सहारा मिल जाएगा, सत्य भी मैंने पा लिया। क्या परमात्मा भी मेरी मुट्ठी में है? क्या मोक्ष भी मेरी उपलब्धि होगी? वे भी हमारी वासनाएं हैं विलास की। प्यास का अर्थ है कि जीवन दांव पर है। मैं ज्ञान पाने के लिए प्यासा हूं।
"--और आपने उस गुप्त मार्ग से आवरण हटा दिया है, और मुझे उस परम यान की,
उस महायान की शिक्षा भी दे दी है;" मुझे समझा भी दिया है कि वह सत्य क्या है, वह मार्ग क्या है। अब मैं तत्पर हूं चलने को, अब मुझे चलाएं भी, अब मुझे ले चलें उस तरफ।
"यह शुभ है, स्रावक तैयारी कर, क्योंकि तुझे अकेला ही यात्रा पर जाना होगा।"
गुरु ने कहाः यह शुभ है स्रावक, तैयारी कर, क्योंकि तुझे अकेला ही यात्रा पर जाना होगा। गुरु केवल मार्ग-निर्देश कर सकता है। मार्ग तो सबके लिए एक है। लेकिन यात्रियों के गंतव्य पर पहुंचने के साधन अलग-अलग होंगे। गुरु ने कहाः शुभ है तेरी निष्ठा और तेरा निर्णय। संकल्प तेरा प्रीतिकर है, स्वागत के योग्य है; लेकिन तैयारी कर, क्योंकि यह यात्रा अकेले की यात्रा है। इस पर कोई दूसरा साथ नहीं जा सकता। इस यात्रा पर किसी दूसरे को साथ ले जाने का कोई उपाय नहीं है। यह मार्ग ऐसा नहीं कि इस पर भीड़ जा सके, मित्र-प्रियजन, संगी-साथी जा सकें। यहां अकेला ही जाना होगा।
ध्यान मृत्यु जैसा है।
मरते वक्त अकेले जाना होगा, फिर आप न कह सकेंगे कि कोई साथ चले। सब संगी-साथी जीवन के हैं, मृत्यु में कोई संगी-साथी न होगा। और ध्यान एक भांति की मृत्यु है, इसमें भी अकेले ही जाना होगा। और ऐसा भी हो सकता है कि कोई आपके साथ मरने को भी राजी हो जाए, आपके साथ ही आत्महत्या कर ले; यद्यपि यह आत्महत्या भी जीवन में ही साथ दिखाई पड़ेगी, मृत्यु में तो दोनों अकेले होने का डर ही हमारी बाधा है परमात्मा की तरफ जाने में। और उसकी तरफ तो वही जा सकेगा, जो पूरी तरह अकेला होने को राजी हो। हम तो परमात्मा की बात भी इसलिए करते हैं कि जब कोई भी साथ न होगा, तो कम से कम परमात्मा तो साथ होगा। हम तो उसे भी संगी-साथी की तरह खोजते हैं। इसलिए जब हम अकेले होते हैं, अंधेरे में होते हैं, जंगल में भटक गए होते हैं, तो हम परमात्मा की याद करते हैं। वह याद भी अकेले होने से बचने की कोशिश है। वहां भी हम किसी दूसरे की कल्पना करते हैं कि कोई साथ है। कोई न हो साथ तो कम से कम परमात्मा साथ है; लेकिन साथ हमें चाहिए ही। और जब तक हमें साथ चाहिए, तब तक

परमात्मा से कोई साथ नहीं हो सकता। उसकी तरफ तो जाता ही वह है, जो अकेला होने को राजी है।
गुरु ने कहाः तैयारी कर! क्योंकि तुझे अकेला ही यात्रा पर जाना होगा।
और गुरु केवल मार्ग-निर्देश कर सकता है।
गुरु ने कहाः बता सकता हूं मैं कि यह रहा मार्ग, लेकिन तेरे साथ चल न सकूंगा। बता सकता हूं, यह रहा मार्ग, लेकिन तुझे इस मार्ग पर घसीट न सकूंगा। कोई जबर्दस्ती सत्य की दुनिया में नहीं आ सकते। कोई धक्का भी नहीं दिया जा सकता। किसी को खींच कर उस यात्रा पर ले जाया भी नहीं जा सकता। मार्ग सबके लिए एक है, लेकिन यात्रियों के गंतव्य पर पहुंचने के साधन अलग-अलग होंगे। और सभी उस एक ही मार्ग से गुजरते हैं। फिर भी, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अलग है, इसलिए उस एक मार्ग पर भी प्रत्येक व्यक्ति के साधन अलग-अलग होते हैं। कोई पैदल चलता है उसी रास्ते पर, कोई दौड़ता है उसी रास्ते पर, कोई बैलगाड़ी भी ले लेता है, कोई और साधन जुटा लेता है। रास्ता एक है, लेकिन हर व्यक्ति के साधन अलग होंगे।
-- "ओ अजित हृदय, तू किसको चुनता है"
तू कौन-सा साधन चुनना चाहेगा? क्या होगा तेरा उस मार्ग पर पाथेय? क्या चुनेगा तू? कैसे चलेगा उस रास्ते पर?
"चक्षु-सिद्धांत के समतान, अर्थात चतुर्मुखी ध्यान को या छः पारमिताओं के बीच से तू अपनी राह बनाएगा?"
दो मार्ग बहुत साफ-साफ बंटे हुए हैं। एक तो है ध्यान का मार्ग, विशुद्ध ध्यान का मार्ग। और दूसरा है पारमिताओं का--शुभ का, नीति का, धर्म का।
ध्यान के मार्ग से अर्थ हैः नितांत स्वयं के मन को विसर्जित करने की चेष्टा--सीधी।
पारमिताओं के मार्ग का अर्थ हैः स्वयं के मन को आहिस्ता-आहिस्ता
शुद्ध करने की चेष्टा। विसर्जित तो होगा, लेकिन पूर्ण शुद्ध होते- होते विसर्जित होगा।
ध्यान है एक छलांग। मन है अशुद्ध, इस अशुद्ध मन से भी सीधा ध्यान में कूदा जा सकता है। पारमिताओं का अर्थ हैः पहले इस मन को शुद्ध, सबल, सशक्त करना, और जब यह परिपूर्ण शुद्ध हो जाए, तब छलांग लेना, तब कूद जाना।
तो गुरु पूछता है, "क्या तू चुनेगा? क्या तू चुनेगा ध्यान को? या तू चुनेगा शील को, जो सदगुण के पवित्र द्वार हैं और जो ज्ञान के सप्तम चरण, बोधि और प्रज्ञा को उपलब्ध कराते हैं?" ये दो हैं मार्ग।
-- "चतुर्मुखी ज्ञान का दुर्गम मार्ग पर्वतीय है" कठिन है चढ़ाई ध्यान की, दुर्गम है, पहाड़ी है रास्ता।
-- "तीन बार वह महान है, जो उसके ऊंचे शिखर को प्राप्त करता है।"
एक बार महान कहना काफी नहीं। गुरु कहता हैः "तीन बार वह महान है, जो उसके ऊंचे शिखर को प्राप्त करता है।"
ध्यान का अर्थ है जैसे हम हैं, ठीक ऐसे से ही छलांग। जैसे हम हैं बाहर
की दुनिया में, बिना कोई फर्क किए। चरित्र हो बुरा, शील न हो पास, सदगुण न हो, इसकी बिना चिंता किए। बाहर कुछ भी न हो, पाप भी हो, कर्मों का बोझा भी हो--जैसे हम हैं, ठीक ऐसे में से ही उस पहाड़ पर सीधी चढ़ाई का भी रास्ता है। हम सीधे भी कूद सकते हैं।
क्यों?
क्योंकि ध्यान मानता ही यह है कि जिसे हम बाहर का जगत कहते हैं, वह स्वप्न से ज्यादा नहीं है। यह ध्यान की मान्यता है। यह ध्यान के मार्ग का प्राथमिक सिद्धांत है कि जिसे हम बाहर का जगत कहते हैं, वह स्वप्न से ज्यादा नहीं है।
एक आदमी स्वप्न देख रहा है कि वह चोर है, पापी है, हत्यारा है, और एक आदमी स्वप्न देख रहा है कि साधु है, महात्मा है, सदगुणी है। ध्यान का मार्ग कहता है कि क्या फर्क पड़ता है कि तुम क्या स्वप्न देख रहे हो--चोर होने का या साधु होने का--दोनों स्वप्न हैं।

और चोर होने के स्वप्न से जागने में जो करना पड़ेगा, वही साधु होने के स्वप्न से भी जागने में करना पड़ेगा। तो तुम जाग सकते हो अभी, इसकी फिक्र छोड़ो कि पहले मैं यह चोर वाला स्वप्न बदलूं और साधु वाला स्वप्न स्वीकार करूं, और फिर जागूंगा।
ध्यान का मार्ग कहता है कि इस उलझन में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है
कि पहले तुम साधु बनो असाधु से, पुण्यात्मा बनो पापी से। अगर स्वप्न ही हैं दोनों, तो फिर किसी भी स्वप्न से जागा जा सकता है। और सभी स्वप्न जागने की तरफ ले जा सकते हैं। स्वप्न फिर भले और बुरे नहीं होते हैं। तोड़ डालें, बजाय स्वप्न को बदलने के।
और जो स्वप्न को बदल सकता है, उसे जागने में क्या बाधा होगी? क्योंकि स्वप्न को बदलने का मतलब ही यह है कि आप भीतर जागे हुए हैं और जान रहे हैं कि यह स्वप्न है, और बुरा स्वप्न है, और अब मैं इसे अच्छे स्वप्न में बदल रहा हूं। तो जो इतना समर्थ है जानने में कि स्वप्न को पहचान लेता
है स्वप्न की भांति, वह जाग ही जाएगा। वह स्वप्न को क्यों पकड़ेगा, इसलिए दूसरी बात भी सरल है, ऐसा मत सोचना।
"पारमिता के शिखर तो और भी दुर्गम पथ से प्राप्त होते हैं। तुझे सात द्वारों से होकर यात्रा करनी होगी। ये सात द्वार सात क्रूर और धूर्त शक्तियों के, सशक्त वासनाओं के दुर्ग जैसे हैं।"
अध्यात्म की अनिवार्य रूप से एक शर्त है कि वहां जो भी है, सभी कठिन है। वहां सरल कुछ भी नहीं है। और जो लोग भी कहते हैं सरल है, वह सिर्फ आपको प्रलोभन देते हैं। शायद आपके हित में ही देते हों। लेकिन सरल वहां कुछ भी नहीं है।
इसका यह भी अर्थ नहीं है कि अध्यात्म अपने आप में जटिल है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि आप इतने जटिल और उलझे हुए हैं कि अध्यात्म की तरफ जाना आपको जटिल मालूम पड़ता है।
जो पहुंच जाते हैं उन्हें लगता है कि संसार बहुत जटिल था और अध्यात्म बहुत सरल है। लेकिन जो संसार में हैं, उन्हें अध्यात्म बहुत जटिल है।
आप बड़ा उलझाव करने में कुशल हैं। अपने आसपास इतना जाल बुन लेते हैं आप--शायद दूसरे को फांसने के लिए बुनते हैं और खुद फंस जाते हैं, यह दूसरी बात है। लेकिन बड़ा जाल बुन लेते हैं। और जाल बुनने की इतनी आदत है कि अगर कभी सोचते भी हैं कि इस जाल से कैसे बचें, तो एक नया जाल बुनते हैं--वह बुनना आपकी आदत है--तो अध्यात्म भी आपके लिए जाल बन जाता है। लोग संसार छोड़ देते हैं और संन्यासी हो जाते हैं, और फिर संन्यास का एक जाल बुन लेते हैं। संन्यास का मतलब ही है कि अब हमें इस जाल से ऊब हो गई है, अब हम जाल न बुनेंगे। ज्यादा बेहतर है कि पुराने जाल में ही खड़े रहें और नया न बुनें। बुनना बंद कर दें। जाल नहीं रोकता आपको--बुनने की आदत। आप बुनते ही चले जाते हैं अपने चारों तरफ। बहाना कोई भी हो, उससे कठिनाई है।
"हे शिष्य, प्रसन्न रह और इस स्वर्ण-नियम को ही स्मरण रख। एक बार जब तूने स्रोतापन्न-द्वार पार कर लिया--स्रोतापन्न वह है, जो निर्वाण की ओर बहती नदी में प्रविष्ट हो गया--और एक बार जब इस जन्म में या किसी अगले जन्म में तेरे पैर ने निर्वाण की इस नदी की गहराई छू ली, हे संकल्पवान, तेरे लिए केवल सात जन्म शेष हैं।"
स्रोतापन्न बहुत विचार नहीं कर सकते और गुरु कहता हैः हे शिष्य, प्रसन्न रह और इस स्वर्ण-नियम को स्मरण रख कि एक बार तूने स्रोतापन्न-द्वार को पार कर लिया, तो तेरे लिए केवल सात जन्म ही शेष हैं।
स्रोतापन्न का अर्थ है, जो नदी में प्रविष्ट हो गया।
निर्णय से व्यक्ति नदी में प्रविष्ट होता है। जब कोई यह निर्णय कर लेता है कि अब चाहे कुछ भी हो, मैं जीवन के रहस्य में प्रवेश करके रहूंगा। अब चाहे कुछ भी मूल्य चुकाना पड़े, लेकिन अब, अब और रुकने की मेरी तैयारी नहीं है। और अब चाहे सब कुछ खोना पड़े, स्वयं को भी, तो भी मैं इस छलांग के लिए तत्पर हो गया हूं। इस निर्णय के साथ ही व्यक्ति धारा में प्रविष्ट हो जाता है, स्रोतापन्न हो जाता है।

और इस निर्णय के बाद गुरु कहता है कि सात जन्मों से ज्यादा शेष नहीं है।
बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। आपके कितने जन्म शेष होंगे? क्योंकि निर्णय के बाद भी गुरु कहता है, अब सात जन्मों से ज्यादा शेष नहीं है। "प्रसन्न हो।"
प्रसन्न हो, क्योंकि तू स्रोतापन्न हो गया, और ज्यादा से ज्यादा तू सात बार और उपद्रव में पड़ सकता है। निर्णय के बाद भी ज्यादा से ज्यादा सात बार। तो बिना निर्णय के? बिना निर्णय के कोई संख्या नहीं बताई जा सकती है कि हम कितने उपद्रव में पड़ सकते हैं। हम उपद्रव में पड़ते ही रहेंगे अनंत बार। क्योंकि हम किनारे पर ही खड़े हैं और सागर की हम बात करते हैं। और किनारे से हम इंच भर हटते नहीं, और सागर पर जाने की हमारी कामना है। नदी सागर में जा रही है, और सागर में जाने के लिए कोई यात्रा करनी जरूरी नहीं; नदी में स्वयं को छोड़ देना काफी है, नदी ले जाएगी।
यह नदी में स्वयं को छोड़ देने की जो मनोदशा है कि अब मैं छोड़ता हूं अपने को, यही है निर्णय। यह बहुत उल्टा लगेगा, क्योंकि आमतौर से हम जो निर्णय करते हैं, वह हमारे अहंकार के निर्णय होते हैं। एक आदमी कहता है, एक मकान बनाऊंगा--बनाकर ही रहूंगा। एक आदमी कहता है, इस व्यक्ति से शादी करूंगा--करके ही रहूंगा। एक आदमी कहता है, इस पद पर पहुचूंगा--पहुंचना ही है, चाहे कुछ भी हो। ये सब निर्णय हैं। इन निर्णयों से हम तट से बंधते हैं, नदी में नहीं उतरते, यही निर्णय हमें जमीन से बांध देते हैं, किनारे से। एक और निर्णय है, जो मैं का निर्णय नहीं है, बल्कि समर्पण है। इस बात
का निर्णय है कि अब मैंने बहुत निर्णय करके देख लिए, और मैंने बहुत पद पाकर भी देख लिए, कुछ भी न पाया। पड़ती है। मैं अपना जो भी कर सकता था, सब कर चुका हूं। अब, अब मैं स्वयं को छोड़ता हूं और इस अस्तित्व की धारा में अपने निर्णय को निमज्जित करता हूं। और अब मैं एक ही संकल्प करता हूं कि अब इस अस्तित्व के साथ बहूंगा, इस नदी में बहूंगा। इस जीवन की धारा में मैं अपने को छोड़ता हूं। और यह धारा जहां ले जाए, इस पर भरोसा रखूंगा।
इस भरोसे का नाम ही श्रद्धा है कि धारा जहां ले जाए। अगर यह पूरब जाने लगे, तो पूरब जाऊंगा। अगर यह पश्चिम जाने लगे, तो पश्चिम जाऊंगा। और अगर बीच में मुझे दुविधा
भी होने लगे कि अभी यह पूरब की तरफ बहती थी और अब यह धारा उल्टी बहने लगी, पश्चिम की तरफ बहने लगी, तो भी भरोसा रखूंगा कि चाहे पूरब बहे, चाहे पश्चिम, यह धारा सागर में जाएगी। और चाहे इसका रास्ता कितना ही टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता हो, और कई बार चकरीला हो जाता हो, लेकिन यह नदी उस सागर की तरफ जा रही है। इस नदी के साथ मैं अपने को छोड़ता हूं।
बुद्ध ने "स्रोतापन्न" शब्द का उपयोग किया है। निर्णय जिसने लिया, छोड़ने का अपने को। बुद्ध के पास जो लोग आते थे, तो वे तीन निर्णय की घोषणा करते थे कि मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं, कि मैं धर्म की शरण जाता हूं, कि मैं संघ की शरण जाता हूं। यह उनकी घोषणा थी नदी में प्रवेश की। बुद्ध उसी नदी का नाम है, संघ भी उसी नदी का नाम है, धर्म भी उसी नदी का नाम है। वह निर्णय करता है कि मैं अपने को छोड़ता हूं। बस मैं बहूंगा अस्तित्व में, अब मैं अपने अहंकार से व्यवधान खड़े न करूंगा। और कभी मुझे अगर लगे कि नदी गलत जाती है, तो मैं समझूंगा कि मैं गलत जा रहा हूं। ऐसे निर्णय के बाद सात जन्म ही शेष रह जाते हैं। बहुत कम, क्योंकि अनंत जन्मों की संभावना है। यह जो स्रोतापन्न होने का भाव है, इसे बहुत गहरे अपने मन में ले लेना। क्योंकि कल सुबह से हम उसी नदी में कूदना चाहेंगे। और अगर आपने अपने को बचाया, तो किनारे पर खड़े रह जाते हैं। और बचाने की हजार तरकीबें हैं। और हम अपने को बचाने में इतने होशियार हैं, और हम ऐसे बहाने खोजते हैं किलेकिन नदी में कूदने में डर लगता है--अज्ञात, अनजान नदी में। फिर जो कूदता है, वह हमें लगता है कि कुछ समझपूर्वक नहीं कर रहा है। हम सब समझदार हैं। और नदी में कूदने के लिए, यह जो किनारे की समझ है, उसे किनारे पर ही रखना जरूरी है। और नदी में कूदने के लिए एक एडवेंचर, एक दुस्साहस की क्षमता चाहिए, कि होगा

जो होगा--किनारे देख लिया, परख लिया, काफी--अब नदी को भी परखेंगे और देखेंगे।
इतने साहस से अगर कूदने की बात मन में जगी, तो इन आठ दिनों में यह नदी काफी दूर ले जा सकती है। यह मेरा आश्वासन है कि नदी काफी दूर ले जा सकती है।
पर जो किनारे ही खड़ा है, उसके लिए नदी भी असमर्थ है, वह कुछ भी नहीं कर सकती। या कुछ लोग कभी-कभी नदी में भी कूद जाते हैं और उलटे तैरने लगते हैं, नदी की विपरीत धारा में ऊपर की तरफ, नदी से विरोध में, तब भी नदी उन्हें सागर नहीं ले जा सकती है। और यह भी हो सकता है कि ऐसे उलटे तैरने वाले, नदी से लड़ने वाले नाहक ही टूटे, थके और परेशान हो जायें। मेरी ध्यान की जो व्यवस्था है वह ऐसी है कि आपको उसमें तैरना नहीं, बहना है। वह नदी की धारा है। उसमें उलटे जरा भी नहीं जाना है, उसके साथ सहयोग करना है। वह अगर मृत्यु में भी ले जाए, तो राजी रहना है। और अगर आप मृत्यु में भी जाने को राजी रहें तो आप अमृत को निश्चित ही उपलब्ध हो सकते हैं।

समाधि के सप्त द्वार
दूसरा प्रवचन

प्रथम दर्शन

प्रथम दर्शन ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 10 फरवरी, 1973

वह देख, ईश्वरीय प्रज्ञा के मुमुक्षु, तू अपनी आंखों के सामने क्या देख रहा है?
पदार्थ के समुद्र पर अंधकार का आवरण पड़ा है और उसके भीतर ही मैं संघर्षरत हूं। मेरी दृष्टि की छाया में वह गहराता है, और आपके हिलते हाथ की छाया में वह विच्छिन्न हो जाता है। सांप के फैलते केंचुल की तरह एक छाया गतिवान होती है यह बढ़ती है, फूलती-फैलती है, और अंधकार में विलीन हो जाती है।
यह मार्ग के बाहर तेरी ही छाया है--तेरे ही पापों के अंधकार से बनी है। हां, प्रभु मैं तेरे मार्ग को देखता हूं। इसका आधार दलदल में है और इसका शिखर निर्वाण के दिव्य व गौरवमय प्रकाश से मंडित है। और अब मैं ज्ञान के कठिन और कंटकाकीर्ण पथ पर निरंतर संकीर्ण होते जाते द्वारों को भी देखता हूं।
ओ लानू (शिष्य) तू ठीक देखता है। ये द्वार मुमुक्षु को नदी के पार दूसरे किनारे पर निर्वाण में पहुंचा देते हैं। प्रत्येक द्वार की एक स्वर्ण-कुंजी है, जो उसे खोलती है। ये कुंजियां हैंः
1 दान: उदारता व अमर प्रेम की कुंजी।
2 शील: वचन और कर्म की लयबद्धता की कुंजी, जो कारण और कार्य के नियम को संतुलित और कर्म-बंधन का अंत करती है।
3 क्षांति: मधुर धैर्य, जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता।
4 विराग: सुख व दुख के प्रति उपेक्षा, भ्रांति पर विजय, मात्र सत्य का दर्शन।
5 वीर्य: वह अदम्य ऊर्जा जो सांसारिक असत्यों के दलदल से सत्य के शिखर की ओर संघर्ष करती है।
6 ध्यान: जिसका स्वर्ण-द्वार एक बार खुल जाने पर जो नारजोल (संत या सिद्ध) को नित्य सत्य के लोक और उसके सतत स्मरण की ओर ले जाता हैं।
7 प्रज्ञा: जिसकी कुंजी मनुष्य को दिव्य बना देती है, और बोधिसत्व भी। बोधिसत्वता ध्यान की पुत्री है।
उन द्वारों की ऐसी ही स्वर्ण-कुंजियां हैं।
ओ अपने मोक्ष के ताने बुनने वाले, अंतिम द्वार को पहुंचने के पूर्व तुझे दुस्तर मार्ग पर से चल कर पूर्णता की इन पारमिताओं पर--जो लोकोत्तर गुण छह और दस की संख्या में हैं--अधिकार करना होगा।

जो अपने भीतर है--इस बारे में बहुत सी बातें हैं। इन सूत्रों में वे कही नहीं गई हैं। मात्र उनका इंगित है। और बहुत सी बातों का इंगित भी नहीं है। आशा है बिना इंगित के ही उन्हें समझा जा सकेगा।
जैसे, कल रात मैंने आपको कहा, इस बात का निर्णय ही कि मैं तत्पर हूं उस नदी में प्रवेश के लिए, जो सागर की ओर ले जाएगी; छोड़ता हूं अपने को, बहने का संकल्प करता हूं, समर्पित होता हूं--यह निर्णय ही व्यक्ति को स्रोतापन्न बना देता है। और इस निर्णय के साथ ही व्यक्ति में परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। निर्णय के बाद नहीं, इस निर्णय के साथ ही। ऐसा नहीं है कि निर्णय किया और फिर परिवर्तन होंगे। यह निर्णय ही परिवर्तनकारी हो जाता है। इस निर्णय के साथ ही आप वही आदमी नहीं हैं, जिसने निर्णय किया था; आप दूसरे आदमी हैं, जो निर्णय से गुजर चुका है। यह निर्णय आपके भीतर, उस दृष्टि की पहली झलक ले आता है, जिसके बिना मार्ग पर जाने का कोई उपाय नहीं है।
हम जीते हैं अनिर्णय में। हमारा मन सदा होता है डांवांडोल। यह भी करना चाहते हैं, वह भी करना चाहते हैं, विपरीत को भी साथ ही करना चाहते हैं। और हम न मालूम कितने खंडों में बंटे होते हैं। इन खंडों के बीच कोई

तारतम्य भी नहीं होता है। निर्णय के साथ ही आपके खंड इकट्ठे हो जाते हैं। निर्णय का एक सूत्र आपको जोड़ देता है। आप टुकड़ों में बंटे हुए एक भीड़ न होकर, व्यक्ति बन जाते हैं।
अगर आपने कभी कोई छोटा-मोटा निर्णय भी किया है, तो उस निर्णय के साथ ही भीतर जो एकाग्रता फलित होती है, उस निर्णय के साथ भीतर जो एक हल्कापन और ताजगी आ जाती है, उसका भी अनुभव किया होगा। साधारण निर्णय में भी धुआं छंट जाता है, बादल हट जाते हैं, सूर्य का प्रकाश हो जाता है। निर्णय के साथ ही धुंध के बाहर हो जाते हैं। लेकिन बड़े निर्णय तो बड़े क्रांतिकारी हैं। उनके बाद आप वही आदमी नहीं रहते, और फिर दुबारा लौटना असंभव हो जाता है। ऐसा ही निर्णय है साधक बनने का निर्णय। इस निर्णय के साथ ही व्यक्ति की भीतर की आंख पहली दफा खुलती है, पलक पहली दफा उठता है। तो यह पलक उठ गया है, और यह आंख खुली है, और गुरु ने शिष्य को कहा हैः
"वह देख, ईश्वरीय प्रज्ञा के मुमुक्षु, तू अपनी आंखों के सामने क्या देख रहा है?" --इस निर्णय के साथ ही भीतर जो एकाग्रता फलित हो रही है, उस एकाग्रता में तुझे क्या दिखाई पड़ रहा है? यह आंख के बाहर दिखाई पड़नेवाली दो आंखों की बात नहीं है। यह तो निर्णय के साथ भीतर जो तीसरी आंख खुलती है, उसकी बात है। देख, तेरी आंखों के सामने क्या घट रहा है? और जो दिखाई पड़ा है साधक को, वह मनुष्य के मन की बड़ी गहनतम खोज है।
और जब आप भी अपने भीतर प्रवेश करेंगे, तो जिससे आपकी पहली मुलाकात होगी, वह आपकी आत्मा नहीं है। जिससे आपकी पहली मुलाकात होगी, वह आपकी छाया है, आपकी आत्मा नहीं। और अब तक हम छाया को ही आत्मा मानकर जिये हैं। इसलिए स्वाभाविक है कि उससे ही हमारा पहले मिलना हो। यह हमारे भीतर जो एक छाया है--जिसको पीछे मनोविज्ञान, विशेषकर गुस्ताव जुंग ने बड़ा मूल्य दिया और कहा कि हर आदमी की एक शैडो है। वह छाया, जो आपको दिखाई पड़ती है सूरज की धूप में, वह नहीं है। जो अपने अपनी ही भूल और अपने अज्ञान से अपने भीतर निर्मित कर ली--आपकी अस्मिता, आपका अहंकार, वही छाया आपका पीछा कर रही है। सूरज की धूप भी जब नहीं होती, तब भी वह छाया आपका
पीछा करती है। और इस छाया में ही आप जीते हैं। और उस छाया को ही मान लेते हैं कि यह मैं हूं। और उस छाया के आसपास ही एक संसार निर्मित करते हैं। जैसे ही निर्णय की आंख खुलती है, पहली मुलाकात इसी छाया से, इसी मनस्- काया से होती है।
शिष्य ने कहा: "पदार्थ के समुद्र पर अंधकार का आवरण देखता हूं और उसके भीतर ही मैं संघर्षरत हूं। यह भी देखता हूं, और मेरी दृष्टि की छाया में वह गहराता है, और जैसे मैं देखता हूं, वह जो अंधकार है, और गहन हो जाता है, मेरी दृष्टि से और घना मालूम पड़ता है, और आपके हिलते हाथ की छाया में उसे विच्छिन्न होते भी देखता हूं। सांप के फैलते केंचुल की तरह यह छाया गतिवान होती है यह बढ़ती है, फूलती नहीं है। लेकिन अंधेरे में खोजते-खोजते एक दिन अंधेरे की पर्त टूट जाती है और हम प्रकाश के लोक में प्रवेश करते हैं।
पहली मुलाकात वास्तविक साधक को अंधेरे से होती है, झूठे साधक को प्रकाश से भी हो सकती है। यह साधक कह रहा है कि देखता हूं पदार्थ के समुद्र पर अंधकार का आवरण। और देखता हूं कि उसके भीतर मैं संघर्षरत हूं। उस अंधेरे में ही मैं टटोल रहा हूं, खोज रहा हूं। उस अंधेरे में ही मैं लड़ रहा हूं। उस अंधेरे में ही मेरी वासनाएं और मेरी कामनाएं और मेरी अभीप्साएं हैं। उस अंधेरे में ही मेरा संसार है, यह भी देखता हूं। और साथ ही एक और बड़ी अदभुत बात देखता हूं कि आपके हिलते हाथ की छाया में वह विच्छिन्न हो जाता है, और मेरे देखने से और घना होता है।
गुरु आपको प्रकाश तो नहीं दे सकता, लेकिन आपके अंधकार को छीन सकता है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें, क्योंकि हम सोचते हैं कि दोनों एक ही बात है। दोनों एक ही बात नहीं है। कोई चिकित्सक आपको स्वास्थ्य नहीं दे सकता, लेकिन आपकी बीमारी छीन सकता है। और बीमारी न हो, तो स्वास्थ्य के उपलब्ध होने की संभावना बढ़ जाती है। फिर भी जरूरी नहीं कि आप स्वस्थ हो जाएं; लेकिन संभावना बढ़ जाती है। इतना पक्का है कि बीमारी के साथ स्वस्थ होना

मुश्किल है। बीमारी हट जाए, तो स्वास्थ्य प्रगट हो सकता है। समस्त चिकित्साशास्त्र बीमारी को अलग करने का दावा करते हैं, स्वास्थ्य को देने का नहीं। स्वास्थ्य दिया भी नहीं जा सकता है। स्वास्थ्य तो आपकी भीतरी क्षमता है। बीमारी न हो, तो स्वास्थ्य प्रगट हो जाता है। जैसे कोई झरना दबा हो पत्थरों में, और हम पत्थर हटा लें, झरना प्रगट हो जाए। लेकिन झरना पत्थरों के अलग होने से प्रगट नहीं होता; झरना तो था ही, सिर्फ छिपा था, आवृत्त था।

तो कोई गुरु ज्ञान नहीं दे सकता है। क्योंकि ज्ञान तो छिपा ही है, वह
है स्वभाव। लेकिन गुरु आपके अंधेरे को छिन्न-भिन्न कर सकता है। और अंधेरा छिन्न-भिन्न हो जाए, तो आपके भीतर बड़ी घटनाएं घटती हैं। अंधेरा छिन्न-भिन्न होते ही आपका संसार छिन्न-भिन्न हो जाता है। और कल तक जैसा आप देखते थे, अब नहीं देख पाते। और कल तक जैसा आप सोचते थे, अब नहीं सोच पाते। आप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। आपके अंधेरे के छिन्न-भिन्न होते ही आपकी जड़ें गिर जाती हैं। वह जो आपका झूठा लोक है, वह सब तरफ से टूट जाता है, उसकी दीवारें गिर जाती हैं। आप एक खंडहर हो जाते हैं।
वह शिष्य देखता है कि "आपके हिलते हाथ की छाया में वह विच्छिन्न हो जाता है, टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, दूर हट जाता है। लेकिन जब मैं गौर करता हूं, तो घना हो जाता है। जब मैं देखता हूं, अपनी दृष्टि उस पर एकाग्र करता हूं, तो बहुत घना हो जाता है।"
ध्यान रहे, जैसे कि सुबह से पहले रात घनी हो जाती है, अंधेरा प्रगाढ़ हो जाता है, वैसे ही जब कोई भीतर एकाग्र होकर देखता है, तो वह जो विराट अंधकार हमने जन्मों-जन्मों में इकट्ठा किया है, वह सघन हो जाता है, इकट्ठा होने लगता है, कंडेन्स हो जाता है। और अगर कोई ठीक से खोज करता रहे, तो ठीक आपकी प्रतिमूर्ति अंधेरे में निर्मित हो जाती है। आपकी ही छाया, आपका ही निगेटिव, आप अपने को ही खड़ा देख पाते हैं। और अगर इसे गौर से कोई देखता ही चला जाए, तो वह छाया सघन होते-होते छोटी होती चली जाती है। अंत में एक बिंदु मात्र रह जाता है। और जिस दिन वह बिंदु भी विसर्जित हो जाता है, उसी दिन प्रकाश का द्वार खुल जाता है। जितनी हो एकाग्रता इस अंधकार की मूर्ति पर, वह उतनी ही छोटी होती चली जाती है, और जितनी हो एकाग्रता कम, उतना ही अंधकार बड़ा होता चला जाता है। इसका अर्थ हुआ कि जब ध्यान की क्षमता बढ़ती है, तो अंधकार सीमित होने लगता है। और जब ध्यान की क्षमता नहीं होती, तो अंधकार विराट होने लगता है। ध्यान के अभाव में अंधकार का बड़ा विस्तार है। और ध्यान के साथ ही अंधकार छोटा होने लगता है। एक घड़ी आती है कि अंधकार शून्यवत हो जाता है, नहीं हो जाता है। वह क्षण ही अवसर है, प्रकाश के प्रगट होने का।
तो ध्यान दो काम करता है--अंधकार को छोटा करता है, और प्रकाश के द्वार
को खोलने का उपाय करता है।
"साप के केंचुल की तरह वह छाया गतिवान है, बढ़ती है, फूलती-फैलती है और अंधकार में विलीन हो जाती है"
किन्हीं-किन्हीं क्षणों में वह साधक कह रहा है कि मैं उसे सघन होते भी देखता हूं। लेकिन बड़ी परिवर्तनशील है। जैसे हाथ में किसी ने पारे को पकड़ने की कोशिश की हो, और बिखर-बिखर जाए। कुछ पकड़ में नहीं आती। फ्कभी लगती है कि है और कभी अंधकार में खो जाती है।
ऐसा ही है हमारा अज्ञान का लोक। वहां पकड़ में कुछ भी नहीं आता। मुट्ठी बांधते-बांधते पता लगता है कि जिसे पकड़ते थे, वह छूट गया।
कौन-सी वासना पकड़ में आती है, कौन-सी इच्छा पकड़ में आती है, कौन-सी कामना पकड़ में आती है?
सदा दूर बनी रहती है, पास पहुंचते-पहुंचते खो जाती है। कभी लगता है किसी क्षण में कि बस अब पा लिया, और हाथ खोल कर देखते हैं तो वहां सिवाय धुआं के और कुछ भी नहीं होता। जिसे खोजने चले थे, व फिर दूर कहीं आगे दिखाई पड़ने लगता है। इन्हीं सारी वासनाओं के संघट का नाम है भीतर की छाया। और इस

छाया से मुक्त होना जरूरी है। इस छाया से जो मुक्त नहीं है, वह अपनी आत्मा को कभी नहीं जान पाएगा।
शंकर ने अस्तित्व को समझने का, अस्तित्व को देखने का जो ढंग दिया है,
वह विचारणीय है। और उससे इस छाया को समझना आसान होगा। शंकर ने कहा है कि ब्रह्म है इस जगत का केंद्र और यह जो सारा फैलाव है जगत का, यह है माया, यह है स्वप्न उस ब्रह्म का।
ठीक ऐसे ही अगर आपको हम आत्मा मानें, तो आपके आसपास जो एक छोटा सा संसार वासनाओं का निर्मित हो जाता है, वह आपकी माया है, आपकी छाया है। और अगर प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म है, और है, तो उसके पास भी एक उसकी माया का विस्तार है। उस माया को ही यह साधक छाया कह रहा है।

छाया की कुछ खूबियां हैं, वह हम समझ लें, तो समझने में बहुत आसानी हो जाएगी। छाया की एक खूबी है कि वह होती नहीं है और दिखाई पड़ती है। जब आप रास्ते पर चल रहे होते हैं, और धूप में आपकी छाया पड़ती है, तो वहां होता क्या है? छाया में कोई सत्व, कोई सब्सटेंस तो नहीं होता, कोई द्रव्य तो नहीं होता। छाया सिर्फ अभाव है। प्रकाश की किरणें आप पर पड़ती हैं और आप आड़ बन जाते हैं। जितने हिस्से में आप आड़ बन जाते हैं, उतने हिस्से में पीछे प्रकाश की किरणें नहीं पड़ पाती हैं, छाया निर्मित हो जाती है। वह छाया सिर्फ प्रकाश का अभाव है, छाया कुछ है नहीं। इसलिए छुरी से उसे हम काट नहीं सकते, आग से हम उसे जला नहीं सकते और हम उसे मिटाना चाहें, तो मिटाने का भी कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो नहीं है, उसे मिटाया भी नहीं जा सकता। और छाया से कोई लड़ेगा तो हारेगा, जीत भी नहीं सकता है। क्योंकि जो नहीं है, उससे जीतने का भी क्या उपाय है?
बहुत लोग छाया से लड़ने में लग जाते हैं और तब पराजय के सिवाय उन्हें कुछ भी हाथ नहीं लगता। जो अपनी वासनाओं से लड़ने में लग जाएगा, वह पराजित होगा। जो संसार से लड़ने में लग जाएगा, वह पराजित होगा। जीतने का रास्ता यहां लड़ना नहीं, जीतने का रास्ता यहां समझना है। जिसने छाया को समझ लिया, कि वह नहीं है--वह जीतता नहीं, उससे मुक्त हो जाता है। एक बार जान लेने पर कि छाया नहीं है, अभाव है, ऐबसेंस है, अनुपस्थिति है किसी की, बात समाप्त हो जाती है।
आपके भीतर की वासनाएं, आपके भीतर जो छिपी आत्मा है, उसके अनुभव का अभाव है। और जब तक उसका अनुभव न हो जाए, छाया बनेगी। इसका यह अर्थ हुआ कि जैसे सूरज की किरणों का अभाव हो तो छाया बनती है। जब तक आपकी आत्मा की किरणें कहीं आप रोक रहे हैं, तब तक आपकी छाया निर्मित हो रही है। जब तक भीतर का प्रकाश कहीं रुक रहा है किसी दीवाल से, तब तक छाया निर्मित हो रही है। छाया से लड़ना व्यर्थ है, इस भीतर के प्रकाश को विस्तीर्ण कर लेना सार्थक है। छाया खो जाएगी। इसलिए हमने एक बड़ी मधुर कथा निर्मित की है। जैन कहते हैं कि उनके तीर्थंकरों की छाया नहीं बनती है। महावीर चलते हैं, तो उनकी छाया नहीं बनती। यह बात तो झूठी है। महावीर चलें या कोई भी चले, छाया तो बनेगी। लेकिन मतलब बहुत गहरा है और साफ है। और इस तरह के सत्यों को मैं कहता हूं "काव्य सत्य"। यथार्थ में महावीर के पास जाकर देखेंगे, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। छाया तो उनकी भी बनेगी; क्योंकि जहां छाया है, वहां आड़ बनेगी। लेकिन यह बात भीतर की छाया के लिए है। भीतर महावीर की कोई छाया नहीं बनती। वह जो शैडो पर्सनाल्टी है, खो गई। अब वे अकेले हैं, अब उनकी आत्मा ही है। उसके आसपास कोई छाया का आवरण नहीं है। इस बात को कहने के लिए ही यह कथा है।
लेकिन बड़ा झगड़ा लोगों के मनों में चल जाता है। फिर इस पर ही लोग विवाद करते रहते हैं कि महावीर की छाया बनती है या नहीं बनती। अगर नहीं बनती, तो वह तीर्थंकर हैं; और अगर बनती है, तो साधारण आदमी सब तरफ से टूट जाता है, उसकी दीवारें गिर जाती हैं। आप एक खंडहर हो जाते हैं।
वह शिष्य देखता है कि "आपके हिलते हाथ की छाया में वह विच्छिन्न हो जाता है, टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, दूर हट जाता है। लेकिन जब मैं गौर करता

हूं, तो घना हो जाता है। जब मैं देखता हके बाहर तेरी ही छाया है, तेरे ही पापों के अंधकार से बनी।"
"हां प्रभु, मैं मार्ग को देखता हूं। इसका आधार दलदल में है और इसका शिखर निर्वाण के दिव्य गौरवमय प्रकाश से मंडित है। और अब मैं ज्ञान के कठिन और कंटकाकीर्ण पथ पर निरंतर संकीर्ण होते जाते द्वारों को भी देखता हूं।"
इस सूत्र में भी बड़ी कीमत की बात है कि हां प्रभु, मैं मार्ग को देखता हूं। इसका आधार दलदल में है और इसका शिखर निर्वाण के दिव्य गौरव मंडित प्रकाश से भरा है। जैसे कि कभी आपने कमल को पैदा होते देखा हो, तो उसकी जड़ें तो होती हैं दलदल में, मिट्टी में, और उसकी पंखुड़ियां खुलती हैं सूर्य-मंडित आलोक के जगत में। एक तरफ जुड़ा होता है पृथ्वी के दलदल से, और दूसरी तरफ जुड़ा होता है प्रकाश के लोक से। मनुष्य की यात्रा कमल की यात्रा है। और कमल को अगर पैदा होना हो, तो दलदल में ही पैदा होना पड़ेगा, गंदी मिट्टी में ही पैदा होना पड़ेगा। बड़ा रूपांतरण है, बड़ी अलकेमी घट गई। कहां मिट्टी थी सड़ी, और कहां अब कमल की कोमल पंखुड़ियां हैं। सोच भी न सकते थे कि मिट्टी से ऐसी पंखुड़ियां पैदा होंगी। कहां थी मिट्टी पानी से भरी और कहां अब कमल की पंखुड़ियां हैं कि पानी ऊपर पड़े भी तो भी स्पर्शित नहीं होता। कहां दबा था यह मिट्टी, कचरे में, और अब उठ गया आकाश की ओर। इसकी मिट्टी को कोई देखता, तो सौंदर्य का भाव भी न उठता। और अब इसे कोई देखता है, तो सौंदर्य का यह प्रतीक हो गया है। इसलिए हमने महावीर के, बुद्ध के, विष्णु के चरणों में कमल का फूल रखा है।
कमल का फूल प्रतीक है। संसार दलदल है, लेकिन उससे दुश्मनी करने का
कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि कमल भी अगर अपनी मिट्टी से दुश्मनी करे, तो उठ नहीं पाएगा। उठता तो उसी मिट्टी के सहारे है। उसी मिट्टी से पाता है बल। वही मिट्टी है उसका प्राण। उसी से खींच लेता है, जो सार है। उस मिट्टी में जो व्यर्थ है, वह छोड़ देता है और उस मिट्टी में जो सार है, उसे खींच लेता है। और तब उसी मिट्टी में से व प्रगट हो जाता है, जिसे हम सौंदर्य की प्रतिमा कहें। सब कचरा हट जाता है, काव्य छन-छन कर बाहर आ जाता है, सब व्यर्थ छूट जाता है और सौंदर्य का पूरा रस, जीवंत नृत्य प्रगट हो जाता है।
आदमी के आस-पास भी मिट्टी है और दलदल है। सूत्र यह कह रहा है कि साधक
ने कहा कि मैं देखता हूं यह जो मार्ग है इसका प्रारंभ तो दलदल में है, ठीक मिट्टी में है, पृथ्वी में है और इसका शिखर निर्वाण है, प्रकाश-मंडित है। यह एक छोर पर जो संसार है, वही दूसरे छोर पर मोक्ष है। और एक छोर पर जो शरीर है, वही दूसरे छोर पर आत्मा है। और एक छोर पर जिसे हम माया की तरह जानते हैं, वही दूसरे छोर पर ब्रह्म की परम अनुभूति हो जाती है। विरोध नहीं है। जगत में वस्तुतः विरोध नहीं है। और अगर विरोध दिखता है, तो इन दो विराट छोरों को हम नहीं जोड़ पाते हैं, इसलिए दिखता है। वह हमारी अक्षमता है। हमारी सीमा है कि हमारी दृष्टि छोटी है। जब हम संसार को देख पाते हैं,
तो हम मोक्ष को नहीं देख पाते हैं। और जब हमारी आंखें मोक्ष की तरफ उठती हैं, तब हम संसार को नहीं देख पाते। और जो पूरे मार्ग को देख पाएगा, वह कहेगा कि एक छोर पर जो अंधेरा था, वही दूसरे छोर पर प्रकाश हो गया और एक छोर पर जो जंजीरें थी, वही दूसरे छोर पर मुक्ति और स्वतंत्रता बन गई। और ऐसा जब कोई देख पाता है, तो ही पूरे मार्ग को देख पाता है।
"अब मैं ज्ञान के कठिन और कंटकाकीर्ण पथ पर निरंतर संकीर्ण होते जाते द्वारों को भी देखता हूं।"
और यह भी देखता हूं कि पहला द्वार तो बहुत बड़ा है, दूसरा द्वार और छोटा है, तीसरा द्वार और छोटा है। और द्वार छोटे होते चले जाते हैं। निरंतर संकीर्ण होते जाते द्वारों को देखता हूं। और अंतिम द्वार तो बिल्कुल संकीर्ण हो जाता है। और जब मैं कहता हूं बिल्कुल संकीर्ण, तो उसका मतलब कि आप अगर थोड़े से भी बचे, तो उसमें से प्रवेश न हो सकेगा।
जीसस ने कहा हैः ऊंट भी निकल सकता है सुई के छेद से, लेकिन वे जो धनवान हैं, वे मेरे मोक्ष के द्वार से न निकल सकेंगे। ऊंट भी निकल सकता है सुई के

छेद से, पर वे जो धनवान हैं, वे मेरे मोक्ष के द्वार से निकल न सकेंगे। अति संकीर्ण है। और धनवान कौन नहीं है? आपने निर्धन आदमी देखा? जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह भी मान कर चलता है कि कुछ उसके पास है। और ऐसे भी लोग हैं, जो अपनी निर्धनता को भी धन बना लेते हैं। अगर कोई आदमी अपने त्याग का गौरव करता है, तो इसका अर्थ हुआ उसने निर्धनता को भी धन बना लिया। वह भी मोक्ष के द्वार पर अकड़ कर खड़ा हो जाएगा कि मैं कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं हूं, मैंने इतना त्याग किया है! यह उतना त्याग भी उसने बैंक-बैलेंस बना लिया! वह उसे साथ ले आया!
सुना है मैंने कि एक सम्राट एक चर्च में प्रार्थना कर रहा था। कोई धर्म का बड़ा दिन था और सभी प्रार्थना को आए थे। सम्राट भी आया था। और फिर प्रार्थना करते-करते जोश में चढ़ गया, जैसा कि हम सभी चढ़ जाते हैं। और फिर वह जरा ज्यादा बातें कहने लगा। वह यह तक बोल गया कि हे प्रभु, मैं तेरे चरणों में क्षुद्र से क्षुद्र धूल हूं, मैं नाकुछ हूं, मैं कुछ भी नहीं हूं। जब वह यह कह रहा था, तब उसने देखा कि पास में एक साधारण आदमी भी प्रार्थना कर रहा है और वह भी प्रभु से कह रहा है कि मैं भी कुछ नहीं हूं, नाकुछ हूं। उस सम्राट ने कहा कि सुन, यह कौन मुझसे प्रतियोगिता कर रहा है? ध्यान रहे, मेरे राज्य में मुझ सा नाकुछ, मुझसे ज्यादा नाकुछ और कोई भी नहीं है।
हम अपने न-होने को भी संपत्ति और धन बना सकते हैं! यह सम्राट यह भी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई और भी हो उसके राज्य में, जो कह सके कि मैं कुछ भी नहीं हूं। उसमें भी सम्राट ही आगे होगा।
जीसस का मतलब धनवान से यह नहीं कि जिनके पास धन है। धनवान से मतलब है
कि जिसके मन में मैं कुछ हूं, ऐसा भाव है। ऐसा व्यक्ति उस द्वार से न निकल सकेगा।
साधक कह रहा है कि देखता हूं कि हर द्वार और संकीर्ण होता चला जाता है। इसलिए तो अहंकार को छोड़ना पड़ता है, वह जो परिग्रह का भाव है, उसे छोड़ना पड़ता है। वह जो हमने बोझ इकट्ठा कर लिया है, उसे छोड़ना पड़ता है। क्योंकि द्वार संकीर्ण होते चले जाते हैं। और हमें छोटा होना पड़ता है। और अंतिम द्वार शून्य है। और वहां से केवल वही निकल पाता है, जो शून्य हो जाता है। अंतिम द्वार है ही नहीं, अगर हम ऐसा कहें; क्योंकि द्वार में से तो मतलब ही होता है कुछ निकल सके। अंतिम द्वार है ही नहीं, अंतिम द्वार जैसे दीवार है; इसमें से वही निकल पाता है, जो बिल्कुल शून्य हो; फिर उसे दीवार भी नहीं रोक सकती।
ओ लानू, लानू तिब्बती भाषा का शब्द है और उसका अर्थ है शिष्य; लेकिन सिर्फ शिष्य नहीं। इसलिए ब्लावट्स्की ने लानू का उपयोग किया है। जैसे दुनिया की किसी भाषा में गुरु जैसा शब्द नहीं है, वैसा ही लानू है। टीचर, मास्टर, गुरु की महिमा को उपलब्ध नहीं होते। उनसे पता चलता है, जिससे हमने कुछ सीखा। गुरु से पता चलता है, जिसके द्वारा हम कुछ हुए, सीखा नहीं। गुरु का अर्थ हैः जिसके द्वारा हम कुछ हुए, जिसके द्वारा हम बदले; जिससे हमारा ज्ञान नहीं बढ़ा, हम बढ़े। जिससे हमने कुछ और ज्यादा जान लिया, कुछ सूचनाएं इकट्ठी कर लीं, ऐसा नहीं--और जिसके द्वारा हमारा अस्तित्व ही रूपांतरित हुआ। वह गुरु है, जिससे हमें नया जन्म मिला। गुरु जैसा शब्द दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं, लानू जैसा शब्द भी दुनिया की किसी भाषा में नहीं है।
लानू का मतलब शिष्य तो होता है, वैसे ही जैसे गुरु का अर्थ शिक्षक होता है। लेकिन जैसे गुरु में एक महिमा है, एक विशिष्टता है अस्तित्व को रूपांतरित करने की, वैसे ही लानू में है। लानू का अर्थ है जो अब मिटने को राजी है, ऐसा शिष्य; जो सीखने नहीं आया, जो मिटने आया है। जो मात्र ज्ञान इकट्ठा करने नहीं आया, जो अपने को बदलने आया है। जो हर बात के लिए राजी है। उससे गुरु कहे कि तू उस पहाड़ से कूद जा, तो वह कूद जाएगा। वह यह नहीं पूछेगाः क्यों? शिष्य पूछ सकता है क्यों, क्योंकि वह सीखने आया है।
लानू का अर्थ हैः जिसने अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया। और क्या, क्यों, और प्रश्न, जिसके मन में न रहे। जो निष्प्रश्न होकर चरणों में गुरु

के आ गया है। और गुरु जो कहेगा, वैसा ही कर लेगा। उससे अगर वह नरक में भी पहुंच जाए, तो यह नहीं पूछेगा क्यों। वह पूछेगा ही नहीं। पूछने की बात ही जिसने छोड़ दी है। इसलिए ब्लावट्स्की ने तिब्बतन लानू का उपयोग किया है। "ओ लानू, तू ठीक देखता है, ये द्वार मुमुक्षु को नदी के पार दूसरे किनारे पर निर्वाण में पहुंचा देते हैं। प्रत्येक द्वार की एक स्वर्ण-कुंजी है, जो उसे खोलती है।"
दान का अर्थ हैः देने का भाव।
फिर देने की बात तो अपने आप उसमें से निकल आती है, पर देने का भाव मूल में है। और ध्यान रहे, देना उतना जरूरी नहीं, जितना देने का भाव जरूरी है। फिर देना तो उसके पीछे चला आता है। और कई बार हम दे भी देते हैं, लेकिन देने का भाव बिल्कुल नहीं होता है। और तब दान झूठा होता है। हम देते हैं, लेकिन हम देते ही तभी हैं, जब हम कुछ देने के पीछे चाहते हैं। उसमें भी सौदा होता है। एक आदमी कुछ दान कर देता है, तो सोचता है कि धर्म या पुण्य होगा; तो सोचता है कि स्वर्ग मिलेगा, तो सोचता है कि परमात्मा इसके प्रत्युत्तर में कुछ देगा। लेने पर ही उसकी नजर है। देना अगर है भी तो सौदा है। तो फिर दान नहीं रहा।
दान का अर्थ हैः देने में आनंद।
देना ही आनंद है, उसके पास लेने का कोई भाव नहीं है। ऐसा नहीं कि नहीं मिलेगा, बहुत मिलेगा। सच तो यह है कि देने के भाव से ही जो देगा, बिना सौदा से देगा, उसे अनंत गुना मिलेगा। लेकिन यह अनंत गुना मिलना लय नहीं होना चाहिए। यह दृष्टि नहीं होनी चाहिए, यह हमारी वासना नहीं होनी चाहिए। यह सहज परिणाम है, जो घटित होता है।
सूरज निकलता है, फूल खिल जाते हैं। सूरज कोई फूलों को खिलाने के लिए नहीं निकलता है। और फूलों को खिलाने के लिए किसी दिन निकले, तो बहुत संदेह है कि फूल खिलें। और सूरज अगर एक-एक फूल को पकड़ कर खिलाने की कोशिश करे, तो बहुत मुश्किल में पड़ जाए, सांझ होते-होते सदा के लिए थक जाए। फूल खिलते हैं, ये सूरज के निकलने में ही खिल जाते हैं। दान में ही मिल जाता है सब कुछ। जो दिया है वह ना-कुछ है; जो मिलता है, वह बहुत है। लेकिन मिलने की धारणा अगर मन में हो, तो दान नहीं हो पाता। देना हो शुद्ध। और देना कब होता है शुद्ध? जब हमें देने में ही आनंद मिलता है।
दान का अर्थ हैः उदारता और प्रेम--देने का भाव।
दूसरी कुंजी है शीलः वचन और कर्म की लयबद्धता।
वह जो हम कहें, वह जो हम सोचें, वही हमारे व्यक्तित्व में भी प्रतिफलित हो। हमारा व्यक्तित्व हमारे विपरीत न हो, एक लय हो, एक संगीत हो। कोई फिक्र नहीं कि क्या आप सोचते हैं। बड़ा सवाल यह नहीं कि क्या आप सोचें, बड़ा सवाल यह है कि जो आप सोचें और कहें, उसकी छाया आपके व्यक्तित्व में भी हो। या फिर जो आपके व्यक्तित्व में हो, वही आप कहें, वही आप सोचें। एक चोर भी शील को उपलब्ध हो सकता है, लेकिन तब चोरी को नहीं छिपाएगा।
और तब चोरी ही उसका विचार भी हो, चोरी ही उसका वचन भी हो और चोरी ही उसका कृत्य भी हो। और बड़े आश्चर्य की यह बात है कि चोर इतना लयबद्ध हो, तो चोरी अपने आप असंभव हो जाती है। क्योंकि इतने संगीत से दूसरे को नुकसान पहुंचाने की बात नहीं उठती। इतनी गहरी लयबद्धता से किसी को हानि पहुंचाने का ख्याल भी नहीं उठता। तो चोर से यह नहीं कहा जाना चाहिए कि तू चोरी मत कर। उसे यही कहा जाना
चाहिए कि तुझे चोरी करना हो तो चोरी कर, लेकिन फिर चोरी को ही ठीक मान, चोरी का ही विचार कर, और चोरी को छिपा मत, और चोरी के साथ एक-लयबद्ध हो जा। असंभव हो जाएगी चोरी।
शील का मौलिक अर्थ है कि हमारे भीतर और बाहर में एक संगीत हो। अगर आपके भीतर जो है, वैसा आप बाहर निर्मित न कर सकें, तो जैसा आपका बाहर है, वैसा आप भीतर निर्मित कर लें। और जहां-जहां आपको लगता हो कि भीतर विरोध है, वहां-वहां विरोध को बदल दें और एक लयबद्धता ले आएं।
लयबद्ध व्यक्तित्व ही, साधना के जगत में प्रवेश कर पाता है।

लेकिन हमारा जो व्यक्तित्व है, उसमें कितने उपद्रव हैं! ऐसा भी नहीं
कि हम जो सोचते हैं, वैसा नहीं करते हैं। जो हम सोचते हैं, वह भी पक्का नहीं कि हम वैसा सोचते हैं। उसके भीतर भी पर्तें हैं, अचेतन पर्तें हैं। हम वैसा सोचते भी नहीं हैं। जो हम सोचते हैं, वैसा हम कहते नहीं हैं। ऐसा भी नहीं है, कि हम जो कहना चाहते हैं, वह भी नहीं कहते हैं। और बहुत बार हम ऐसी बातें कहते हैं, जो हम कहना ही नहीं चाहते। और जो हम करते हैं, वह तो बहुत दूर है।
एक-एक आदमी बहुत आदमियों की भीड़ है। सुबह उससे मिलिए, वह कोई और है, दोपहर उससे मिलिए वह कोई और है; सांझ उससे मिलिए, वह कोई और है। आप एक ही आदमी से नहीं मिलते हैं; चेहरे दिन भर बदलते चले जाते हैं। इन चेहरों की भीड़ में कैसे हो शांति फलित?
और इसलिए नहीं कि दूसरे का हित होगा, इसलिए आप अपने वचन और कर्म को एक-बद्ध कर लें। दूसरा प्रयोजन नहीं है, आपका ही हित है। हम सब आनंद खोजते हैं। और बिना
एक मौलिक लयबद्धता के आनंद असंभव है।
रुसो कुसियन एक साधकों का गुप्त समूह है। उन्होंने तो नाम ही रखा है साधक का हारमोनियम। और जब तक कोई साधक हारमोनियम न हो जाए, तब तक, वे कहते हैं, आगे बढ़ने का कोई उपाय नहीं है।
तीसरी कुंजी हैः क्षांति।
क्षांति बौद्ध शब्द है, उसका अर्थ हैः धैर्य। लेकिन धैर्य से थोड़ा भेद है। अगर कोई आपकी हत्या कर रहा हो, बुद्ध ने कहा है, तो धैर्य रखना बहुत आसान है। जितना बड़ा उपद्रव हो, उतना धैर्य आसान है। कोई आपकी गर्दन को फांसी पर लटका रहा हो, तो धैर्य रखना आसान है। और एक चींटी आपका पैर काट रही हो, तो धैर्य रखना मुश्किल है। बुद्ध ने कहा है कि छोटी चीजों में धैर्य रखना मुश्किल है; बड़ी चीजों में धैर्य रखना आसान है। क्योंकि बड़ी चीजों में धैर्य रखने में अहंकार की तृप्ति हो सकती है, छोटी चीजों में धैर्य रखने से अहंकार की कोई तृप्ति नहीं होती।
क्षांति का अर्थ हैः छोटी बातों में धैर्य, बहुत क्षुद्र बातों में धैर्य।
आपके ऊपर पहाड़ गिर पड़े, आप बर्दाश्त कर सकते हैं; क्योंकि यह भी क्या
कम मजा है कि इतने बड़े पहाड़ ने आपको चुना गिरने के लिए। लेकिन कोई एक मटकी आपके ऊपर लटका दे और एक-एक बूंद पानी टपकता रहे--जैसा शंकरजी को लोग सताते हैं--टप, टप, टप--आप पागल हो जाएंगे।
चीन में वह उपयोग करते थे लोगों को सताने के लिए। कैदियों के सिर के ऊपर मटकी बांध देंगे, उसमें से एक-एक बूंद चौबीस घंटे टपकती रहेगी। गर्दन काट देने से ज्यादा मुश्किल है। क्योंकि गर्दन एक क्षण में कट जाती है और यह बूंद टपक सकती है जीवन भर। और रात-दिन टप-टप सिर पर बूंद टपकती रहे, उस समय भी धैर्य आप रख सकें, उसका नाम है क्षांति। छोटी बातों में धैर्य। क्योंकि बुद्ध ने कहाः बड़ी बातों में धैर्य तो रखा जा सकता है, अहंकार के लिए सुलभ है, छोटी बातों में धैर्य नहीं रखा जा सकता। क्योंकि छोटी बातों से अहंकार की कोई तृप्ति ही नहीं होती है।
क्षांतिः मधुर धैर्य, जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता है।
साथ में एक शर्त और है क्षांति में--मधुरता की। आप कठोर होकर धैर्य रख सकते हैं। लेकिन तब जो खूबी थी, वह चली गई। कठोर होकर धैर्य रखना आसान है, क्योंकि आपने कठोरता की एक दीवार खड़ी कर ली अपने चारों तरफ, जो आपकी सुरक्षा करेगी। लेकिन मधुर कठोर भी न हो जाए, सुरक्षा भी न करे और धैर्य रहे; और जो हो रहा है, उसके प्रति एक प्रीतिपूर्ण भाव रहे।
जैसे आपके सर पर बूंद टपक रही है, तो आप अकड़ कर बैठ जाएं और भीतर सख्त
हो जाएं, चट्टान की तरह हो जाएं, तो भी इस बूंद को सह लेंगे। लेकिन तब क्षांति का मौलिक बिंदु खो गया। बुद्ध कहते हैं, बूंद के प्रति प्रेम का भाव भी हो, एक मधुरता भी हो, एक मैत्री भी हो। यह बूंद सुखद है, ऐसा भी लगे।
तो बुद्ध उसको धैर्य कहते हैं।

चौथी है--विरागः सुख व दुख के प्रति उपेक्षा, भ्रांति पर विजय और मात्र सत्य का दर्शन।
आमतौर से विराग के साथ भूल होती है। विराग के साथ हम समझते हैं, सुख के प्रति उपेक्षा। लेकिन यह सूत्र कहता है, सुख और दुख दोनों के प्रति उपेक्षा। दो में से एक को चुनना हमेशा आसान है, क्योंकि मन चुनाव पसंद करता है और एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। आपको सुख अच्छा लगता है, तो दुख बुरा लगता है। कभी आप दुख भी चुन सकते हैं। कई तपस्वी, तथाकथित तपस्वी दुख चुन लेते हैं तो फिर उन्हें सुख बुरा लगता है। लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक बिंदु से आप दूसरे पर चले जाते हैं। लेकिन आपकी दृष्टि, आपका ढंग, आपका होना, पुराना ही बना रहता है। एक आदमी को एक अच्छी गद्दी पसंद है और एक आदमी को कांटे बिछाकर सोना पसंद है। वह जो कांटे बिछा कर सोता है, उसे आप गद्दी पर सुला दें, तकलीफ उतनी ही होगी। न इस तरफ राग न उस तरफ राग।
विराग का अर्थ हैः सुख और दुख के प्रति उपेक्षा।
जो हो जाए उसकी स्वीकृति।
जैसा हो जाए उसकी स्वीकृति।
और यह स्वीकृति बड़े गहरे में ले जाती है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति फिर विचलित नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को फिर बाहर से विचलित किया नहीं जा सकता और ऐसा व्यक्ति अपने भीतर के बिंदु पर थिर हो जाता है।
पांचवां है वीर्यः वह अदम्य ऊर्जा, जो सांसारिक असत्यों के दलदल से सत्य के शिखर की ओर संघर्ष करती है।
वीर्य, मनुष्य की ऊर्जा का नाम है, जिससे आपका जन्म हुआ। आप वीर्य की
एक छलांग हैं। वीर्य है जीवन का पर्याय। आपका जन्म हुआ है जिस ऊर्जा से, और जिस ऊर्जा से आपके शरीर का कण-कण निर्मित है, जो ऊर्जा ही आपकी देह है, और जो ऊर्जा आपके भीतर संगृहीत है और नई छलांग लेने को उत्सुक है। इसलिए कामवासना की इतनी पकड़ है। विवश है आदमी। और जब काम पकड़ता है, तो सारा बोध खो जाता है।
क्यों है इतनी विवशता? क्योंकि काम आपके जन्म का स्रोत है। आप पैदा ही हुए हैं काम से। आप वीर्य की ही एक तरंग हैं। और इस तरंग को आप काबू में नहीं ला पाते हैं। यह तरंग छलांग लगाना चाहती है। क्योंकि यह तरंग छलांग न लगाती तो आप पैदा न होते। यह और छलांग लगाना चाहती है। आप मिट जाएंगे, लेकिन यह तरंग रहना चाहती है।
तो दो उपाय हैं।
एक तो उपाय है इस तरंग को जोर-जबर्दस्ती से रोकें। जैसे कि ब्रह्मचर्य की भ्रांत धारणा है। जबर्दस्ती से रोकने की कोशिश करती है। और जबर्दस्ती की कोशिश में छलांग रुकती नहीं है, विकृत हो जाती है। जैसे कोई झरना पच्चीस हिस्सों में टूट जाए और मार्ग से भटक जाए, ऐसी अवस्था होती है वीर्य की।
दूसरा उपाय यह है, छलांग को मत रोकें, छलांग की दिशा बदल दें। छलांग तो लगने दें। क्योंकि वीर्य तो छलांग लगाना चाहता है। वह एक नये जीवन में छलांग लगाना चाहता है। या तो आपका एक पुत्र पैदा हो या आप स्वयं एक नया जन्म ले लें।
ये दो छलांग संभव हैं--या तो बाहर की तरफ वीर्य जाएगा, तो नया जीवन पैदा होगा। और या भीतर की तरफ जाएगा, तो आप नये होंगे। इस तरह के व्यक्ति को हमने द्विज कहा है--ट्वाइस बार्न, जिसके वीर्य ने भीतर की छलांग लगानी शुरू कर दी है।
वीर्य है अदम्य ऊर्जा
और इसी ऊर्जा के माध्यम से भीतर जाया जा सकता है। बाहर भी कहीं जाना हो, तो यही वीर्य-ऊर्जा काम आती है।
सांसारिक असत्यों के दलदल से सत्य के शिखर की ओर यही वीर्य की ऊर्जा संघर्ष करती है।
दलदल से कमल तक की जो यात्रा है, वह इसी वीर्य-ऊर्जा के साथ होगी।
तो बहुत सी बातें ख्याल में लेनी जरूरी हैं।

एक तो इस वीर्य-ऊर्जा के साथ संघर्ष मत करना। इससे मत लड़ने लग जाना, क्योंकि यह आपकी शत्रु नहीं है। यह आपकी शक्ति है। इसको साथ लेकर संघर्ष करना, इससे संघर्ष मत करना। इसके ही ऊपर सवार होकर संघर्ष करना, इससे ही संघर्ष मत करना। क्योंकि अपनी शक्ति से जो लड़ेगा, वह नष्ट हो जाएगा। इस शक्ति को वाहन बनाना है। और यह वीर्य छलांग लेना चाहता है। यह छलांग दो तरह से हो सकती है, लेकिन छलांग अनिवार्य है। शक्ति उछलना चाहती है। झरना फूटना चाहता है, बीज टूटना चाहता है। शक्ति हमेशा फूटना चाहती है, टूटना चाहती है। विस्फोट चाहती है।
और दो तरह के विस्फोट हैं। अंग्रेजी में दो शब्द हैं--एक्सप्लोजन और इम्प्लोजन।
बाहर की तरफ जो विस्फोट है, वह है एक्सप्लोजन। भीतर की तरफ जो विस्फोट है, वह है इम्प्लोजन।
अंतरविस्फोट या बहिर्विस्फोट। यह जो सारे जगत में जीवन का फैलाव है
यह एक्सप्लोजन है, बहिर्विस्फोट है। और आपको पता है कि बहिर्विस्फोट कितना हो सकता है? एक आदमी के पास इतनी वीर्य-ऊर्जा है कि पूरी पृथ्वी पर जितने लोग हैं, उतने उससे पैदा हो सकें। तीन अरब आदमी हैं जमीन पर। एक आदमी तीन अरब आदमियों को पैदा कर सकता है। इतनी वीर्य-ऊर्जा लेकर एक आदमी पैदा होता है।
इसलिए बाइबिल की कथा बड़ी प्रीतिकर है कि भगवान ने एक आदमी बनाया
आदम। पूछते हैं लोग कि दस-पांच क्यों न बनाए। कोई जरूरत न थी; एक काफी है। इतने बड़े विस्तार के लिए एक ही काफी है। यही सूचक है उस कथा में। यह सारा विस्फोट जो है जगत का, इसके लिए एक आदमी काफी है। एक संभोग में आपके इतने वीर्यकण छलांग लेते हैं, जिनसे कोई दस करोड़ आदमी पैदा हो सकते हैं। और एक आदमी जीवन में कम से कम चार हजार बार संभोग कर सकता है। कम से कम। चार अरब आदमी एक आदमी पैदा कर सकता है, अगर उसके सारे वीर्यकणों का उपयोग हो जाए। लेकिन सारे वीर्य-कणों का उपयोग नहीं होता।
यह जो विस्फोट है, बहिर्विस्फोट, यही शक्ति अंतर्विस्फोट, इम्प्लोजन
भी बन सकती है। यह जो भी बाहर कूद रही है आपके केंद्र से, यह शक्ति आपके केंद्र की तरफ भी कूद सकती है। और जिस दिन यह आपके भीतर की तरफ कूदती है, उसी दिन वीर्य अध्यात्म बन जाता है। और उसी दिन आप बाहर जन्म नहीं देते हैं; स्वयं को ही जन्म दे देते हैं।
छठवां है ध्यानः जिसका स्वर्ण-द्वार एक बार खुल जाने पर, जो नारजोल (संत या सिद्ध) को नित्य सत्य केफ्लोक उसके सतत स्मरण की ओर ले जाता है। ध्यान का अर्थ हैः चित्त की ऐसी दशा, जहां कोई विचार न हो। क्योंकि जब
तक कोई विचार होता है, तब तक आप बाहर की तरफ जाते हैं। विचार है बाहर का मार्ग। सब विचार बाहरी हैं। भीतर का कोई विचार नहीं होता। जब भी आप सोचते हैं, आप बाहर चले गए; और जब आप नहीं सोचते, तब ही आप भीतर हैं।
ध्यान है न-सोचने की अवस्था।
और जिसे न-सोचना आ गया, उसे सब कुछ आ गया।
हम सब सिखाते हैं सोचना। जरूरी है; क्योंकि न-सोचना आने के पहले सोचना आना जरूरी है। जो है ही नहीं, उसे हम छोड़ेंगे भी कैसे? और जो हमारे पास ही नहीं है, उसका त्याग कैसे होगा? इसलिए जरूरी है कि हम सोचें। लेकिन काफी नहीं।
एक और कला है, सोचने के आगे जाती है--न सोचने की कला। न सोचें, सिर्फ हों। उस क्षण में सतत स्मरण है। यह स्मरण फिर विचार का नहीं, यह स्मरण फिर अस्तित्व का है। सतत स्मरण बना रहता है दिव्य का और नित्य सत्य के द्वार फिर खुले दिखाई पड़ने लगते हैं। उस शून्य में ही द्वार है नित्य सत्य का।
वही है द्वार।
और सातवीं है--प्रज्ञाः जिसकी कुंजी मनुष्य को दिव्य बना देती है।
ध्यान है उसका दर्शन और प्रज्ञा है उसके साथ एकात्म।
वह दिव्य बना देती है और बोधिसत्व भी।
बोधिसत्वता ध्यान की पुत्री है। और ध्यान से ही कोई प्रज्ञा को उपलब्ध होता है।

प्रज्ञा भी अनूठा शब्द है। उसका भी पर्याय खोजना दुनिया की दूसरी भाषा में मुश्किल है। और जितनी भी दुनिया की भाषा में दूसरे शब्द हैं, उनका अर्थ है ज्ञान।
प्रज्ञा का अर्थ है जानना नहीं सत्य को, सत्य हो जाना; क्योंकि जानने
से भी फासला रह जाता है। जानने का मतलब भी है कि जिसे मैं जान रहा हूं, वह मुझसे दूर है, अलग है; उसे मैं देख रहा हूं, पहचान रहा हूं, जान रहा हूं। सत्य के साथ एक हो जाना है। इतना भी फासला न रह जाए सब्जेक्ट या आब्जेक्ट का। जानने वाले का, और जाने-जानेवाले का भी, फासला न रह जाए। ऐसी जहां एकता सध जाती है, वह अवस्था है प्रज्ञा की, जिसकी कुंजी मनुष्य को दिव्य बना देती है।
मनुष्य दिव्य है, सिर्फ कुंजी की तलाश है। दिव्यता जैसे बंद है और इसे खोलने भर की बात है।
और बोधिसत्व भी।
बोधिसत्व भी समझने जैसा शब्द है। बोधिसत्व का अर्थ होता है, ऐसा बुद्ध, जो प्रज्ञा के द्वार पर खड़ा होकर, जगत की तरफ मुंह फेर लेता है। इसे हम ऐसा समझेंः
बुद्ध के जीवन में कथा है कि बुद्ध परम अवस्था को उपलब्ध हुए, बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। और मीठी कथा है कि फिर वे निर्वाण के द्वार पर पहुंचे। लेकिन वे पीठ फेरकर खड़े हो गए और द्वारपाल ने उन्हें कहा--ये सारे प्रतीक हैं--द्वारपाल ने उन्हें कहा, आप प्रवेश करें। न मालूम कितने युगों से यह द्वार आपकी प्रतीक्षा करता है। लेकिन बुद्ध ने कहा कि मेरे पीछे और बहुत लोग हैं। और अगर मैं प्रविष्ट हो जाता हूं इस महाशून्य में, तो फिर उनकी मैं कोई सहायता न कर सकूंगा। तो मैं रुकूंगा, इस द्वार पर तब तक, जब तक कि वे सारे लोग प्रविष्ट नहीं हो जाते। मैं अंतिम प्रविष्ट होना चाहता हूं। इस महाकरुणा का नाम है बोधिसत्व।
बोधिसत्व का अर्थ हैः जो बुद्ध हो गया; लेकिन फिर भी अभी लीन नहीं हो रहा करुणा के कारण।
जगत के प्रति हमारे दो संबंध हो सकते हैं--वासना का और करुणा का।
वासना का हम सबका संबंध है। हम जगत में इसलिए हैं कि हम जगत से कुछ चाहते हैं। कोई बुद्ध इसलिए भी जगत में हो सकता है कि जगत को कुछ देना चाहता है। उस देना चाहने की जो करुणा है, वह व्यक्ति को बोधिसत्व बनाती है।
तो बुद्ध परंपरा में दो हिस्से हैंः हीनयान और महायान। हीनयान मानता
है कि बुद्ध लीन हो गए महानिर्वाण में। महायान मानता है कि बुद्ध रुक गए और यान बन गए, नाव बन गए। माझी बन गए कि जब तक पूरे संसार को खींच कर उस पार न कर दें, तब तक स्वयं उस पार न उतरेंगे। आते रहेंगे इस किनारे, अपनी नाव को लेकर, भरते रहेंगे लोगों को, भेजते रहेंगे उस पार, लेकिन खुद न उतरेंगे। क्योंकि एक बार उस तरफ उतर जाने पर, इस तरफ आने का कोई उपाय नहीं है। एक बार उस तरफ उतर जाने पर खो जाना हो जाता है। इस महाकरुणा से।
तो महायान कहता है कि बुद्धत्व से भी बड़ी बात है बोधिसत्वता। क्योंकि
उस किनारे जाकर खो जाना तो स्वाभाविक है। इस जगत में वासना के कारण होना स्वाभाविक है। उस जगत में उतर कर खो जाना आनंद में स्वाभाविक है। लेकिन उस जगत के आनंद को छोड़ कर, खो जाने के आनंद को छोड़ कर, जो इस जगत के किनारे अपनी नाव लेकर आता है, यह अति दुष्कर है, अति कठिन है। इसलिए बुद्धत्व से भी बड़ा बोधिसत्व है।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है, कि उस महालोक में जाकर लीन होना चाहे कोई; क्योंकि उससे बड़ा कोई सुख नहीं है। बुद्ध ने कहा, यह महासुख है। उस महासुख से अपने को कोई रोके अब और इस जगत की तरफ आए। ऐसे जैसे कि आप कारागृह से छूट गए हों, मुक्त हो गए खुले आकाश में--टूट गईं जंजीरें, बंधन छूट गए और फिर भी उसी कारागृह में जिन्हें आप छोड़ आए हैं, उनके कारण, आप फिर चोरी करके उस कारागृह में पहुंच जाएं, उन्हें भी छूटने का मार्ग बता सकें। जैसा यह कठिन है, यह सोचना, इससे भी ज्यादा कठिन है बोधिसत्वता।
लेकिन बोधिसत्व की घटना भी घटती है। इस जगत में अगर कोई चमत्कार है मेरी दृष्टि में, तो एक ही हैः किसी ऐसे व्यक्ति का इस जगत में होना, जो

वासना के कारण नहीं है। एक ही मिरेकल है। ऐसा मिरेकल घटता है। और जो अपने कारण इस जगत में नहीं है, उसे समझना बहुत दूभर हो जाता है। क्योंकि हम एक ही भाषा समझते हैं कि इस जगत में कोई इसी कारण होता है कि इस जगत से उसे कुछ लेना है। और कोई इस कारण भी होगा कि उसे सिर्फ देना है, हमारी समझ से बाहर है। लेकिन प्रज्ञा बोधिसत्वता को भी जन्म देती है
करोड़ों लोगों में कभी कोई एक बुद्ध होता है। और करोड़ों बुद्धों में कभी कोई एक बोधिसत्व होता है। क्योंकि उस तरफ से लौटना अति कठिन है। इस तरफ से जाना बहुत कठिन है; उस तरफ से लौटना बहुत कठिन है। दुख से छूटना इतना मुश्किल मालूम पड़ता हो तो आनंद से छूटना कितना मुश्किल न पड़ता होगा? और अगर मैं आपसे कहूं कि दुख ही छोड़ दो, तो भी छोड़ने की हिम्मत नहीं होती, तो आनंद छोड़ कर इस तरफ लौटना असंभव घटना है। पर घटती है।
उन द्वारों की ऐसी ही स्वर्ण-कुंजियां हैं।
ओ अपने मोक्ष के ताने बुनने वाले, अंतिम द्वार को पहुंचने के पूर्व तुझे दुस्तर मार्ग से चल कर पूर्णता की इन पारमिताओं पर--जो लोकोत्तर गुण छह और दस की संख्या में हैं--अधिकार करना होगा।’
इन सात पर अधिकार करना होगा। जिसे मोक्ष, जिसे परम मुक्ति की अभीप्सा पैदा हो गई है। ये सात उसकी कुंजियां हैं।

समाधि के सप्त द्वार
तीसरा प्रवचन

सम्यक दर्शन

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 10 फरवरी,

हे शिष्य, इसके पहले कि तू गुरु के साथ और प्रभु के साथ साक्षात्कार
के योग्य हो सके, तुझे क्या कहा गया था?
अंतिम द्वार पर पहुंचने के पहले तुझे अपने मन से अपने शरीर को अलग करना सीखना है, छाया को मिटा डालना है और शाश्वत में जीना सीखना है। इसके लिए तुझे सर्व में जीना और श्वास लेना है, वैसे ही जैसे वह जिसे तू देखता है, तुझमें श्वास लेता है। और तुझे सर्व भूतों में स्वयं को और स्वयं में सर्व भूतों को देखना है।
तू अपने मन को अपनी इंद्रियों की क्रीड़ाभूमि नहीं बनने देगा।
तू अपनी सत्ता को परम सत्ता से भिन्न नहीं रखेगा, वरन समुद्र को बूंद
और बूंद को समुद्र में डुबा देगा।
इस प्रकार तू प्राणिमात्र के साथ पूरी समरसता में जीएगा, सभी मनुष्यों के प्रति ऐसा प्रेम-भाव रखेगा, जैसे कि वे तेरे गुरु-भाई हैं--एक ही शिक्षक के शिष्य और एक ही प्यारी मां के पुत्र।

सूफी फकीर बायजीद से किसी ने पूछा कि क्या मैं कुछ प्रश्न पूछ सकता हूं? तो बायजीद ने कहा, तुम पूछ सकते हो; लेकिन तुम प्रश्न पूछ सकते हो, इसीलिए उत्तर पाने के योग्य भी हो, ऐसा मत सोचना। तुम प्रश्न पूछोगे, जरूरी नहीं है कि मैं उत्तर भी दूं। क्योंकि उत्तर मैं तभी दे सकता हूं, जब तुम पात्र हो उत्तर को झेलने के।
गलत आदमी को दिया गया ज्ञान खतरनाक हो सकता है। अपात्र के हाथ में शक्ति, स्वयं उसके लिए और दूसरों के लिए भी हानिकर हो सकती है। अमृत भी अपात्र में जहर हो जाता है।
यह सूत्र शुरू होता हैः
"हे शिष्य, इसके पहले कि तू गुरु के साथ और प्रभु के साथ साक्षात्कार
के योग्य हो सके, क्या कहा गया है तुझे करने को, कैसी पात्रता तेरी निर्मित होनी चाहिए?"
लोग गुरु को खोजते हैं बिना इसकी फिक्र किए कि वे अभी शिष्य होने के योग्य हैं या नहीं। लोग परमात्मा को भी खोजते हैं, बिना इसके लिए जरा भी प्रयास किए कि उनके पास वे आंखें हैं भी कि जो परमात्मा सामने हो, तो उसे देख पाएं। और परमात्मा सदा ही सामने है और गुरु भी इतना ही निकट है।
इस अस्तित्व में जिसकी भी सत्य के लिए प्यास है, उसे मार्गदर्शन देनेवाला बहुत निकट ही उपलब्ध है। यहां कभी भी उनकी कमी नहीं है कि जो आपका हाथ पकड़ें और रास्ते पर ले जाएं। और अगर आपको लगता हो कि उनकी कमी है, तो आप एक ही बात समझना कि आपकी योग्यता नहीं कि कोई आपका हाथ पकड़े। या शायद अगर कोई आपका हाथ भी पकड़े तो आप अपना हाथ झटक कर छुड़ा लेंगे। या आपका हाथ पहले ही किन्हीं और ने पकड़ रखे हैं। या आपके हाथ इतने भरे हैं--आपने किसी और के हाथ पकड़े रखे हैं कि अब उन हाथों को हाथ में लेकर आपको किसी यात्रा पर ले जाना संभव नहीं है।
गुरु न मिले तो एक ही बात समझना कि शिष्य होना अभी संभव नहीं हुआ। जिसके आप योग्य हो जाते हैं, वह तत्क्षण मिल जाता है; इसमें जरा भी संदेह नहीं है। अगर न मिले, तो अर्थ एक ही होता है कि हम हैं अयोग्य।
क्या होगी पात्रता शिष्य की कि गुरु के साथ और प्रभु के साथ साक्षात्कार हो सके?
और जिसका गुरु से भी साक्षात्कार न हो सके, उसका प्रभुसे साक्षात्कार होना बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि गुरु इस पार्थिव जगत में, उसका संदेशवाहक है, उसका प्रतीक है, उसकी ही किरण है। अगर वह सूरज है, तो गुरु

उसकी ही किरण है। और जो अभी किरणों को भी नहीं देख पाता है, वह सूरज का साक्षात्कार कर सकेगा, यह मुश्किल है।
गुरु का अर्थ है ऐसा व्यक्ति, जिसमें आपको परमात्मा दिखा।
और अगर आपको कहीं भी परमात्मा नहीं दिखता, तो फिर इस अदृश्य को देख पाना आपके लिए संभव न होगा। आपकी पहली पहचान तो दृश्य में ही होगी, कहीं सीमा में, कहीं इस साकार में, कहीं रूप-रेखा में बंधे हुए ही आपकी पहली पहचान होगी। इसलिए नहीं कि वह रूप-रेखा में और सीमा में है; बल्कि इसलिए कि आपकी आंखें, आपका ढंग, आपका सोचना, आपकी सारी व्यवस्था अभी केवल सीमा को ही पकड़ सकती है।
और जो गुरु को भी नहीं पकड़ पाता और जो गुरु को भी नहीं समझ पाता और जो गुरु को भी नहीं देख पाता, उसके लिए परमात्मा का देखना अत्यंत कठिन है। असंभव है, ऐसा नहीं कहता हूं। संभव है। और कुछ लोगों ने बिना गुरु के भी उसे देख लिया है। लेकिन तब अत्यंत दुस्साहस की जरूरत है। और जिनको गुरु से भी साक्षात्कार करने का साहस नहीं है, कैसे वैसा दुस्साहस जुटा पाएंगे? क्या है पात्रता शिष्य होने की?
"अंतिम द्वार पर पहुंचने के पहले तुझे अपने मन से अपने शरीर को अलग करना सीखना होगा। छाया को मिटा डालना है और शाश्वत में जीना है।"
हम अभी जी रहे हैं छाया में। वह जो परिवर्तनशील है, उसमें हम जी रहे हैं। जीवन हमारे पास अभी है, लेकिन क्षणभंगुर है; जो अभी है और नहीं हो जाएगा। जितनी देर कहने में लगती है, उतनी देर में भी हो सकता है, नहीं हो गया। जैसे कोई रेत के मकान बनाता हो या कोई ताश के घर बनाता हो, ऐसा हमारा जीवन है--क्षणभंगुर से बंधा।
सोचें, जहां-जहां आप पाते हैं कि आपका रस है, वहां-वहां क्या है? वहां कुछ है जो क्षणभंगुर है। धन को कोई पकड़ रहा है, बहुत रस है धन में। कितना धन पकड़ सकते हैं? धन का क्या शाश्वत मूल्य है? धन का क्या सनातन मूल्य है? और अगर एक रेगिस्तान में पड़े हों और धन का ढेर भी आपके पास हो, तो एक चुल्लू पानी भी उससे नहीं मिल सकेगा। उसका कोई वास्तविक मूल्य भी नहीं है। उसका मूल्य काल्पनिक है, और समझौते पर निर्भर है।
सुना है मैंने एक फकीर एक सम्राट से कह रहा था, तूने बहुत धन इकट्ठा कर लिया, लेकिन अगर मरुस्थल में तू प्यासा मरता हो, तो एक गिलास पानी के लिए इसमें से कितना मूल्य दे सकेगा? उस सम्राट ने कहा, अगर मर ही रहा हूं, तो सारा साम्राज्य भी दे दूंगा एक गिलास पानी के लिए। तो जिस साम्राज्य का मूल्य एक गिलास पानी में भी चुकाना पड़ सकता हो, उसमें मूल्य भी कितना होगा! कोई रूप के लिए जी रहा है, सौंदर्य के लिए जी रहा है। पानी पर पड़ी लकीर जैसा है; अभी है और अभी नहीं हो जाएगा। और जिसे हम सुंदर पाते हैं आज, कल वह कुरूप हो जाएगा। और जिसे हम युवा पाते हैं। वह अभी बूढ़ा होता चला जा रहा है। शरीर तो बिल्कुल पानी की लहर है। उस पर जो प्रतिबिंब बनते हैं, वे बस पानी पर बने प्रतिबिंब हैं। जरा-सी हलचल और सब खो जाता है। जिस शरीर में हमें सौंदर्य दिखाई पड़ता है, उसमें कितनी शाश्वतता है? वह कितनी देर टिकेगा? और जो टिकता ही नहीं, वह था भी--इसका निश्चय करना मुश्किल है। जिन्होंने जाना है, वे कहते हैं कि जो है, वह सदा है और सदा रहेगा। और जो अभी है और कल नहीं हो जाता है, समझना कि वह था ही नहीं। तुम्हें भ्रांति हो गई थी कि वह है; क्योंकि सत्य तो नष्ट नहीं होता, भ्रांतियां ही नष्ट होती हैं।
रात एक सपना देखा, सुबह नहीं हो जाता है। आप सपना क्यों कहते हैं, रात जिसे देखा था उसे? क्योंकि जब देख रहे थे, तब तो वह बड़ा सत्य था, तब तो जरा- सा भी संदेह न उठता था, रंचमात्र भी मन में ऐसा ख्याल न आता था कि जो मैं देख रहा हूं, वह असत्य होगा, कि स्वप्न होगा; तब तो पूरा यथार्थ था। और अगर स्वप्न में आपकी प्रेयसी मर गई थी या प्रियजन मर गया था, तो आप रोए थे और वे आंसू सच्चे थे। लेकिन इतने सच्चे भी हो सकते हैं कि जाग कर भी आंखें आप गीली पाएं। कि स्वप्न में आप सम्राट हो गए थे, तो जो आनंद मिला था, वस्तुतः सम्राट होकर जो आनंद मिलेगा, उसमें रत्ती भर भी तो फर्क नहीं है। स्वप्न जब है, तब तो बिल्कुल सत्य मालूम पड़ता है, सुबह फिर आप उसे स्वप्न क्यों कह

देते हैं? क्योंकि वह टूट गया, क्योंकि अब वह नहीं है। और जो इतनी जल्दी नहीं हो गया, वह रहा भी न होगा।
लेकिन जिसे हम जीवन कहते हैं, उस जीवन के स्वप्न से भी कुछ लोग जाग जाते हैं। यह वाणी उन जागे हुए लोगों की है। और तब हम जिसे जीवन कहते हैं, उससे जागकर वे हैरान होते हैं और पाते हैं कि वह भी स्वप्न था। तो इस पूरब ने, इस भूमि पर, एक सूत्र सत्य का खोजा था, और वह सूत्र यह था, जो किसी भी अवस्था में चित्त की, चैतन्य की--किसी भी अवस्था में समाप्त नहीं होता, नष्ट नहीं होता, वही सत्य है। चेतना की हर स्थिति में जो बना रहता है, चाहे आप सोएं, चाहे स्वप्न देखें, चाहे जागें, चाहे समाधि में प्रविष्ट हो जाएं, चाहे निर्वाण को उपलब्ध हो जाएं, जो हर स्थिति में सत्य होता है, चैतन्य की स्थितियों से जिसमें कोई भेद नहीं पड़ता, उसे हमने शाश्वत कहा है।
और जब तक हम उसे नहीं पा लेते, तब तक हम धन के नाम पर कंकड़-पत्थर बटोर रहे हैं। और जब तक हम उसे नहीं पा लेते, तब तक सौंदर्य के नाम पर बच्चों का खेल कर रहे हैं। और जब तक हम उसे नहीं पा लेते, तब तक हमें प्रेम का कोई भी पता नहीं हो सकता। तब तक सब झूठ है; हम झूठे आदमी हैं। और यह जो झूठा आदमी है--परिवर्तन के आसपास निर्मित होता--इसका नाम ही छाया है।
इसे थोड़ा समझ लें।
आपको भी आपकी छाया से कई दफा मिलना हो जाता है, कई बार आप लोगों से कहते हैंः मैंने अपने बावजूद ऐसा किया। मैं नहीं करना चाहता था, फिर भी मैंने ऐसा किया! यह नहीं कहना चाहता था, और मैं कह गया।
फ्रायड ने बड़ी खोज की है। लोग कहते हैं कि जबान चूक गई! लेकिन फ्रायड
ने इस पर बड़ा काम किया और उसने कहा, जबान भी ऐसे नहीं चूकती है। जब आप भूल से भी कुछ कहते हैं, तब वह भी बहुत गहरा और सोचने जैसा है कि वैसा भी क्यों हुआ? उसके होने के पीछे आपकी छाया है। आपने एक झूठा व्यक्तित्व अपने भीतर बना रखा है। बच्चा पैदा होता है और झूठ निर्मित होना शुरू हो जाता है। छोटे-छोटे बच्चे राजनीतिज्ञ हो जाते हैं। बच्चा समझ लेता है कि मां मुस्कुराने से प्रसन्न होती है; मुस्कुराता हूं तो दूध देती है, मुस्कुराता हूं तो खिलौने ले आती है--तो बच्चे भी भीतर कोई मुस्कुराहट भी न हो, तो भी वह मुस्कुराता है। यह झूठ शुरू हो गया। जो उसके भीतर नहीं है, वह बाहर दिखा रहा है। इसको मैं राजनीति कहता हूं। यह बच्चा पॉलिटीशियन हो गया, यह राजनीतिज्ञ हो गया। जो इसके भीतर नहीं है, अब यह खेल कर रहा है। यह जानता है कि अगर मैं रोता हूं, परेशान होता हूं, चिढ़ता हूं, चिल्लाता हूं, चीखता हूं, मां नाराज होती है।
अब ये मनस्विद कहते हैं कि बच्चे का चीखना, चिल्लाना, उसके लिए बहुत स्वास्थ्यकारी है। और जो बच्चे बचपन में नहीं चीख-चिल्ला पाते हैं, तूफान नहीं मचा पाते हैं, नाराजगी नहीं प्रकट कर पाते हैं, वे सदा के लिए मन से रुग्ण हो जाते हैं। क्योंकि यह चीखना, चिल्लाना, बच्चे का रोना एक गहरी प्रक्रिया है। यह दुख-विसर्जन का उपाय है। बच्चा जब दुखी होता है, वह उसको विसर्जित कर लेता है, वह रो लेता है, चिल्ला लेता है।
कभी एक बच्चे के साथ प्रयोग करें और आप चकित हो जाएंगे। बच्चा रो रहा
है, तो न तो आप उसे डांटें, न उसे थपथपाएं, न समझाएं, शांति से उसके पास बैठे रहें, ध्यानपूर्वक उसको देखते रहें--प्रेमपूर्वक, ध्यानपूर्वक; लेकिन न तो उसे रोकें कि वह न रोए, न उसके सिर को थपथपा कर सुलाने की कोशिश करें; क्योंकि वह भी तरकीब है कि वह न रोए; उसे खिलौने भी मत दें; क्योंकि वह भी तरकीब है कि आप रिश्वत दे रहे हैं। उसका मन भी न हटाएं, कि देख, उस दरख्त पर एक सुंदर चिड़िया बैठी है। वह करके भी आप उसको अपने नैसर्गिक मार्ग से हटा रहे हैं। आप सिर्फ शांत, बिना क्रुद्ध हुए क्योंकि आपका क्रोध भी बच्चे के लिए दमन हो जाएगा। आपका फुसलाना, समझाना भी उसको उसकी निसर्गता
से हटाना हो जाएगा।
आप शांत, प्रेमपूर्ण होकर बच्चे पर ध्यान भर देते रहें, तो आप चकित होंगे, एक अनूठा अनुभव आपको होगा और अनुभव यह होगा कि जब तक आप बच्चे को प्रेमपूर्वक ध्यान देंगे, वह दिल खोल कर रोएगा, चीखेगा। जैसे ही आप ध्यान हटाएंगे; वैसे बच्चा ख्याल रखेगा कि आप ध्यान दे रहे हैं या नहीं दे रहे

हैं। आप ध्यान देते जाएं प्रेमपूर्ण--बच्चा थोड़ी देर रोता रहेगा। जोर से रोएगा, चिल्लाएगा फिर हलका हो जाएगा, मुस्कुराने लगेगा, प्रसन्न हो जाएगा और ऐसी प्रसन्नता बच्चे के चेहरे पर आएगी जो राजनीतिक नहीं है। वह आप को प्रसन्न करने के लिए नहीं हंस रहा है। अब यह हंसी उसके दुख के विसर्जन से आ रही है। अब वह हलका हो गया है।
कितनी देर रोएगा बच्चा? थोड़ी प्रतीक्षा करें। कितनी देर रोएगा? रोने दें। मगर यह प्रेमपूर्ण प्रतीक्षा और ध्यान जरूरी है। क्योंकि बच्चा बहुत सचेतन होता है। आपका जरा भी ध्यान हटा, तो वह जानता है कि आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। और आपकी उपेक्षा उसके लिए दमन बन जाती है।
मनसविद कहते हैं, नवीनतम खोजें ये हैं, कि सब बच्चों को हम इस भांति बड़ा कर सकें कि जब वे रोते हों, चिल्लाते हों, चीखते हों, तब हम उन्हें सहयोग दे सकें शांत, तो दुनिया में, और आगे की दुनिया में, विक्षिप्तता बहुत कम हो जाएगी। आप सबके भीतर रोना दबा है, चीखना दबा है। वह सब रुक गया है, अवरुद्ध हो गया है, इसलिए ध्यान पर मेरा इतना जोर है कि आप सब निकाल डालें, तो आप पुनः बच्चे की तरह हल्के और सरल हो जाएंगे। लेकिन डर लगता है, क्योंकि बचपन से उसे दबाया है। अब तो आप बहुत होशियार हो गए हैं। जब बहुत होशियार न थे, तब काफी होशियारी की और तब राजनीति के दांव अपने साथ खेले। तो अब आप बहुत होशियार हो गए हैं। अब तो आप जानते हैं कि अगर मैं चिल्लाया, तो कहीं मेरे गांव में खबर न हो जाए कि यह आदमी वहां रो रहा था। कहीं मेरी पत्नी न देख ले कि अरे तुम, जो इतने दबंग, और इस भांति रो रहे हो! वह जो हमने जाल बुन रखा है अपने आसपास, उससे एक झूठी छाया निर्मित हो गई है, एक शैडो पर्सनेलिटी बन गई है। वह जो हमारे पास झूठे व्यक्तित्व की एक धारा चारों तरफ हमारे खड़ी है, वह जो हमारी छाया है--वह जब हम नहीं हंसना चाहते, तब हंसाती है; जब नहीं रोना चाहते, तब रुलाती है; जब रोना चाहते हैं, तब मुस्कुराती है--वह सब विक्षिप्त है। वह चौबीस घंटे हमारे साथ है, और वह हमारी छाती पर बैठ गई है। इसको हम अहंकार कहें तो हर्ज न होगा।
मनस्विद कहते हैं कि इस छाया के कारण ही पूरी पृथ्वी पागल होती जा रही है। जितना सय समाज हो, उतना पागलपन बढ़ जाता है। और जितना असय समाज हो, उतना कम होता है पागलपन। ठीक असय समाज में पागल होते ही नहीं। सयता के साथ विक्षिप्तता आती है। शायद सयता ही बहुत गहरे में विक्षिप्तता का मूल है, नींव है, आधार है, जड़ है।
क्यों, सय होने के साथ विक्षिप्तता क्यों आती है?
आप बंट जाते हैं। आप दो हो जाते हैं। वह जो नैसर्गिक है आपके भीतर, स्वाभाविक है, उसके ऊपर एक आरोपित, संस्कारित व्यक्तित्व बैठ जाता है। फिर वही आपको चलाता है। आप अपने को जरा देखें चौबीस घंटे निरीक्षण करके, तो आपको पता चलेगा कि आप बिल्कुल अस्वाभाविक हैं, झूठ हैं, एक नाटक हैं। और यह भी पता चल जाए कि आप एक नाटक हैं, तो भी बड़ी समझ आ जाए। आप समझते हैं कि नहीं यह नाटक नहीं है, जिंदगी है। यह भूल हो रही है। यह भी ख्याल में आ जाए कि ठीक है, एक झूठ है, जो मैं चला रहा हूं--लेकिन होशपूर्वक। तो भी आप सत्य के निकट पहुंचने लगे।
जुंग ने भी इसे शैडो कहा है, छाया कहा है। हर आदमी के पीछे लगी है। और जैसे-जैसे आपकी उम्र बढ़ती जाती है, यह छाया बड़ी होती जाती है, सख्त और मजबूत। और ग्रस लेती है सब तरफ से, और आत्मा सिकुड़ जाती है। बच्चे के पास जो थोड़ी बहुत आत्मा होती है, वह बूढ़े के पास कहां होती है? लेकिन हम मानते हैं कि बूढ़े के पास अनुभव होता है, समझ होती है। यह छाया ही उसकी समझ और अनुभव है।
इसलिए जीसस ने अगर कहा, कि वे ही लोग मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश
पा सकेंगे जो बच्चों की भांति सरल हैं, तो ठीक कहा है। अगर आप बूढ़े हो गए हैं सभी बूढ़े हो गए हैं। बच्चा पैदा होते से बूढ़ा होना शुरू हो जाता है। कई उम्र के बूढ़े हैं। कुछ कम उम्र के बूढ़े हैं, कुछ ज्यादा उम्र के बूढ़े हैं। कुछ अभी छोटे बूढ़े हैं, कुछ बड़े बूढ़े हैं। सब बूढ़े हैं। क्योंकि पैदा होते ही चारों तरफ जो झूठ का संसार--वे जो और छायावाले लोग हैं--वे चारों तरफ खड़े हैं। एक बच्चा उन्हीं के बीच तो पैदा होता है, उस बच्चे को कभी पता भी

नहीं चलता। ऐसा हुआ कि अमेजान नदी के किनारे पहली दफा, आज से कोई सौ वर्ष पहले एक कबीले का पता चला। उस कबीले में जाकर ख्याल में आया कि पूरा कबीला मलेरिया से बीमार है, पूरा कबीला। सब बच्चे बिना मलेरिया के पैदा होते हैं उस कबीले में भी; लेकिन पैदा होते से ही मलेरिया पकड़ जाता है, क्योंकि पूरा कबीला बीमार है, और चारों तरफ मच्छर हैं, मलेरिया के कीटाणु हैं।
उस कबीले को पता ही नहीं कि मलेरिया कोई बीमारी है, क्योंकि जब सभी बीमार हों, तो बीमारी नार्मल हो गई। तो वह कबीला तो मान कर ही चलता है कि ऐसा तो होता ही है जीवन में, यह बीमारी तो जीवन के साथ ही जुड़ी है और जब सभी बच्चे पैदा होते से ही बीमार हो जाते हैं, तो उन्हें कभी पता ही नहीं चलता कि वे बीमारी को ही स्वास्थ्य समझ लेते हैं। आधा-आधा जीते हैं, अधूरे, मरे- मरे जीते हैं। लेकिन यही स्वास्थ्य है। क्योंकि और स्वास्थ्य का कोई मापदंड भी तो नहीं है, जिससे तुलना की जा सके।
मनस्विद कहते हैं कि यह सारी की सारी पृथ्वी विक्षिप्त है। और अगर मंगल ग्रह से कभी या और किसी ग्रह से कभी कोई दूसरा चैतन्य प्राणी इस पृथ्वी पर आए, तो शायद हमें पता चले कि हम सब विक्षिप्त हैं। और हम पैदा होते ही हो जाते हैं। सब बच्चे स्वस्थ पैदा होते हैं और होने के बाद रोग पकड़ना शुरू हो जाता है। क्योंकि बाप भी बीमार है, मां भी बीमार है, परिवार बीमार है, समाज बीमार है, देश बीमार है। पूरी मनुष्यता बीमार है और सब तरफ विक्षिप्तता के कीटाणु हैं। यह जो बीमार आदमी आपके भीतर पैदा हो जाता है, वह है आपकी छाया। और उसको आप इतने जोर से पकड़ लेते हैं, आप समझते हैं कि यही आपकी आत्मा, तो फिर छूटना मुश्किल हो जाता है।
यह सूत्र कहता है, अंतिम द्वार पर पहुंचने के पहले तुझे अपने मन से अपने शरीर को अलग करना सीखना है। छाया को मिटा डालना है और शाश्वत में जीना है।
छाया मिटे, तो ही शरीर और आप अलग हैं, उसका पता चलेगा। नहीं तो उसका पता ही न चलेगा। छाया के कारण पता भी नहीं चलता है कि आप कौन हैं। एक भ्रांत इकाई लगती है कि यह मैं हूं, तो आपकी वास्तविक इकाई का कोई पता ही नहीं चलता कि आप कौन हैं। आपका शरीर और आपका अस्तित्व अलग है, यह तभी पता चलेगा, जब आपको अपने अस्तित्व का पता चले। तो आपको तत्क्षण दिखाई पड़ेगा कि शरीर आपका अलग है।
लेकिन लोग उलटा करने की कोशिश करते हैं। लोग ऐसा सोचते हैं कि शरीर अलग है, मैं अलग हूं। सोचने की जरूरत ही नहीं, यह बात सोचने की नहीं, और यह निष्पत्ति सोचने से नहीं आती। यह कोई तर्क का निष्कर्ष नहीं है कि आप आत्मा हैं, शरीर नहीं। यह एक अनुभव है। और यह अनुभव कितना ही विचारें, कितना ही विचारों को जोड़ें, उससे पैदा नहीं होता। अनुभव पैदा हो, तो विचार पैदा होता है। ध्यान रखें, विचार से कोई अनुभव नहीं आता, अनुभव हो तो विचार।
आपको पता नहीं कि आप आत्मा हैं। शास्त्रों से सुना है, सदगुरु ने कहा है। हमने भी सीख लिया है। वह सिखावन है। वह भी हमारा झूठा है, वह भी हमारी छाया का हिस्सा हो गया है। किसी से भी पूछें, तो वह कहता है, हां मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं। और यह उसकी छाया बोल रही है, वह स्वयं नहीं बोल रहा है। हम सत्य भी झूठ के मुंह से बोलते हैं। हमारे सत्य भी झूठ हैं। क्योंकि हम झूठ हैं, हमसे जो भी होगा, वह झूठ हो जाएगा हमारे छूते ही। जैसे मिडास की कथा है कि वह जो भी छूता, वह सोना हो जाता। हम उससे भी बड़े कारीगर हैं। हम सत्य को भी छुएं तो झूठ हो जाता है। हम जो भी चीज हाथ में ले लें, झूठ हो जाती है। हमारे हाथों के कारण कुरान झूठ हो गई, बाइबिल झूठ हो गई, गीता झूठ हो गई, वेद झूठ हो गए। हमारे हाथों के कारण हम बुद्ध को झूठ कर देते हैं, महावीर को झूठ कर देते हैं, क्राइस्ट को झूठ कर देते हैं, कृष्ण को झूठ कर देते हैं। हम जिसे छूते हैं, वह झूठ हो जाता है। हम झूठ हैं।
और यह जो हमारी छाया है, यह जो हमारा झूठा ख्याल है अपने होने का कि मैं यह हूं, इसे तोड़ने के लिए कुछ करना पड़ेगा। सोचने से नहीं होगा। सोचने से इसीलिए नहीं होगा कि सोचने पर तो कब्जा कर रखा है आपकी छाया ने ही। यह तो आपको वही सोचने का मौका देती है, जिससे उसको पोषण मिलता है। उसे ही

तोड़ना है, तो फिर सोचने से नहीं हो पाएगा। आपको कुछ करना पड़े अस्तित्वगत, एक्झिस्टेंशियल। इसलिए ध्यान पर मेरा इतना जोर है। और मेरा ही नहीं, जो भी आपको अस्तित्व में ले जाना चाहता है, उसका जोर ध्यान पर होगा। और जो आपको विक्षिप्तता में ले जाना चाहता है, उसका जोर विचार पर होगा।
मैं आपको अच्छा आदमी नहीं बनाना चाहता हूं क्योंकि अच्छा आदमी तो उसी छाया का हिस्सा है। मैं तो आपको प्रामाणिक आदमी, आथेंटिक बनाना चाहता हूं। अच्छा नहीं, अच्छे-बुरे की बात ही व्यर्थ है। सच्चा, चोखा, खालिस, शुद्ध, शुभ नहीं। शुद्ध, निर्दोष, सीधा, साफ, नैसर्गिक; जैसा लाओत्सु कहता है, सरल बच्चे की भांति, वैसा आदमी।
वैसा आदमी विचार से नहीं जन्मता। विचार तो हमारे भीतर सभी चीजों को आड़ा-तिरछा कर देता है। जैसे पानी में एक डंडे को डालें, डालते ही पानी में डंडा तिरछा दिखाई पड़ने लगता है। होता नहीं है तिरछा; बाहर निकालें, सीधा है। ऐसा नहीं कि बाहर निकल कर फिर सीधा हो जाता है और भीतर जाकर तिरछा हो जाता है। पानी तिरछा नहीं कर सकता; लेकिन पानी में, पानी के माध्यम में, हर चीज तिरछी होकर दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है।
विचार का जो माध्यम है, वहां हर चीज तिरछी हो जाती है। ध्यान के माध्यम में चीजें वैसी दिखाई पड़ती हैं, जैसी हैं। और विचार के माध्यम में वैसी दिखाई पड़ती हैं, जैसी आप देखना चाहते हैं। आप उनको आड़ा-तिरछा कर देते हैं, अपने अनुकूल कर देते हैं।
ख्याल रहे, विचार में आप जो भी देखते हैं, उसे आप अनुकूल कर लेते हैं।
और आप अगर गलत हैं, तो सब गलत हो जाता है।
ध्यान में आप वही देखते हैं, जैसा है। और आपको उसके अनुकूल होना पड़ता है। विचार में सब कुछ आपके अनुकूल हो जाता है।
ध्यान में आपको अस्तित्व के अनुकूल होना पड़ता है। इसलिए ध्यान में रूपांतरण हो जाता है।
छाया को मिटा डालना है और शाश्वत में जीना है।
कैसे मिटेगी यह छाया?
तीन बातें ध्यान रखनी जरूरी हैं। एक तो इसका ख्याल रहे कि यह मैं नहीं बोल रहा हूं, यह मेरी छाया बोल रही है। यह मैं नहीं कर रहा हूं, यह मेरी छाया कर रही है। यह मैं नहीं मुस्कुराया, मेरी छाया मुस्कुराई है। इसका सतत स्मरण रहे, तो आपके और आपकी छाया के बीच अंतराल बढ़ता जाएगा। यह स्मरण ही अंतराल बन जाएगा।
दूसरी बात, यह जो छाया है आपकी, जो जगह-जगह प्रकट हो जाती है, अच्छा हो इसे संबंधों में प्रकट करने की बजाय, एकांत में प्रकट होने दें, क्योंकि तब संबंध जटिल हो जाते हैं।
मेरा अनुभव है कि आप रोज चौबीस घंटे के जीने में कुछ क्रोध इकट्ठा कर लेते हैं; जैसे आदमी धूल इकट्ठी कर लेता है। धूल के लिए तो आप रोज स्नान कर लेते हैं; लेकिन क्रोध के लिए रोज आप क्या करते हैं? धूल इकट्ठी होती है, शरीर को धो डालते हैं, वस्त्र बदलते हैं। लेकिन मन पर भी धूल इकट्ठी होती है। चौबीस घंटे के जीने में धूल इकट्ठी होगी, स्वाभाविक है।
इस मन की धूल के लिए आप क्या करते हैं?
यह इकट्ठी होती चली जाती है। और तब उसकी पर्तें जम जाती हैं। और फिर
ये पर्तें टूट-टूट कर गिरने लगती हैं; और वे अकारण, असमय में, कहीं भी गिर जाती हैं। उनका ध्यान रखें। वह आपकी छाया की पर्तें हैं, जो बहुत भारी हो गई हैं; और जिनको ढोना मुश्किल है।
कभी आपने ख्याल किया, आप आकस्मिक, अचानक अपने को क्रोधित अनुभव करते हैं। या बहाना बहुत छोटा है, क्रोध बहुत ज्यादा कर लेते हैं। जहां सुई से काम चल जाता है, वहां एकदम तलवार निकाल ली। कभी आपने देखा भी यह? यह कैसे हो जाता है? जहां सुई से काम चल जाता वहां आपने तलवार कैसे निकाल ली? और सबको दिखाई पड़ता है, कि यह जरा ज्यादती है, आपको भर दिखाई नहीं पड़ता। कारण यह है कि आपको सुई से मतलब नहीं, आप तलाश में थे कि कहीं कोई मौका, कोई अवसर, कोई सुविधा मिल जाए--और भीतर बड़ी पर्त इकट्ठी हो गई क्रोध की, उससे आप छुटकारा पा लें।

जिन घरों में बच्चे नहीं होते, उन घरों में पति-पत्नी ज्यादा लड़ते हैं। बच्चे होते हैं तो कम लड़ते हैं। क्योंकि बच्चे काफी पर्त झड़ाने के लिए अवसर बन जाते हैं। कोई कमजोर चाहिए, जिस पर झड़ जाए। बड़े परिवार थे, संयुक्त परिवार थे, तो पति-पत्नी अक्सर संयुक्त परिवार में मित्र होते हैं; क्योंकि उनके कामन एनिमी होते हैं, जिनसे वे मिल कर लड़ते हैं। सास है, ससुर है, या कोई और है। लेकिन अगर पति-पत्नी अकेले रह जाएं, तो झंझट हो जाती है।
अगर आज अमरीका में इतने ज्यादा तलाक हैं, तो इसका कारण अमरीका नहीं, संयुक्त परिवार का विसर्जित हो जाना है।
वे तो जो निकट है उसी पर गिरेंगी। जो निकटतम है, उसी पर गिरेंगी। सिर्फ बहाने की तलाश रहती है; कोई बहाना मिल जाए, और हम निकाल दें। इससे सारे संबंध विकृत और विषाक्त हो जाते हैं। नहीं, यह योग्य नहीं है। अगर आपका शरीर गंदा है तो आप एकांत में स्नान कर लेते हैं; इसके लिए आप बाजार में खड़े होकर शोरगुल नहीं मचाते।
ध्यान स्नान है अंतस का।
वह जो रोज-रोज इकट्ठा हो जाता है, उसे आप एकांत में, ध्यान में विसर्जित करते हैं। लोग मुझसे आकर पूछते हैं, आज ही एक मित्र ने आकर पूछा, क्या कैथार्सिस बिल्कुल जरूरी है? क्या यह रेचन इतना आवश्यक है कि हम चिल्लाएं, रोएं, क्रोधित हों?
क्या इसके बिना ध्यान न हो सकेगा?
नहीं हो सकेगा। हो सकता होता, तो हो ही गया होता। वह नहीं हो सका है अब तक, उसका कारण यही पर्तें हैं। और एकांत में झड़ाने में हमें कठिनाई मालूम पड़ती है; क्योंकि इररेशनल, अतर्क्य मालूम होती है बात। अगर किसी ने गाली दी, तो क्रोध करने में योग्य मालूम पड़ता है कि गाली दी, इसलिए क्रोध कर रहे हैं। और यहां मैं ध्यान में आपसे कहता हूं कि क्रोध को निकल जाने दें, तो आपको बड़ी मुश्किल मालूम पड़ती है। किस पर निकल जाने दें? कोई उपद्रव कर भी नहीं रहा है--कहां निकल जाने दें?
आपको यह कला सीखनी पड़ेगी। किसी पर क्रोध फेंकने की जरूरत नहीं है। यह खाली आकाश बड़े प्रेम से आपके क्रोध को स्वीकार कर लेता है। और मजा यह है कि अगर किसी आदमी पर आपने क्रोध निकाला, तो वहां से भी क्रोध निकलेगा, वहां भी ज्वालामुखी है, वह भी आपके जैसा आदमी है। वह भी तलाश में है, आप ही थोड़ी तलाश में हैं। यह मुलाकात, दोनों के लिए संगत है।
इसलिए बुद्ध ने कहा है कि क्रोध से क्या होगा? और क्रोध आएगा, फिर और क्रोध करना पड़ेगा। उसकी शृंखला का तो कोई अंत नहीं है। हमें तो दिखाई नहीं पड़ता, हमें वह शृंखला दिखाई नहीं पड़ती; नहीं तो हम जन्मों-जन्मों तक एक दूसरे से बंधे हुए क्रोध क्यों करते रहते? जिससे आप पिछले जन्म में लड़े हैं, उससे आप आज भी लड़ रहे हैं। चलता रहता है संघर्ष; लंबी यात्रा बन जाती है, शृंखला बन जाती है, कड़ियां बन जाती हैं।
तो दूसरे पर क्रोध करने से कुछ हल नहीं होगा। लेकिन खुले आकाश में क्रोध को विसर्जित कर दें, दूसरों का ध्यान ही न रखें। अपना ही ध्यान रखें कि मेरे भीतर क्रोध है, मैं इसे बाहर कर दूं। वह शून्य है, और शून्य की छाती बड़ी है। शून्य आपके क्रोध को वापस नहीं करता; आपके क्रोध को आत्मसात कर जाता है, पी जाता है। इसलिए हमने शंकर के गले में नीला रंग डाला है, वह जहर पीने का प्रतीक है। वह परमात्मा हमारा सारा जहर पी लेता है। वह नीलकंठ है। वह चारों तरफ मौजूद है। हम उसे सब जहर दे दें, बेफिक्र। वह जहर उसे नुकसान भी नहीं करेगा। सिर्फ उसका कंठ नीला हो जाएगा, और सुंदर लगेगा।
ध्यान में रेचन अनिवार्य है; क्योंकि वह स्नान है भीतर का। क्रोध भी शून्य में डाल दें; दुख भी, पीड़ा भी, संताप भी, चिंता भी। और इसको सिर्फ मन से ही न करें, इसको पूरे शरीर से प्रगट हो जाने दें। क्योंकि हमारा शरीर भी ग्रसित हो गया है। आपको पता नहीं क्योंकि हम शरीर के इतने अनविज्ञ हो गए हैं; आत्मा तो बहुत दूर है, हमें शरीर की भी कोई विज्ञता नहीं है। हमें यह भी पता नहीं कि हमारे शरीर में क्या हो रहा है, हम क्या कर रहे हैं।

आपको पता है, मनस्विद कहते हैं कि जो लोग क्रोध को पी जाते हैं उनके दांत जल्दी खराब हो जाते हैं। अब दांत से क्रोध का क्या लेना-देना? लेकिन लेना-देना है। क्योंकि क्रोध जब आप करते हैं, आपने ख्याल किया, आपके दांत पीसना चाहते हैं। आपके दांत किसी चीज को पकड़ना और काटना चाहते हैं। अगर आप ठीक क्रोध में बह जाएं, तो आप काट ही खाएंगे। छोटे बच्चे काट लेंगे, स्त्रियां काट लेंगी। पुरुष नहीं काटता तो अहंकार के वश; तबीयत तो उसकी भी होती है कि वह भी काट ले। क्योंकि हमारे पीछे करोड़ों वर्ष का जानवरों का इतिहास है। पशु तो जब क्रोधित होता है, तो दांत से ही चीरेगा, फाड़ेगा-- नाखून और दांत दोनों चीजें हैं, दो ही उसके पास हथियार हैं। आदमी ने और हथियार बना लिए हैं, इसलिए दोनों हथियार बेकार हो गए। लेकिन शरीर की प्रक्रिया अब भी पुरानी है।
जैसे ही क्रोध आता है, आपके नाखूनों की तरफ और दांत की तरफ जहर फैलना शुरू हो जाता है। आपके खून में जहर की ग्रंथियां काम शुरू कर देती हैं, और वह आपके नाखून और आपके दांतों की तरफ दौड़ने लगता है, आपके शरीर को कुछ भी पता नहीं है।
आपके पास शरीर तो पशु का ही है। उसकी सारी व्यवस्था पशु की ही है। वह वैसे ही काम करता है, जैसा तब काम करता था, जब आप दांत से भर लेते थे गला दुश्मन का, नाखून से उसका पेट फाड़ डालते थे। अब भी आपका शरीर वैसे ही काम करता है। लेकिन अब आप न तो दांत का उपयोग करते हैं, न नाखून का। आपने और कुशल दांत और और कुशल नाखून निकाल लिए हैं। हम हाइडरेजन बम तक पहुंच गए हैं। हमने काफी लंबी यात्रा कर ली है। लेकिन हमारा जहर, जो हमारे भीतर पैदा हो रहा है, उसको हाइडरेजन बम तो पी नहीं सकता है। वह आपके शरीर में भर जाता है।
विलहेम रेक, जिन लोगों को क्रोध की आदत है, उनके दांत के मसूड़ों को दबाता था और दबाने से ही वह आदमी चीखने लगता था, और क्रोधित हो जाता था विलहेम रेक को अपने आस-पास दो आदमी रखने पड़ते थे, जब वह मरीज का इलाज करता था। आदमी चीखने लगता था। क्योंकि वह आदमी जब ठीक क्रोध से भर जाता था तो जो आदमी निकट होता, विलहेम रेक, उसी पर हमला कर देता था। तो दो उसको सुरक्षा के लिए आदमी रखने पड़ते थे।
यह सब आपके भीतर भरा है। यह मैं किसी और के संबंध में नहीं कह रहा
हूं। यह बात आपसे हो रही है, निपट आपसे, सीधी। मन कहता है कि किसी और के बाबत कह रहे हैं और बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। यहां दूसरे की चर्चा ही नहीं है, आपसे सीधी-सीधी बात हो रही है। यह सब भी निकल जाना जरूरी है तब ही आप हल्के हो पाएंगे। तो जब ध्यान के लिए मैं कहता हूं कि आप अपने शरीर को विक्षिप्त हो जाने दें, तो मेरा प्रयोजन है। आपके शरीर में, जहां-जहां दबा है क्रोध, दबी है हिंसा, दबा है वैमनस्य, दबे हैं न मालूम कितने जहर घृणा के, वे सब निकल जाने दें। आप हलके हो जाएंगे और उस हल्केपन में आपको पहली दफा भीतर के स्नान का पता चलेगा।
ध्यान भीतर का स्नान है। और रेचन अनिवार्य है, तभी आगे यात्रा हो सकती है।
हम मंदिर जाते हैं, तो स्नान करके जाते हैं। कोई नहीं पूछता कि स्नान
करके जाने की क्या जरूरत है? जा सकते हैं मंदिर आप बिना स्नान किए भी, लेकिन तब मंदिर में आप होंगे भी, लेकिन मंदिर में प्रवेश न होगा। क्योंकि मंदिर में प्रवेश के लिए जो अपने को थोड़ा भी स्वच्छ करके नहीं गया है, और आशा में गया होगा कि मंदिर उसे स्वच्छ कर दे, वह नासमझ है।
जो हम मांगते हैं अस्तित्व से, उसकी हमें तैयारी चाहिए।
और हमें वही मिल सकता है, जिसके लिए हम तैयार होकर गए हैं। लेकिन वह बाहर का ठीक है; भीतर का स्नान अत्यंत जरूरी है मंदिर में जाने से पूर्व। और भीतर आपने इतने रोग इकट्ठे कर रखे हैं! और जब मैं कहता हूं रोग, तो मैं कोई उपमा
का उपयोग नहीं कर रहा हूं, कोई प्रतीक नहीं कह रहा हूं; ठीक यही शाब्दिक अर्थ है मेरा--रोग इकट्ठे कर रखे हैं।
अभी तो जाना गया है कि आदमी के पचास से नब्बे प्रतिशत रोग उसके मन से
पैदा हो रहे हैं। लेकिन परिणाम शरीर में होते हैं। क्योंकि मन से जहर

धीरे-धीरे शरीर में रिस जाता है, भर जाता है, और शरीर में दूरगामी परिणाम होते हैं। यहां जो ध्यान में रेचन का हम प्रयोग कर रहे हैं, अगर आप हृदयपूर्वक कर सकें, तो आपका मन तो शुद्ध होगा ही, आप पाएंगे कि आपका शरीर भी--स्वास्थ्य के नये आयाम आप पा सकते हैं, कि बहुत सी बीमारियां अचानक गिर गईं आपके रेचन के साथ। वे जो आपको जकड़े हुए थे बहुत से रोग, सब अचानक विदा हो गए।
और, जैसे मैं उदाहरण के लिए कहता हूं कि अगर आपको अस्थमा है, तो उसका अर्थ है कि श्वास और मन में कहीं न कहीं कोई संबंध विकृत हो गया है, कहीं न कहीं कोई संबंध टूट गया है; कोई अड़चन आ गई है। अगर यह गहरी श्वास का आप ठीक से प्रयोग कर सकें, तो वह अड़चन टूट जाएगी, वह गिर जाएगी। अगर आपको सिर में दर्द बना रहता है, तो उसका अर्थ है कि सौ में नब्बे मौके तो ये हैं कि कुछ ऐसी चिंताएं घर कर गई हैं, जो कीड़े की तरह सिर को भीतर खाए चली जाती हैं। और आप बोझिल हैं, भारी हो गए हैं। अगर वे चिंताएं गिर जाएं, तो आप अचानक पाएंगे कि आपका सिर हल्का हो गया है। भीतर जैसे कोई बोझ था सदा का, वह हट गया है। जैसे कोई खीली ठोके जा रहा था भीतर, वह बंद हो गई।
आपके शरीर में जो भी घट रहा है, उसके कहीं न कहीं सूत्र आपके मन में हैं। और आपके मन में जो घट रहा है, वह शरीर से जुड़ा है। यह रेचन अगर हो पाए, तो ही आपको पता चल सकेगा कि आप कुछ और हैं और शरीर कुछ और है। क्यों? क्योंकि इस रेचन के होते ही आपके और शरीर के बीच जो हजार तरह के गठ-बंधन हो गए हैं रोगों के, वे टूट जाएंगे। आप रोगों के कारण शरीर से जुड़े हैं। आपको शरीर से जोड़ने की जो मौलिक संधि है, जोड़ है, वह रोग है।
हमने अपने मुल्क में उसे कर्मों की शृंखला कहा है। पापों की शृंखला कहा है। जिससे हम शरीर से जुड़े हैं, उसे नई भाषा में हम रोग कह सकते हैं, बीमारी कह सकते हैं। हमने ऐसा जाना है इस देश में कि हम बीमार हैं, इसलिए शरीर में हैं; जिस दिन हम बीमार न होंगे, उस दिन हम शरीर में न होंगे। इसलिए इस मुल्क की हजारों-हजारों साल की प्रार्थना रही है कि हे प्रभु, कब आवागमन से मुक्ति होगी? आवागमन से मुक्ति का अर्थ है कि कब वह क्षण आएगा, जब कि शरीर से बांधनेवाला एक भी रोग न रह जाएगा और मेरी नाव शरीर से पूरी तरह छूट जाएगी। कहीं भी किनारे से कोई रस्सी बंधी न होगी। और तब मेरी नाव आनंद की यात्रा पर निकल जाएगी।
यह ध्यान के अतिरिक्त न कभी हुआ है, न हो सकता है। और जितना ज्यादा आप
सय हो गए हैं, उतने ही ज्यादा रेचन की जरूरत है। वह सयता निकालकर फेंकनी पड़ेगी। सयता महारोग है।
"इसके लिए तुझे सर्व में जीना और श्वास लेना है, वैसे ही जैसे वह सब जिसे तू देखता है, तुझ में श्वास लेता है। और तुझे सर्व भूतों में स्वयं को और स्वयं में सर्व भूतों को देखना है।"
यह सूत्र बड़ा कीमती है। इसे समझें और प्रयोग में लाएं।
"इसके लिए तुझे सर्व में जीना और श्वास लेना है।"
हम जीते हैं अपने में टूटे-टूटे। सर्व में जीने का क्या अर्थ होगा?
एक फूल खिला है और आप उसके पास बैठे हैं, मन होता है कि तोड़ो इस फूल को।
यह आप अपने में जी रहे हैं। यह इतना सुंदर फूल खिला है, इसे सिर्फ तोड़ने का ही ख्याल पैदा होता है। इस फूल में जीने का भाव पैदा नहीं होता? कितना सुंदर फूल खिला है। थोड़ा हम भी इसमें झांकें और प्रवेश करें, थोड़ा इसमें हम भी जीएं। शायद तब इसके सौंदर्य की गंध हमें भी छू जाए।
और तब शायद इसकी पंखुड़ियों पर जो ओस जमी है, वैसी ताजगी हममें भी उतर आए। तो फूल के पास बैठ कर तोड़ने के भाव का अर्थ है कि फूल से हमें कोई मतलब नहीं है। हम फूल में नहीं जी सकते, हम केवल फूल का परिग्रह कर सकते हैं। फूल को हम अपने आस-पास जिला सकते हैं, लेकिन हम फूल में प्रवेश नहीं कर सकते।
चांद निकला है, तो कभी सोचा है कि हम थोड़ा उड़ें। चांद पर तो अब आदमी पहुंचने लगा, लेकिन वे लोग जो चांद तक पहुंच रहे हैं, वे भी चांद तक उड़ान नहीं भर सकते। चांद पर पहुंच सकते हैं, उसमें कोई अड़चन नहीं। लेकिन चांद

पर उड़ान का अर्थ है कि चांद निकला है आकाश में, थोड़ी देर को हम चांद के साथ एक हो जाएं। और चांद हो जाएं और चांद के साथ यात्रा करें आकाश की।
भूल जाएं अपने इस क्षुद्र अस्तित्व को यहां, उड़ जाएं दूर। एक काव्य की छलांग लगाएं--कभी सागर में, कभी आकाश में, कभी फूलों में, कभी पहाड़ों में, कभी किसी मनुष्य की आंखों में! उतरें दूसरे में, और दूसरे में थोड़ी देर को जीएं।
अजीब लगता है; क्योंकि दूसरे में कैसे उतरें? एक गहरी समानुभूति हो तो उतरा जा सकता है। जब आप अपने प्रेमी की आंख में झांकें, तो सिर्फ प्रेमी की आंख में मत झांकें, उतर भी जाएं साथ, उसके भीतर प्रवेश भी कर जाएं। शुरू में शायद अड़चन भी मालूम पड़े; क्योंकि हम भयभीत हो गये हैं। और इसलिए हम एक-दूसरे की आंखों में देखने में डरते हैं। और अशिष्टता समझी जाती है, अगर कोई किसी की आंख में ज्यादा झांककर देखे, जब तक कि दूसरे से कोई बहुत ही निकट आत्मीयता न हो। नहीं तो कोई झांक कर नहीं देखता। क्यों? क्योंकि दूसरे में उतर जाने का डर है। आंख द्वार है। अगर उसमें कोई झांककर देखे तो भीतर उतर सकता है।
अभी पश्चिम में कुछ नई विधियां खोजी गई हैं, जिनमें आंखों में झांकना
भी एक विधि है। दो व्यक्ति बैठ जाते हैं और घंटे भर तक एक दूसरे की आंख में झांकते रहते हैं। अनूठे अनुभव होते हैं। कभी-कभी तो जीवन को बदल जाने वाले अनुभव होते हैं। क्योंकि अगर एक घंटे तक बिना पलक झपके आप एक-दूसरे की आंख में झांकते हैं, तो थोड़ी देर के बाद झलक एक क्षण को आती है कि आप को लगता है कि अपने में नहीं हैं, दूसरे में हैं। इसलिये आंख पर हमने प्रतिरोध लगा रखा है कि कोई किसी की आंख में न झांके। और अगर कोई आदमी आपको झांक कर देखे तो अशिष्ट मानते हैं। खतरनाक भी है।
क्योंकि आंख बहुत संवेदनशील झरोखा है, उससे कोई भीतर जा सकता है। इसलिए ही जिसको हम चाहते हैं कि हमारे भीतर जाएं, उसी को हम आंख से झांकने देते हैं। पर अगर एक-दूसरे की आंख में झांकें, तो आप एक-दूसरे में उतरने का अनुभव कर सकते हैं। और एक-दूसरे में ऐसे ही उतरना हो जाता है, जैसे कोई एक गहरे कुएं में उतर रहा हो। और दूसरे व्यक्ति में उतर कर जानना कि दूसरा क्या है, बहुत ही अनूठी प्रतीति है। उसके बाद आप वही नहीं होंगे, जो आप थे। आपका विस्तार हुआ--एक्सपेंशन आफ कांशसनेस, आपकी चेतना बढ़ी।
लेकिन व्यक्तियों में ही झांका जा सकता है, ऐसा नहीं है। पशुओं में भी झांका जा सकता है, और फूलों में, पौधों में भी और फिर पत्थर की चट्टानों में भी। और तब यह सारे अस्तित्व में झांका जा सकता है और जीया जा सकता है।
और जब तक आप यह कला न सीख लेंगे, तब तक अहंकार से कोई छुटकारा नहीं।
अगर आप अहंकार को छोड़ने में लगे, तो कभी न छूटेगा। लेकिन आप अगर सर्व में जीने की कला सीख गए, तो एक दिन आप अचानक पाएंगे कि वह कहीं छूट गया है। आपको पता
भी नहीं चला, कब छूट गया। जैसे सांप की केंचुली कहीं छूट गई और बाद में उसे होश आया हो कि केंचुली कहां गई। जैसे सूखा पत्ता किसी वृक्ष से गिर गया हो और वृक्ष को पता भी न चला हो। वह अपनी गहरी शांति में मौन रहा हो, सूखे पत्ते की आवाज भी न आई हो। अचानक जब नया पत्ता आ गया हो, तब उसे ख्याल में आया हो कि सूखे पत्ते कहां गए। ऐसा ही जो दूसरे में झांकना सीख जाता है, और सर्व में जीने की कला, तो धीरे-धीरे उसका अहंकार कब खो गया, उसे पता नहीं चलता।
और अगर आपको पता चले कि आपका अहंकार खो गया है, तो उसका मतलब कि यह एक नया अहंकार पैदा हो गया है कि मैं विनम्र हूं, कि मैं निरहंकारी हूं, कि मेरा अहंकार नष्ट हो गया है। यह कौन कह रहा है? यह कौन जान रहा है?
"सर्व में जीना है, सर्व में श्वास लेना है, वैसे ही जैसे वह सब जिसे तू देखता है, तुझ में श्वास लेता है।"
इसका कोई छोटा प्रयोग करें, यहां कैम्प में। आप बहुत हैरान हो जाएंगे। कल सुबह, दोपहर जब मौज आ जाए और जब मन थोड़ा शांत, प्रफुल्लित और आनंदित हो। और यह भी ख्याल ले लें कि धीरे-धीरे आपको अपने मन की एक जानकारी बना रखनी चाहिए कि आपका मन कब प्रसन्न होता है, कब आनंदित होता है। मन के

भी मौसम हैं। और अगर आप ठीक से अपने मन का निरीक्षण एक तीन महीने तक करें, तो आप अपने भविष्य की भी घोषणा कर सकते हैं कि शुक्रवार की सुबह आप अपनी पत्नी को पहले से कह सकते हैं कि तू सावधान रहना, कि शुक्रवार की सुबह मैं थोड़ा अशांत होता रहा हूं। और वह मौसम आएगा। और अगर घर में हर आदमी का कैलेंडर हो, तो पूरा घर सचेत हो सकता है। और तब बड़ी मौज होगी, बड़ा आनंद आएगा; क्योंकि आपको पता है कि शुक्रवार की सुबह पति क्रोधित होंगे, तो फिर आपको क्रोधित होने की कोई जरूरत नहीं। तब हंसा जा सकता है। और अगर पति को पता है कि पत्नी फलां संध्या को उपद्रव खड़ा करेगी, इसका अगर जाहिर ही है मामला, तो मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है। वह वैसे ही है, जैसे मेनसिस होता है, माहवारी होती है। यह वैसे ही है। इससे कुछ नाराज होने की जरूरत नहीं, ये भीतरी परिवर्तन हैं व्यक्ति के। होते हैं, जैसे मौसम बदल जाता है। वर्षा आ जाती है, तो हम गाली नहीं देते हैं। और धूप निकल आती है, तो हम जानते हैं कि धूप निकलेगी। और रात अंधेरा हो जाता है, तो हम जानते हैं कि रात है। व्यक्ति भी ऐसे ही हैं।
तो कल जरा ख्याल लेना कि मन जब प्रसन्न और आनंदित हो, थोड़ा ध्यान की तरफ झुका हो, तब एक छोटा सा प्रयोग करना। एक छोटे से पत्थर को बड़े प्रेम से उठा लेना, अपने हाथ में रख लेना, एकांत में बैठ जाना, आंख उस पत्थर पर जमा लेना, फिर धीरे-धीरे गहरी सांस लेना, और एक ही ध्यान रखना, देखते रहना, देखते रहना पत्थर को कि पत्थर कब श्वास लेना शुरू करता है। आप धीरे-धीरे श्वास लेते रहना और पत्थर पर आंखें गड़ाए रखना। आप चमत्कृत होंगे। वह क्षण शीघ्र ही आ जाएगा, जब आपको प्रतीति होगी कि पत्थर भी श्वास ले रहा है। आपकी ही श्वास विस्तीर्ण हो गई है। पत्थर की भी श्वास है, बहुत धीमी है। आपकी श्वास जुड़ जाए, तो मैग्नीफाई हो जाती है, बड़ी हो जाती है। और तब आपको प्रतीति हो सकती है।
और अगर आपको पत्थर में श्वास की प्रतीति हो जाए, तो आपको महावीर की अहिंसा का पता चलेगा। और तब यह सारा जगत आपको श्वास से भरा हुआ, प्राणों से आन्दोलित लगेगा। तब यहां किसी को भी, एक पत्थर को भी चोट पहुंचाना मुश्किल हो जाएगा।
"श्वास लेना वैसे ही, जैसे सब जिसे तू देखता है, तुझमें लेता है। और तुझे सर्वभूतों में स्वयं को और स्वयं में सर्वभूतों को देखना है।"
यह प्रतीति बढ़ती जाए। यह दोहरी तरह से हो सकती है। पहले देखना कि पत्थर में आपकी श्वास प्रवेश कर गई। फिर इससे उल्टा भी आप अनुभव कर सकते हैं कि पत्थर आपमें श्वास लेने लगा। लेकिन हमें श्वास की कला का पता नहीं है।
गुरजिएफ के संबंध में कहा जाता है कि कभी-कभी वह अचानक कुछ लोगों को अजीब तरह के धक्के, शाक दे देता था। जैसे आप गुरजिएफ के पास बैठे हैं, गुरजिएफ एक बहुत रहस्यवादी संत था। जैसे आप उसके पास बैठे हैं, अचानक आपको लगेगा कि बिना कुछ किए उसने आपकी नाभि पर चोट की और उसने आपको छुआ भी नहीं। उसके शिष्य बड़े हैरान थे कि वह करता क्या है? उसकी यह चोट बड़ी गहरी हो जाती थी। और तब शिष्यों ने धीरे-धीरे निरीक्षण किया कि वह करता क्या है। तो निरीक्षण में पाया कि वह पहला काम तो यह करता है कि वह आपके साथ श्वास लेने लगता है--जो श्वास आपकी है।
रिदिम, जो गति, वैसी गति वह भी श्वास की अपनी कर लेता है। और जब दोनों
की गति बिल्कुल एक हो जाती है, तब वह कोई भी विचार करे, वह आप में संक्रमित हो जाता है।
तो यह आप करके देख सकते हैं। जब भी किसी व्यक्ति के साथ आपकी श्वास बिल्कुल एक गति हो जाती है, एक लय में बद्ध हो जाती है, तब आप भीतर मिल गए; तब आप दो प्राण नहीं, एक प्राण हो गए। और आपकी दो श्वासें एक वर्तुलाकार चक्र बन गईं। अब आप कोई भी भाव संक्रमित कर सकते हैं। अब कोई भी भाव भीतर प्रवेश हो जाता है। और यह न केवल व्यक्तियों के साथ, पशुओं के साथ, पौधों के साथ, पत्थरों के साथ, सभी के साथ हो सकता है। थोड़ा कठिन होता है, जैसे ही हम मनुष्य से नीचे जाते हैं। क्योंकि हम तो मनुष्य से ही नहीं जुड़ पाते हैं, तो पौधे से जुड़ना तो बहुत दूर का नाता है। वह भी हमारे परिवार का

हिस्सा है; क्योंकि हम कभी पौधे थे। लेकिन बड़ी लंबी यात्रा हो गई। उससे हमारे नाते-रिश्ते बहुत दूर के हो गए। हम भी कभी पशु थे, पर उससे हमारे नाते-रिश्ते बहुत दूर के हो गए। लंबी है यात्रा और भाषा का बड़ा फासला पड़ गया है। आदमी से नहीं जुड़ पाते हम। जिनसे हम प्रेम करते हैं, उनके साथ भी हमने कभी एक लयबद्ध श्वास का अनुभव नहीं किया है।
इसे थोड़ा अनुभव करें और इस को थोड़ा फैलाएं। यह जैसे-जैसे फैलता जाएगा,
तब आप सूरज को देख सकते हैं और आपको ऐसा नहीं लगेगा कि आप ही सूरज को देख रहे हैं। अगर आपको सर्व के साथ एक होने की थोड़ी सी प्रतीति है, तो आपको यह भी लगेगा कि सूरज भी आपको देख रहा है। और तब ऐसा नहीं लगेगा कि एक फूल के पास आप बैठे हैं, ऐसा भी लगेगा कि फूल आपके पास बैठा है। और ऐसा नहीं लगेगा कि आपने ही उसको निहारा, उसने भी आपको निहारा।
हमने बड़ी मीठी कथाएं इस संबंध में रची हैं। उन कथाओं में लोग कई बार उलझ जाते हैं और मुश्किल में पड़ते हैं, क्योंकि समझ नहीं पाते हैं। और धर्म के बहुत सत्य कविता में कहे गए हैं। और कोई उपाय नहीं है। धर्म की भाषा काव्य है। विज्ञान धर्म की भाषा नहीं है। हो भी नहीं सकता, होना भी नहीं चाहिए। कोई चेष्टा भी करे, तो वह अनुचित है।
तो हमने कहा है कि महावीर अगर निकलते हैं, या बुद्ध अगर निकलते हैं, तो असमय में भी वृक्ष पर फूल आ जाते हैं। हम सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि बुद्ध ही नहीं देखते वृक्ष को, वृक्ष भी बुद्ध को देखता है। और वृक्ष बेचारा कर भी क्या सकता है इससे ज्यादा कि बुद्ध पास आए हों, तो फूल बन जाए। फूल वृक्ष की आंखें हैं, उनसे वह बुद्ध को निहारेगा। कुछ लेन-देन होगा। दोनों के बीच कुछ मिलन हो जाएगा। जरूरी नहीं कि वृक्षों में फूल आए हों असमय में बुद्ध के निकलने पर, पर आने चाहिए। न भी आए हों, तो आने चाहिए। आए भी होंगे, शायद उन्हीं को दिखाई पड़े हों, जिनका अस्तित्व के साथ इतना तालमेल है। शायद हम अंधों को न भी दिखाई पड़े हों। क्योंकि हमको तो वस्तुतः भी जब फूल आ जाते हैं, तो कहां दिखाई पड़ते हैं?
जिस वृक्ष के पास से आप रोज गुजरते हैं, आपको पता ही नहीं चलता कब वृक्ष जवान हुआ, कब वृक्ष बूढ़ा हो गया, कब वृक्ष रो रहा था, कब वृक्ष हंसता था, कब प्रसन्न था और नाचता था। और कब उदास था, जीर्ण-जर्जर था, दीन था, कुछ पता नहीं चलता। आप समझते हैं, वही वृक्ष खड़ा है! वृक्ष में भी सब मौसम आ जा रहे हैं। उसके भीतर भी भाव की तरंगें हैं। कभी वह भी आनंद से नाचता होता है, तब वृक्ष के पास होने का मजा और है। कभी वह दुख से उदास और पीड़ित और ढला हुआ होता है, तब उसके पास बैठ कर आप भी उदास हो जाएंगे। आपको पता भी नहीं चलेगा।
लेकिन किसको मतलब है! कौन देखता है! वृक्ष तो दूर है, घर में ही कौन किसको देखता है! पति पत्नी को, कि बाप बेटे को, कि बेटा बाप को!
किसी को किसी से प्रयोजन नहीं--अपने आप में बंद। कोई खिड़की नहीं, दरवाजा नहीं, सब बंद हैं। भागे चले जा रहे हैं। कभी-कभी किसी से टकरा जाते हैं, तो क्षण भर को एक-दूसरे का होश आता है।
मैं एक मनसविद को पढ़ रहा था। उसने बड़े मजे की बात लिखी है और विचार लिखे हैं। और सही भी हैं। उसने लिखा है कि अगर किसी स्त्री से प्रेम हो, उसका हाथ हाथ में लेकर अगर थोड़ी देर बैठे रहो, और हाथ को न थपथपाओ, तो वह भी भूल जाती है कि आपका हाथ उसके हाथ में है। इसलिए प्रेमी थपथपाते रहते हैं, हिलन-डुलन करते रहते हैं थोड़ी; क्योंकि उससे पता चलता है। उससे थोड़ी टक्कर होती रहती है। अगर एक प्रेयसी को या प्रियजन को आप छाती पर लगाए बैठे ही रह जाएं पंद्रह मिनट, तो दोनों ही भूल जाएंगे कि कोई दूसरा है। दूसरे का पता ही चलता है जब कि कुछ उपद्रव जारी रहे। कुछ हलन-चलन होता रहे। सब स्थिर हो जाए, तो हमें पता चलना बंद हो जाता है। कुछ उपद्रव चाहिए, तो पता चलता है। सूरज भी देखता है आपको, वृक्ष भी और यह पृथ्वी भी। यह सारा अस्तित्व
आप में उतना ही उत्सुक है, जितना आप इसमें। और जितनी आपकी उत्सुकता बढ़ती है, उतनी ही उसकी उत्सुकता प्रगट होती है। और तब एक कम्युनिअन, एक मिलन, एक आलिंगन घटित होता है। इस अस्तित्व के आलिंगन का नाम ही समाधि है। ध्यान से चलना है उस तरफ, जहां पर मिलना हो जाए।

लेकिन अगर आप रोते हुए, उदास, टूटे हुए, हारे हुए हैं, तो यह मिलन न हो पाएगा। टूटे हुए, हारे हुए से कौन मिलना चाहता है! दुखी, उदास से कौन मिलना चाहता है! क्योंकि तब मिलने का अर्थ है, वह दुख और उदासी आप में उंडेल देगा।
यह अस्तित्व आपकी प्रतीक्षा करता है कि किस दिन आप नाचते, गाते, आनंद
से भरे हुए उसके निकट आएंगे--उस दिन यह मिलन हो पाएगा।
सब मिलन आनंद के क्षण में होते हैं।
और सब बिखराव दुख के क्षण में होते हैं।
इसलिए दुख में इतनी पीड़ा है। क्योंकि दुख में हम अकेले रह जाते हैं।
और किसी से कोई संबंध नहीं रह जाता। आनंद में, हम अकेले नहीं रह जाते। सारा अस्तित्व अपने पूरे उत्सव के साथ सम्मिलित हो जाता है।
"तू अपने मन को अपनी इंद्रियों की क्रीड़ाभूमि नहीं बनने देगा। तू अपनी सत्ता को परम सत्ता से भिन्न नहीं रखेगा, वरन समुद्र को बूंद में और बूंद को समुद्र में डुबा देगा।"
तू डूब जाएगा अस्तित्व में और अस्तित्व को अपने में डूब जाने देगा।
"इस प्रकार तू प्राणीमात्र के साथ पूरी समरसता में जीएगा, सभी मनुष्यों के प्रति ऐसा प्रेम-भाव रखेगा, जैसे कि वे तेरे गुरुभाई हैं--एक ही शिक्षक के शिष्य और एक ही प्यारी मां के पुत्र।"
अस्तित्व के प्रति एक परिवार का भाव--एक आत्मीयता का भाव।
हम सबके मन में शत्रुता है, हम लड़ रहे हैं। हम अस्तित्व को जीतने की कोशिश कर रहे हैं, जैसे कोई दुश्मनी है, स्पर्धा है, प्रतियोगिता है। उसके कारण ही हम दुःखी हैं। इससे कोई अस्तित्व का नुकसान नहीं होता। हम ही कट जाते हैं। अलग टूट जाते हैं, अजनबी हो जाते हैं। अस्तित्ववादी बहुत बार कहते हैं कि आदमी अजनबी हो गया है, सटरेंजर हो गया है। कोई किया नहीं है उसे, अपने आप हो गया है। और यह अस्तित्व आपका घर भी बन सकता है। आप ही खुल जाएं तो यह अस्तित्व भी खुल जाता है।
एक सूत्र स्मरण रखें कि जैसे आप हैं, वैसा ही यह अस्तित्व आपको प्रतीत होता है। यह सब दर्पण है चारों तरफ। आप अपनी ही शक्ल देख लेते हैं।
सुना है मैंने एक सम्राट के महल में एक कुत्ता घुस गया। और महल कांचों
का बना था। और सम्राट ने सारे दर्पण लगा रखे थे दीवारों पर। कोई हजार-हजार दर्पण लगे थे। कुत्ता बहुत मुश्किल में पड़ गया। देखा उसने, हजारों कुत्ते चारों तरफ खड़े थे। डरकर भौंका।
जो डरते हैं, वही भौंकते हैं। उससे खुद को आश्वासन मिलता है कि हम डरे हुए नहीं, बल्कि हम डरा रहे हैं। डराने की चेष्टा डर का ही उपाय है। दूसरे को डराने वही जाता है, जो डरा ही हुआ है।
भौंका लेकिन अकेला नहीं भौंका, सब दर्पण के कुत्ते भी भौंके। और घबरा गया। हजारों कुत्ते--चारों ओर दुश्मन ही दुश्मनों से घिर गया। भागा दर्पणों की तरफ हमला करने को। क्योंकि सुरक्षा का एक ही उपाय जानता है आदमी भी और कुत्ता भी।
एक ही उपाय है सुरक्षा का। मैक्यावेली ने कहा है, सुरक्षा चाहिए तो आक्रमण उपाय है। उस कुत्ते ने भी मैक्यावेली की किताब, "दि प्रिंस" कहीं पढ़ ली होगी। उसने हमला किया। लेकिन जब आप हमला करेंगे, तो दुनिया बैठी रहेगी? सारे दर्पणों के कुत्तों ने भी हमला किया। फिर उस रात वह कुत्ता पागल हो गया। हो ही जाएगा। सुबह वह मरा हुआ पाया गया। और दर्पण में वहां कोई भी न था, अपनी ही प्रतिध्वनि थी।
इस अस्तित्व के साथ हम जो भाव बना लेते हैं उसकी प्रतिध्वनियां गूंजने लगती हैं। देखें शत्रुता से, और चारों तरफ शत्रु खड़े हो जाते हैं।
और देखें मित्रता से वहां कोई शत्रु नहीं है। आप ही फैल कर गूंज जाते हैं।
आप ही अपने को सुनाई पड़ते हैं। आपकी ही अनुगूंज, आप जी रहे हैं। यह सूत्र कहता है, मित्रता इस अस्तित्व के साथ।
विज्ञान और धर्म का यह मौलिक भेद है।
विज्ञान लड़ता है, जीतना चाहता है, विजय की उसकी यात्रा है।

धर्म जीतना नहीं चाहता है, लड़ना भी नहीं चाहता है, मैत्री उसका आधार है। वह अस्तित्व के साथ एक प्रेम-संबंध स्थापित करना चाहता है। अस्तित्व के साथ उसका प्रेमी और प्रेयसी का नाता है, शत्रु का नहीं। इसके गहन परिणाम होते हैं।
क्योंकि जब आप मित्र की तलाश में निकलते हैं, तो सारा अस्तित्व मित्रता के हाथ फैला देता है। उस क्षण आपको पता लगता है कि आप अजनबी नहीं हैं। और उस क्षण आपको यह भी पता लगता है कि पूरा अस्तित्व एक मां की गोद है। और उस समय आपको पता चलता है कि यह अस्तित्व अकारण ही आपको पैदा नहीं किया है। इसके उल्लास में, इसके उत्सव में, इसके आनंद में आपका जन्म है। आप इसके आनंद-क्रीड़ा के हिस्से हैं।
इसलिए हमने कहा जगत को परमात्मा की लीला, उसके आनंद का खेल। और हम सब उसके आनंद के खेल की लहरें हैं, उसका विस्तार हैं। लेकिन इस प्रतीति तक पहुंचने के लिए कि परमात्मा की लीला है। यह जगत, हमें कुछ आधार-भूमियां बनानी पड़ती हैं। उन आधार-भूमियों में यह सूत्र खयाल में रखना जरूरी है।

समाधि के सप्त द्वार
चौथा प्रवचन

सम्यक जीवन

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; प्रातः 11 फरवरी

शिक्षक अनेक हैं, लेकिन परम गुरु एक ही है--जिसे आलय या विश्वात्मा कहते हैं। उस परम सत्ता में ऐसे ही जी, जैसे उसकी किरण तुझमें जीती है। और प्राणी मात्र में ऐसे जी, जैसे वे परम सत्ता में जीते हैं।
मार्ग की देहली पर खड़ा होने के पूर्व, अंतिम द्वार को पार करने के पहले तुझे दोनों को एक में निमज्जित करना है और व्यक्ति-सत्ता को परम-सत्ता के लिए त्यागना है। और इस तरह दोनों के बीच में जो पथ है, जिसे अंतःकरण कहते हैं, उसे नष्ट कर डालना है।
तुझे धर्म को, उस कठोर नियम को उत्तर देना होगा, जो तुझसे तेरे पहले ही कदम पर पूछेगाः
ओ उच्चाशी, क्या तूने सभी नियमों का पालन किया है?
क्या तूने अपने हृदय और मन को समस्त मनुष्यों के महान हृदय और मन के साथ लयबद्ध किया है? जैसे पवित्र नदी के गर्जन में प्रकृति की सभी ध्वनियां प्रतिध्वनित होती हैं, वैसे ही उस स्रोतापन्न के हृदय को भी, जो नदी में प्रविष्ट होगा, उन सबकी प्रत्येक आह और विचार को प्रतिध्वनित करना होगा, जो जगत में जीते और सांस लेते हैं।
हृदय को गुंजारित करने वाली वीणा से शिष्य की तुलना की जा सकती है, उसके नाद से मनुष्यता की तुलना और उस बजाने वाले के हाथ से महाविश्वात्मा की तालमई श्वास की तुलना की जा सकती है। जो तार गायक के स्पर्श के साथ मधुर लय से बजने से इनकार करता है, वह टूट जाता है और फेंक दिया जाता है। ऐसे ही हैं--शिष्यों व श्रावकों के सामूहिक मन। उन्हें उपाध्याय के परमात्मा के साथ एक हुए मन के साथ लयबद्ध होना है अन्यथा वे मार्ग से टूट जाएंगे।
ऐसा ही वे करते हैं, जो छाया के बंधु, अपनी आत्मा के हंता और दाददुगपा जाति के नाम से पुकारे जाते हैं।
ओ प्रकाश के प्रत्याशी, क्या तूने अपनी सत्ता को मनुष्यता की महान पीड़ा के साथ एक कर लिया है?
क्या ऐसा तूने किया है? ... तू प्रवेश कर सकता है। तो भी अच्छा है कि शोक के दुर्गम मार्ग पर पांव रखने के पहले तू उसके ऊंच-नीच को, उसकी कठिनाइयों को समझ ले।

बहुत सी बातें समझने जैसी हैं।
जैसे रात पूर्णिमा का चांद निकले और अनंत-अनंत सरोवरों में उसके प्रतिबिंब बनें; हर सरोवर का प्रतिबिंब अपना है और हर सरोवर के प्रतिबिंब का अपना व्यक्तित्व है--लेकिन वे सारे प्रतिबिंब एक ही चांद के हैं। जो प्रतिबिंब में उलझ जाएगा, वह शायद उस चांद को भी भूल जाए, जिसका कि वह प्रतिबिंब है। और जो प्रतिबिंब से आंखें ऊपर उठाएगा, वह उस चांद को देख पाएगा, जो कि मूल है। क्योंकि प्रतिबिंब तो उसकी प्रतिछवियां हैं।
गुरु एक है, शिक्षक अनेक हैं।
वह जो जीवन का सत्य है, वह एक है; लेकिन उसकी शिक्षाएं अनेक हैं।
वह जो मंदिर है रहस्य का, वह एक है, लेकिन उसके द्वार अनेक हैं।
अनंत-अनंत हैं मार्ग उस तक पहुंचने के; लेकिन पहुंचने पर एक ही शेष रह जाता है।
मंजिल एक है।
और शिक्षकों में भी जो झलक दिखाई पड़ती है, वह उस एक की ही है। सभी शिक्षक सरोवर की भांति हैं। वह एक महागुरु ही उनमें प्रगट होता है। ऐसा भी हो सकता है कि शिक्षक एक-दूसरे के विपरीत हों; फिर भी जो उनमें प्रकट होता है; वह एक ही है।

बुद्ध महावीर के विपरीत दिखाई पड़ते हैं। महावीर कृष्ण के विपरीत दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण और क्राइस्ट का क्या तालमेल हो सकता है? मोहम्मद महावीर को साथ-साथ सोचना भी कठिन है। शिक्षक अनेक हैं। न केवल अनेक हैं, बल्कि आपस में विपरीत भी दिखाई पड़ सकते हैं। लेकिन जो महागुरु है, वह एक है। जो महावीर में झलका है, जो मोहम्मद में झलका है, कृष्ण और क्राइस्ट में जिसका प्रतिबिंब बना है, वह एक है। ये प्रतिबिंब इतने अलग होंगे ही। क्योंकि प्रतिबिंब जिस सरोवर में बनता है, उसका व्यक्तित्व समाहित हो जाता है। और इन प्रतिबिंबों में विरोध होगा, यह भी सुनिश्चित है, क्योंकि व्यक्तित्व भिन्न हैं और विरोधी हैं।
मीरा नाच सकती है, महावीर के नाचने की कल्पना करनी कठिन है। सोचना
भी कि महावीर नाच रहे हैं, बड़ा मुश्किल होगा। और मीरा को बुद्ध की भांति शांत बिठा रखना भी उतना ही मुश्किल है। मीरा का व्यक्तित्व है, जो नाच सकता है। और जब सत्य की किरण उस व्यक्तित्व पर चोट करेगी, तो वह व्यक्तित्व नाचेगा। महावीर का व्यक्तित्व है, जो पत्थर की भांति मौन हो सकता है। और जब वह सत्य की किरण उस व्यक्तित्व पर पड़ेगी, तो वह पत्थर की भांति मौन हो जाएगा। महावीर की पत्थर की प्रतिमाएं देखी हैं? जितनी वे मौन हैं, उससे भी ज्यादा मौन यह आदमी था। कोई हलन-चलन नहीं।
महावीर और मीरा को साथ-साथ रख लें, तो बड़ी मुश्किल होगी। विपरीत मालूम पड़ते हैं। एक बिल्कुल चुप होकर बैठ गया है और एक पूरी तरह गूंज गया है, गूंज उठा है। यह व्यक्तित्व का भेद है। मीरा का व्यक्तित्व तैयार है नाचने को, तो सत्य का जब अनुभव होगा, तो वह नृत्य से प्रकट होगा। क्योंकि प्रकट करने वाला तो वैसे ही प्रकट कर सकता है, जिसकी उसकी तैयारी है।
ऐसा समझें कि अगर इस पास की झील के करीब कोई चित्रकार जाए और एक कवि जाए और एक संगीतज्ञ जाए और एक नर्तक जाए; तो यह झील तो एक होगी, लेकिन उस झील का सौंदर्य जब छुएगा कवि को तो गीत निर्मित होगा और जब इस झील का सौंदर्य छुएगा चित्रकार को तो गीत निर्मित नहीं होगा, चित्र निर्मित होगा। और जब इस झील का सौंदर्य छुएगा नर्तक को तो घूंघर की आवाज सुनाई पड़ेगी और इस झील की आत्मा जब स्पर्श करेगी संगीतज्ञ को तो वीणा के तार झनझना उठेंगे। वह झील एक है, पर जो उसके पास आए हैं, उनका अपना-अपना व्यक्तित्व है। और वही व्यक्तित्व अभिव्यक्ति करेगा।
सत्य की अनुभूति एक है, अभिव्यक्तियां अनेक हैं।
इसलिए इस सूत्र में कहा है, अनेक हैं शिक्षक, लेकिन वह महागुरु एक है।
और जिस शिक्षक में उसकी भनक मिल जाए, जिस शिक्षक में आपको उसकी झलक मिल जाए, वही शिक्षक आपके लिए द्वार है। फिर आप अन्य शिक्षकों की चिंता छोड़ देना। क्यों? क्योंकि आपको भी जिस शिक्षक में उसकी भनक मिलती है, उसका यही कारण है। यह नहीं कि उस शिक्षक में सत्य है और दूसरों में नहीं। उसका भी कारण यही है कि उस शिक्षक की जो अभिव्यक्ति है, वह आपके व्यक्तित्व के अनुकूल है। इसलिए उस शिक्षक में आपको गुरु दिखाई पड़ता है। उस शिक्षक की अभिव्यक्ति, और आपके व्यक्तित्व में कोई तालमेल है। तो महावीर भी निकलते हैं उसी गांव से, और उसी गांव से बुद्ध भी निकलते हैं लेकिन कोई बुद्ध के चुंबक से खिंच जाता है। कोई महावीर के चुंबक से खिंच जाता है, कोई है जो महावीर का स्पर्श भी नहीं कर पाता, महावीर से उसका कोई मेल नहीं बनता। ऐसा ही नहीं, महावीर के विपरीत भी वह चला जाता है। और वही आदमी बुद्ध से खिंच जाता है और बुद्ध का जादू उसे पकड़ लेता है। कोई दूसरा उसी गांव में बुद्ध से वंचित रह जाता है। आपका व्यक्तित्व भी जब किसी के साथ लयबद्ध हो जाता है और जब आप अनुभव करते हैं एक ही स्वाद का, जो महावीर को अनुभव हुआ है स्वाद का, अगर आपकी जीभ भी उस भांति की है कि उस स्वाद को ले सके, तो ही महावीर आपको खींच पाते हैं। जो शिक्षक आपको खींचता है, वह अपने संबंध में तो कुछ कहता ही है, आपके संबंध में और भी ज्यादा कहता है। जिससे आप खिंचते हैं, उससे आपका तालमेल है, उससे आपकी आत्मिक निकटता है। आप उसके लिए हैं, वह आपके लिए है।
प्रेमी अक्सर एक-दूसरे से कहते हैं कि ऐसा लगता है कि तू मेरे लिए ही निर्मित हुआ है, या तू मेरे लिए ही निर्मित हुई है; जैसे इस पूरी पृथ्वी पर

तेरी ही तलाश में था, और जब तक तू न मिल जाती या तू न मिल जाता, तब तक अधूरापन और अभाव लगता। इससे भी गहरी। यह तो दो शरीरों की या अगर बहुत गहरा जाए प्रेम, तो दो मनों के तालमेल की खबर है। इससे भी गहरी खबर शिष्य और गुरु के बीच घटित होती है--आत्मा के मिलन की। इसलिए हमने उसे अलग नाम दिया है श्रद्धा का। वह प्रेम का चरम शिखर है। उससे ऊपर प्रेम के जाने का कोई उपाय नहीं, जहां दो आत्माएं अनुभव करती हैं--एक सी गंध, एक सा स्वाद, एक सा स्वर, जहां दो आत्माओं की वीणा एक साथ तरंगित होती है और एक साथ बजने लगती है।
जिस शिक्षक से आपके हृदय के तार झनझना जाएं, वह शिक्षक आपके लिए गुरु
हो गया।
सभी शिक्षक आपके गुरु नहीं हैं। और इसके प्रति बहुत सावधान होना भी जरूरी है। क्योंकि हम अपने द्वंद्व-ग्रस्त मन में पच्चीस शिक्षकों के बीच घूम सकते हैं। और बहुत विपरीत स्वरों को अपने भीतर इकट्ठा कर ले सकते हैं। उससे हमारे संगीत के जन्मने में बाधा पड़ेगी। उससे हमारे भीतर व्यर्थ के द्वंद्व इकट्ठे हो जाएंगे। इसलिए उचित है कि खूब छान-बीन करके और छान-बीन, ध्यान रखें गुरु की न करें; छान-बीन इस बात की करें कि आपका किससे तालमेल बैठता है। यह बहुत अलग बात है। हम छान-बीन करते हैं इस बात की कि कौन गुरु सच्चा है। यह बात मूल्यवान नहीं है। और आप कैसे पता लगाएंगे कि कौन गुरु सच्चा है? सत्य की क्या कसौटी है आपके पास? किसके पास है? अच्छा हो कि खोज-बीन इस बात की करें कि किससे मेरे हृदय के तार मेल खाते हैं। वह सच्चा हो या न हो, आप चिंता न करें। अगर आपके हृदय के तार तालमेल खाते हैं, तो वह कोई भी हो, वह आपके लिए महागुरु का द्वार बन जाएगा। और कभी-कभी टेढ़े-मेढ़े पत्थर भी उसका द्वार बन जाते हैं, और कभी-कभी बहुत सुंदर मूर्तियां भी उसका द्वार नहीं बनती हैं। यह सवाल मूर्ति और पत्थर का नहीं है; अनगढ़ पत्थर और गढ़ी गई मूर्ति का नहीं है। यह सवाल आपके और उसके बीच तालमेल निर्मित होने का है।
और जैसे प्रेम अंधा होता है, वैसे ही श्रद्धा भी अंधी होती है। अंधे
का मतलब यह नहीं कि आंख नहीं होती। अंधे का मतलब यह है कि और ही तरह की आंख होती है, तर्क की आंख नहीं होती। न तो कोई अपनी प्रेमिका को खोज सकता है तर्क से--और कभी कोई खोजने निकलेगा, तो बिना प्रेमिका के रह जाएगा। और न कोई अपने गुरु को खोज सकता है तर्क से--वह भी प्रेम का ही मामला है। और अगर आपको लगता है कि किसी गुरु का तर्क आपसे बहुत मेल खाता है, इसलिए आपने उसको चुन लिया, तो आप समझना कि यह भी तर्क की खोज नहीं है। यह भी आपके भीतर की वीणा के स्वर का तालमेल है। यह भी आपके तर्कनिष्ठ होने के कारण हो रहा है। और यह आपकी तर्कनिष्ठा तर्कातीत है। इसलिए आप कोई तर्क नहीं दे सकते। आपको किसी के तर्क रुचिकर मालूम पड़ रहे हैं, इसलिए आपने चुन लिया है, तो यह आपकी तर्क के प्रति जो रुचि है, यह भी वैसी ही अंधी है, जैसे सभी रुचियां अंधी होती हैं। एक ही बात स्मरण रखनी जरूरी है कि जहां आपका तालमेल बैठ जाए, जहां आपकी लयबद्धता निर्मित हो जाए, वहीं से आपके लिए महागुरु का द्वार है।
कभी-कभी कोई साधारण व्यक्ति भी आपके लिए गुरु हो सकता है और कोई असाधारण व्यक्ति भी गुरु न हो। यह उसका गुरु होना आप पर बहुत कुछ निर्भर है। आपका हृदय अनुगुंजित हो उठे। आप अनुभव करें कि कोई विराट आपको स्पर्श कर रहा है। आपको प्रतीत हो कि मिल गया वह व्यक्ति, जिसमें से प्रवेश हो सकता है और वह व्यक्ति तो बहुत शीघ्र छूट जाएगा। क्योंकि सभी गुरु फ्रेम की तरह हैं। वह चित्र नहीं है, वह सिर्फ फ्रेम है, वह चौखटा है, जिसमें चित्र मढ़ा गया है। चित्र तो सदा-ही महागुरु का है। शिक्षक तो फ्रेम है। लेकिन हमारी पहली पहचान फ्रेम से ही होती है और जब फ्रेम से हमारा तालमेल बैठ जाता है, तो ही उसमें छिपे हुए चित्र का हमें दर्शन होना शुरू होता है। "शिक्षक अनेक हैं, लेकिन परमगुरु एक ही है--जिसे आलय या विश्वात्मा कहते हैं। उस परम सत्ता में ऐसे ही जी, जैसे उसकी किरण तुझ में जीती है। और प्राणीमात्र में ऐसे जी, जैसे वे परम सत्ता में जीते हैं।

"मार्ग की देहली पर खड़ा होने के पूर्व, अंतिम द्वार को पार करने के पहले तुझे दोनों को एक में निमज्जित करना है और व्यक्ति-सत्ता को परम सत्ता के लिए त्यागना है। और इस तरह दोनों के बीच जो पथ है, जिसे अंतःकरण कहते हैं उसे नष्ट कर डालना है।"
यह सूत्र अत्यंत क्रांतिकारी है।
यह सूत्र कहता हैः "अंतिम द्वार को पार करने क पहल, दोनों को एक में निमज्जित करना है। व्यक्ति-सत्ता को परम सत्ता के लिए त्या
भी कहा है कि अगर तुम पूरी तरह ही मिटने को राजी हो, तो ही धर्म की तरफ कदम उठाना पूरी तरह। हमें लगता है कि शरीर मिट जाएगा, आत्मा तो रहेगी। सब कुछ मिट जाएगा, लेकिन यह मेरा भीतरी सत्व तो रहेगा। लेकिन बुद्ध ने कहा है इसको भी मिटाने की तैयारी हो, तो ही धर्म की तरफ चलना। जिस दिन तुम्हारी तैयारी ऐसी हो कि दीया बुझ जाता है फिर उसकी लौ का कोई पता नहीं चलता--ऐसे ही जब तुम बुझने को राजी हो जाओ, तभी।
जब दीया बुझता है, तो लौ कहां खो जाती है?
विराट में एक हो जाती है। फिर तब उसका कोई होना नहीं है। सबके होने के साथ एक हो जाती है। मिटती भी है और नहीं भी मिटती। मिटती है लौ की तरह, नहीं मिटती प्रकाश की तरह है। जो महापुंज है जगत में, उसके साथ एक हो जाती है। जब बरफ का टुकड़ा पिघलता है, तो मिटता भी है, नहीं भी मिटता। मिटता है व्यक्ति की तरह, बचता है सागर की तरह। हमारे मिटने में ही हमारे होने की संभावना है।
जीसस ने कहा हैः जब तक तुम एक बीज की तरह जमीन में न गिरो और जब तक तुम
एक बीज की तरह जमीन में सड़ो नहीं, गलो नहीं, मिटो नहीं, तब तक तुम्हारा कोई भविष्य नहीं है। गिरो, मिटो, समाप्त हो जाओ। यह थोड़ा उल्टा लगता है कि मिटने में ही हमारा होना है। न हो जाने में ही हमारा परम अस्तित्व प्रगट होगा।
यह सूत्र कहता हैः व्यक्ति-अस्तित्व की तरह, व्यक्ति-सत्ता की तरह मिटो, ताकि परम सत्ता के साथ एक हो जाओ। अपनी क्षुद्रता में मिटो, ताकि विराट में एक हो जाओ।
बड़ा सस्ता सौदा है, लेकिन बड़ा कठिन है। सौदा यह है कि क्षुद्र को छोड़ो
और विराट को पा लो।
लेकिन बड़ा कठिन है, क्योंकि क्षुद्र के साथ हम इतने एक हो गए हैं कि ऐसा लगता है क्षुद्र का मिटना, हमारा ही मिटना हो जाए। और बीज भी जब मिटता होगा, अगर सोच सके तो सोचता
होगा कि नष्ट हुआ, मौत हुई। उसे कैसे पता होगा कि वृक्ष का होगा जन्म, आकाश में उठेगा, फैलेंगी शाखाएं दूर; नाचेगा हवाओं में, वर्षा में, धूप में; आनंदित होगा, खिलेंगे फूल; छिपा है जो भीतर सुगंध का खजाना, वह फैलेगा हवाओं में दूर-दिगंत तक। उसे कुछ भी पता नहीं। और एक बीज मिटेगा, तो करोड़ बीज पैदा होंगे, यह भी उसे पता नहीं। मिटते बीज को इतना ही पता है कि मैं मिट रहा हूं। जो होगा उसका उसे कुछ भी पता नहीं।
इसलिए अगर मिटता बीज भी डरता हो, घबराता हो, प्रार्थना करता हो कि हे प्रभो, मुझे मत मिटा, मुझे बचा, मैं मर तो न जाऊंगा, यह मेरी मृत्यु आती है। अगर गंडे-ताबीज बांधता हो, अपने को बचाने के उपाय करता हो, तो आश्चर्य नहीं है। लेकिन उसे क्या पता कि वह अपनी ही मौत की मांग कर रहा है। क्योंकि उसके बचने में मौत है, उसके मिटने में जीवन।
आदमी भी एक बीज है। और मिटे तो उसके भीतर विराट का जन्म होता है। बचाए रहे अपने को, तो सिकुड़ जाता है, छोटा हो जाता है। और हम बचाने-बचाने में धीरे-धीरे सिकुड़-सिकुड़ कर छोटे होते जाते हैं।
"परम-सत्ता के लिए व्यक्ति की सत्ता को त्यागना है"
लेकिन हम धन छोड़ सकते हैं, घर छोड़ सकते हैं, पत्नी छोड़ सकते हैं, बच्चे छोड़ सकते हैं, यह सब छोड़ने में कुछ बहुत गहरी बात नहीं है। यह सब छोड़ने योग्य भी नहीं है क्योंकि यह आपका था कब, जिसे आप छोड़ दें। पत्नी आपकी है? पचास साल साथ रह कर भी भरोसा आया कि आपकी है? या पति आपका है? धन आपका है?

मकान आपका है? जिसे आप छोड़ते हैं, वह आपका है ही नहीं। बहुत मजेदार है मामला। जो हमारा नहीं है, उसे हम छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं।
आपको जिसे छोड़ना चाहिए, वह आप ही हैं। न पति है, न पत्नी है, न बेटा है;
न मकान है, न धन है, न दौलत। छोड़ने की चीज तो आप हैं। मगर उसे हम बचाते हैं। सच तो यह है कि उसके लिए ही हम पत्नी को भी छोड़ते हैं--मोक्ष मिल सके, आत्मा मिल सके। मैं बचूं और मैं परम आनंद में चला जाऊं, उसके लिए हम घर भी छोड़ते हैं, धन भी छोड़ते हैं के लिए कोई बंधन नहीं रह जता। उस दिन उसके ऊपर कोई बोझ नहीं रह जाता। क्योंकि वह बोझ रखने वाला ही मृदा जैन, तो बहुत संभावना तो यह है कि करते ही उसे वमन हो जाएगा। अगर वमन को भी धीरे-धीरे अयास करके रोक ले, अपने को मजबूत कर ले, अयास करे, साधना करे, और मांसाहार करता ही चला जाए, तो थोड़े दिन कष्ट पाएगा शारीरिक, फिर धीरे-धीरे शारीरिक कष्ट तो विदा हो जाएगा; क्योंकि शरीर नई आदत को ग्रहण कर लेगा, लेकिन मन में ग्लानि बनी रहेगी और भीतर लगेगा मैं कोई अपराध कर रहा हूं--गिल्ट। यह उस अंतःकरण की छाया है, जो समाज ने दिया।
एक मुसलमान है, एक मांसाहारी है, उसे कोई तकलीफ नहीं। वह मांस को ऐसे
ही मजे से खा लेता है, जैसे हम और कोई चीज को खाते हैं, सब्जी को खाते हैं। कठिन नहीं है कि सब्जी के प्रति भी अंतःकरण ऐसा ही पैदा किया जा सकता है कि आप सब्जी भी न खा सकें।
जैसे पश्चिम के जो शाकाहारी हैं, वे अंडे को तो खा लेते हैं; क्योंकि
वे कहते हैं कि अंडा जो है, शाकाहार है। क्योंकि जब तक जीवन पैदा नहीं हुआ, तब तक सब सब्जी है। लेकिन वे दूध नहीं पीते, दही नहीं खाते। क्योंकि वे कहते हैं कि दूध और दही जो है, एनिमल फूड है, मांसाहार है। पश्चिम का शाकाहारी दूध पीना मुश्किल अनुभव करता है। और ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दूध पवित्र है, पवित्रतम भोजन है। और हमारे यहां अगर कोई दूध पर ही रहता है, तो इतने से ही काफी साधु हो जाता है। दूधाहारी है, कुछ और नहीं लेता, सिर्फ दूध लेता है। और पश्चिम के शाकाहारी कहते हैं कि दूध मांसाहार है, क्योंकि दूध रक्त है।
और है भी। दूध रक्त का ही हिस्सा है, इसलिए तो दूध पीने से जल्दी रक्त
बन जाता है। और दूध पूर्ण आहार है; क्योंकि शुद्ध रक्त है, अब और किसी आहार की जरूरत नहीं। इसलिए बच्चा सिर्फ दूध पर बड़ा हो जाता है; और कोई आहार की जरूरत नहीं। मां का सीधा खून उसे मिल जाता है। इस भाषा में सोचें अगर बचपन से, तो दूध पीना मुश्किल है।
मेरे घर एक शाकाहारी बहुत समय पहले आकर ठहरा। तो उसको मैंने सुबह कहा
कि आप चाय लेंगे, काफी लेंगे, दूध लेंगे? तो वह एकदम चौंका। उसने कहा कि आप! और दूध लेते हैं क्या? उसने ऐसे ही पूछा जैसे कोई मुझसे पूछता हो कि आप मांसाहार करते हैं? वह एकदम भयभीत हो गया। अगर बचपन से ख्याल डाला जाए, तो दूध छूना मुश्किल है।
किसी भी चीज के प्रति अंतःकरण पैदा किया जा सकता है। अंतःकरण का मतलब
है कि आपके मन में एक भाव पैदा हो गया। और वह भाव उस समय पैदा होता है, जब आपके पास सोचने वाली बुद्धि नहीं होती। अंतःकरण पैदा करना हो, तो सात साल के पहले ही पैदा किया जा सकता है; फिर बाद में करना मुश्किल है।
इसलिए सारी दुनिया के धर्म बच्चों की कस कर गर्दन पकड़ते हैं। क्योंकि बच्चे अगर सात साल तक छुट्टा छोड़ दिए जाएं, तो फिर दोबारा किसी फोल्ड में, किसी पंथ में उनको सम्मिलित करना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि बाद में अंतःकरण पैदा नहीं किया जा सकता। जैसे शरीर की कुछ चीजें एक उम्र में ही निर्मित होती हैं; उस उम्र तक अगर निर्मित न हों तो फिर बाद में उसका निर्मित होना मुश्किल है। अंतःकरण भी सात साल के पहले ही निर्मित होता है। और जितना जल्दी निर्मित किया जाए, उतना गहरा निर्मित होता है। क्योंकि तब मन के अचेतन आधार रखे जा रहे हैं, नींव रखी जा रही है। फिर बाद में भवन खड़ा होगा, वह उसी नींव पर खड़ा होगा।
फिर यह भी हो सकता है कि कभी बाद में आप अपने धर्म को बदल लें, लेकिन अपने अंतःकरण को आप न बदल पाएंगे। इसलिए आप देखेंगे कि कोई हिंदू ईसाई हो जाता है, वह कितना ही ईसाई हो जाए, ईसाईयत ऊपर रहती है, उसका अंतःकरण हिंदू

का रहता है। और आज नहीं कल, वह क्राइस्ट के साथ वही सलूक करेगा, जो वह राम के साथ करता था। वह बहुत फर्क नहीं कर सकता। उसके भीतर जो अंतःकरण है, वह इतनी अनुकूल हैं, न उसके प्रतिकूल हैं। भीतर जानते हैं, कि एक अभिनय है, उसे पूरा कर देना है, तो आप मुक्त हो ही जाते हैं।
और अंतःकरण तभी विनष्ट होता है, जब समाज का जीवन एक अभिनय हो जाता है। जरूरी नहीं कि आप अपनी बहन से शादी कर लें; क्योंकि अंतःकरण कहता है
कि नहीं करना, बहुत बड़ा पाप है। जरूरी नहीं कि आप शादी करने जाएं, शादी करने से अंतःकरण नहीं टूट जाएगा। जरूरी यह है कि आप जानें कि यह खेल है, समाज की व्यवस्था है, न पाप है न पुण्य। जिस समाज में रहते हैं, उसका नियम है। और उस समाज के साथ शांति से रहना हो, तो उसकी मानकर चलने में सुविधा है। मगर भीतर आपके कोई दंश नहीं है।
और कोई दूसरे समाज में बहन से शादी कर रहा हो, तो आपके मन में जरा
भी भाव नहीं उठे कि यह अपराध है, पाप है। समझ लें, वह उसके समाज का खेल है। उसके समाज के अपने नियम हैं। और जैसे आपके लिए उचित है कि इस खेल को मान कर चलें, सुविधापूर्ण है, वैसे उसके लिए भी उचित है कि वह अपने नियम मानकर चले। और सुविधापूर्ण है।
असुविधा पैदा कर लेने में कोई बड़ी क्रांति नहीं है। और कुछ लोग असुविधा पैदा करने में मजा लेते हैं, वे केवल अहंकारी हैं। खुद को भी असुविधा पैदा करने में मजा लेते हैं। अंतःकरण, एक समाज के भीतर रहनेवाले लोगों का नियम है, जिसके बिना खेलना मुश्किल हो जाएगा। अगर लोग कबड्डी भी खेलते हैं, तो नियम बना लेते हैं।
सब नियम औपचारिक हैं, कोई नियम वास्तविक नहीं है।
कोई कबड्डी का नियम होता है, तो कोई दुनिया के नियम से उसका लेना-देना नहीं है। या आप वॉलीबाल खेलते हैं या क्रिकेट खेलते हैं, तो नियम बना लेते हैं। नियम में कोई अनिवार्यता नहीं। कोई ऐसा नहीं है कि क्रिकेट के यही नियम होंगे, तो ही खेल हो सकता है। दूसरे नियम से भी खेल हो सकता है। तीसरे नियम से भी खेल हो सकता है। एक बात जरूरी है खेल के लिए कि खेलनेवाले सभी एक नियम को मानें। अगर दस खेलने वाले दस नियम मानते हों, तो खेल नहीं हो सकता। मानने में कोई तकलीफ नहीं है। दस खेलनेवाले एक ही नियम को मानें, तो खेल हो सकता है। दसों राजी हो जाएं, तो नियम बदला जा सकता है; और दूसरे नियम से भी खेल इसी तरह हो जाएगा। जिस दिन आपको ऐसा दिखाई पड़ने लगे कि आपका अंतःकरण केवल समाज के खेल की व्यवस्था है, जिस समाज में आप पैदा हुए।
आज सारी दुनिया में अस्तव्यस्त हो गई है स्थिति। इसका कुल कारण इतना
है कि अलग-अलग समाज के लोग एक दूसरे के, पहली दफा परिचय में आए, और मुश्किल हो गई। अब तक आप अपने कुएं में जी रहे थे, तो ऐसा लगता था, अंतःकरण जो है, वह कोई आत्यंतिक नियम है; ऐसा लगता था वह कोई अल्टीमेट अस्तित्व का नियम है। लेकिन जब सारी दुनिया के लोग करीब आए और बीच की दीवारें टूट गईं और कुएं नष्ट हो गए और एक कुएं का पानी दूसरे कुएं में भी प्रवेश करने लगा, तब उनको पहली दफा पता चला कि हमारे जो नियम थे, उनका कोई जागतिक नियमों से कोई संबंध नहीं था। वह हमारा ही बनाया हुआ खेल था। इस अनुभव के कारण सारी दुनिया में अव्यवस्था हो गई। होने वाली थी। क्योंकि हमने नियमों को सिर्फ खेल समझा होता तो न होती। हमने समझा था, यह परम सत्य है और हम जानते हैं कि यह परम सत्य नहीं है। अफ्रीका में एक कबीला है जो अपनी मां से भी शादी कर लेता है। धक्का लगता है सुन कर ही। वह धक्का आपको नहीं लगता है, अंतःकरण को लगता है। उस कबीले के लोगों को अगर कहा जाए कि ऐसे भी लोग हैं, जिनका पिता मर जाए, तो उनकी मां घर में बो राजी हुए, लोगों ने समझा कि वे नास्तिक हैं। दूरबीन से कुछ चीजें दिखाई पड़ती हैं, जो किताबों में नहीं थीं, समाज को जिनका पता नहीं था, उनको नहीं माना जा सकता।
जिस दिन कोई व्यक्ति अंतःकरण से ऊपर उठकर देखता है, तो बहुत सी चीजें दिखाई पड़ती हैं, जो समाज के नियमों में नहीं हैं। नहीं होंगी, क्योंकि समाज का नियम अंधे लोगों का नियम है। समाज का नियम उनका नियम है, जिन्हें अभी कोई आत्मबोध नहीं हुआ।

सच तो यह है कि समाज के नियम बनाने ही इसलिए पड़ते हैं कि लोग इतने अज्ञानी हैं कि बिना नियम के नहीं चल सकते। सिर्फ ज्ञानी बिना नियम के चल सकता है। अज्ञानी कैसे बिना नियम से चलेगा? बिना नियम के चलेगा, तो खुद को भी गड्ढे में डालेगा और दूसरों को भी गड्ढे में गिरा देगा। अज्ञानी के लिए नियम जरूरी है। ज्ञानी के लिए नियम की क्या जरूरत है?
अंधा आदमी लकड़ी लेकर चलता है, टटोलता है। आंख वाला भी लकड़ी लेकर चले,
यह कोई जरूरत नहीं है। आंख वाले को छुट्टी दी जा सकती है कि लकड़ी लेकर मत चल। लेकिन अंधे को छुट्टी नहीं दी जा सकती। उसको तो लकड़ी लेकर चलना ही पड़ेगा। लेकिन किसी अंधे की आंख खुल जाए और फिर भी वह लकड़ी लेकर चले, तो हम कहेंगे कि व्यर्थ का मोह बांधे हुए है। अब तो लकड़ी से बेहतर चीज तेरे पास आ गई। आंख आ गई, अब लकड़ी की कोई जरूरत नहीं।
जिस दिन आत्मा की झलक मिलनी शुरू होती है, उस दिन अंतःकरण की कोई भी जरूरत नहीं। उसकी जरूरत ही इसलिए थी कि जो हम नहीं कर सकते थे स्व-बोध से, वह समाज हमसे करवाता था जबरदस्ती। अब हम स्व-बोध से ही करेंगे।
इसलिए हमने संन्यासी को नियमों के बाहर रखा। कोई संन्यास लेते ही नियमों से बाहर हो जाता है, ऐसा नहीं है। यह परम कल्पना है। हमने संन्यासी को नियम के बाहर रखा, हम उस पर कोई नियम नहीं लगाते। नहीं लगाते इसलिए कि हम मानते हैं कि उसे परम नियम का पता चल गया है। अब हमारे नियमों की क्या जरूरत। अब वह परमात्मा के नियम को जानता है, तो समाज के नियमों की उसको कोई जरूरत नहीं।
और संन्यासी हमारे समाज के नियमों को तोड़ता भी नहीं। जैसे कि किसी की आंख खुल जाए, वह लकड़ी लेकर न चले, लेकिन अगर अंधों की लकड़ी छीने तो जरा ज्यादती कर रहा है। वह दूसरों के हाथ की लकड़ी छीनने लगे, तो जरा ज्यादती कर रहा है। लकड़ी छूट जाएगी आंखों के मिलते ही, लेकिन लकड़ी लकड़ी है, और केवल एक बीच की व्यवस्था है--इसकी प्रतीति हमारे भीतर बनी रहनी चाहिए।
"धर्म के नियम तो कठोर हैं। उस कठोर नियम को तुझे उत्तर देना होगा, जो तुझसे पहले कदम पर ही पूछेगा। ओ उच्चाशी, क्या तूने सभी नियमों का पालन किया है?"
धर्म के नियमों का, नीति के नियमों का नहीं।
"क्या तूने अपने हृदय और मन को समस्त मनुष्य के महान हृदय और मन के साथ लयबद्ध किया है?"
ये धर्म के नियम हैंः "क्या तूने अपने हृदय और मन को समस्त मनुष्य के महान हृदय और मन के साथ लयबद्ध किया है?"
"जैसे पवित्र नदी के गर्जन में प्रकृति की सभी ध्वनियां प्रतिध्वनित होती हैं, वैसे ही उस स्रोतापन्न के हृदय को अंधे हैं। हमें दूसरों का सुख दिखाई पड़ता है और अपना दुख! यह हमारा तर्क है।
एक महल में आप किसी को देखते हैं, लगता है कितना सुखी होगा। उसका सुख दिखाई पड़ता है। एक सुंदर स्त्री के साथ किसी पुरुष को देखते हैं, सोचते हैं कितना सुखी होगा। उसका सुख आपको दिखाई पड़ता है। सुंदर स्त्री जो दुख देती है, उसका उसको ही पता है। महल के जो दुख हैं, वह महल में रहने वाले को पता हैं। क्योंकि महल के रहने वाले से पूछें, वह कभी नहीं कहता कि मैं सुखी हूं। वह अपने दुख की कथा कहता है। सुंदर स्त्री के पति से पूछें, वह अपने दुख की कथा कहता है।
आपको दूसरों के सुख दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि आपको दूसरों का बाहय आवरण दिखाई पड़ता है। उनके चेहरे दिखाई पड़ते हैं; वस्त्र दिखाई पड़ते हैं। दूसरों का हृदय तो आपको दिखाई नहीं पड़ता। अगर दूसरे का हृदय आपको दिखाई पड़े, तो उसके दुख दिखाई पड़ेंगे। और जब तक दूसरे के सुख दिखाई पड़ते हैं, तब तक आपको अपने दुख दिखाई पड़ते हैं। और जिस दिन आपको दूसरों के दुख दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं, उसी दिन से आपको अपने सुख दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। दृष्टि पूरी की पूरी बदल जाती है।
और जिस दिन कोई विराट के दुख में एक हो जाता है, उस दिन भूल ही जाता है अपने दुखों को। ये इतने क्षुद्र हो जाते हैं, उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता। यह बात ही सोचने जैसी नहीं रह जाती कि मेरा भी कोई दुख है। इस दुख के

सागर में मेरा भी क्या दुख है? वह विराट दुख आपके दुख को क्षुद्र कर जाता है; जैसे किसी ने आपके दुख की लकीर के सामने एक महा लकीर खींच दी।
सुना है मैंने, एक यहूदी फकीर हुआ बालसेन। हसीद था, एक विद्रोही फकीर था। एक दिन सुबह-सुबह गांव का एक आदमी उसके पास आया। उसने बालसेन को कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मैं बहुत दीन, दरिद्र, गरीब हूं। एक ही छोटा सा कमरा है मेरे पास; पत्नी है, पिता है, मां है, सात मेरे बच्चे हैं। हम सब उस छोटे से ही कमरे में रहते हैं। नरक हो गया है बिल्कुल, पीड़ा का कोई अंत नहीं है। आत्महत्या की सोचता हूं। कोई उपाय बताएं।
बालसेन ने कहाः कि बस इतने ही हैं तेरे घर में लोग? तेरे पास बकरी नहीं है? उसने कहा, मेरे पास दो बकरियां हैं। बालसेन ने कहा, उनको भी तू कमरे के भीतर ले ले। उसने कहा, बाबा, दिमाग आपका खराब हुआ है? मैं पूछने आया था कि कैसे इस छोटे कमरे को बड़ा करूं, तुम उसे भी छोटा करवा दे रहे हो! दो बकरियों को और भीतर ले लूं! सात बच्चे हैं, पत्नी है, मां-बाप हैं, छोटा सा कमरा है, मैं हूं--इंच भर बैठने तक की जगह नहीं। फकीर ने कहा, मेरी मान।
बालसेन बड़ा आदमी था। यह गरीब आदमी उसकी आज्ञा टाल भी न सका। इसने दोनों बकरियां अपने घर के भीतर ले लीं। उस दिन से तो घर महा नरक हो गया। सात दिन बाद पहुंचा कि छुटकारा दिलवाओ। वह बकरियां बाहर करवा दो। बालसेन ने कहा, और क्या है तेरे पास? उसने कहा चार मुर्गियां और भी हैं। बालसेन ने कहा, "उन्हें भी तू भीतर ले ले।" उसने कहा कि क्या मेरी जान ही लेने को उतारू हो? मर जाएंगे सब, हत्या तुम्हारे सिर लगेगी। बालसेन ने कहा, उसकी तू फिकर न कर, मुर्गियों को भीतर ले ले। सात दिन बाद आना।
सात दिन बाद वह आदमी आया। आधा रह गया था; न सो सकता था, न खा पी सकता था। उसने कहा कि सुना था कि नरक होता है, तुमने दिखा दिया, इतनी ही कृपा करो-- कुछ उपाय दो। उसने कहाः तो फिर ऐसा होना है। अन्यथा वे मार्ग से हट जाएंगे।"
और परमात्मा का तो हमें ठीक-ठीक पता नहीं चलता, कहां है; उसका कोई स्पर्श नहीं होता। है यहीं, पास ही, लेकिन छूने की कला हमें नहीं आती। इसलिए अगर कोई साधक, कोई शिष्य, किसी व्यक्ति में झलक भी पाता हो उसकी; किन्हीं आंखों में थोड़ी सी खबर आती हो उसकी, किसी के उठने-बैठने में, किसी की वाणी में, किसी के मौन में, थोड़ा सा इशारा भी मिलता हो--आहट उसके पैरों की थोड़ी सी, ध्वनि भी आती हो।
जैसे रात कोई अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करता हो, तो सूखे पत्ते भी खड़बड़ा जाते हैं, तो वह चौंककर खड़ा हो जाता है--शायद प्रेमी आ गया। हवा वृक्षों को पार करती है, सरसराहट हो जाती है, तो उसे अपने प्रेमी के आने की आहट का ख्याल आ जाता है, वह चौंककर खड़ा हो जाता है। द्वार पर हवा का झोंका दस्तक दे जाता है, तो उसे प्रेमी के हाथ की दस्तक सुनाई पड़ जाती है।
जो प्रभु की खोज में है, उसे पहले आहट खोजनी पड़ेगी। और जब किसी में आहट सुनाई पड़ जाए, तो जानना कि तुम्हारा गुरु तुम्हें मिल गया। वह गुरु तुम्हारे लिए परमात्मा की आहट है। इसलिए हमने गुरु को परमात्मा कहा है। और कबीर ने तो पूछा गुरु से कि दोनों जब सामने खड़े हो गए--
"गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूं पांव?" और जब दोनों खड़े हो गए, तो कबीर ने पूछा कि मैं किसके पैर पहले छुऊं और कबीर ने गुरु के ही पैर छुए और कहा कि "बलिहारी गुरु आपकी जो गोविंद दियो बताय।" गुरु ने तो फौरन इशारा किया कि पांव छू परमात्मा के। पूछा कबीर नेः किसके छुऊं पांव? तो गुरु ने कहाः छू पांव परमात्मा के। लेकिन कबीर ने पांव गुरु के छुए, और कहा कि "बलिहारी गुरु आपकी जो गोविंद दियो बताय।" तो पहले तो तुम्हारे ही छुऊं, क्योंकि तुम ही बता रहे हो कि गोविंद के छू। नंबर दो पर रख दिया गोविंद को। गुरु को नंबर एक पर रखा!
जहां आहट मिल जाए प्रभु की, उस व्यक्ति के साथ फिर अपनी श्वासों का तालमेल बिठाना। और गुरु बैठ गया है तालमेल में, उसने परमात्मा के हाथों में अपनी वीणा को छोड़ा है। और उसके तार परमात्मा के हाथों में सध गए हैं। अभी परमात्मा के हाथ और आपकी वीणा में शायद संबंध न हो पाए; तो अभी गुरु के हाथों में और आपकी वीणा में संबंध हो जाने देना। इस भांति परोक्ष

रूप से गुरु के माध्यम से आप परमात्मा के हाथ के नीचे आ गए। गुरु परमात्मा के साथ सध गया है, आप गुरु के साथ सधने लगे, आपका परमात्मा के साथ सधना शुरू हो गया।
जिस दिन आप पूरी तरह सध जाएंगे, अचानक आप पाएंगे, गुरु बीच से हट गया।
जो गुरु बीच में रह जाए, वह गुरु ही नहीं है। इसलिए गुरु ने हाथ का इशारा किया कि तू परमात्मा
के पैर छू ले; अब मेरा कोई सवाल न रहा। मैं तभी तक था, जब तक कि तू सीधा नहीं देख सकता था। अब तुझे दोनों दिखाई पड़ने लगे। अब तक तुझे मैं ही दिखाई पड़ता था। परमात्मा सदा मेरे पास ही खड़ा था, वह मेरी वीणा को बजा ही रहा था और मेरी वीणा से तू जो सुन रहा था, वह उसके ही हाथों की खबर थी। अब तुझे दोनों दिखाई पड़े--गुरु-गोविंद दोनों खड़े--अब मेरी कोई जरूरत नहीं; अब तू पैर उनके ही छू ले, अब तू सीधा उनसे जुड़ जा। यह गहन अनुग्रह की बात है कि कबीर ने कहा, कि मैं तुम्हारे चरण छू लूं। यह आखिरी मौका है। फिर शायद उसके बाद गुरु दिखाई भी नहीं पड़ेगा। फिर गुरु तिरोहित हो जाएगा।
जीसस ने दीक्षा ली थी जिस संत से--"जान दि बैपटिस्ट" से। जिस दिन जान
ने जीसस को दीक्षा दी, उस दिन के बाद फिर जान दिखाई नहीं पड़ा। बहुत लोगों ने तलाश की कि कहां गया जान? बहुत लोगों ने खोजा, लेकिन कोई पता ही नहीं चला। वह फिर दिखाई ही नहीं पड़ा। तब उसके पुराने शिष्यों ने कहा कि वह निरंतर कहता था कि मैं एक आदमी के लिए रुका हूं--जो मैं जानता हूं, जो सुर बजाना मैं जानता हूं--जिस दिन वह आदमी आ जाएगा, जो ठीक वैसा ही सुर बजा सकता है, उस दिन मैं हट जाऊंगा, मैं थक गया हूं। तो जीसस जिस दिन आ गए, उस दिन जान तिरोहित हो गया।
गुरु हट जाएगा, जैसे ही महागुरु के दर्शन हो गए। ऐसा ही वे करते हैं।
और जो ऐसा नहीं कर पाएगा तालबद्ध अपने को गुरु के साथ, या प्रभु के साथ, वह टूट जाता है, अलग फेंक दिया जाता है।
"ऐसा ही वे करते हैं, जो छाया के बंधु हैं"
जो आत्मा के नहीं, छाया के, झूठ के, असत्य के साथी हैं, वे अपनी आत्मा
के हंता, अपनी आत्महत्या करनेवाले हैं। अपने को मिटा रहे हैं, नष्ट कर रहे हैं। "और दाददुगपा जाति के नाम से पुकारे जाते हैं।"
यह तिब्बत की एक जाति है, जो छाया-व्यक्तित्व को विकसित करने की बड़ी कुशलता पैदा करती है। और उस छाया-व्यक्तित्व के आधार पर जीती है, और उस छाया के कारण ही लोगों को सताती है और परेशान भी करती है। क्योंकि उस छाया- व्यक्तित्व का भी अपना विज्ञान है, जिसको हम ब्लैक मैजिक कहते हैं, जिसको हम काला जादू कहते हैं। उस छाया-व्यक्तित्व का अपना विज्ञान है। और उस छाया-व्यक्तित्व की कलाएं अगर कोई सीख ले, तो वे कलाएं उतनी ही खतरनाक हो सकती हैं, जितना कि अणु बम का अनुभव और ज्ञान हो सकता है। अणु-बम गिरा कर हम किसी व्यक्ति के शरीर को मिटा सकते हैं। और अगर काली छाया का हमें ज्ञान हो जाए, और उसके पूरे नियम हमें पता चल जाएं, तो भी हम लोगों को बहुत सता सकते हैं, बहुत परेशान कर सकते हैं।
तो यह दाद-दुगपा तिब्बत में एक जाति है, जिसने पूरा का पूरा काम, सैकड़ों वर्षों में, मनुष्य की छाया को पकड़ने और छाया से काम लेने का किया है। उसका अपना विज्ञान है। भूत-प्रेत का सारा उपद्रव उसी विज्ञान का हिस्सा है। और आपको सताया जा सकता है। क्योंकि आपके मन के भी सूत्र हैं। और आपकी जो काली छाया है, उसको पकड़ा जा सकता है।
आपने सुना होगा, लेकिन कभी भरोसा नहीं किया होगा, कि अगर आपकी काली छाया की कुछ जानकारी हो, तो आपकी हत्या तक की जा सकती है, बिना आपको छुए। क्योंकि उस काली छाया के माध्यम से आप तक कोई भी खबर पहुंचाई जा सकती है; आपसे कुछ भी करवाया जा सकता है; नष्ट किया जा सकता है आपको।
मगर ऐसे जगत में प्रवेश करने वाले लोग, इस काली छाया के जगत में प्रवेश करने वाले लोग, दूर होते चले जाते हैं प्रभु के संगीत से। वह उन उखड़े हुए तारों की भांति हो जाते हैं, जिन्हें गायक ने वीणा से अलग कर दिया। जन्मों-जन्मों तक यह उपद्रव उनका चल सकता है। और बड़ा कठिन है कि

गायक फिर से उन्हें वीणा में लगा ले। उसकी तैयारी उन्हें करनी पड़ेगी। उन्हें सब भांति अपने को शुद्ध करना
पड़ेगा। अपनी काली छाया की सारी व्यवस्था छोड़ देनी पड़ेगी। और जब तक वे रेचन से न गुजर जाएं, और अपने सारे रोगों से मुक्त न हो जाएं, तब सम्यक जीवन तक वे पुनः स्वीकृत न होंगे कि वीणा में जोड़ लिए जाएं।
"प्रकाश के प्रत्याशी, क्या तूने अपनी सत्ता को मनुष्यता की महान पीड़ा के साथ एक कर लिया है?"
"क्या ऐसा तूने किया है? तब तू प्रवेश कर सकता है। तो भी अच्छा है कि शोक के दुर्गम मार्ग पर पांव रखने के पहले तू उसके ऊंच-नीच को, उसकी कठिनाइयों को समझ ले।"
यह बड़ी गहरी चेतावनी है। हम आनंद की तलाश में हैं, हम महा आनंद चाहते हैं। लेकिन महा आनंद के पहले हमें महा शोक के साथ एक हो जाना पड़ेगा। क्योंकि जगत में कोई पहाड़ के शिखर नहीं हो सकते, जब तक उनके पास गहरी खाइयां न हों। छोटा-मोटा सुख, तो छोटा-मोटा दुख का गड्ढा होता है। महा आनंद हो, तो फिर महा दुख की खाई भी उसके पास होती है।
ऐसा मत सोचना कि बुद्ध सिर्फ महा आनंद के शिखर पर हैं। वे हैं, लेकिन
उस महा आनंद के चारों तरफ और महा पीड़ा की खाइयां भी हैं। निश्चित ही वह अपनी नहीं हैं, उनकी। इसलिए वह शिखर बन सके। लेकिन वह पूरी मनुष्यता की पीड़ाओं को छू दिए। मनुष्यता की ही क्यों, पूरे जीवनमात्र की पीड़ाओं को छू दिए।
और अगर महावीर पांव फूंक-फूंक कर रखने लगते हैं चीटियों से, आप यह मत सोचना की यह कोई केलकुलेटेड है, कि यह कोई गणित है, कि चींटी नहीं मरेगी, तो मैं स्वर्ग और मोक्ष चला जाऊंगा।
उनके पीछे चलने वाले ऐसे ही गणित से चलते हैं! लेकिन वह गणकों की जाति गणित से ही चल सकती है--हिसाब रखती है, कि कितनी चींटी बचाईं! कितना पानी छान कर पिया! उसमें हिसाब है--इसका बदला मागेंगे वे! तो खड़े हो जाएंगे परमात्मा के सामने कि देखो, इतनी-इतनी हिंसा मैंने नहीं की है, उसका क्या प्रतिफल है?
नहीं, महावीर प्रतिफल के लिए ऐसा नहीं कर रहे हैं। वह जो महाजीवन से एकात्म हो गया है, उसमें सभी की पीड़ा भी उनकी अपनी हो गई है। अब यह चींटी का सवाल नहीं, जो उनके पैर के नीचे दब जाएगी, यह दूसरे महावीर का सवाल है, जो इस महावीर के पैर के नीचे दब जाएगा।
महा आनंद के पास महापीड़ा की भी खाइयां हैं। लेकिन ये अपनी नहीं हैं। यही फर्क है क्षुद्र आदमी का कि सुख भी अपना है, दुख भी अपना। महा व्यक्तित्व का दुख भी अपना नहीं है और सुख भी अपना नहीं है। ये महा खाइयां भी औरों की हैं, और ये शिखर भी अब सिर्फ औरों के भविष्य की संभावनाएं हैं। अब बुद्ध को न सुख है, और न दुख है। इसलिए बुद्ध ने नहीं कहा कि निर्वाण में आनंद होगा। बुद्ध ने कहा, निर्वाण में होगी परमशांति। न होगा सुख, न होगा दुख।
सब औरों का रह जाएगा, स्वयं का कुछ भी न होगा। और जब स्वयं का कुछ भी नहीं होता, तो स्वयं भी नहीं बचता है। तब सर्व ही बच रहता है।

समाधि के सप्त द्वार
पांचवां प्रवचन

प्रवेश द्वार

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 11 फरवरी

दान, प्रेम और करुणा की कुंजी पाकर तू दान के द्वार पर सुरक्षित खड़ा होगा। यही मार्ग का प्रवेश द्वार है।
ओ प्रसन्न तीर्थयात्री, देख जो द्वार तुझे दीख रहा है, वह ऊंचा और बड़ा
है और प्रवेश के लिए आसान मालूम पड़ता है। और उससे होकर जो पथ जाता है, वह सीधा और चिकना तथा हरा-भरा है। अंधेरे वन की गहराइयों में यह प्रकाशित वन-पथ की तरह है--एक स्थान जो अमिताभ के स्वर्ग से प्रतिबिंबित होता है, वह चमकीले पंख वाले पक्षी, आशा के बुलबुल हरे लता-कुंजों में बैठकर निर्भय यात्रियों के लिए सफलता का गीत गाते हैं। वे बोधिसत्व के पांच सदगुणों को गाते हैं। जो बोधिशक्ति के पांच स्रोत हैं, और वे ज्ञान के सात चरणों को गाते हैं।
बढ़ा चल, क्योंकि तू कुंजी लाया है, तू सुरक्षित है।
और जो दूसरा द्वार है, उसका पथ भी हरीतिमा से भरा है, लेकिन वह चढ़ाई वाला है और ऊपर की ओर जाता है। हां, उसके चट्टानी मस्तक को तो देख। उसके खुरदरे और पथरीले शिखरों पर भूरे-भूरे धुंध छाए होंगे, और उसके आगे सब अंधकार भरा होगा। जैसे-जैसे वह बढ़ता है, तीर्थयात्री के हृदय में आशा का गीत मंद से मंद पड़ जाता है। अब उसके ऊपर संदेह का बोझ है और उसके चरण अस्थिर होते जाते हैं।
ओ साधक, इससे सावधान रहो। उस भय से सावधान, जो तेरी आत्मा की चांदनी और बहुत दूर में फैले तेरे महान गंतव्य के बीच आधी रात के चमगीदड़ के काले व स्वरहीन पंखों की तरह फैला है।

प्रकाश से मंडित पर्वत-शिखर बहुत निकट मालूम पड़ते हैं, पर उसके लिए
जो यात्रा पर नहीं है; जो यात्रा पर चलता है, उसे पता चलता है, कि शिखर इतने निकट मालूम पड़ते थे, वे इतने निकट नहीं, बहुत दूर हैं। और जो यात्रा पर चलता है, उसे यह भी पता चलता है कि मार्ग आसान नहीं है। और जैसे-जैसे शिखर करीब आता जाएगा, वैसे-वैसे मार्ग कठिन होता जाएगा। मंजिल के अंतिम क्षण अति कठिनाई के हैं। और एक-एक पैर उठाना बोझिल हो जाता है। जितने हम दूर हैं मंजिल से, उतना आसान मालूम पड़ता है। इसके बहुत कारण हैं।
एक तो, शिखर दिखाई पड़ता है, मार्ग दिखाई नहीं पड़ता। शिखर आकर्षित करता है, साध्य, गंतव्य पुकारता है; लेकिन बीच के ऊबड़-खाबड़ रास्तों का, शिखर को देख कर, कोई अंदाज नहीं लगता। उस आकर्षण में खिंचा हुआ व्यक्ति शिखर तक भी पहुंच जाता है; लेकिन जैसे-जैसे चलता है, वैसे-वैसे कठिनाई मालूम पड़ती है। स्वभावतः जो चलेंगे, उन्हें ही कठिनाई भी मालूम पड़ेगी। जो बैठे रहेंगे, उनको कोई भी कठिनाई नहीं है। लेकिन जो बैठे रहेंगे, वे कुछ उपलब्ध भी न कर सकेंगे। और जो बैठे रहेंगे, सिवाय खोने के उनके जीवन में और कोई घटना न घटेगी। निश्चित ही जो बैठे रहते हैं, उनसे भूल भी नहीं होती; वे कभी मार्ग से भी नहीं भटकते। क्योंकि जो मार्ग पर ही नहीं चला, वह मार्ग से भटकेगा कैसे? जो चलते हैं, उनसे भूलें भी होती हैं और उनका मार्ग से भटकना भी संभव हो जाता है।
और जितना शिखर पास होता है, उतनी ही खाइयां चारों ओर से घेर लेती हैं। भटकन शिखर के करीब होने पर और बढ़ जाती है। समतल रास्ते पर कोई भटक भी जाए, तो क्या हर्ज होगा? लेकिन पहाड़ों की ऊंचाइयों पर जब कोई भटक जाता है, तो जीवन खतरे में होता है; वहां एक-एक कदम मौत हो सकती है।
इन सारी बातों को ध्यान में रख कर इस सूत्र की शुरुआत है। यह रास्ते
की कठिनाइयां और भी हैं। एक तो, अकेले की ही यह यात्रा है, जहां कोई संगी- साथी नहीं होता। अपने ही साहस, अपने ही बल, अपनी ही श्रद्धा का सहारा होता

है। फिर इस रास्ते पर बने-बनाए पथ भी नहीं हैं। चलने से ही रास्ता बनता है।
चलने के पहले कोई रास्ता तय नहीं है, जिस पर आप चले जाएं।
अध्यात्म की यात्रा आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की भांति है। पक्षियों के पैरों के कोई चिन्ह नहीं बनते कि पीछे आनेवाले पक्षी उन पैरों के चिन्हों को पकड़ कर यात्रा कर लें। पक्षी उड़ते हैं आकाश में, लेकिन पीछे का पथ भी उनके उड़ने के साथ ही खो जाता है। अध्यात्म जमीन पर चलने वाली यात्रा नहीं है। निश्चित ही जितने ऊपर हम जाते हैं, उतनी ही यात्रा आकाशीय हो जाती है। जमीन पर तो चरण-चिह्न बन जाते हैं, मिट्टी उन चरण-चिह्नों को सम्हाल लेती है और हम उनका अनुसरण कर सकते हैं। जो पहले गए हैं, उनकी लकीर पर जाने का उपाय है जमीन की यात्रा में। आकाश की यात्रा में उनके मार्ग पर चलने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि मार्ग छूट नहीं जाता, कोई चरण-चिह्न नहीं होते।
और आकाश से भी ज्यादा शून्य है अध्यात्म। वहां तो कोई चिन्ह नहीं छूटता। वहां रास्ते के किनारे लगे हुए मील के पत्थर भी नहीं हैं, जो खबरे दें। वहां तो चलना और रास्ते का निर्माण होना एक ही साथ होता है। वहां तो जितना हम चलते हैं, उतना रास्ता बन जाता है। और इसलिए कठिनाई बहुत बढ़ जाती है।
न कोई नक्शा होता है हाथ में--क्योंकि विराट का क्या नक्शा हो सकेगा? क्षुद्र के नक्शे हो सकते हैं; विराट का कोई नक्शा भी नहीं है, जिसको लेकर हम जाएं और नक्शे से तालमेल बिठाते रहें कि रास्ता ठीक है या नहीं। नक्शे से रहित यात्रा है। कोई गंतव्य को बतानेवाली, दिशाओं की सूचना देने वाली व्यवस्था भी नहीं है। कोई यंत्र नहीं है, जिससे पता चले कि हम पूरब चल रहे हैं, कि दक्षिण, कि पश्चिम, कि उत्तर। क्यों? क्योंकि अध्यात्म ग्यारहवीं दिशा है। दस दिशाओं के नापने के उपाय हैं। आठ दिशाओं का हमें पता है, एक नीचे जाने वाली, एक ऊपर जाने वाली; दो दिशाएं और हम जोड़ लें, तो दस दिशाएं हो जाती हैं।
अध्यात्म ग्यारहवीं दिशा है--न तो पूरब जाती है, न पश्चिम, न दक्षिण, न उत्तर, न इनकी बीच की दिशाओं में, न ऊपर और न नीचे। अध्यात्म जाता है भीतर। भूगोल में भीतर की कोई दिशा नहीं है। यह जो भीतर की दिशा है, इसको बतानेवाला कोई यंत्र नहीं है। और इस भीतर की दिशा में सिर्फ शून्य ही है। वहां फिर न पूरब है, न उत्तर है, न दक्षिण; न ऊपर है, न नीचे।
तो कुछ पता नहीं चलता। कोई दिशा-सूचक यंत्र नहीं कि हम कहां जा रहे हैं? और जहां हम जा रहे हैं, एक-एक इंच जहां हम श्रम से सरक रहे हैं--इतना श्रम, और इतना साहस और शक्ति लगा रहे हैं, वह कहां है? किस दिशा में है? और हमारे पैर ठीक पड़ रहे हैं या गलत पड़ रहे हैं? ये सारी जटिलताएं हैं। और इन जटिलताओं को ध्यान में रखकर इस सूत्र को हम समझने की कोशिश करें।
"दान, प्रेम और करुणा की कुंजी पाकर तू दान के द्वार पर सुरक्षित खड़ा होगा। यही मार्ग का प्रवेश-द्वार है।"
दान पहली कुंजी है। और पहली कुंजी अध्यात्म के खोजने की दृष्टि से सबसे सरल है और सांसारिक लोगों की दृष्टि से बहुत कठिन है। क्योंकि कठिनाई और सरलता तो दुनिया की बात है। संसार का सारा नियम दान के विपरीत है। संसार की सारी व्यवस्था छीनने-झपटने की है, दान की नहीं है। दान असांसारिक बात है। देना संसार का हिस्सा नहीं है। इसलिए दान को द्वार कहा है, मार्ग का प्रवेश-द्वार। क्योंकि दान के साथ ही आपमें, वह संसार नहीं है, उसका प्रवेश हो जाता है। दान के साथ ही आप कुछ कर रहे हैं, जो संसार का हिस्सा नहीं है। आप संसार के बाहर हो रहे हैं। इसलिए दान को द्वार कहा है। तो दान की बात को ठीक से समझ लें, तो बहुत सी बातें साफ हो जाएं। संसार में हम रहते हैं लेने को। देना संसार की भाषा नहीं। देते हैं हम वह भी लेने को। लय वह कभी नहीं होता। कभी साध्य की तरह हम उसका प्रवेश द्वार उपयोग नहीं करते, साधन की तरह। अगर हम किसी को प्रेम भी देते हैं, तो प्रेम पाने को। अगर किसी से हम मैत्री भी बनाते हैं, मैत्री देते हैं, तो वह भी मैत्री पाने को। वह जो पाना है, वह पहले होता है हमारे मन में, देना उसके पीछे चलता है।

और हम देने में भी हिसाब रखते हैं--चाहे चेतन, चाहे अचेतन; जानकर या अनजाने कि जितना हम दें, उससे ज्यादा हमें मिल जाए; नहीं तो सौदा घाटे
का हो जाता है। तो जितना हम देते हैं, उससे ज्यादा दिखाते हैं। और जितना हम लेते हैं, सदा उससे कम दिखाते हैं। दुकानदार की भाषा यही होगी।
सुना है मैंने कि एक यहूदी फकीर एक अजनबी नगर में एक यहूदी दुकानदार
के पास गया। और यहूदी इसलिए कि यहूदी से अच्छा दुकानदार दूसरा नहीं होता। इधर हिंदुस्तान में जैन होते हैं, वे यहूदी के अनुकूल हैं। फकीर ने यहूदी की दुकान देखकर बड़ी प्रशंसा जाहिर की, कि चलो, अपने धर्म का, अपनी जाति का, अपने देश का आदमी मिल गया, यह लूटेगा नहीं। पर उस फकीर को पता नहीं कि लोग अपना भी इसलिए बनाते हैं, ताकि आसानी से लूट सकें। अपना बनाने में और फायदा भी क्या है? दुकानदार ने देख कर कहा कि अहोभाग्य, मेरे ही देश, मेरी ही जाति, मेरे ही धर्म के हो; क्या लेने का इरादा है?
कोई चीज फकीर ने खरीदनी चाही, तो यहूदी दुकानदार ने कहा, जब अपने ही हो, तो सौ रुपये की चीज है, सौ रुपये तुमसे न लेंगे, नब्बे ही लेंगे; फिर तुम फकीर भी हो, नब्बे न लेंगे, अस्सी ही दे दें। उस फकीर ने कहा, अगर तुम यहूदी न होते, तो इस चीज के पचास रुपये मैं देता; तुम यहूदी हो, पचास मैं न दूंगा, चालीस ही दूंगा; और इतने प्रेमपूर्ण हो मेरे प्रति, चालीस भी मैं देने वाला नहीं हूं; मैं तीस ही दूंगा; मोल-भाव मैं नहीं करता।
यह हम सब की भाषा है। जाने अनजाने हम एक दूसरे से लेने, झपटने-छीनने की कोशिश में लगे हैं। और हम उसी को होशियार कहते हैं, जो ज्यादा झपट ले, ज्यादा छीन ले; उसे हम नासमझ कहते हैं, जो इस में गंवा बैठे।
यह सारा संसार छीन-झपट है। यहां हर आदमी का हाथ दूसरे आदमी के खीसे में है। जो बहुत कुशल है, वह अदृश्य हाथों से खींचकर चीजें निकालते हैं, जो अकुशल हैं, नासमझ हैं, वे सीधे हाथ डाल कर फंस जाते हैं। पर दृष्टि खींचने पर है। शोषण संसार का ढंग है।
दान से क्या संबंध है संसार का?
इसलिए महावीर ने, बुद्ध ने, वेदों ने, उपनिषदों ने, दान की इतनी महिमा गाई है। उस दान की महिमा का अर्थ समझ लेना। उसका अर्थ यह है कि दान इस संसार की व्यवस्था के विपरीत है। दान को महाधर्म कहा, उसका कारण इतना है कि देने का भाव ही बड़ी असंभव बात है। मगर हम वेदों से ज्यादा कुशल हैं। और कृष्ण, बुद्ध को भी हम धोखा दे जाते हैं। हमने दान को भी तरकीब बना ली--कुछ और पाने की! हमने कहा कि ठीक है, लेकिन दान किसलिए, दान क्यों? दान इसलिए कि स्वर्ग में हमें प्रतिफल मिले। दान इसलिए कि पुण्य हमारा अर्जित हो, और इस शरीर के छूटने के बाद हम परमात्मा के सामने खड़े होकर कह सकें कि मैंने इतना दिया है, उसका प्रत्युत्तर चाहिए। दान को भी हमने संसार की भाषा का हिस्सा बना लिया! तब हम दान भी करते हैं, वह भी दान नहीं है।
दान का अर्थ है, जहां लेना लय न हो, जहां देना ही लय हो; जहां पाने की कोई आशा न हो, अपेक्षा न हो; तो दस गुनी हमेशा होती है। जितना आपके पास होता है, उससे दस गुना आपकी वासना हो जाती है। फिर उतना भी मिल जाए, तो फिर दस गुना आपकी वासना हो जाती है। लेकिन हमेशा आप, जो आपके पास है, उससे दस गुने को मांगते हैं। और जो आप मांगते हैं, उसके मुकाबले आप दस गुना कम, गरीब, दुखी, पीड़ित; हमेशा गरीब, हमेशा दीन बने रहते हैं।
बड़े से बड़े सम्राट भी दीन-हीन बने रहते हैं। उनके पास धन ज्यादा है, एक भिखारी के पास धन कम है, लेकिन अनुपात, दोनों की मांग का करीब-करीब बराबर है। और अनुपात से दुख होता है, पीड़ा होती है।
मांग-मांग कर जिंदगी गुजार कर भी मिलता क्या है? चूस कर, इकट्ठा करके मिलता क्या है? दीनता मिटती नहीं, तो कुछ नहीं मिला।
देने से दीनता मिटती है, मांगने से दीनता बढ़ती है।
और कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि हमने ऐसे लोग भी देखे हैं, महावीर जैसा नग्न आदमी भी देखा, जिसके पास कुछ भी न रहा, सब दान कर दिया, सब दान कर दिया, आखिरी वस्त्र बचा था, वह भी दान कर दिया। लेकिन महावीर जैसा सम्राट खोजना मुश्किल है। दीनता जरा भी नहीं है। देनेवाले को दीनता कभी पकड़ती ही नहीं।
देनेवाला नग्न फकीर भी हो जाए, तो भी मालिक ही होता है।

जो जानते हैं, वे कहते हैं, जब तक आप देने में समर्थ नहीं हैं; जिस चीज
को आप देने में समर्थ नहीं हैं, उसके आप मालिक नहीं हैं। यह बड़ी उल्टी बात है। अगर मैं कोई चीज दे सकता हूं, तो ही उसका मालिक हूं। और अगर नहीं दे सकता हूं, देने में झिझकता हूं, तो मैं उसका गुलाम हूं। और कोई वह जो मुझसे छीन ले, तो मैं परेशान हो जाऊंगा। तो साफ है कि मेरी गुलामी थी।
जिस दिन हम कोई चीज दे सकते हैं, उसी दिन मालिक होते हैं।
पाने से कोई मालिक नहीं होता, देने से मालिक होता है।
अगर आप प्रेम दे सकते हैं, तो आप प्रेम के मालिक हो जाते हैं। अगर आप दया दे सकते हैं, तो आप दया के मालिक हो जाते हैं। अगर आप धन दे सकते हैं, तो धन के मालिक हो जाते हैं। आप जो भी दे सकते हैं, उसके मालिक हो जाते हैं, अगर आप अपना पूरा जीवन दे सकते हैं, तो आप अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं। आप जीवन के मालिक हो जाते हैं। फिर आपसे जीवन कोई भी छीन नहीं सकता।
जो आप देते हैं, वही आपके पास बचता है। यह गणित जरा अजीब-सा है। जो आप पकड़ते हैं, वह आपके पास नहीं है। जो आप देते हैं, वह आपके पास बच जाता है। इस उलटे गणित को जो सीख लेता है, दान की कुंजी उसके हाथ में आ जाती है। थोड़ा अपने ही जीवन में अनुभव करें--अगर आप को कभी भी कोई सुख की किरण मिली हो, तो थोड़ा खोजें, वह कब मिली थी? आप हमेशा पाएंगे कि सुख की किरण के आस-पास देने का कोई कृत्य था। ठीक से निरीक्षण करेंगे, तो जरूर खोज लेंगे यह बात कि जब भी आपको कुछ सुख मिला, तब उसके पास देने का कोई कृत्य था। खोजें, यह नियम शाश्वत है। कुछ न कुछ आपने दिया होगा किसी क्षण में सहज भाव से; मांग न रही होगी, उसके पीछे कोई सौदा न रहा होगा। हृदय प्रफुल्लता से भर जाता है।
और ध्यान करें कि जब भी आप दुख में घने उतरते हैं, तो भी बात यही लागू होती है। आपने कुछ छीना होगा या आप जो दे सकते थे, उसके देने से अपने को रोक लिया होगा। कोई कृपणता की होगी। उस कृपणता का तल और आयाम कोई भी हो, आपने कुछ संकोच कर लिया होगा।
देने से आदमी फैलता है।
लेने से, छीन लेने से, रोक लेने से, न देने से सिकुड़ता है।
सिकुड़ाव दुख है, फैलाव आनंद है।
इसलिए हमने ब्रह्म को आनंद कहा। ब्रह्म का मतलब है, जो फैलता ही चला जाता है। ब्रह्म और विस्तार एक ही शब्द से बने हैं। जो विस्तीर्ण होता चला जाता है, वह ब्रह्म है। इसलिए हमने उसे आनंद कहा। जो सिकुड़ता ही चला जाता है, क्षुद्र होता चला जाता है, गांठ बनती चली जाती है, वह दुख है।
कभी आपने ख्याल किया, जब भी आप दुखी होते हैं, तो आप चाहते हैं--कोई मिले भी ना; अकेले में बैठ जाएं, द्वार बंद कर लें। लेकिन जब आप आनंद से भरते हैं, तब? तब आप द्वार बंद नहीं करना चाहते। तब आप इकट्ठा कर लेना चाहते हैं प्रियजनों को, मित्रों को, अपरिचित हों तो उनको भी! आनंद से आप भरते हैं, तो आप बांटना चाहते हैं, फैलना चाहते हैं। दूसरे भी सहयोगी हो जाएं आपके आनंद उत्सव में, यह चाहते हैं।
आनंद में एक फैलाव है। आप फैलें, तो आनंद मिलता है। आनंद मिले तो आप फैलते हैं। दुख में सिकुड़ाव है। दुखी आदमी बंद हो जाता है कोठरी में भीतर। दुखी आदमी कभी आत्महत्या भी कर लेता है, तो उसकी आत्महत्या आखिरी उपाय है, जिसमें वह दूसरों से बिल्कुल ही अलग हो जाए। आनंदित आदमी ने आज तक आत्महत्या नहीं की। आनंदित आदमी आत्महत्या कर ही नहीं सकता; क्योंकि आनंदित आदमी तो दूसरों से जुड़ना चाहता है, विराट से एक हो जाना चाहता है। एक मजे की बात है। बुद्ध और महावीर, या क्राइस्ट और मुहम्मद, जो भी कभी
इस यात्रा-पथ पर गए, तोफ्जब दुखी थे, तब वह जंगल की तरफ भाग गए और आनंद से भर गए, तो वापस बस्ती में लौट आए! जब दुखी थे, तब तो अकेले में गए। और जब उन्हें आनंद फलित हो गया, तब फिर अकेले में न रह सके, फिर बांटने आफ्गए।
यह दोनों तरफ सही है। आनंद मिले तो बांटते हैं आप। अगर आप बांटना सीख लें, तो आनंद मिलता है। कहीं से भी शुरू करें, यह एक ही चीज के दो छोर हैं। "दान के द्वार पर सुरक्षित खड़ा होगा तू, यदि दान की कुंजी तेरे हाथ में है।"

बड़े मजे का सूत्र है। अगर दान की कुंजी तेरे हाथ में नहीं है, तो दान
के द्वार पर तू बड़ा असुरक्षित खड़ा होगा; क्योंकि तेरी सारी संपत्ति लुटने का मौका आ गया। कई बार दान का द्वार हमारे करीब आ जाता है, तो हम भाग खड़े होते हैं, क्योंकि हम डरते हैं।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जिस मस्जिद में काम करता था, जहां मौलवी था, उसकी दीवाल गिर गई थी और मस्जिद खंडहर होने के करीब थी। तो वह गांव के धनी के पास गया। और धनी तो डरते ही हैंः मौलवी हो, मुल्ला हो, फकीर हो, साधु हो, संन्यासी हो। धनी उनको देखकर चौंकता है, क्योंकि वह खतरा चला आ रहा है। वह दान का द्वार चला आ रहा है। क्योंकि देने तो क्या आएगा नसरुद्दीन? तो धनपति अपने इंतजाम करके रखते हैं। खिड़की से धनपति ने झांक कर देखा कि नसरुद्दीन आ रहा है, जरूर मस्जिद दिक्कत में है। आदमी प्रवेश द्वार दरवाजे पर गया। नसरुद्दीन ने इसी बीच झांककर देख लिया कि खिड़की से धनपति ने झांका है। सिर्फ उसका सिर दिखाई पड़ा, पगड़ी दिखाई पड़ी। नौकर से मुल्ला ने कहा कि मालिक घर पर हैं? नौकर ने कहा कि नहीं, मालिक बाहर गए हैं। नौकर धनपति का सचेत किया हुआ नौकर था कि ऐसा आदमी दिखाई पड़े, जिससे कुछ मांगने का डर हो, तो उसे विदा कर देना। तो मुल्ला ने कहा कि कोई हर्ज नहीं, बाहर गए हैं तो ठीक किया है। एक सलाह है, मुफत देता हूं कि दोबारा बाहर जाएं, तो आपना सिर खिड़की में न छोड़ जाएं। कोई चुरा ले जाए, कोई झंझट हो जाए, फिर पीछे पछताना पड़े। बस इतनी सलाह मुफत देता हूं। इसका कोई दाम भी नहीं।
दान के द्वार पर खड़े होकर अगर हमारी पकड़ की वृत्ति और परिग्रह की वृत्ति सघन है और दान की कुंजी हाथ में नहीं है तो हम निश्चित ही बड़ी असुरक्षा में पड़ जाएंगे। खतरा है वहां, वहां सब छिन जाने का डर है। वह दान का द्वार कहीं हमसे सब छीन न ले। इसलिए उस द्वार से हम बचेंगे। और अगर पहुंच जाएं भूलचूक से, तो भी खतरा होगा।
यह सूत्र कहता है कि दान की कुंजी अगर तेरे हाथ में है, तो दान के द्वार पर तू सुरक्षित खड़ा होगा। अब तुझसे कुछ छीना नहीं जा सकता।
और एक बड़ी अनूठी घटना घटती है कि जिससे कुछ छीना नहीं जा सकता, वह कौन आदमी है? वह नहीं है, जिसके पास बहुत कुछ है। उससे कुछ छीना जा सकता है! उस आदमी से कुछ भी नहीं छीना जा सकता है, जो सब देने को राजी है। उससे छीनने का उपाय नहीं है। उस आदमी की चोरी नहीं की जा सकती है। उस आदमी को लूटा नहीं जा सकता है। उस आदमी से कुछ छीना नहीं जा सकता है। उस आदमी की कोई पकड़ ही नहीं है, तो छीनने का उपाय नहीं है। दान के द्वार पर भी उस आदमी को कुछ मिलेगा, उस आदमी का कुछ खोएगा नहीं। जो सब देने को राजी है, उसको इस जगत का सब कुछ मिल जाएगा।
"ओ प्रसन्न तीर्थयात्री", इसलिए यह सूत्र कहता है, "अगर तेरे पास दान
की कुंजी है, तो दान के द्वार पर तू प्रसन्नता से भर जाएगा। अन्यथा दुख से, पीड़ा से भरेगा क्योंकि वहां छिनेगा सब।"
एक बहुत बड़ा धनपति निकोडेमस, जीसस के पास गया और जीसस से उस युवक निकोडेमस ने कहा, तुम्हारे प्रभु के राज्य की चर्चा मैं सुना हूं; मेरे मन में भी लोभ उठता है, मैं उसमें प्रवेश पा सकूंगा या नहीं? तो जीसस ने कहा कि तेरी योग्यता क्या है? तो निकोडेमस ने कहा कि न मैं चोरी करता हूं, न मैं व्यभिचारी हूं, न मैं शराब पीता हूं, न मैं मांसाहार करता हूं--और क्या चाहिए? जिन-जिन सदगुणों की चर्चा है शास्त्रों में, सब मुझमें हैं। जीसस ने कहा, इनसे काम न चलेगा; तू जा और अपनी संपत्ति बांट आ।
निकोडेमस ने कहा, फिर मुझे विचार करना पड़ेगा। क्योंकि न मैं मांसाहार करता हूं, न मैं शराब पीता हूं, न मैं व्यभिचारी हूं, शास्त्र का नियमित अध्ययन करता हूं, पूजा-प्रार्थना करता हूं, गिरजा, मंदिर जाता हूं, सभी पवित्र उत्सव में सम्मिलित होता हूं--और क्या चाहिए? जीसस ने कहा, इस सबसे कुछ काम न चलेगा। तेरे पास जो धन है, वह तू सब बांट आ। निकोडेमस ने कहा, तब तो बड़ी कठिन बात है।
और निकोडेमस की जगह कोई भी होता हममें से, तो यही कहता। हम भी सस्ते धर्म कर लेते हैं। न मांसाहार करते हैं, न शराब पीते हैं; ये सस्ते धर्म

हैं। इनके न करने से कुछ हल नहीं होता, लेकिन इनके करने से नुकसान होता है।
न करने से कोई फायदा नहीं होता।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
इनके करने से नुकसान होता है। इनके करने में पाप है, इनके न करने में पुण्य बिल्कुल नहीं है। अगर आप एक गड्ढे में गिर जाएं, तो पैर टूटता है। लेकिन गड्ढे में न गिरें, तो कुछ उपलब्धि नहीं होती। कि आप कहें कि मैं किसी गड्ढेँ में नहीं गिरा, बस काफी है--तो स्वर्ग का द्वार कहां है। गड्ढे में गिरने से पैर टूटता है, उसकी तकलीफ भोगनी पड़ती है। लेकिन गड्ढे में नहीं गिरे आप, तो इससे कुछ उपलब्धि नहीं हो गई। इससे कोई गुणवत्ता पैदा नहीं हो गई, कोई पात्रता पैदा नहीं हो गई। यह निषेधात्मक है। कोई मांसाहार करता है, तो नुकसान उठाता है, शराब पीता है, तो नुकसान उठाता है, लेकिन न पीने से कोई फायदा नहीं होता। इसलिए अगर कोई इस तरह के सस्ते धर्म पूरे कर रहा हो, तो ठीक से समझ लें। नुकसान से बचेगा, फायदा बिल्कुल नहीं होगा। नुकसान से बच गए, इतना ही क्या कम है? मगर उससे ज्यादा मत मांगना।
तो जीसस ने कहा कि जो तेरे पास है, तू सब छोड़ कर आ। क्योंकि जो बचाएगा, उससे छीन लिया जाता है और जो सब छोड़ देता है, उससे छीनने का कोई उपाय नहीं। मैं तुझे असली में समृद्ध होने का रास्ता बता रहा हूं। लेकिन तू अपने हाथ से गरीब है, तू पकड़े हुए है। निकोडेमस वापस लौट गया। यह उसके बस की बात न थी।
अगर दान की कुंजी समझ में न आई, तो धर्म के द्वार पर आप बड़े उदास खड़े हो जाएंगे, बड़े पीड़ा से भरे, जैसे अब लुटने के करीब हैं, सब लुटा जा रहा है। "ओ प्रसन्न तीर्थयात्री, देख जो द्वार तुझे दीख रहा है, वह ऊंचा और बड़ा
है और प्रवेश के लिए आसान मालूम पड़ता है। और उससे होकर जो पथ जाता है, वह सीधा और चिकना तथा हरा-भरा है। अंधेरे वन की गहराइयों में यह प्रकाशित वन-पथ की तरह है--एक स्थान जो अमिताभ के स्वर्ग से प्रतिबिंबित होता है, वहां चमकीले पंख वाले पक्षी, आशा के बुलबुल हरे लता कुंजों में बैठ कर निर्भय यात्रियों के लिए सफलता का गीत गाते हैं। वे बोधिसत्व के पांच सदगुणों को गाते हैं, जो बोधिशक्ति के पांच स्रोत हैं। और वे ज्ञान के सात चरणों को गाते हैं।"
दान के द्वार के प्रवेश के बाद जो पथ दिखाई पड़ेगा, वह बहुत हराभरा, बहुत लुभावना, बहुत सुखद है। वहां हरी छाया, और पक्षियों के गीत हैं, और सभी कुछ सुंदर है।
जिसने सदा छीना था, जब वह देता है, तो तत्क्षण उसके सामने सभी सुंदर हो जाता है। छीनने में सब कुरूप था। छीनना कुरूपता है। छीनने में हिंसा है। और छीनने वाला आदमी अपने चारों तरफ अस्थि-कंकालों से भर जाता है। जिन-जिनसे उसने छीना है, उनके भूत-प्रेत, अस्थि-पंजर उसके आस-पास खड़े हो जाते हैं। जिसने छीना है, वह एक नाइटमेयर, एक दुःस्वप्न में जाने लगता है--छीनने के कारण। जिस-जिससे छीना है, उसकी आह इकट्ठी होती चली जाती है और चारों तरफ डसने लगती है; पीड़ा देने लगती है, शूल बन जाती है।
लेकिन जैसे ही कोई देने को राजी हो जाता है, वैसे ही यह सूत्र सच में कीमती बात कह रहा है--कि वैसे ही उसके सामने जैसे अंधेरे में कोई प्रकाशित पथ हो, अचानक खुल जाता है। यह पथ है छाया से भरा, हरे वृक्षों की छाया से शीतल। और पक्षियों के गीत। और पक्षियों के गीत भी साधारण नहीं, बोधिसत्वों के गुण गाते हुए। बुद्धों के वचन जैसे उन पक्षियों के गीत में समा गए हों। निश्चित ही जो छीनने की दुनिया से देने की दुनिया में आता है, तब सारी कुरूपता विलीन हो जाती है और सौंदर्य के द्वार खुल जाते हैं। "बढ़ा चल, क्योंकि तू कुंजी लाया है, सुरक्षित है।
तुझे कोई डर नहीं है, तुझसे छिना भी नहीं सकता। तुझे यह भी भय नहीं पकड़ेगा कि पता नहीं, ये पक्षियों के इतने मधुर गीत, कोई प्रयोजन तो नहीं! ऐसा सुंदर पथ, निश्चित ही कहीं लुटेरे छिपे होंगे। ऐसे छायादार वृक्ष, जरूर किसी ऐसे व्यक्ति ने लगाए होंगे, जो इन छायादार वृक्षों के नीचे सो गए यात्रियों को लूट लेता होगा। नहीं तो यह कौन लगाता है छायादार वृक्ष?

और किसलिए पक्षी गीत गाएंगे? जरूर पक्षियों के गीत के पीछे कोई न कोई राजनीतिक चाल है और थोड़ी ही देर में शड्यंत्र जाहिर हो जाएगा।
जिसके पास कुछ पकड़ है, उसे हर चीज से डर लगता है। वह सौंदर्य तक से डरता है। क्योंकि जो उसके भीतर छिपा है छीनने वाला, वह सब जगह उसे दिखाई पड़ता है। वह जो चोर-लुटेरा उसके भीतर छिपा है, वह उसे सब जगह दिखाई पड़ता है। वह उससे भयभीत है। वह अपनी छाया से भी डर जाता है कि पता नहीं, कौन मेरा पीछा कर रहा है। वह अपने ही पैरों की आवाज सुन लेता है सुनसान रास्ते पर और भागने लगता है, कि पता नहीं किसके पैरों की आवाज आ रही है। जिसकी कोई पकड़ है, वह डरा हुआ रहता है। जिसकी कोई पकड़ नहीं, वह बढ़ चल सकता है इस यात्रा पथ पर, क्योंकि "तू जो कुंजी लाया है, तू सुरक्षित है।"
"और जो दूसरा द्वार है, उसका पथ भी हरीतिमा से भरा है, लेकिन वह चढ़ाई वाला है और ऊपर की ओर जाता है। हां, उसके चट्टानी मस्तक को तो देख। उसके खुरदरे और पथरीले शिखरों पर भूरी-भूरी धुंध छाए होंगे, और उसके आगे सब अंधकार भरा होगा। जैसे-जैसे वह बढ़ता है, तीर्थयात्री के हृदय में आशा का गीत मंद से मंद पड़ जाता है। और अब उसके ऊपर संदेह का बोझ है और उसके चरण अस्थिर होते जाते हैं।"
यह सूत्र बहुत अजीब है। और जो अनुभव किए हैं, वे ही इस तरह का सूत्र कह सकते हैं। इसे समझना जरूरी है। यह मनुष्य के गहरे मनस के ऊपर आधारित है। लूटने की दुनिया में हम जीते हैं; इसलिए देने की दुनिया तत्क्षण हमें सुख और शांति और सौंदर्य से भर देती है। यह जो सौंदर्य और शांति और आनंद की पुलक मिलती है, यह हमारा जो जीवन था अब तक का दुष्टता, क्रूरता, हिंसा से भरा--उसके विसर्जित होने से मिलती है। लेकिन यह पुलक ज्यादा देर नहीं टिकेगी। थोड़ी ही देर में संसार भूल जाएगा--यह ऐसे ही है जैसे आपके पैर में एक कांटा गड़ा हो तो जब आप कांटे को निकाल देते हैं, तो राहत मिलती है। लेकिन कितनी देर मिलेगी यह राहत, जो कांटे के गड़ने के निकालने से मिलती है? वह तो कांटे की पीड़ा हो रही थी, इसलिए अब पीड़ा नहीं हो रही है, तो राहत मिलती है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते पर चलता था तो पता नहीं, किसके लिए गालियां देता चलता था। और ऐसे कष्ट से चलता था कि जो भी उसे देखे, उसको भी दया आ जाए, पूछे मुल्ला बात क्या है और किसको कोस रहे हो? मुल्ला कहता है मेरे जूते जो हैं वे चुस्त हैं, और पैर ऐसा फंसा है कि निकाल भी पाऊंगा इससे, कि नहीं। और जूते काट रहे हैं। तो जो भी कहता, वह कहता, यह भी कोई बात हुई, मत पहनो इन जूतों को, अलग कर दो इन जूतों को। तो मुल्ला कहता, एक ही तो मेरे पास राहत का उपाय है, उसको भी तुम छीनना चाहते हो? दिन भर का थका-मांदा, परेशान जब घर लौटूंगा, तो पत्नी ऐसी वाणी बोलती है कि जैसे उसने जहर में बुझा-बुझा कर दिन भर तैयार की है। बच्चे चीख-पुकार मचाते हैं, धन पास नहीं है, व्यवसाय सब असफल होता जा रहा है। घर रोटी भी आज मिलेगी कि नहीं, उसका भी कोई पक्का नहीं है। भूखा सोऊंगा कि खाकर सोऊंगा, उसका भी कोई पक्का नहीं है। कर्ज बढ़ता चला जा रहा है; कर्जदार सुबह-शाम द्वार पर खड़े रहते हैं, उनकी वजह से ही बाजार की तरफ निकल आता हृं; कोई काम नह"ं है बाजार में। तो जब रात थका-मांदा दिन भर का और इन जूतों से रेशान घर पहुंचता हूं, और जूता निकाल कर पटकता हूं, तो कहता हूं, हे भगवान, तेरा धन्यवाद। यह जूता निकालने से ऐसी राहत मिलती है। यह एक ही तो राहत है मेरे पास। यह भी तुम छीन लेना चाहते हो!
एक अभाव की राहत है, जो मिलती है। जब आप दुख के बाद, पीड़ा के बाद बाहर आते हैं, बीमारी के बाद स्वस्थ होते हैं, तब मिलती है। लेकिन वह कितनी देर टिकेगी? संसार है एक रोग। उससे बाहर में मन डांवांडोल होता है। पीछे जाने की इच्छा होने लगती है कि वापिस लौट चलो। कम से कम किनारा तो था। दुख था, तो कोई हर्ज नहीं; परिचित था, जाना-माना था। और अकेले भी न थे। दुखी थे तो भी बहुत लोगों के साथ थे; भीड़ थी, परिवार था, मित्र थे, प्रियजन थे, अपने लोग थे। एक दूसरे के दुख में सहानुभूति बताते थे। यह अब अकेले हो गए, न वह किनारा रहा, न वे परिचित लोग रहे, न कोई सांत्वना देने वाला रहा। इस अकेलेपन में, इस मझधार में भय पकड़ता है।

सूत्र कहता है, ओ साधक, इससे सावधान रहो। उस भय से सावधान, जो तेरी आत्मा की चांदनी और बहुत दूर में फैले तेरे महान गंतव्य के बीच आधी रात के चमगीदड़ के काले व स्वरहीन पंखों की तरह फैला है।
भय प्रत्येक साधक को पकड़ता है। सांसारिक भय नहीं, ज्यादा अस्तित्वगत भय--एक्जिस्टेंशियल फियर। और इन क्षणों में जब साधक भयभीत होने लगता है, कि बीच में अटक गया, अब क्या होगा--पीछे भी लौटा नहीं जा सकता। क्योंकि जगत में पीछे लौटने का कोई रास्ता ही नहीं है। कैसे कोई पीछे लौट सकता है? जो जान लिया, उसे अनजाना नहीं किया जा सकता। जो दिखाई पड़ गया, उसको अनदेखा नहीं किया जा सकता। जो अनुभव में आ गया अब, कैसे उससे पीछे जाया जा सकता है। जब वह अनुभव में नहीं आया था। अनुभव से पीछे हटने का कोई भी उपाय नहीं। पीछे लौटा नहीं जा सकता, आगे का किनारा दिखाई नहीं पड़ता। आगे का किनारा देखने में थोड़ा समय लगेगा। नई आंखें चाहिए, और आंखों का नया संतुलन चाहिए। जिसे देखने की आदत है, उसे हम देख लेते हैं; जिसे देखने की आदत नहीं है, उसे हम नहीं देख पाते हैं। जिसे सुनते रहे, उसे सुन लेते हैं, जिसे न सुनते रहे, उसे हम नहीं सुन पाते।
आदत, व्यवस्था, ढंग-ढांचा हमारा, वह सब इस किनारे का है। उस किनारे को देखने, पहचानने, समझने के पहले यह सारा ढांचा हटेगा। और पुराना ढांचा हटेगा, तो नया एकदम निर्मित नहीं होगा। नये का जन्म होगा, विकास होगा। समय लगेगा। यह समय का जो अंतराल है, यह अंधकार होगा। और अत्यंत भय मन को पकड़ेगा। और अब ऐसा लगता है कि पुराने किनारे पर भी लौटना नहीं हो सकता। और नए का कुछ पता नहीं है, तो आशा मंद हो जाएगी। और जब आशा मंद-मंद होती है, तो भय बढ़ता है। जब आशा बिल्कुल सूनी हो जाती है, तो संदेह पकड़ लेता है। तब आत्मा ही नहीं, सारा अस्तित्व कंपने लगेगा। इस कंपित अवस्था में साधक पहुंचता है। और इस कंपित अवस्था के लिए पहले से सावधान रहना अत्यंत जरूरी है।
जब आप अपने भीतर भी प्रवेश करेंगे, तो ध्यान में ऐसी घड़ी आती है, जब आप भयभीत होने लगते हैं कि अब आगे जाना ठीक नहीं हैं। आते हैं मेरे पास मित्र और वे कहते हैं कि वह तो खतरे का क्षण मालूम होता है। ऐसा लगता है भीतर कि अब अगर आगे बढ़े तो, या तो पागल हो जाएंगे, या यह भी हो सकता है कि मौत घट जाए। और ऐसा लगने लगता है भीतर कि कहीं ऐसा तो न होगा कि हम भीतर के कुएं में गिर रहे हैं, जहां से वापिस न लौट सकेंगे। उस क्षण साहस रखना जरूरी है। क्योंकि वह क्षण कीमती है और क्रांतिकारी है। अगर उस क्षण आप घबरा गए, तो चूक गए। और उस क्षण अगर आप घबड़ा गए, तो वह भय आपकी आत्मा में बैठ जाएगा और हमेशा के लिए तकलीफ देगा। लौट सकते नहीं। आगे जाते तो भय भी मिट जाता। पीछे जा नहीं सकते, आगे गए नहीं, तो भयभीत हो जाएंगे।
कीर्कगार्ड ने कहा है कि एक ऐसा क्षण आता है--उसने एक किताब लिखी है, जिसको नाम दिया है "इदर-आर"-- यह या वह, ऐसा या वैसा, इस पार या उस पार। दोनों के बीच में एक क्षण आता है और उस क्षण में सारा अस्तित्व कंपने लगता है; जैसे तूफान ने, आंधी ने किसी वृक्ष को पकड़ लिया हो। और या तो इस तरफ आ जाओ, तो आंधी चली जाती है या उस तरफ चले जाओ, तो आंधी चली जाती है और अगर बीच में ही फंस जाओ, तो आंधी ही हमारा जीवन बन जाती है। बहुत लोग उलझ जाते हैं इस आंधी में।
इसलिए सांसारिक आदमी डरता भी है धर्म की तरफ जाने में, ध्यान की तरफ, योग की तरफ जाने में। वह भयभीत अनुभव के कारण है, बहुत पुराना है। बहुत लोगों को इस जगत ने आंधी में फंस जाते देखा है। इस जगत ने बहुत लोगों को विक्षिप्त हो जाते देखा है, पागल हो जाते देखा है; तो डर पैदा हो गया है। जैसे ही आप सुनते हैं कि कोई संन्यासी हो गया, भीतर एक डर आ गया कि यह क्या कर लिया। संन्यास! इसका मतलब हुआ कि किनारा छोड़ने का विचार किया, कि किनारा छोड़ रहे हैं, संकल्प किया। खतरे में जा रहे हो, अनजान में उतर रहे हो! और अपरिचित राहों पर जाना ठीक नहीं। परिचित जाने-माने रास्ते पर चलो, क्यों झंझट में पड़ते हो? यह भी अनुभव के कारण ही है।

बहुत बार ऐसा हुआ है कि साधक जब बीच में फंस जाता है, लौट नहीं सकता, आगे जा नहीं पाता भय के कारण, तो बड़ी उलझन हो जाती है। पैथालॉजिकल, रुग्ण अवस्था हो जाती है। इसलिए यह सावधानी जरूरी है।
इतना पक्का है कि अगर उस क्षण में हिम्मत रखी और भय न रहा, तो आप शीघ्र
ही भय के पार हो जाएंगे और सदा के लिए अभय हो जाएंगे। फिर दुनिया का कोई भय आपको न पकड़ सकेगा। जो व्यक्ति अध्यात्म के भय के पार हो जाता है, फिर उसे दुनिया का कोई भय नहीं पकड़ सकता है। और जिसको यह क्षण नहीं कंपा पाता, भयभीत नहीं कर पाता, फिर उसे कोई भी शक्ति भयभीत न कर पाएगी। फिर मृत्यु भी उसके रोएं को नहीं हिला सकती; क्योंकि यह मृत्यु से भी बड़ा खतरा है। क्योंकि मृत्यु में तो शरीर ही मिटता है, इस क्षण में तो ऐसा लगता है कि मेरा सारा प्राण टूटा जा रहा है। अब मैं कहीं का न रहा। अब मैं शून्य ही हो जाऊंगा। एक अनंत गड्ढे में, अनंत खड्डे में जैसे कोई गिर गया हो; जिसकी कोई नीचे की खाई भी पता नहीं चलती। और ऊपर तो जाने का कोई उपाय नहीं है। और गिरता ही जाए, और गिरता ही जाए और नीचे की खाई का कोई पता न चले--ठीक वैसी ही प्रतीति होती है।
लेकिन उस प्रतीति को आह्लाद से, प्रसन्नता से, अनुग्रह से स्वीकार कर लेना और जानना कि परमात्मा की कृपा है, यह क्षण आ गया। क्योंकि इस क्षण के बाद क्रांति है; इसी क्षण के बाद रूपांतरण है। अगर इस बोध से बढ़ गए आगे, तो भय सदा के लिए तिरोहित हो जाता है। रात सदा के लिए मिट जाती है। अंधेरा सदा के लिए खो जाता है।
श्री अरविंद ने कहा कि जिसे मैं कल तक प्रकाश कहता था, अब जिस प्रकाश
को जाना, उसके समक्ष वह प्रकाश अंधेरा मालूम पड़ता है। और कल तक जिसे मैं जीवन समझता था, आज जिस जीवन को मैंने जाना है, उसके समक्ष यह जीवन मृत्यु से भी बदतर है।
लेकिन यह भय के क्षण के बाद होगा। स्मरण रखने योग्य है कि ओ साधक, इससे सावधान! इस भय से सावधान। यह सावधानी अगर रही... जब भी भय पकड़े आपको, तो सावधान रहना कि यह शुभ लक्षण है, हम करीब आ रहे हैं उस खाई के, जिसमें अगर गिरने को राजी रहे, तो पुराना मिट जाएगा और नए का जन्म होगा। दुख विसर्जित हो जाएगा और आनंद की किरण फूटेगी। सूयादय निकट है।
जितनी घनी हो गई है रात, उतना ही सूयादय निकट है। ऐसा मन में भाव बना रहे।
इसलिए गुरु उपयोगी हो जाता है। और जो भय से भर सकते हैं, उनके लिए बहुत उपयोगी हो जाता है। क्योंकि तब, जिन रास्तों से वह गुजरा है, उनकी बात कर सकता है। और जो भय पकड़े, उनकी खबर दे सकता है। और कहां-कहां, किन-किन क्षणों में अड़चन आ जाएगी, उपद्रव हो सकता है, आदमी अटक सकता है, उसकी सब खबर दे सकता है। और एक दफा उनका स्पष्ट बोध हो, तो पार होना आसान हो जाता है।

समाधि के सप्त द्वार
छठवां प्रवचन

क्षांति

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; प्रातः 12 फरवरी

ओ शिष्य, भय संकल्प का हनन करता है और प्रयासों का स्थगन। यदि शील गुण
का अभाव हो, तो यात्री के पांव लड़खड़ाते हैं और चट्टानी पथ पर कर्म के पत्थर उसके पांवों को लहूलुहान कर देते हैं।
ओ साधक, अपने पावों को दृढ़ कर। क्षांति (धैर्य) के सत्व में अपनी आत्मा
को नहला, क्योंकि अब तू उसी के नाम के द्वार को पहुंच रहा है--बल और धैर्य का द्वार।
अपनी आंखों को बंद मत कर, और दोरजे (सुरक्षा के वज्र) से अपनी दृष्टि
को मत हटा। काम के बाण उस व्यक्ति को बद्ध कर देते हैं, जो विराग को प्राप्त नहीं हुआ है।
कंपन से सावधान! भय की सांस के नीचे पड़ने से धैर्य की कुंजी में जंग लग जाता है और जंग लगी कुंजी ताले को नहीं खोल सकती।
जितना ही तू आगे बढ़ता है, उतना ही तेरे पांवों को खाई-खंदकों का सामना करना होता है। और जो मार्ग उधर जाता है, वह एक ही अग्नि से प्रकाशित है-- साधक के हृदय में जलने वाली साहस की अग्नि से। जितना ही कोई साहस करता है, वह उतना ही पाता है। और जितना ही वह डरता है, उतना ही वह ज्योति मंद पड़ जाती है। और वही ज्योति मार्गदर्शन कर सकती है। वह हृदय-ज्योति वैसी ही है, जैसे किसी ऊंचे पर्वत-शिखर पर चमकने वाली अंतिम सूर्य की किरण, जिसके बुझने पर अंधेरी रात का आगमन होता है। जब वह ज्योति भी बुझ जाती है, तब तेरे ही हृदय से निकल कर एक काली और डरावनी छाया मार्ग पर पड़ेगी और तेरे भय-कंपित पैरों को भूमि से बांध देगी।

सूत्र में साधक के लिए बहुत बहुमूल्य बातें हैं।
"ओ शिष्य, भय संकल्प का हनन करता है और प्रयासों का स्थगन"।
भय शायद आंतरिक मार्ग पर सबसे बड़ी कठिनाइयों में एक है। और ऐसा भय नहीं, जिससे हम संसार में परिचित हैं, कुछ और ही तरह का भय है। भय दो प्रकार के हैं। एक तो भय है, जिसका प्रत्यक्ष कारण सामने होता है। कोई आदमी छाती के सामने छुरा लेकर खड़ा है, आप भयभीत होते हैं। इस भय का कारण प्रत्यक्ष है, सामने है। एक और भय है।
एक तो भय का यह आयाम है, जहां कारण होते हैं। कारण बाहर होते हैं, भीतर
आप भयभीत होते हैं। कारण भी भय पैदा नहीं करते। सिर्फ जो भय भीतर सोया है, उसे जगा देते हैं; वह जो भीतर छिपा है, उसे प्रकट कर देते हैं। कोई छुरा लेकर छाती के सामने खड़ा हो, तो उसके छुरे से भय पैदा नहीं होता। भय तो भीतर है, छुरे से प्रकट हो जाता है। लेकिन कारण है, साफ है।
दूसरा भय और भी गहरा है, जो छुरे के कारण या किसी बाहय स्थिति के कारण नहीं अनुभव होता, बल्कि भीतर जो भय पड़ा है, उसके कंपन से ही प्रतीत होता है। अकारण प्रतीत होता है। अध्यात्म के मार्ग पर वह जो अकारण भय प्रतीत होता है, वही बाधा है। और जैसे-जैसे व्यक्ति संसार से दृष्टि हटाने लगता है, वैसे-वैसे कारण विलीन होने लगते हैं। और खुद का ही भय कंपित होने लगता है। अब कोई कंपाने वाला नहीं होता, अपना ही भय है।
कारण वाले भय से तो छूटना आसान है; क्योंकि कारण की रुकावट की जा सकती है, कारण से बचाव किया जा सकता है। कोई छुरा लेकर खड़ा हो, तो आप तलवार लेकर खड़े हो सकते हैं। अपने चारों तरफ सुरक्षा की दीवाल बना सकते हैं। बीमारी हो, तो औषधि का इंतजाम हो सकता है। बाहर जो कारण हैं, उनके विपरीत कारण बाहर निर्मित किए जा सकते हैं। और भय से सुरक्षा मिल जाती है। लेकिन जब अकारण भय का पता चलता है कि भय बाहर से नहीं आ रहा, कोई उसे जगा नहीं रहा, भय मेरे भीतर ही है, मेरी आत्मा में ही है। मैं अपने से ही कंप रहा हूं, कोई मुझे कंपा नहीं रहा। यह कंपन मेरा ही है, मेरे अस्तित्व में ही यह कंपन

छिपा है। तब बड़ी कठिनाई होती है कि उपाय क्या हो? इस भय को मिटाने के लिए क्या किया जाए? इससे सुरक्षित होने के लिए कौन सा आयोजन हो?
कोई आयोजन काम न देगा। सांसारिक भय से बचना आसान है। हम सभी ने इंतजाम
कर लिया है सांसारिक भय से बचने का। हमारी पूरी समाज की व्यवस्था सांसारिक भय से बचने का उपाय है। तो यहां पुलिस है, अदालत है, कानून है, राज्य है, वे सब हमारे उपाय हैं बाहर के भय से बचने के। लेकिन भीतर जो भय है, उससे बचने के लिए आदमी क्या करे? और उससे न बच सके, तो आत्मिक जगत में कोई प्रवेश नहीं हो पाएगा। क्योंकि वह तो जगत ही भीतर का है, वहां बाहर कुछ है ही नहीं, जिससे इंतजाम हो सके, बचाव हो सके। वहां आप होंगे अकेले और आपका भय होगा--अकारण भय।
एक वृक्ष हवा के झोंके में कंपता है, तो हवा के झोंके को रोका जा सकता है। लेकिन एक वृक्ष अपने अस्तित्व में अपनी जड़ों में ही कंपन को लिए है और कंपता है, तब क्या किया जाए? इसी भय की चर्चा है। और यही भय संकल्प का हनन कर देता है।
जितना ही भीतर होता है कंपन, उतने ही आप दृढ़ नहीं हो पाते हैं। जितना होता है भीतर कंपन, आपको अपनी ही बात का कोई भरोसा नहीं हो पाता। आप जानते हैं कि जो आप कह रहे हैं, वह कहते समय भी आप कंप रहे हैं। आप जानते हैं, जो आप निर्णय ले रहे हैं, निर्णय लेते समय भी कंप रहे हैं। आप जानते हैं कि आपका संकल्प सदा अधूरा है। और अधूरा संकल्प, संकल्प नहीं है। अधूरे संकल्प का कोई अर्थ ही नहीं होता। कोई आदमी कहे कि मैं आधा तैयार हूं, उसका कोई अर्थ नहीं होता। तैयारी या तो पूरी होती है या नहीं होती। आप अगर कहें कि मैं छलांग लगाने को आधा तैयार हूं, तो कैसे छलांग होगी? एक पैर तैयार नहीं है और एक पैर तैयार है--आधे आप तैयार हैं। छलांग होगी कैसे? छलांग तो तभी हो सकती है, जब तैयारी पूरी हो। जरा सा भी विपरीत भाव मन में है, तो छलांग नहीं हो सकती। और जो भय से कंप रहा
है, उसमें विपरीत भाव सदा बना रहता है। उसे अपने पर भरोसा नहीं हो सकता, जो भय से कंप रहा है।
इसलिए महावीर ने अभय को साधक के लिए पहली सीढ़ी कहा है। और ठीक कहा है, क्योंकि जब तक अभय न हो जाए, तब तक कुछ भी न होगा। बड़ी मजे की घटना महावीर के संदर्भ में घटी है। और वह यह है कि महावीर ने कहा कि जब तक तुम अभय को उपलब्ध नहीं होते, तब तक तुम अहिंसक न हो सकोगे। आदमी हिंसक इसलिए तो है कि भयभीत है। हिंसा भय का बचाव है। कोई मुझे न मार डाले, इसलिए मैं खुद ही मारने को तैयार हूं। और कोई मुझे मारने आए, इसके पहले ही मैं उसे मारने चला जाता हूं। और बचना हो, तो यही उचित है कि आक्रमण के पहले ही आक्रमण कर दिया जाए। क्योंकि जो पहल करता है आक्रमण में, वह आगे निकल जाता है। हिंसा इसलिए इतनी हमारे मन को घेरे हुए है कि हम भीतर भयभीत हैं। हम डरे हुए हैं; इसलिए हम दूसरे को डराना चाहते हैं।
और हमें एक ही अनुभव है निडर होने का। वह तब हमें होता है, जब हमसे कोई डरता है, तो ही हमें निडर होने का अनुभव होता है--तुलनात्मक है। अगर आप किसी को डरा सकते हैं तो आपको आनंद आता है। आपको लगता है कि ठीक, अब मैं डरने वाला नहीं हूं, डराने वाला हूं। वह जो आपसे ज्यादा डरता है, आपके सामने कंपता है, उसको देख कर आपको भरोसा आता है कि मैं कम कंप रहा
हूं या आप अपने कंपन को ही भूल जाते हैं।
सम्राट होने का मजा क्या होगा? सत्ता में होने का मजा क्या है? हिंसा
का मजा है, जो सत्ता में है, वह आपको कंपा सकता है। जिसके हाथ में शस्त्र है, वह आपको कंपा सकता है। जिसके हाथ में धन है वह आपको कंपा सकता है। और जिसके चारों तरफ लोग कंपते रहते हैं, उसको यह भरोसा रहता है कि मैं कंपने वाला नहीं हूं कंपाने वाला हूं।
हिटलर के संबंध में उसके एक अत्यंत विश्वासपात्र, निकट व्यक्ति ने किसी को पत्र में लिखा है कि हिटलर जब भी किसी को मरवाता था, तब बहुत प्रसन्न होता था। अक्सर अपने सामने वह किसी को गोली मरवा कर मरवा डालता था और सामने ही कोई तड़प कर शांत हो जाता था, उसके चेहरे पर ऐसी शांति और आनंद की लहरें छा जाती थीं। तो उस अत्यंत निकट जन ने हिटलर से पूछा कि तुम इतने

प्रसन्न क्यों हो जाते हो, जब कोई मरता है? तो हिटलर ने कहा कि मुझे यह भरोसा आता है कि मैं मरने वाला नहीं हूं, मारने वाला हूं। मौत मेरा कुछ भी न बिगाड़ सकेगी। जब मैं किसी को मार डालता हूं, तो मैं मौत का मालिक हो गया हूं।
नादिर को, तैमूर को, चंगेज को, नेपोलियन को, सिकंदर को, हिटलर को, स्टालिन को, माओ को जो रस प्रतीत होता है दूसरे को नष्ट करने में, वह इस बात का है कि मैं जब नष्ट कर सकता हूं स्वयं, तो मुझे कौन नष्ट कर सकेगा? तुलना में जो हमसे ज्यादा डरता है, हम उससे बड़े हो जाते हैं। और इसलिए हर आदमी अपने आसपास किसी न किसी को डराता रहता है।
अगर एक दफ्तर में जाएं, तो मालिक मैनेजर को डरा रहा है; मैनेजर अपने नीचे के हेड क्लर्क को डरा रहा है; हेड क्लर्क अपने क्लर्क को डरा रहा है; क्लर्क चपरासी को डरा रहा है, चपरासी लौटकर अपनी पत्नी को डरा रहा है, पत्नी अपने बच्चों को डरा रही है। और यह चल रहा है। बच्चे को कुछ नहीं सूझता, तो अपने गुड्डे की टांग तोड़कर उसको नष्ट कर देता है और प्रसन्न होता है।
अगर हम समाज को देखें, तो उसमें पर्त दर पर्त भय का संबंध है। और अगर पति पत्नी को नहीं डराए, तो पत्नी पति को डरा रही है। ऐसा घर पाना बहुत मुश्किल है, जहां न पति पत्नी को डरा रहा हो, न पत्नी पति को डरा रही हो। और ऐसा घर मिल जाए, तो समझना कि वह घर है, बाकी तो सब हायररकी है सताने की, एक दूसरे को परेशान करने का इंतजाम है।
हमें अपने से कमजोर की तलाश है; क्योंकि उसके सामने हम शक्तिशाली मालूम पड़ते हैं। अपने से दीन की तलाश है, क्योंकि उसके सामने हम धनी मालूम पड़ते हैं। अपने से मूढ़ की तलाश है; क्योंकि उसके सामने हम ज्ञानी मालूम पड़ते हैं। पर अगर इस सारी खोज को हम ठीक से देखें, तो ये सारे संबंध रुग्ण हैं और भय पर खड़े हैं। यह जो भय है, यह मिटता नहीं किसी को डराने से, सिर्फ छिपता है। और छिपा हम रहे हैं जन्मों से। और रत्ती भर हम उसे मिटा नहीं पाए हैं। सच तो यह है कि जितना हमने छिपाया है, उतना ही उसको मिटाना मुश्किल हो गया है। क्योंकि छिपा-छिपा कर हमने ही उसे ऐसे अंधेरे में डाल दिया है, जहां खुद को भी दिखाई नहीं पड़ता कि कहां है?
यह सूत्र कहता है, ओ शिष्य, भय संकल्प का हनन करता है और प्रयासों का स्थगन।
तब हम सोचते बहुत हैं कि करें और कर कभी भी नहीं पाते। हजार बार सपना लेते हैं कि उठाएं पैर, उठाते कभी भी नहीं! विचार ही करते रहते हैं करने का। विचार से तो कोई यात्रा होती नहीं। कितनी बार तय करता है आदमी अपने को बदल डालने का; लेकिन वह बदलाहट की कोई शुरुआत नहीं होती। वह हमेशा स्थगित करता है, पोस्टपोन करता है कि कल करेंगे शुरू। और कल कभी नहीं आता।
कल यही मन फिर आगे पर टाल देता है। आगे पर टालना हमारी बड़ी तरकीब है। उससे हमारी दोनों बातें सधी रहती हैं। हमें यह भी नहीं होता कि हम बदलाहट का कोई उपाय नहीं कर रहे हैं! कल करेंगे--आयोजन कर रहे हैं, प्लानिंग कर रहे हैं। इसलिए मन में यह भी भरोसा रहता है कि हम बदलने की तरफ चल रहे हैं। और चलते कभी भी नहीं। कौन सा भय हमें रोकता है चलने में? वह कोई कारण वाला भय नहीं है, जो हमें रोकता है। यह हमारी भयभीत अवस्था है।
सोरेन कीर्कगार्ड ने कहा है कि आदमी को जितना ही मैंने समझा, उतना ही मैंने पाया कि आदमी एक कंपन है--जस्ट ए ट्रेंबलिंग। भीतर उसके सब कंप रहा है।
तो इस बात को पहले तो इस भांति अनुभव करें कि भय के कारण बाहर नहीं हैं, भय भीतर है। कारणों से सिर्फ पता चलता है, प्रकट होता है। जैसे कि कोई आपके हाथ में छुरा मार दे, तो खून की धार निकल पड़ती है। छुरे से खून की धार पैदा नहीं होती। खून की धार तो बह रही थी, छुरे से प्रकट होती है। ऐसे ही भय की धार भी आपके भीतर बह रही है; जो कोई छुरा लेकर सामने खड़ा होता है, तो वह धार फूट पड़ती है। वह भी आपके ही भीतर है, जैसे खून आपके भीतर है। खून दिखाई पड़ता है, वह दिखाई नहीं पड़ता है। इसलिए आपके ख्याल में नहीं आता। जब कोई आपके सामने छुरे की धार रखने लगता है, तो जो लहर आपके भीतर होने लगती है, वह

छुरे से नहीं आ रही। छुरे से केवल आपको स्मरण आ रहा है। जो दबी थी, वह मुखर हो रही है। जिसको आप छिपा कर बैठे थे, वह गतिमान हो रही है। जिसको आप भूल गए थे, उसको आपको पुनः स्मरण करना पड़ रहा है।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि जाओ मरघट पर और महीनों मृत्यु पर ध्यान करो। और जब कोई लाश लाई जाए तो बैठ जाओ, और शांति से एकाग्र होकर उसे देखते रहो। फिर जब चिता सजे तो देखते रहो, निरीक्षण करो, विचार मत करो। सिर्फ देखो कि मौत में क्या हो रहा है? फिर जब जलने लगे लाश और राख हो जाए सब और जब प्रियजन विदा हो जाएं रोकर, तो बैठे रहो उस सुलगती आग, बुझती आग के पास। अभी-अभी जो था, अब नहीं है। धीरे-धीरे तुम्हें अपनी लाश भी दिखाई पड़ने लगेगी। आज नहीं कल, तुम्हें स्मरण आ जाएगा कि कोई तुम्हें भी लेकर मरघट की तरफ आ रहा है। और तुम्हारे प्रियजन भी इकट्ठे होकर तुम्हें चिता पर चढ़ा देंगे और तुम भी राख हो जाओगे। तब बहुत भय पकड़ेगा। उस भय से भागना मत मरघट से। तुम जमे ही रहना।
आपको पता है, लोग कहते हैं मरघट पर मत जाना, वहां भूत हैं। भूत नहीं हैं वहां; आपका भय वहां प्रकट होता है। मगर आदमी हमेशा बाहर चीजों को स्थापित कर देता है। मरघट पर भय की वजह से भूत मालूम पड़ते हैं, भूत की वजह से भय नहीं होता। भूतों को रहने के लिए काफी जगह है। और भूत भी मरघट न चुनेंगे रहने के लिए, क्योंकि आप ही तो भूत होंगे कभी। भूत भी मरघट चुनने वाले नहीं हैं। भूत भी मरघट से उतना ही डरते हैं, जितना आप डरते हैं। मरघट पर जो डर है, वह भूत का नहीं है। डर की वजह से भूत अनुभव होता है। मरघट है मौत, वह उसका प्रतीक है। उसके पास जाते ही आपके भीतर वह जो छिपा है, वह तरंगित होने लगता है। आपके भीतर के भय का सरोवर कंपित होने लगता है। उस कंपित अवस्था में आपको भूत-प्रेत दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। वह प्रोजेक्शन है। वह आपका भय बाहर फैलकर दिखाई पड़ता है तब।
एक पत्ता हिल जाता है हवा में और आपको किसी के पदचाप सुनाई पड़ जाते हैं! और एक पत्ता गिर जाता है वृक्ष से, जरा-सी आहट, आप भाग खड़े होते हैं! फिर भागने से आप अपने ही भय को और बढ़ा लेते हैं। जो भय छोटा-सा था, भागने से और बड़ा हो जाता है। क्योंकि अब आप अच्छी तरह कंपित हो जाते हैं; अब आप अपने ही भय के जाल में ग्रसित होते जा रहे हैं। और तब कुछ भी हो सकता है और तब आपको कुछ भी दिखाई पड़ सकता है। और वह इतना साकार होगा कि आप कभी भी मानने को राजी नहीं होंगे कि वह असत्य था।
लेकिन भूल हो रही है। जो पद पर दिखाई पड़ रहा है, वह पद पर नहीं है, वह प्रोजेक्टर में है। फिल्म-गृह में आपके पीठ के पीछे प्रोजेक्टर लगा होता है। उसकी तरफ कोई देखते नहीं। दो छोटे से छेद से प्रोजेक्टर की मशीन चित्रों को फेंकती रहती है, आप देखते हैं पद पर। पर्दा होता है सामने, प्रोजेक्टर होता है पीछे। पद पर जो दिखाई पड़ता है, वह पद में नहीं है। वह सिर्फ पद पर दिखाई पड़ता है। जो पद पर दिखाई पड़ता है, वह पीछे जो मशीन है प्रक्षेप करने की, उसमें छिपा है।
जब आपको भूत दिखाई पड़े तो आप जरा पीछे लौट कर अपने में देखना; वहां भय है। किसी भी तरह के भूत हों, जिनसे भय पैदा होता है, हमारी नजर तत्काल, पद पर पकड़ जाती है और हम भूल जाते हैं कि हम ही उसे फैला रहे हैं; हमारे भीतर से ही वह निकल कर बाहर खड़ी हो रही है छाया। सब भूत-प्रेत, सब भय के जो कारण हमें बाहर दिखाई पड़ते हैं, वे हमारा ही सृजन हैं। और फिर हम इतना उपद्रव अपने चारों तरफ खड़ा कर लेते हैं! पर उसमें एक सुविधा है। यह मानने में आसानी रहती है कि कोई हमें भयभीत कर रहा है। जिम्मा किसी और का हो जाता है, उत्तरदायित्व किसी और का है। अगर आप भाग रहे हैं, तो आप नहीं भाग रहे हैं, भूत आपको भगा रहा है। जिम्मेदारी भूत की हो गई। आप जिम्मेवारी से बच गए। आप ही भाग रहे हैं--और आप खड़े हो जाएं, तो भूत भागना शुरू कर देता है। विवेकानंद ने लिखा है, बहुत बार वे इसे कहते भी थे कि पहली-पहली बार जब संन्यासी होकर वे काशी पहुंचे, तो काशी के बंदरों ने उन्हें बहुत सताया।
एक झाड़ के नीचे बैठ कर ध्यान कर रहे थे, बंदर वहां इकट्ठे हो गए, डराने लगे।
विवेकानंद ने बचने का उपाय किया। जब भी कोई डराए तो बचने का उपाय करना पड़ता है। और जब आप बचने का उपाय करते हैं, तो आप डराने वाले का साहस बढ़ाते

हैं। विवेकानंद सरकने लगे पीछे उस झाड़ से, हटने लगे, बंदर चारों तरफ से और पास आने लगे, विवेकानंद ने भागने का विचार किया कि बंदर झपट पड़े। विवेकानंद भागे, तो बंदरों की भीड़ और भी जो वृक्षों पर बैठे थे, वे भी नीचे उतर आए। अचानक विवेकानंद को ख्याल आया, यह तो मुसीबत हो जाएगी। ये तो आज मुझे मार ही डालेंगे। ख्याल आया कि कहीं मेरे भय को देख कर तो ये इतने ज्यादा साहसी नहीं हुए जा रहे हैं? लौट कर खड़े हो गए। खड़े होने से ही बंदर ठिठक गए। विवेकानंद बंदरों की तरफ आगे बढ़े, बंदर भाग कर वृक्षों पर चढ़ गए। फिर विवेकानंद बार-बार इस बात को कहे कि उस दिन मुझे भय का सारा सार समझ आ गया।
जिससे भयभीत हो जाओ, वह तुम्हारा पीछा करेगा। तुम उसके पीछे लगे तो वह अपना बचाव करेगा। तुम खड़े हो जाओ, भयभीत मत होओ, तो सारे जगत से तुम्हें भयभीत करने के सारे कारण तिरोहित हो जाते हैं।
भय भीतर है। कारण पद से ज्यादा नहीं हैं, बहाने हैं। और यह भय संकल्प
को नष्ट कर देता है। आप इकट्ठे नहीं हो पाते हैं। इस भय के कारण डांवांडोल ही होते हैं। और तब स्थगित करते चले जाते हैं। स्थगन भी भय है।
"यदि शील गुण का अभाव हो, तो यात्री के पांव लड़खड़ाते हैं और चट्टानी पथ
पर कर्म के पत्थर उसके पांव को लहूलुहान कर देते हैं।"
इस भय से बचने के लिए क्या किया जाए?
शील उपाय है।
यह शील समझने जैसा है। आपको ख्याल है कि अगर आप असत्य बोलें, तो आपके भीतर कंपन बढ़ जाता है। झूठ बोलने वाला कंपता है, सच बोलने वाला नहीं कंपता। अब तो हमने यंत्र खोज लिए, जिनसे आपका झूठ बोलना फौरन पकड़ा जाता है। क्योंकि आपका कंपन यंत्रों में खबर देता
है, ग्राफ बन जाता है नीचे कि आप कंप रहे हैं और किस मात्रा में कंप रहे हैं।
पश्चिम की अदालतों में लाई-डिटेक्टर्स का उपयोग शुरू किया है और आप उससे बच नहीं सकते, आप कुछ भी करें। आपसे कुछ सवाल पूछे जाते हैं। पूछा जाता है, इस समय घड़ी में कितना बजा है। घड़ी सामने अदालत में लगी है। झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। आप कहते हैं, बारह बजे हैं। नीचे की वह जो मशीन है, वह काम करना शुरू कर देती है कि अभी यह आदमी नहीं कंप रहा है, अभी इसमें कोई कंपन नहीं है। क्योंकि कंपन तो इलेक्ट्रिकल है। पूरा शरीर विद्युत की तरंगों से भर जाता है, तो विद्युत की तरंगें यंत्र पकड़ लेता है। आपके पैर के नीचे यंत्र लगा है, वह कह रहा है, ठीक अभी यह आदमी नहीं कंप रहा है। आपसे पूछा जाता है, इस कपड़े का रंग क्या है? आप कहते हैं नीला है। अभी भी नहीं कंप रहा है। ऐसे दस-पांच प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनमें आप झूठ बोल ही नहीं सकते।
फिर आपसे पूछा जाता है, क्या आपने चोरी की? छाती में धक्का लगता है, नीचे यंत्र में भी धक्का लग जाता है। भीतर आप जानते हैं चोरी की है और ऊपर आप कहते हैं, नहीं की है। दो हिस्से हो गए। आप इकट्ठे नहीं हैं, बंट गए। क्योंकि आप दुनिया को झूठ कह दें कि चोरी नहीं की, आप अपने को कैसे झूठा कहेंगे? भीतर आप जानते हैं कि चोरी की और बाहर आप कहते हैं, चोरी नहीं की। आपकी तरंगें विभाजित हो गईं। नीचे ग्राफ कट गया, और आपके हृदय की धड़कन बढ़ गई। और आपके हाथ-पैर की विद्युत-धारा गतिमान हो गई। अब आप कंपने लगे। अब आप जानते हैं, कहीं मैं पकड़ा न जाऊं, कहीं यह बात खुल न जाए, कहीं कोई गवाह न मिल जाए, यह बात तो झूठ है। अब आप बचाव में पड़ गए। यह यंत्र नीचे पकड़ लेगा। जब आप असत्य बोलते हैं, तब आप कंपते हैं। जितना आप कंपते हैं, उतना आप
भय को शक्ति दे रहे हैं। क्योंकि भय कंपन है, जब आप क्रोध करते हैं, तब आप कंपते हैं। जब आप घृणा करते हैं, तब आप कंपते हैं। आप भय को बढ़ा रहे हैं। तो जो घृणा से भरा है, क्रोध से भरा है, विद्वेष से भरा है, ईर्ष्या से भरा है, वह भय को बढ़ा रहा है। ए सब भय के भोजन हैं।
शील का अर्थ हैः भय के भोजन से बचना। जिनसे भय बढ़ता है और कंपन बढ़ता है, वैसे कामों, विचारों से बचना, ताकि कंपन कम हो जाए।

ठीक इसके विपरीत बात भी है। क्योंकि कुछ चीजें हैं, जिनसे कंपन बढ़ता
है और कुछ चीजें हैं, जिनसे कंपन घटता है। अगर घृणा से बढ़ता है, तो प्रेम से घटता है। इसलिए जब हम गहरे प्रेम में होते हैं, तो भय नहीं पकड़ता। प्रेमी भयभीत होते ही नहीं। और जो एक दूसरे से भयभीत हैं, उनके बीच प्रेम का पुष्प कभी पैदा नहीं हो पाता। कोई उपाय नहीं। क्योंकि भय और प्रेम का कोई संबंध नहीं। सबसे धोखा
हो जाता है। घृणा से कंपन बढ़ता है, आपका रोआं-रोआं कंप जाता है। आप वस्तुतः कंपन अनुभव कर सकते हैं। यंत्रों की कोई जरूरत नहीं। क्रोध में आप कंपते हैं। यह कंपन आपके पूरे शरीर की विद्युत धारा में फैल जाता है। प्रेम में आप स्थिर हो जाते हैं।
पश्चिम का एक मनोवैज्ञानिकों का समूह कुछ बंदरों पर प्रयोग कर रहा
था, छोटे बंदर के बच्चों पर। प्रयोग अनूठा है और बड़ी कीमती उसकी निष्पत्तियां हैं। उन्होंने इन छोटे बच्चों के लिए दो झूठी बंदरियां बनाईं। उनकी माताओं का काम करेंगी वे झूठी बंदरियां। एक थी सिर्फ तारों की बनी हुई मादा, स्तन थे उसके और स्तन से दूध बच्चों को मिलने वाला था। लेकिन तारों का बना हुआ पूरा ढांचा था। और दूसरी मादा थी, उससे दूध मिलने वाला नहीं था, लेकिन वह ऊन से बनी हुई थी। ढांचा ऊन का था। और भीतर उसके बिजली चल रही थी, जिससे वह तप्त थी। बंदर दूध पीने तो चले जाते थे तार वाली मां के पास; लेकिन बस दूध पी कर हट जाते थे। और तत्क्षण चले जाते थे उस मां के पास, जहां उन्हें गर्मी का अनुभव होता; उससे लिपटे रहते।
अनुभव यह हुआ कि अगर बंदरों को भयभीत कर दिया जाए, तो फिर वे दूध पीने
भी नहीं जाते थे दूसरी मां के पास; भूखे रह जाते। लेकिन उस मां के पास रहते, जिससे उन्हें प्रेम की गर्मी का आभास होता। तार वाली मां के पास वे कंपते रहते, ऊन वाली मां के पास वे शांत हो जाते। उनका कंपन बंद हो जाता। भरोसा। कोई प्रेम भी नहीं है वहां, केवल गर्मी है। लेकिन भरोसा--ख्याल है कि वहां प्रेम की गरमाहट है, वह उनको आश्वस्त कर देती है।
फिर इन मनोवैज्ञानिकों ने कुछ बंदरों को तार वाली मां के पास ही बड़ा किया और कुछ बंदरों को ऊन वाली मां के पास बड़ा किया। ऊन वाली मां के पास जो बच्चे बड़े हुए, वे कम भयभीत होते थे, तार वाली मां के पास जो बच्चे पैदा हुए, बड़े हुए, वे सदा भयभीत रहते थे, सदैव कंपते रहते, डरे रहते थे।
प्रेम के क्षण में भय कम होता है। आपको प्रेम के क्षण में जो सुखद अनुभूति होती है, वह भय के कम होने की है। और अगर प्रेम वस्तुतः पूरी युग में भी शांति से जा सकता है बिना भयभीत हुए।
तो घृणा है शील के विपरीत, प्रेम है शील। क्रोध शील के विपरीत है। अक्रोध, क्षमा, शील, आप खोज लें। जिस-जिससे आपका कंपन बढ़ता हो, वह शील नहीं है। और जिस-जिससे आपका कंपन कम होता हो, आपका भय क्षीण होता हो, वह शील है। अगर महावीर और बुद्ध अभय हैं, तो अभय होने का कारण यह नहीं कि आप उनको छुरा मारेंगे, तो वे नहीं मर जाएंगे। मर ही जाएंगे। कि आप उनको जहर दे देंगे, तो वे नहीं मरेंगे। मर ही जाएंगे। अभय है तो इस कारण कि उनके भीतर जिन-जिन चीजों से कंपन पैदा होता था, उनके भोजन-स्रोत समाप्त कर दिए गए। भय को भी भोजन चाहिए। हम भय को इकट्ठा कर रहे हैं और भोजन भी दे रहे हैं!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं भय से छूटना है। लेकिन अगर मैं उनसे कहूं कि तब क्रोध से, घृणा से, ईर्ष्या से छूटना पड़ेगा। क्रोध से सीधा नहीं छूटा जा सकता, भय से सीधा नहीं छूटा जा सकता। भय से छूटना चाहें और भय के सारे भोजन जुटाते रहें, तो छूटना कैसे हो सकेगा? तब आप अपने ही विपरीत काम में लगे हैं।
बुद्ध ने शील को सुरक्षा कहा है। शील में सत्य, प्रेम, करुणा, क्षमा सब
आ जाते हैं। वे सब गुण जो आपके भीतर से भय को विसर्जित कर देते हैं।
"शील का अभाव हो, तो यात्री के पांव लड़खड़ाते हैं और चट्टानी पथ पर कर्म
के पत्थर उसके पांव को लहूलुहान कर देते हैं।"
तो ध्यान रखना, धर्म के लिए शील का मूल्य नीति का मूल्य नहीं। इसलिए नहीं सत्य बोलना कि झूठ बोलने से दूसरों को हानि होती है। इसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं। इसलिए क्रोध मत करना कि दूसरों को दुख होता है। इससे

भी धर्म का कोई लेना-देना नहीं। यह नैतिक व्यवस्था की बात है। धर्म उन्हीं शब्दों का उपयोग करता है। लेकिन उसका प्रयोजन भिन्न है।
धर्म कहता है, इसलिए झूठ मत बोलना कि झूठ बोले कि तुम कंपे और तुम कंपे
कि आगे की यात्रा असंभव है। इसका दूसरे से कोई संबंध नहीं है। दूसरे को लाभ हो जाएगा, लेकिन वह प्रयोजन नहीं। तुम असत्य बोले कि कंपे। फिर इन कंपते पैरों से उस पर्वत-शिखर पर नहीं जाया जा सकता, जो कि परम अनुभव है। और उसके बिना जीवन सदा नरक बना रहेगा। क्रोध से दूसरे को हानि होती है निश्चित। लेकिन क्रोध न करेंगे तो दूसरे को लाभ होगा; वह भी निश्चित है। पर धर्म के लिए वह प्रयोजन नहीं है। वह गौण है, बाई-प्रोडक्ट, उप-उत्पत्ति है। एक आदमी गेहूं बोता है, भूसा भी पैदा हो जाता है; भूसा पैदा करने के लिए कोई गेहूं नहीं बोता है। गेहूं ही पैदा करने के लिए बोता है; भूसा भी पैदा हो जाता है, वह दूसरी बात है। ठीक भूसा जैसी है नीति, धर्म के लिए। वह पैदा होती है, पर वह लय नहीं है। आप ही हैं लय। और तब धर्म एक वैज्ञानिक व्यवस्था हो जाती है। तब मामला साफ है।
इसलिए नहीं कहते आपसे कि क्रोध मत करो कि दूसरे को दुख देना बुरा है
और दूसरों को दुख दोगे, तो नरक चले जाओगे। नहीं इसलिए क्रोध मत करो कि क्रोध के कारण तुम अभी नरक में हो। चले जाओगे, यह फिजूल की बात है। वह भी तरकीब है हमारी कि इसे आगे रखेंगे तो उपाय बना सकते हैं। बीच में कुछ क्रोध कर लेंगे, माफी मांग लेंगे। इसके पहले कि नरक जाएं, क्षमा कर लेंगे, कसम खा लेंगे, व्रत ले लेंगे, कुछ पुण्य कर लेंगे, कुछ दान कर लेंगे, तीर्थ-यात्रा कर आएंगे। तो इसके पहले कि नरक में ढकेले जाएं, हम कुछ इंतजाम कर लेंगे, समय अगर मिल जाए। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, समय बिल्कुल नहीं है। समय है ही नहीं। क्रोध किया कि आप नरक में हैं। दोनों के बीच उपाय नहीं है क्षण भर का भी। प्रेम किया कि आप स्वर्ग में हैं। दोनों के बीच में जगह, अंतराल नहीं है।
साधक के लिए तो दृष्टि इस पर ही टिका रखनी है। इस खोज में, दुख के पार
ले जानेवाली खोज में--कौन उसके पैरों को मजबूत करेगा, क्या उसके पैरों को मजबूत करेगा? वही नीति है, वही शील है।
"ओ साधक, अपने पांवों को दृढ़ कर। क्षांति (धैर्य) सत्व में अपनी आत्मा
को नहला, क्योंकि अब तू उसी के नाम के द्वार को पहुंच रहा है--बल और धैर्य का द्वार।"
अपने पांवों को दृढ़ कर इसका मतलब इतना ही है कि ऐसा कुछ भी मत कर, जिससे तू कंपे। ऐसा कुछ कर, जिससे तेरा कंपन न हो, तू ठहर सके, खड़ा हो सके। पैरों में बल शारीरिक बात नहीं है, पैरों में बल आत्मिक बात है। वह जो पैरों में खड़े होने का बल है इस पथ पर, वह तभी आएगा जब मेरे भीतर कंपती हुई आत्मा अकंप हो जाए। जैसे कि किसी रों से मजे से चला जा सकता है। सच तो यह है कि वहां जितने कंपते पैर हों, उतनी ही यात्रा सुगम होती है। संसार के रास्ते पर कंपते पैर ठीक हैं। वह पूरा रास्ता ही कंप रहा है। वहां पैरों को ठहराने का उपाय ही नहीं है। और वहां जितने आपके कंपते हैं पैर, उतनी आप तेजी से यात्रा कर लेंगे। वहां ठहरे हुए आदमी की कोई गति नहीं है; वहां तो भागते-दौड़ते आदमी की गति है।
लेकिन संसार के पार, उसे हम सत्य कहें, मुक्ति कहें, परमात्मा कहें, जो
भी नाम दें, उसकी तरफ जाने वाले आदमी के पैर अकंप चाहिए।
कैसे होंगे अकंप?
धैर्य से।
हम कंप क्यों जाते हैं इतनी जल्दी?
धैर्य की बड़ी कमी है। थोड़ी भी प्रतीक्षा नहीं कर पाते, रत्तीभर नहीं रुक पाते।
हमारी हालत वैसी है, जैसे छोटे बच्चे हैं। छोटे बच्चे आम की गोई को बो देते हैं जमीन में लेकिन घड़ी आधी घड़ी में उखाड़ कर फिर देखते हैं कि अभी तक अंकुर आया कि नहीं? अंकुर कभी नहीं आएगा; क्योंकि दिन में दस बार तो वह निकाल ली जाएगी जमीन से। अंकुर आ सकता था, एक महीने, दो महीने की प्रतीक्षा करनी जरूरी थी। पानी देना जरूरी था। और गोई छिपी रहे जमीन के गर्भ में, यह

जरूरी था। उसे बार-बार निकाल लेना खतरनाक है। और हम सब छोटे बच्चे हो दिन में भी हो सकता है, लेकिन तब बड़ा धैर्य चाहिए। तीन जन्मों में भी न होगा, धैर्य की कमी हो तो।
धैर्य प्रयास को गहराई दे देता है; अधैर्य उथलापन ला देता है।
अधैर्य की वजह से हम ऊपर ही ऊपर रह जाते हैं। धैर्य तीव्रता देता है
और गहराई में उतरने की संभावना बन जाती है।
महाकाश्यप बुद्ध के पास आया। तो बुद्ध से महाकाश्यप ने पूछा कि कितना समय लगेगा? कब आएगी वह घड़ी जब मैं भी बुद्ध हो जाऊंगा? बुद्ध ने कहा, अगर तूने दुबारा पूछा तो समय बहुत लग जाएगा। फिर मैं भी तेरी कोई सहायता नहीं कर सकता। अभी तू क्षम्य है, नया-नया पहली दफा आया है। पूछ लिया कोई हर्ज नहीं। अब दोबारा मत पूछना, तो जल्दी हो सकती है बात।
फिर महाकाश्यप का दूसरा ही उल्लेख है। बस दो ही उल्लेख हैं बुद्ध के जीवन में महाकाश्यप के। और वह उनका सबसे कीमती शिष्य था। एक यह उल्लेख है और एक और उल्लेख है कि वर्षों बाद, कोई चालीस वर्ष बाद, एक दिन बुद्ध आकर मौन बैठ गए हैं मंच पर। उनके हाथ में एक कमल का फूल है, और वह उस फूल को देखे चले जाते हैं। और हजारों लोग इकट्ठे हुए हैं और वे सुनना चाहते हैं। और बुद्ध बोलते नहीं, मौन बैठे हैं और उस फूल को देखे चले जाते हैं। ऐसा कभी न हुआ था। आखिर किसी ने खड़े होकर कहा कि यह कब तक चलेगा। हम सुनने आए हैं दूर से, आप चुप बैठे हैं। तो बुद्ध ने कहा, जो मैं शब्दों से कह सकता था, वह मैं कई बार कह चुका। आज मैं वह कह रहा हूं, जो शब्दों से नहीं कहा जा सकता। अगर कोई समझता हो, तो इशारा करे। हजारों लोग इकट्ठे थे, सन्नाटा छा गया। शब्द ही समझ में नहीं आते थे, तो निःशब्द क्या समझ में आएगा!
लेकिन एक खिलखिलाहट की आवाज भीड़ में गूंजी। और बुद्ध ने कहा कि मालूम होता है महाकाश्यप है; पकड़ो उसे, भाग न जाए। चालीस साल पहले इस आदमी की वाणी सुनी थी, आज इसकी हंसी सुनी। बुद्ध ने कहा, महाकाश्यप क्यों हंसता है तू? क्या हुआ तुझे? तो महाकाश्यप ने कहा, जिसकी प्रतीक्षा कर रहा था, वह हो गया। शब्द से नहीं हुआ, आपके मौन से हो गया। तो बुद्ध ने वह फूल, जो उनके हाथ में था, वह महाकाश्यप को दिया और कहा कि जो मैं शब्दों से दे सकता था, मैंने दे दिया सबको; और जो मैं शब्दों से नहीं दे सकता था, वह मैं महाकाश्यप को देता हूं।

फिर महाकाश्यप की एक अलग परंपरा बनी शिष्यों की, जिसमें मौन हस्तांतरण की व्यवस्था हुई। उसमें अट्ठाईस महागुरु हुए भारत में। और शिष्य को तभी दान मिला उस ज्ञान का, जब वह इस घड़ी में आ गया धैर्य की। वर्षों क्षांति, प्रतीक्षा। और जरा भी अधैर्य नहीं कि कब हो। कब होने का सवाल ही नहीं, ना भी हो, तो चलेगा। जब इस अवस्था में कोई शिष्य आ गया, तो फिर महाकाश्यप की परंपरा का सूत्र मिला।
बोधिधर्म उसमें अट्ठाइसवां गुरु हुआ महाकाश्यप के बाद। और कहते हैं, बोधिधर्म भारत भर में घूमा, लेकिन कोई आदमी न मिल सका, जो इतना धैर्यवान हो, जिसे वह मौन में कुछ कहे और वह ले ले। तो उसे चीन जाना पड़ा। और तब चीन में छह गुरुओं की परंपरा चली। लेकिन फिर सातवां आदमी नहीं खोजा जा सका। वह जो फूल बुद्ध ने महाकाश्यप को दिया था, वह बड़ा पुरस्कार था महाकाश्यप के सतत मौन का और धैर्य का, चुपचाप प्रतीक्षा का।
इस महापथ पर जो यात्रा करते हैं, धैर्य के सत्व में उन्हें अपनी आत्मा
को नहलाना होगा, उन्हें अनंत प्रतीक्षा की तैयारी करनी होगी। ऐसा नहीं है कि उन्हें अनंत प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यही उलटी बात है। अनंत प्रतीक्षा की तैयारी होगी, तो क्षण भर में भी हो सकता है। और इसी क्षण पाने की चेष्टा होगी, तो अनंत में भी नहीं होगा। होने का मार्ग ही है कि मैं राजी हूं प्रतीक्षा के लिए। रोकने का उपाय यही है कि अभी हो। जीवन में जो भी महत्तर है वह ऐसा नहीं होता। अधैर्य के साथ उसका कोई संबंध नहीं। जो भी महान है जीवन में, उसकी पात्रता के लिए उतनी ही महान प्रतीक्षा चाहिए। हम परमात्मा को भी ऐसे चाहते हैं, जैसे बाजार गए हों, और कोई सामान खरीद लाए! परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। यह थोड़ा कठिन मालूम पड़ेगा।

परमात्मा एक भाव-दशा है, वस्तु नहीं।
और धैर्य, अनंत धैर्य ही आप में उस भाव-दशा को पैदा कर देता है, जिसे हम परमात्मा कहते हैं। कोई आता नहीं है बाहर से; आप ही मौन प्रतीक्षा करते- करते परमात्मा हो जाते हैं।
यह जल्दबाजी--अभी हो जाए--आपके भीतर उपद्रव बनाए रखती है; तूफान चलता रहता है। धैर्य में तूफान अपने आप खो जाता है। बुद्ध का बहुत जोर था, महावीर का बहुत जोर था धैर्य पर। और दुनिया में कोई भी अध्यात्म की धारा नहीं है, जहां धैर्य पर जोर न हो। आपने पूछा कि कब होगा। जान लेना कभी न होगा। आप चुप रहे, मन में यह सवाल ही न उठे कि कब होगा अभी भी हो सकता है, इसी क्षण भी हो सकता है।
"धैर्य के सत्व में अपनी आत्मा को नहला"
चौबीस घंटे, जहां तक बन सके, जिस बात में भी बन सके, धैर्य रखना। और अगर थोड़े से आपको धैर्य के अनुभव हो जाएं, तो फिर आप अधैर्य कभी न करेंगे। सच तो यह है कि अधैर्य करके हम बिगाड़ते हैं सब। अधैर्य करके हम ही बिगाड़ देते हैं। फिर जितना बिगड़ जाता है, उतना अधैर्य और बढ़ जाता है। धैर्य करके हम साथ देते हैं और जितना धैर्य का साथ होता है, उतनी सफलता हो जाती है। सफलता हो जाती है, तो और भरोसा बढ़ जाता है और धैर्य की संभावना बढ़ जाती है। जीवन में दुष्टचक्र निर्मित होते हैं, आप अधैर्य करते हैं, काम बिगड़ जाता है। तो आप सोचते हैं कि इतना अधैर्य किया, तब भी बिगड़ गया। अगर धीरज रखते तो कहीं के न रहते, तो और अधैर्य करो, और जल्दबाजी मचाओ।
मौसमी फूल उगाने हों, तो अधैर्य चल भी सकता है। लेकिन ऐसे वृक्ष लगाने हों जो कि शाश्वत हों, सनातन हों, और जिनमें फूल सदा ही आते रहें, और जो सदा युवा हों, सदा हरे हों, ऐसे शाश्वत वृक्ष लगाने हों, तो फिर मौसमी फूल लगाने वाला जो मन है, वह काम नहीं आएगा। उससे बचना होगा। भूमि चाहिए धैर्य की, तभी शाश्वत के बीज पनपते हैं। सूत्र कहता है, अपनी आंखों को बंद मत कर, और दोरजे (सुरक्षा के वज्र) से अपनी दृष्टि को मत हटा। काम के बाण उस व्यक्ति को विद्ध कर देते हैं, जो विराग को प्राप्त है और क्या है? हड्डियां हैं, मांस है, मज्जा है, सौंदर्य कहां है? क्या है? इसका स्मरण रखो। इस स्मरण को गहरा करो, तो सुंदर स्त्री दिखाई पड़ कर जो आकर्षण की धारा भीतर पैदा हो जाती है, जो वासना जग जाती है, उसके विपरीत एक कवच निर्मित हो जाएगा। सुंदर स्त्री के दिखाई पड़ने पर तब आपके भीतर कुछ भी न होगा। बुद्ध ने कहा है, स्त्री को उसके शरीर को भेदकर देखो। धन आकर्षित करे, तो धन के प्रति सजग होकर देखो कि उससे किसी को क्या मिला है? किसी को क्या मिल सकता है? लोभ पकड़े, क्रोध पकड़े, जो भी पकड़े, उसे सजग होकर देखो कि उससे क्या मिला है? और किसको क्या मिल सकता है? और तुम क्या पा सकोगे? अगर यह प्रतीति और यह विचार और यह निरीक्षण निरंतर चलता रहे, तो विराग का जन्म होता है। विराग दोरजे है। विराग एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है अपने चारों तरफ, चित्त के चारों तरफ एक सुरक्षा की दीवाल निर्मित करने की। तिब्बत में जब भी कोई साधक गहरी साधना में जाना चाहता है, तो गुरु पूछता है, क्या तुझे दोरजे उपलब्ध हो गया? अगर दोरजे मिल गया हो, तो ही आगे बढ़; क्योंकि खतरे हैं बिना दोरजे के।
साधारण आदमी को इतना खतरा नहीं है जितना साधक को खतरा है। साधारण आदमी को इतनी सुरक्षा की जरूरत भी नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे साधारण नागरिक को कोई रक्षा-कवच पहनने की जरूरत नहीं है। लेकिन सैनिक युद्ध के मैदान पर जाए, तो उसे रक्षा-कवच की जरूरत है। साधारण आदमी ठीक है, वासनाओं से बिंध जाता है। तीर छिद जाते हैं, चलता जाता है।
लेकिन साधक तो किसी बड़ी यात्रा पर निकला है, जहां उसकी शक्ति अगर इन क्षुद्र बातों में खोती है, तो यात्रा असंभव हो जाएगी। और पहाड़ियों से गिरने का खतरा है। समतल भूमि पर तो आदमी चल भी सकता है। तो तिब्बत में वे कहते हैं कि उस यात्रा पर निकलने के पहले रक्षा-कवच, दोरजे, वज्र-कवच चाहिए। बौद्धों का एक संप्रदाय है वज्रयान। पूरी परंपरा ही इस वज्र के निर्मित करने पर खड़ी है। और यह वज्र निर्मित होता है।

अब तक तो ऐसा था कि यह बात सिर्फ ऐसी लगती थी काल्पनिक होगी, लेकिन अब
तो वैज्ञानिक जांच की भी सुविधा है। अब ऐसे यंत्र निर्मित हो गए हैं, जो आपके पास रख दिए जाएं, तो आपकी विद्युत-तरंगों की खबर देते हैं। अगर आप क्रोध से भरे हैं, तो यंत्र खबर देता है। अगर आप प्रेम से भरे हैं तो यंत्र खबर देता है। अगर आप बैठे हैं और एक सुंदर स्त्री आपके पास से निकले तो यंत्र खबर देता है कि आप प्रभावित हुए कि नहीं। एक हीरा आपके सामने पड़ा हो तो यंत्र खबर देता है कि आप लालायित हुए या नहीं। क्योंकि जब आप लालायित होते हैं तो आपकी विद्युत-ऊर्जा उस हीरे की तरफ बहनी शुरू हो जाती है। और जब लालायित नहीं होते तो आपके पास से कोई विद्युत-ऊर्जा नहीं बहती। हीरा वहां पड़ा होता है, आप यहां होते हैं, दोनों के बीच कोई संबंध नहीं होता। इस अवस्था का नाम विराम है।
भर्तृहरि के संबंध में कथा है। वह सारा राज्य छोड़ कर चले गए। और वह असाधारण व्यक्ति थे भर्तृहरि। क्योंकि उन्होंने राग को इतना जाना, जितना शायद ही किसी ने जाना हो। उन्होंने भोग को इतना जाना, जितना शायद ही किसी ने जाना हो। और स्वभावतः जो भोग को इतना जान लेगा वह उससे छूट जाएगा। अज्ञान में ही बंधन है।
और भर्तृहरि इतना भोगे कि ऊब गए। किताब लिखी है "शृंगार शतक"। उसमें बड़ी प्रशंसा की है सौंदर्य की, भोग की, राग की। इस संसार की प्रशंसा में वैसे वचन फिर नहीं कहे गए। उतना अनुभव का आदमी भी नहीं हुआ, जिसने शरीर में, काम में, यौन में ऐसी गति पाई हो--संसार जैसे परम अर्थों में भोगा गया है। लेकिन व्यर्थ हो गया।
फिर भर्तृहरि छोड़ कर चले गए। दो किताबें लिखी हैं उन्होंने। फिर दूसरी किताब लिखी "वैराग्य शतक।" एक था "शृंगार शतक।" फिर लिखा "वैराग्य शतक।"
भर्तृहरि जंगल में बैठे हैं एक दिन, तो एक बड़ी अदभुत घटना घटी। एक वृक्ष की आड़ में ध्यान कर रहे हैं। एक घुड़सवार दौड़ता हुआ आया। और जिस वक्त घुड़सवार की नजर नीचे गई, उसी वक्त भर्तृहरि की भी नजर नीचे गई। देखा कि बहुत बड़ा हीरा रास्ते पर पड़ा है। और उसी क्षण दूसरी तरफ से भी एक घुड़सवार आया और उसकी भी नजर हीरे पर पड़ी। एक क्षण में यह सब हो गया। और दोनों घुड़सवारों की तलवारें निकल गईं। क्योंकि वह हीरा दोनों को दिखाई पड़ गया था। और भर्तृहरि को भी दिखाई पड़ रहा है। दोनों ने तलवारें हीरे के पास टेक दीं और दोनों ने कहा कि नजर मेरी पहले पड़ी है और मालिक मैं हूं। थोड़ी ही देर में खून-खराबा हो गया। दोनों की छातियों में तलवारें घुस गईं। थोड़े ही क्षण में दोनों की लाशें पड़ी थीं और खून पड़ा था चारों तरफ। हीरा अपनी जगह पड़ा था।
भर्तृहरि हंसने लगे। उन्होंने कहा, अदभुत, जिसकी मालकियत की कोशिश की
गई और हीरे पड़े रह जाते हैं।
उस घड़ी अगर हम कुछ झांक सकते तो दो आदमी तीव्र वासनाओं से भरे हुए हीरे पर टिके थे। वे तलवारें ही हीरे के पास नहीं टिक गई थीं, उन दोनों की आत्माएं भी बाहर निकल कर उस हीरे के पास टिक गई थीं। तभी तो कोई अपनी जान दे को तैयार हो जाता है। वह हीरा उनके सारे जीवन के सत्व को खींच लिया। हीरे ने खींचा, ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि हीरे का कोई कसूर नहीं। हीरे को पता ही नहीं। वे खुद ही खिंच गए, असुरक्षित थे, कोई दोरजे उनके पास न था। यह एक आदमी भर्तृहरि भी वहीं बैठा था। और यह हंसने लगा और इसे बड़ी हंसी आई, क्योंकि जीवन का सारा उपद्रव प्रत्यक्ष हो गया उस घटना से। यह सारा संघर्ष व्यक्तियों का, समाजों का, राष्टरें का, सब प्रकट हो गया--उस छोटी से घटना से। जिस पर हम लड़ते हैं, वह पड़ा रह जाता है और हम नष्ट हो जाते हैं।
भर्तृहरि ने आंखें बंद कर लीं। यह भर्तृहरि दोरजे में है। वह हीरा वहां पड़ा है, भर्तृहरि भी वहां हैं, लेकिन दोनों के बीच कोई संबंध निर्मित नहीं हो रहा है। भर्तृहरि यात्रा पर नहीं निकल रहे हैं हीरे की तरफ।
जीवन को जो जितना सजग होकर देखेगा, उतनी ही उसकी वासना क्षीण होती है
और विराग का जन्म होता है।

विराग कोई राग की दुश्मनी नहीं, राग का अभाव है। इसलिए आप उनको विरागी
मत समझ लेना, जो भागते हैं। यहां यह भी हो सकता था। भर्तृहरि देखते हीरे को और भाग खड़े होते वहां से कि यहां हीरा पड़ा है, यहां मैं नहीं रुक सकता--इसका मतलब था कि राग था, दोरजे नहीं था पास में। जो लोग भागते हैं संसार से, उनके पास दोरजे नहीं है, अन्यथा भागने की कोई जरूरत नहीं है। भागते इसलिए हैं कि डर है। अगर थोड़ी देर रुके तो हीरा जीत जाएगा और मैं हार जाऊंगा। इसलिए रुको ही मत। हीरा दिखे कि भाग खड़े होओ।
लेकिन भागने में ही तुमने खबर कर दी कि तुम्हारी यात्रा हीरे की तरफ
हो गई। वह पत्थर का टुकड़ा न रहा, हीरा हो गया। और हीरा होते ही वासना प्रवेश कर गई। नहीं तो पत्थर का टुकड़ा है।
जो भागता है संसार से, वह विरागी नहीं है, वस्तुतः वह विपरीत रागी है। उसका भी राग है, लेकिन शीर्षासन करता हुआ राग है। वहां सिर टेक दिया है उसने, जहां आपके पैर टिके हैं। और मैं मानता हूं कि जहां पैर टिके हैं, वहां सिर टेकना कोई अच्छी बात नहीं। और उल्टा उपद्रव हो गया। पैर ही ठीक थे, हीरे पर सिर टेकने की क्या जरूरत?
विराग का अर्थ हैः वह जो खींचता था, अब नहीं खींच पाता, क्योंकि मैं सुरक्षित हूं, क्योंकि मुझे दिखाई पड़ गई राग की व्यर्थता।
समझें इस फर्क को।
राग सार्थक है दोनों हालत में। अगर मैं हीरे को पकडूं, और राग सार्थक
है विपरीत हालत में अगर मैं हीरे से भागूं। क्योंकि दोनों हालत में हीरा वजनी है और मैं कमजोर हूं। या तो हीरा अपनी तरफ खींच लेता है या अपने से हटा देता है। लेकिन दोनों हालत में हीरा पड़ा रहता है और मैं गतिवान हो जाता हूं। मैं कंपित हो जाता हूं, हीरा नहीं कंपता। एक पत्थर का टुकड़ा जीत जाता है, और मैं हार जाता हूं। इधर या उधर, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हीरे ने आपको चला दिया, चलायमान कर दिया। हीरे ने संसार निर्मित कर दिया। यह मन का चलायमान हो जाना ही संसार है।
लेकिन एक और अवस्था भी है कि हीरा भी पड़ा है और आप भी हैं, लेकिन कोई गति नहीं हो रही आपके भीतर से। न हीरे की तरफ कुछ जा रहा है, न हीरे के विपरीत कुछ जा रहा है। कुछ हो ही नहीं रहा; हीरा ही पड़ा है, जैसे कोई भी पत्थर पड़ा हो। और हीरा पत्थर ही है। दिया हुआ मूल्य आदमी का है।
एक कोहिनूर को भी डालना और एक कंकड़ को भी डालना। कंकड़ जरा भी शर्मिदा
न होगा कोहिनूर के सामने। और कंकड़ एक बार भी प्रार्थना न करेगा परमात्मा से कि मुझे कोहिनूर बना दो। कोहिनूर भी अकड़ कर नहीं बैठेगा कि मैं कोई हूं, कुछ खास हूं। पत्थर, पत्थर है।
अगर आदमी जमीन पर न हो, तो कोहिनूर में और कंकड़ में क्या फर्क होगा? कोई भी फर्क नहीं होगा। आदमी ने फर्क पैदा किया। आदमी को कोहिनूर पत्थर नहीं है। क्यों पत्थर नहीं है कोहिनूर? कोहिनूर में जो चमक है वह आदमी की वासना की चमक है। वह जो कोहिनूर में दिखाई पड़ रहा है, वह आदमी के भीतर का भाव है। आदमी अपने को उंडेल रहा है कोहिनूर में। और जो देख रहा है, वह अपनी ही सोई ऊर्जा है।
अगर व्यक्ति राग को ठीक से समझता जाए, तो विराग को उपलब्ध होता है। विराग वज्र है। और जब विराग की एक दीवाल चारों तरफ खड़ी हो जाती है तो आप इस भरे संसार में भी संसार से बाहर हो जाते हैं। फिर आप ठेठ बाजार में बैठे हुए हिमालय पर हो सकते हैं।
"अपनी आंखों को बंद मत कर, और दोरजे से अपनी दृष्टि को मत हटा"
संसार से आंखों को बंद मत कर, बंद करने से कुछ हल न होगा। संसार आंखों
के भीतर खड़ा हो जाएगा। अगर कुछ करना ही है तो संसार से आंखों को हटा, दोरजे पर लगा; बंद मत कर। वह जो सुरक्षा हो सकती है, उस पर अपनी पूरी दृष्टि को लगा। विराग तेरी समस्त दृष्टि में बस जाए।
"काम के बाण उस व्यक्ति को बद्ध कर देते हैं, जो विराग को प्राप्त नहीं हुआ है।" "कंपन से सावधान। भय की सांस के नीचे पड़ने से धैर्य की कुंजी में जंग लग जाता है और जंग लगी कुंजी ताले को नहीं खोल सकती।"

एक तो कुंजी का मिलना मुश्किल है। और मिल भी जाए तो हम उसे जंग लगा लेते हैं। धैर्य की कुंजी में जंग लग जाता है कंपन से, भय से।
"जितना ही तू आगे बढ़ता है, उतना ही तेरे पांव को खाई-खंदकों का सामना करना होता है। और जो मार्ग उधर जाता है, वह एक ही अग्नि से प्रकाशित है-- साधक के हृदय में जलने वाली अग्नि से।"
वहां कोई बाहर का दीया साथ न देगा। और वहां कोई बाहरी प्रकाश नहीं है
उस रास्ते पर। रास्ता अंधेरा है। और अगर कोई बाहरी प्रकाश के आधार से जा रहा है वहां तो नहीं जा सकेगा। क्योंकि वह अंधकार बाहरी प्रकाश से नहीं मिट सकता। वह अंधकार और तरह का अंधकार है। आपके दीए उसे नहीं मिटा सकेंगे। उस अंधकार को मिटाने के लिए एक ही दीया है, और वह है, साधक के हृदय में जलने वाली साहस की अग्नि।
भय बाधा है, साहस सीढ़ी है।
भय से विपरीत है साहस। साहस का क्या मतलब होता है?
साहस का मतलब होता है, जो अभी नहीं हुआ है, जो अभी प्रकट नहीं, उसके लिए चेष्टा; जो अभी अज्ञात में है, उसके लिए प्रयास।
भय का मतलब है, जो ज्ञात है, उसको पकड़ कर बैठ जाना।
आपका एक पैर जमीन पर है, जब आप एक कदम उठाते हैं जमीन से, तो आप अज्ञात में कदम उठा रहे हैं। अब यह पैर उस जमीन पर पड़ेगा, जिससे आप परिचित नहीं हैं। अगर आप भयभीत आदमी हैं, तो जिस जमीन पर आप खड़े हैं, उसको पकड़े रहें।
अगर साहस के आदमी हैं तो जिस जमीन को जान लिया, उसको छोड़ें।
ध्यान रहे, भय पकड़ है, साहस त्याग है।
जो जान लिया, उसे छोड़ें। जिसे पहचान लिया और जिसमें कुछ भी न पाया, अब उसको खोने में डर क्या है? ज्यादा से ज्यादा यही होगा कि जो जमीन पैर के नीचे है, वह खो जाएगी। लेकिन वह जान ली गई है, जी ली गई है। अब उसका सार क्या है? नई भूमि का खतरा है। पता नहीं भूमि हो भी या न हो। इस खतरे के कारण साहस की जरूरत है। और धर्म की यात्रा तो निरंतर अज्ञात से अज्ञात में है।
जो हम जानते हैं, वह संसार है।
और जो हम नहीं जानते हैं, वह ही परमात्मा है।
उस अनजान में तो साहस की जरूरत पड़ेगी। तो पहले तो भय को हटा देना जरूरी है और फिर साहस को जन्माना जरूरी है।
"एक ही अग्नि से प्रकाशित है वह मार्ग--साधक के हृदय में जलने वाली अग्नि से। जितना ही कोई साहस करता है, वह उतना ही पाता है। और जितना ही वह डरता है, उतनी ही वह ज्योति मंद पड़ जाती है।"
जैसे दीया जलता है बाहर का, तो आपको पता है, आक्सीजन से जलता है, नाइटरेजन से बुझता है। आक्सीजन न हो पास दीये के हवा में, तो दीया बुझने लगता है। नाइट्रोजन ज्यादा हो, तो दीया बुझने लगता है। अगर तूफान चल रहा हो, और आपके घर के दीये के लिए डर पैदा हो जाए कि तूफान में बुझ न जाए, तो एक कांच का बर्तन उस पर ढांक देना बचाने के लिए। तूफान शायद न बुझा पाता, वह कांच का ढंकने वाला बर्तन उसे शीघ्र ही बुझा देगा। क्योंकि कांच के ढंके बर्तन के भीतर बहुत थोड़ी आक्सीजन है; जल्दी ही जल जाएगी दीये में। नाइट्रोजन बचेगी, वह नाइट्रोजन बुझा देगी।
भीतर के दीए में भय नाइट्रोजन है और साहस आक्सीजन। वह भीतर का दीया जलता है जितना साहस हो, बुझता है जितना भय हो। और जैसे नाइटरेजन और आक्सीजन का अपना रासायनिक विज्ञान है, वैसा ही उस भीतर का भी अपना रासायनिक विज्ञान है। तो सब उपायों से, जिन-जिन उपायों से साहस बढ़े, बढ़ाना है। और जिन-जिन उपायों से भय कम हो, वे-वे उपाय करना। तो ही वह ज्योति जलेगी, जो वहां साथ देगी।
एक साधक अपने गुरु के घर से विदा हो रहा था। रात थी अंधेरी। और उस साधक
ने कहा, मैं रात यहीं रुक जाऊं; रात अंधेरी है और रास्ता अैजान है, फिर कोई संगी-साथी भी नहीं। तो गुरु ने कहा कि मैं तुझे दीया जला कर दे देता हूं, तू यह दीया लेकर चला जा। दीया जला कर गुरु ने दे दिया। वह साधक अपने हाथ में दीया लेकर सीढ़ियां उतर गया, तो आखिरी सीढ़ी पर गुरु ने कहा, एक क्षण रुक, और फूंक मार कर दीया बुझा दिया! उस साधक ने कहा, यह क्या खेल करते हैं आप?

गुरु ने कहा, इस अंधेरे रास्ते पर तो मैं तुझे दीया दे दूंगा, लेकिन मैं तुझे उस अंधेरे रास्ते पर कैसे दीया दे सकता हूं? और इस अंधेरे रास्ते पर भी तू बिना दीए के ही चल, अपने ही पैर की रोशनी से। बेहतर है कम से कम तुझे यह तो पता चले, कि अंधेरे में भी चला जा सकता है। तेरा साहस तो बढ़े। और फिर उस रास्ते पर, जिसका तू पथिक है, मैं कोई दीया तुझे न दे सकूंगा। अचानक मुझे ख्याल आया, इसलिए मैंने फूंक मारकर बुझा दिया, कि जब असली रास्ते पर दीया न दे सकूंगा, तो नकली रास्ते पर भी दीया देने से क्या सार है। और यह दीया देकर मैं तेरा भय बढ़ा रहा हूं। दीया बुझा कर तेरा साहस बढ़ा रहा हूं। तू अंधेरे में उतर जा, रास्ता मिल ही जाएगा। और खोजना, अंधेरा भी कट ही जाएगा। कोई अंधेरा शाश्वत नहीं है। और फिर मेरे जलाए दीए का भरोसा क्या, मेरी एक फूंक ने बुझा दिया! बाहर देख, कितनी आंधी चल रही है? और जो एक फूंक से बुझ गया है, वह आंधी में बुझ जाएगा। तो जो बुझ ही जाने वाला है, उसे देने का भी क्या प्रयोजन है! अगर मैं तुझे ऐसा दीया नहीं दे सकता, जो बुझे नहीं, तो जो बुझ सकता है, उसे देने का भी कोई अर्थ नहीं।
यह बात मूल्यवान है और ध्यान में रखने की है कि उस रास्ते पर आपके भीतर की ज्योति ही काम पड़ेगी। और भय अगर ज्यादा हुआ, तो ज्योति आपके भीतर की नहीं जग सकती। साहस हुआ, तो जग सकती है।
"वह हृदय-ज्योति वैसी ही है, जैसे किसी ऊंचे पर्वत शिखर पर चमकने वाली सूर्य की अंतिम किरण, जिसके बुझने पर अंधेरी रात का आगमन होता है। जब वह ज्योति भी बुझ जाती है, तब तेरे ही हृदय से निकल कर एक काली और डरावनी छाया मार्ग पर पड़ेगी और तेरे भय-कंचारों तरफ पड़ती है।
इस जगत और उस जगत के परमात्मा के नियम विपरीत हैं। ठीक ऐसे ही जैसे आप झील के किनारे जाकर खड़े हो जाएं और अगर मछलियां देखती हों झील की तो उन्हें आपका प्रतिबिंब जो दिखाई पड़ेगा, वह उलटा दिखाई पड़ेगा। सिर नीचे होगा और पैर ऊपर होंगे, और मछलियां समझेंगी कि आप उलटे खड़े हैं। लेकिन मछलियों को क्या पता कि झील के बाहर नियम उलटे हैं। झील के बाहर आदमी सीधा खड़ा है। जिनको हम सीधा कहते हैं झील के बाहर, वह झील में उलटा दिखाई पड़ता है। प्रतिबिंब उलटे हो जाते हैं। जिसे हम संसार कहते हैं, वह झील के भीतर पड़ा हुआ जगत है। यहां नियम उलटे हैं।
इस सूत्र को समझने के लिए कह रहा हूं कि यहां छाया तभी बनती है आपकी,
जब आपके चारों तरफ रोशनी होती है। यहां प्रकाश होता है, तो ही छाया बनती है। वहां जब प्रकाश नहीं होता, तब छाया बनती है। वहां के नियम उलटे हैं। यहां अंधेरे में कोई छाया नहीं बनती। यहां आप अंधेरे में खड़े हो जाएं, तो कोई छाया नहीं बनेगी। इस जगत में छाया बनाने के लिए प्रकाश की जरूरत है। उस जगत का नियम उलटा है। वहां छाया बनती है तब, जब प्रकाश नहीं होता। और छाया मिट जाती है, जब प्रकाश होता है। अगर आपके आस-पास अंधेरा पता चलता हो, तो भय को कम करना और साहस को बढ़ाना। यहां हम ध्यान में लगे हैं, वह भी भय कम करने और साहस को बढ़ाने का उपाय है। हजार तरह से यह हो सकता है। कभी छोटी- छोटी बातों से हो जाता है।
एक महिला ने, भारतीय महिला ने मुझे आकर कहा कि विदेशी महिलाएं नग्न हो जाती हैं, हमारी इतनी हिम्मत नहीं है। क्या बिना नग्न हुए घटना न घटेगी? नग्न होने से घटना घटने का कोई संबंध नहीं, संबंध किसी और बात से है। वह बात है भय और साहस की। वह जो सरलता से नग्न खड़ा हो गया, उसने बहुत सा भय छोड़ा है। वह कितना ही क्षुद्र मालूम पड़े कि कपड़े छोड़ने से क्या हुआ, कपड़ा नहीं छोड़ा उसने। कपड़े ही छोड़ा होता, तो कुछ भी न होता। लेकिन कपड़ा छोड़ने के पीछे कपड़े में छिपा हुआ जो भय है, वह भी छोड़ा।
लोग मुझसे आकर पूछते हैं, कपड़ा छोड़ने से क्या होगा? कपड़ा छोड़ने की बात
ही नहीं है यहां। लेकिन कपड़ा पकड़े हुए क्यों हैं? और छोड़ने से कुछ नहीं होगा, तो पकड़ने से क्या हो जाएगा? वह जो पकड़ है, वह भय है भीतर। फिर बहाने हम कोई भी खोज ले सकते हैं। क्योंकि हम अपने भय को भी रेशनलाइज करते हैं, उसके भी तर्क बिठाते हैं। वह जो नग्न खड़ा हो जा रहा है, वह एक भय छोड़ रहा है और एक साहस कर रहा है। हो सकता है, शरीर उसका कुरूप हो, और लोग क्या कहेंगे? जिस शरीर को हजारों-हजार--से खुद भी नहीं देखा है दूसरों के देखने का तो

सवाल ही नहीं है। उसे लोग देख कर क्या कहेंगे! क्या सोचेंगे! शरीर की नग्नता भी तो अपने को अनावृत छोड़ देना है लोगों के लिए। पागल समझेंगे, अनैतिक समझेंगे, अधार्मिक समझेंगे, बुरा समझेंगे--क्या समझेंगे लोग! वह सारा भय भीतर पकड़ रहा है; उस भय को छोड़ने की बात है। वस्त्र के साथ वह भी कभी गिरता है; वस्त्र के गिरने के साथ कभी भीतर साहस का भी जन्म होता है। मुझे याद आती है एक घटना। अमेरिका का एक युवा कवि है जिन्सबर्ग। बड़ी अजीब सी घटना उसके कवि सम्मेलन में घटी। केलिफोर्निया में एक कवि सम्मेलन में वह अपने गीत पढ़ रहा था। गीत में ऐसे शब्दों का भी उपयोग था, जिनको हम अश्लील कहते हैं। लेकिन जिन्सबर्ग का यह कहना है कि वे अश्लील शब्द नहीं हैं और हम उन्हें अश्लील इसलिए तो कहते हैं कि शरीर के कुछ अंगों को अश्लील कहते हैं, और वे हमारे अंग भी हैं। और जो है, उसकी कितनी ही निंदा करो, उससे कोई छुटकारा नहीं। जो है, वह है, यथार्थ है। इसलिए वह अश्लील शब्दों का भी सहज प्रयोग करता है। लोग गुस्से में आ गए। और एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि क्या तुम यह समझ रहे हो कि अश्लील शब्दों का कविता में उपयोग कर लिया, तो कोई बड़ा साहस किया।
तो जिन्सबर्ग ने कहा कि अब साहस की ही बात आ गई, तो तुम आ जाओ मंच पर और नग्न हो जाओ, या मैं नग्न हो जाता हूं। वह आदमी घबड़ाया; क्योंकि उसने यह नहीं सोचा था कि मामला यहां आ जाएगा। और जिन्सबर्ग कपड़े उतार कर नग्न खड़ा हो गया। और उसने कहा कि जो मैं कविता में कह रहा हूं, वह कविता में नहीं कह रहा हूं, बल्कि मैं मनुष्य को उसके पूरे यथार्थ में स्वीकार करता हूं। मेरे मन में कोई निंदा नहीं है।
और कितने ही वस्त्र ढांको, आदमी भीतर नंगा है। वस्त्र ढांकने में कुछ
भय है। तो उस महिला को मैंने कहा कि नहीं, ऐसी चिंता की कोई बात नहीं है। वस्त्र छोड़ना आवश्यक नहीं है। ध्यान बिना वस्त्र छोड़े भी हो जाता है; हो गया है बहुतों को। बुद्ध ने कभी वस्त्र नहीं छोड़े और ध्यान हो गया। महावीर ने छोड़े और ध्यान हो गया। कोई वस्त्र छोड़ने से ध्यान के होने न होने की बात नहीं है। वह महिला बहुत प्रसन्न हो गई। उसने कहा, तब बिल्कुल ठीक है। क्या बिल्कुल ठीक है? कौन सी चीज बिल्कुल ठीक है? ध्यान के बहाने भय है, बच गए। ऐसी जटिलता है आदमी के मन की। छोटे-छोटे भी भय छोड़ें। छोटे-छोटे भी साहस करें। एक-एक कदम उठाते-उठाते हजारों मील की यात्रा भी पूरी हो जाती है।

समाधि के सप्त द्वार
सातवां प्रवचन

घातक छाया

घातक छाया ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 12 फरवरी

हे शिष्य, उस घातक छाया से सावधान रह। उस समय तक कोई भी उच्चस्थ आत्मा
का प्रकाश निम्नस्थ आत्मा के अंधकार को नहीं मिटा सकता, जिस समय तक उससे सभी अहंकारी विचार निकल नहीं गए हैं और यात्री यह नहीं कहता है कि मैंने इस क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया है, मैंने कारण का नाश कर दिया है। अतः जो छायाएं पड़ती हैं, वे अब नहीं टिक सकतीं। क्योंकि अब उच्चस्थ और निम्नस्थ आत्मा के बीच अंतिम महायुद्ध आरंभ हो गया है। इस महायुद्ध में समस्त रण-क्षेत्र समा गया है, वह मानो है ही नहीं।
लेकिन, जब एक बार तू क्षांति (धैर्य) के द्वार को पार कर जाता है, तब तीसरा चरण भी उठ जाता है। तेरा शरीर तेरा सेवक है। और अब चौथे चरण की तैयारी कर। यह लोभ का द्वार है जो अंतरस्थ मनुष्य को फांसता है।
इसके पहले कि तू गंतव्य के निकट पहुंचे, इसके पहले कि तेरे हाथ चौथे द्वार के सांकल को उठाने के लिए उठें, तुझे अपनी आत्मा के उन सभी मानसिक परिवर्तनों को पराभूत करना और विचार-वृत्तियों का हनन करना है, जो सूम और कपटपूर्ण ढंग से आत्मा के ज्योतित मंदिर में बिना पूछे घुस जाते हैं। यदि तुझे उनके हाथों नहीं मरना है, तो तुझे अपने सृजनों को, अपने विचारों की संतान को निर्दोष बनाना है, जो अदृश्य और अजाने ढंग से मनुष्य मात्र के बीच, उसके पार्थिव अर्जनों के बीच घर बना लेती है और जो पूर्ण सा भासता है, उसकी शून्यता को और जो शून्य सा
भासता है, उसकी पूर्णता को तुझे समझना है। ओ निर्भय मुमुक्षु, अपने ही दृश्य के कुएं की गहराई में झांक और तब उत्तर दे। हे बाहय छायाओं के द्रष्टा, अपनी ही आत्मा की शक्तियों को जान।
यदि यह नहीं करता है, तो तू नष्ट हो जाएगा।

अंधेरे का अपना कोई अस्तित्व नहीं, अस्तित्व तो प्रकाश का है।
पर अंधेरा भी दिखाई पड़ता है और वास्तविक मालूम होता है। और कौन कहेगा
कि अंधेरा नहीं है? अनुभव में तो ऐसा आता है कि प्रकाश से भी ज्यादा वास्तविक अंधेरा है, क्योंकि प्रकाश को तो जलाना पड़ता है, फिर भी बुझ-बुझ जाता है; अंधेरे को जलाना भी नहीं पड़ता, फिर भी बना रहता है। और प्रकाश तो कितना ही बड़ा दिखाई पड़े, सीमित मालूम पड़ता है; अंधेरा असीम है। और ऐसा लगता है कि अंधेरे के सागर में प्रकाश कभी जलता है और बुझ जाता है, लेकिन सागर बना रहता है, जबकि वस्तुतः अंधेरा नहीं है। फिर अंधेरा दिखाई कैसे पड़ता है? और अगर अंधेरा नहीं है, तो अंधेरा है क्या? अगर उसका अस्तित्व नहीं है, तो उसकी यह प्रतीति, उसकी यह भ्रांत प्रतीति भी क्यों होती है?
इसे थोड़ा समझ लें, तो इस सूत्र में प्रवेश हो सके।
प्रकाश है। और अंधेरा केवल प्रकाश का अभाव है, उसकी गैर मौजूदगी है, उसकी अनुपस्थिति है। इसलिए हम प्रकाश को जला सकते हैं, अंधेरे को नहीं जला सकते। इसलिए हम प्रकाश को बुझा सकते हैं, अंधेरे को नहीं बुझा सकते। इसीलिए हम प्रकाश को एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकते हैं, अंधेरे को एक जगह से दूसरी जगह नहीं ले जा सकते। जो है ही नहीं, उसे ले जाने का भी कोई उपाय नहीं। जो है ही नहीं, उसे बनाने का भी कोई उपाय नहीं। जो है ही नहीं, उसे मिटाने का भी कोई उपाय नहीं। क्योंकि अंधेरे के साथ हम कुछ भी नहीं कर सकते, इसलिए अंधेरा नहीं है। जो है, उसके साथ ही कुछ किया जा सकता है।
और हमें अगर अंधेरे के साथ भी कुछ करना हो, तो प्रकाश के साथ ही कुछ करना पड़ता है। अगर अंधेरा चाहिए ही, तो प्रकाश बुझाना पड़ता है, अंधेरा नहीं जलाना पड़ता। अगर अंधेरा न चाहिए, तो प्रकाश जलाना पड़ता है; अंधेरे को हटाना नहीं पड़ता। अंधेरे के साथ कुछ करने का

उपाय ही नहीं। जो नहीं है, उसके साथ कुछ किया भी नहीं जा सकता। अंधेरा
है अभाव; वह प्रकाश के न होने का नाम है, आंखें जब प्रकाश को नहीं पातीं, तो उसमें नहीं पाने में जो प्रतीति होती है, वह है अंधकार। अंधकार खाली जगह है। और हमारे भीतर बड़ा अंधकार है।
बाहर के अंधकार को तो हम बाहर के प्रकाश से मिटा लेते हैं, भीतर के अंधकार को भीतर के प्रकाश से ही मिटा सकेंगे। बहुत लोग नासमझी में पड़ जाते हैं। वे भीतर के अंधेरे को सीधा ही मिटाने की कोशिश में लग जाते हैं, तब अड़चन खड़ी हो जाती है। जब वे भीतर के अंधेरे को सीधा ही काटने-पीटने लगते हैं, तो उलझन में पड़ जाते हैं, तनाव से भर जाते हैं, और भी अशांत हो जाते हैं। भीतर भी अंधेरे को मिटाने का यही उपाय है कि भीतर का प्रकाश जलाया जाए। सीधे अंधेरे की बात ही मत करें, सीधे अंधेरे की चिंता ही मत करें। ऐसा समझें, कोई मेरे पास आता है और कहता है, क्रोध बहुत है, क्या करूं? उससे मैं कहता हूं, क्रोध की बात ही मत करो। तुम क्रोध को रहने दो, तुम शांत कैसे हो सकते हो, इसकी बात करो। और जिस दिन तुम शांत होने लगोगे, क्रोध अपने आप तिरोहित हो जाएगा। क्योंकि क्रोध केवल अभाव है। कोई कहता है, कामवासना से कैसे छुटकारा हो। उसे मैं कहता हूं उसे तुम छुओ ही मत। तुम प्रेम को फैलाओ। जितना प्रेम विराट होता जाएगा, उतना ही काम क्षीण और शून्य होता जाएगा।
नकार में मत पड़ो, विधेय की खोज करो। जो वस्तुतः है, उसकी ही चिंता में लगो, तो कुछ हो सकेगा।
लेकिन हममें से बहुत लोग इसीलिए भटकते हैं कि हम नकार के साथ ही उलझ जाते हैं, हम छायाओं से लड़ते हैं और फिर हार जाते हैं। तो मन में सीधा लगता है कि जब छाया से हार गए तो छाया बहुत शक्तिशाली होनी चाहिए।
स्वभावतः सीधा तर्क और गणित है कि जिससे हम हार गए, वह मजबूत होना चाहिए। लेकिन छाया से आप हारते नहीं हैं, छाया से जीत भी नहीं सकते। छाया है ही नहीं। छाया से लड़ कर आप अपनी शक्ति ही नष्ट करते हैं। और खुद की शक्ति नष्ट हो जाती है, तो पराजित, हारे हुए गिर जाते हैं। छाया को न कोई चोट पहुंचती है और न छाया आपको कोई चोट पहुंचाती है, लेकिन हार हो जाती है। अपनी ही शक्ति खोकर आदमी हार जाता है। और धर्म है विधायकता। जब तक कोई नकार से चलता है, तब तक धार्मिक विज्ञान की प्रक्रिया उसके हाथ में नहीं आती है।
इस सूत्र को अब हम समझें।
"हे शिष्य, उस घातक छाया से सावधान रह। उस समय तक कोई भी उच्चस्थ आत्मा
का प्रकाश निम्नस्थ आत्मा के अंधकार को नहीं मिटा सकता, जिस समय तक उससे सभी अहंकारी विचार नहीं निकल गए हैं और यात्री यह नहीं कहता कि मैंने इस क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया है।"
आदमी के भीतर उस प्रकाश के जलाने के लिए क्या करें?
एक और बात समझ लें।
पहली तो बात यह हैः अंधेरे से मत लड़ें, प्रकाश को जलाने की चेष्टा करें। दूसरी बात, जो प्रकाश जलाया जाता है, वह बुझ जाएगा। सभी निर्मित चीजें नष्ट हो जाती हैं। और जो प्रकाश पैदा किया जाता है, वह कल मरेगा। जन्म के बाद मृत्यु है। भीतर का प्रकाश अगर हमने जलाया--तो कितनी देर चलेगा? जिसके ईंधन में हम हैं, वह कितनी देर चलेगा? और जिसको हमने पैदा किया, वह हमसे बड़ा नहीं हो सकता, वह हमसे क्षुद्र होगा। और हम ही मिट जाते हैं, तो हमारा जलाया हुआ दीया कितना टिकेगा? और जो हमारा ही पैदा किया हुआ है, वह हमें मार्ग-दर्शन नहीं दे सकता।
तो दूसरी बात समझ लें कि भीतर का प्रकाश जलता नहीं है। भीतर का प्रकाश
है ही; आवृत है, ढंका है; उघाड़ना है, अनढंका करना है। जैसे कि पत्थर की ओट में एक झरना छिपा हो और धक्का मार रहा हो पत्थर को, कि हटो द्वार से, तो मैं फूट पडूं, वैसा ही भीतर का प्रकाश है। द्वार पर कोई पत्थर है, वह अटका रहा है।
एक बड़े मजे की बात है कि अंधकार प्रकाश को जरा भी नहीं रोक सकता। इसलिए असली दुश्मन अंधकार नहीं है। आप दीया जलाएं, तो अंधकार यह नहीं कह

सकता कि नहीं जलने देंगे। अंधकार दीये को बुझा भी नहीं सकता। कभी सुना है कि अंधकार ने दीये को बुझा दिया, कि अंधकार ने हमला किया हो और दीया मिट गया हो? कभी सुना है कि अंधकार ने बाधा डाली? एक घर में जाएं, जो हजार साल से अंधेरे में दबा हो और वहां भी एक छोटा सा दीया जलाएं तो हजार साल पुराना अंधकार भी उस नये दीये की ज्योति को बुझा न सकेगा; रोक भी न सकेगा जलने से। अंधकार नहीं रोकता है। फिर कौन रोक रहा है पत्थर की तरह भीतर प्रकाश को जलने से, या प्रकाश को प्रकट होने से? कौन अड़ा है झरने पर?
अंधकार नहीं, अहंकार--"मैं" का भाव। और क्यों "मैं" का भाव बाधा बनता होगा? जब तक हमें ख्याल है कि "मैं हूं," तब तक हम विराट से अपने को तोड़ कर चलते हैं। और वह प्रकाश विराट का है। प्रकाश हमारा नहीं है। हम तो जब तक हैं, तब तक वह प्रकाश प्रकट न हो सकेगा। हम ही बाधा हैं। बुद्ध ने बहुत बार कहा है, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और तुम समझ रहे हो स्वयं को साधक। और तुम्हारे अतिरिक्त कोई बाधा नहीं है। और तुम सोच रहे हो, मैं साध लूंगा इस सत्य को! और तुम्हीं हो अड़चन। तुम्हीं अड़े हो मार्ग में, मध्य में; तुम्हीं झरने को फूटने नहीं देते। "मैं" का भाव, "मैं हूं," इस घोषणा में ही विराट दब गया है। और विराट के रास्ते बड़े मौन हैं। और विराट के रास्ते बड़े विनम्र हैं। और विराट जबरदस्ती नहीं करता है। विराट आक्रमक नहीं है। विराट प्रतीक्षा करता है। और हमारे "मैं" की जो आवाज है, वह रुकावट बन जाती है।
यह सूत्र कहता है, अहंकार के विचार जब तक नहीं निकल गए हैं, तब तक वह प्रकाश नहीं उपलब्ध होगा, जिससे अंधेरा मिट जाए।
अहंकार है क्या? क्या है आपके भीतर जिसको आप कहते हैं "मैं" हूं? शब्द
के अतिरिक्त और क्या है? कभी आपने सोचा, किसे आप पुकारते हैं "मैं"? कौन है यह उसका कोई भी पता नहीं--सिर्फ एक लेबल! भीतर क्या है, उसका हमें कोई पता नहीं। ऊपर से एक नाम है। बच्चा पैदा होता है, तो हमें नाम देना पड़ता है। कहना पड़ता है राम, कृष्ण कुछ नाम देना पड़ता है। बच्चा बिना नाम के पैदा होता
है। और इस दुनिया में बिना नाम के बड़ी मुश्किल हो जाती है। उसका कोई नाम न हो तो बड़ी कठिनाइयां खड़ी हो जाती हैं। एक नाम उसे देते हैं कि तेरा नाम हुआ राम। इस नाम से दूसरे उसे पुकारते हैं। लेकिन उसे खुद को पुकारने के लिए भी एक नाम चाहिए अलग। क्योंकि अगर वह भी कहे राम, तो लोग समझेंगे पता नहीं, किसी दूसरे को पुकारता है।
स्वामी राम ऐसा करते थे। स्वामी राम ने "मैं" कहना बंद कर दिया और वे सीधा राम का ही उपयोग करने लगे थे। वे कहते थे, राम को बड़ी प्यास लगी, तो सुनने वाला समझ ही नहीं पाता था कि वे कह रहे हैं मुझे प्यास लगी है। तो सुनने वाला पूछता, किसको? वे कहते राम को। तो वह आसपास देखता कि किसकी बात चल रही है।
राम एक दिन गांव से लौटे, तो उन्होंने कहा कि आज राम को रास्ते में बड़ी गालियां पड़ रही थीं। जिसके घर मेहमान थे, उन्होंने कहा, किसको? तो उन्होंने कहा, राम को। तो उन घर वालों ने पूछा कि महाराज, सीधा-सीधा क्यों नहीं कहते कि आपको गालियां पड़ गईं। राम ने कहा, लेकिन राम को ही पड़ रही थीं, मैं तो खड़ा हुआ सुन भी नहीं रहता कि आपका खुद का नाम क्या है? इस नाम से आपका क्या लेना-देना?
और अगर नाम ही अपना नहीं है, तो फिर और क्या है आपका? बताइएगा
किसके बेटे हैं? किसके भाई हैं? किसके पति हैं? किसकी पत्नी हैं? यह बताइएगा?
ये संबंध हैं। इनका आपसे कोई लेना-देना नहीं। इन संबंधों के बिना आप
हो सकते हैं। इन संबंधों के बिना आप थे। ये कल खो जाएंगे, तो आप मिट नहीं जाएंगे। आपका अपना होना है। वह होना क्या है? वह अस्तित्व क्या है? संबंधों में जो बंधा है, वह भीतर जो संबंधों से जुड़ा है, वह कौन है? उसका उसे कोई पता नहीं चलता। आप दुकानदार हैं, कि डाक्टर हैं, कि शिक्षक हैं, कि चोर हैं, कि साधु हैं; इससे भी कोई पता नहीं चलता। इससे यही पता चलता है कि आप क्या करते हैं। यह पता नहीं चलता कि आप क्या हैं। एक आदमी डाक्टरी करता

है, एक आदमी चोरी करता है--ये उनके काम हैं। और जो चोरी करता है, वह डाक्टर हो सकता है। आज जो डाक्टर है, वह कल चोर हो सकता है। इससे अस्तित्व का कोई पता नहीं चल सकता कि वह क्या है? तो आप बताएंगे अपना परिचय--नाम, धाम, पता- ठिकाना, काम; लेकिन इसमें कोई भी आप नहीं हैं, यह सब झूठा मामला है। लेकिन इसको हम मानकर चलते हैं कि यही हमारा होना है, और यही पत्थर बन जाता है। इस झूठे होने के कारण वास्तविक होना प्रकट नहीं हो पाता। और जो नकली से राजी हो गया है, उसके असली होने के लिए कोई जगह नहीं। क्योंकि मान लिया कि अपने को पा ही लिया, जान ही लिया, अब जानने को कुछ बाकी नहीं।
अगर सुकरात से लेकर आज तक सभी जानने वालों ने एक ही बात कही है कि अपने
को जानो--तो बड़ी अजीब सी लगती है। सभी तो अपने को जानते हैं। ऐसा कोई आदमी देखा, जो अपने को नहीं जानता हो? फिर, यह सुकरात का दिमाग फिर गया है? उपनिषद के ऋषि पागल हैं? यह बुद्ध और महावीर एक ही रटन लगाए हुए हैं कि अपने को जानो। और यहां एक आदमी नहीं है ऐसा, जो अपने को न जानता हो। जरूर कहीं कोई गड़बड़ हो रही है। हमारे जानने में कहीं न कहीं भ्रांति है, तभी तो इतना चिल्लाते हैं। और हमको भी हैरानी होती है सुन कर कि क्या बकवास लगा रखी है कि अपने को जानो। अपने को तो हम जानते ही हैं कि मेरा नाम यह है, मेरा घर का पता यह है, मैं इस बाप का बेटा हूं, इसका भाई हूं, इसका पति हूं, यह मेरी दुकान है, यह मेरा फोन नंबर है। यह मेरा होना है। अब और क्या अपने को जानूं?
आपका फोन नंबर आप नहीं हैं। आपकी दुकान में लगी तख्ती आप नहीं हैं। आपके नाम के पीछे लगी उपाधियां आप नहीं हैं। आपके नाम के जो आगे लगे, कुछ भी नाम के आगे-पीछे आप नहीं हैं। नाम भी आप नहीं हैं। काम-चलाऊ हैं ये शब्द। और इस दुनिया में अड़चन होगी, इसलिए कामचलाऊ व्यवस्था करनी पड़ती है। अहंकार कामचलाऊ व्यवस्था है, एक उपाय है और हम उसी को सत्य मानकर अड़ जाते हैं। बस फिर वह जो भीतर छिपा था, उसको प्रकट होने के लिए हम ही बाधा बन जाते हैं।
तो पहली बात तो जाननी जरूरी यह है कि आप अपने को अब तक जो-जो मानते रहे, वह-वह आप नहीं हैं। यह विचार गहन हो जाए, तो अहंकार को छोड़ देने में कोई भी अड़चन नहीं है। क्योंकि हाथ में लेबल के सिवाय कुछ भी नहीं है। बिल्कुल कागजी नोट है, चलते हैं, काम देते हैं, लेकिन सत्व उनमें जरा भी नहीं है। इस झूठ के प्रति जागें। सूत्र कहता है, अहंकारी विचार जब तक नहीं निकल गए, उस समय तक कोई भी उच्चस्थ आत्मा का प्रकाश निम्नस्थ आत्मा के अंधकार को नहीं मिटा सकता, और यात्री यह नहीं कहता कि मैंने इस क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया है, मैंने कारण का नाश कर दिया है। अतः छायाएं पड़ती हैं, वे अब नहीं टिक सकती हैं।
कारण है अहंकार। और अहंकार ही कारण है इस भाव का कि मैं शरीर हूं। इसे
भी थोड़ा ख्याल में ले लें।
मैं है केवल नाम, एक शब्द जरूरी; लेकिन बिल्कुल असत्य। और इस असत्य के पास अपनी कोई भी संपदा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, आत्मा का इसे कोई पता नहीं है। लेकिन ये नाम, ये शब्द थोथे हैं, औपचारिक उपाय भर हैं। यह अहंकार भी तो कहीं अपने पैर टिकाएगा। इसको भी तो कोई जगह चाहिए, जिस पर यह खड़ा हो सके। यह अहंकार कहां खड़ा हो और कहां पैर टिकाए? यह शरीर पर पैर टिका देगा। शरीर है "पदार्थ" यह उस पर पैर टिका देता है। शरीर कभी भी इंकार नहीं करता। यह शरीर पर पैर टिका देता है और कहता है, यह मैं हूं। मैं यानी मेरा शरीर। और तब एक अदभुत जाल निर्मित होता है--एक झूठ। शरीर बहुत वास्तविक है। एक वास्तविक चीज के ऊपर झूठ खड़ा हो जाता है।
ध्यान रहे, झूठ को भी चलना हो, तो किसी न किसी वास्तविकता का सहारा लेना जरूरी है, खुद नहीं चल सकता, उसके पास कुछ भी नहीं है। झूठ का मतलब ही यह है कि उसके पास कुछ भी नहीं है, उसे सहारा लेना पड़ता है। इसलिए झूठ बोलनेवाला हमेशा पूरे उपाय करता है आपको समझाने का, कि मैं सच बोल रहा हूं। अगर भरोसा आ जाए कि यह झूठ है, तो झूठ वहीं गिर जाता है।
एमेनुअल कांट ने बड़ी कीमत की बात कही है। उसने कहा है कि अगर सारी दुनिया में सभी लोग झूठ बोलने लगें, तो झूठ बिल्कुल बेकार हो जाए। झूठ तभी

तक चलता है, जब तक कुछ लोग सच बोल रहे हैं, या आशा रहती है कि कोई न कोई सच बोलता है। अगर सभी लोग तय ही कर लें कि हम झूठ ही बोलेंगे, और जो भी बोलेंगे वह झूठ ही होगा, तो फिर झूठ के चलने का कोई उपाय न रह जाएगा। पर बड़ी अड़चनें होंगी, काम चलना ही मुश्किल हो जाएगा।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन टेन में सवार हुआ। जिस धंधे में वह लगा था, उसी धंधे का एक दूसरा आदमी भी उसी डिब्बे में चलती- भागती गाड़ी में सवार हुआ। वह मुल्ला का प्रतियोगी था, उसी धंधे में। मुल्ला ने मन में सोचा अगर मैं इससे पूछूंगा कि कहां जा रहे हो, तो यह जरूर झूठ बोलेगा। फिर भी मुल्ला ने कहा देखें और पूछा, कहां जा रहे हो? उस आदमी ने कहा, दिल्ली जा रहा हूं। मुल्ला ने मन में कहा कि जरूर कलकत्ता जा रहा होगा। यह आदमी विरोधी है धंधे में, और सिवाय झूठ के कभी सच बताता नहीं, जरूर कलकत्ता जा रहा होगा; पक्का है मामला। लेकिन तभी उसे ख्याल आया कि गाड़ी तो दिल्ली जा रही है। मुस्कुराया वह, हंस कर बोला कि क्यों झूठ बोलते हो? दिल्ली जा रहे हो और झूठ बोलते हो कि दिल्ली जा रहे, ताकि समझूं कि कलकत्ते जा रहे हो!
बड़ी अड़चन हो जाए, यदि सारे लोग झूठ बोल रहे हों। तो हिसाब लगाना मुश्किल हो जाए, और किसी बात का कोई भरोसा भी न रहे। दुनिया चलती है थोड़े से सच के सहारे। झूठ भी चलता है सच के सहारे। अहंकार बिल्कुल सरासर झूठ है, उसका कोई भी अस्तित्व नहीं है। शरीर का अस्तित्व है, आत्मा का अस्तित्व है; अहंकार का कोई अस्तित्व नहीं है। अहंकार मात्र एक ख्याल है। या तो अहंकार आत्मा में अपने पैर गड़ाए तो चल सकता है। लेकिन आत्मा में वह पैर गड़ा नहीं सकता; क्योंकि आत्मा के प्रकाश में--वह क्योंकि अंधकार है-- टिकेगा नहीं। इसलिए शरीर के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। अहंकार अपनी जड़ें शरीर में डाल देता है। शरीर के सहारे अहंकार सच्चा हो जाता है, वास्तविक हो जाता है, यथार्थ हो जाता है।
अहंकार की प्रतीति है यह कि मैं शरीर हूं। यह आपकी प्रतीति नहीं है,
यह आपके अहंकार की प्रतीति है कि मैं शरीर हूं। इसलिए जिस दिन अहंकार छूटता है, उसी दिन यह ख्याल भी छूट जाता है कि मैं शरीर हूं। तब तो वही रह जाता है, जो आप हैं। वह शरीर में है, शरीर में रमा है, बसा है, शरीर उसका घर है, देह है, आवास है, एक पड़ाव, एक मुकाम है। अभी है इस घर में, कल नहीं होगा। और बहुत घरों में रहा, बहुत घर बदले, और बहुत घर बदलने पड़ेंगे। और जब भी जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं वस्त्र, तो हम फेंक देते हैं और नये वस्त्र ग्रहण कर लेते हैं।
रामकृष्ण मरने के करीब थे। उनकी पत्नी बहुत रोने-पीटने, चिल्लाने लगी। तो रामकृष्ण ने कहा, तू क्यों घबराती है? क्योंकि मैं नहीं मर रहा हूं; ये तो वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं। देखती है, गले में कैंसर हो गया है और यह शरीर सड़ गया है। अब इस शरीर में रहना एक गिरते हुए घर में रहना है, जो किसी भी क्षण गिर सकता है। इसलिए छोड़ता हूं इस जीर्ण-शीर्ण देह हो। मैं नहीं मर रहा हूं, केवल वस्त्र बदल रहा हूं।
शारदा ने रामकृष्ण की आंखों में देखा। क्योंकि यह जो आदमी था, यह कोई सिद्धांत की बात नहीं कह रहा था, कोई शास्त्र पढ़ कर नहीं कह रहा था कि मैं आत्मा हूं। अनुभव से ही कह रहा था, आंखों में वह अनुभव की झलक थी। और जब भीतर प्रकाश फूटता है, तो उसकी झलक स्वभावतः आंखों तक आ जाती है। और मरते क्षण में रामकृष्ण ने कहा कि मैं नहीं मरूंगा, तू चिंता न कर, मेरी कोई मृत्यु नहीं, सिर्फ कपड़े बदल रहा हूं। और ये कपड़े तो तू भी कहेगी कि अकारण हो गए हैं, बोझ हो गए हैं, बदल दें।
और रामकृष्ण की मृत्यु हो गई। और एक ही स्वर उन आंखों में देखा, झलक उस प्रकाश की जो अहंकार के हट जाने पर दिखाई देती है। लेकिन सभी को दिखाई पड़ेगी रामकृष्ण की आंखों में झलक, ऐसा जरूरी नहीं है। शारदा को दिखाई पड़ सकी; क्योंकि उसका बड़ा गहन प्रेम था। उसने रामकृष्ण पर भरोसा किया था सदा। वह भरोसा कारण बन गया। और रामकृष्ण जब कह रहे हैं कि मैं नहीं मरूंगा, तो बात खतम हो गई कि वे नहीं मरेंगे।

रामकृष्ण मर गए और शारदा विधवा न हुई। सारे प्रियजन, परिचित, सब इकट्ठा हो गए और कहा, चूड़ियां फोड़ डालो, वस्त्र बदल डालो। मगर शारदा ने कहा, वे कह कर गए हैं कि मैं नहीं मरूंगा, और वे नहीं मरे हैं। मैं अनुभव करती हूं कि जीर्ण-शीर्ण देह छूट गई है, वे हैं। शारदा अकेली स्त्री है भारत में, जो पति के मरने पर विधवा न हुई। वह बहुत वर्ष जीयी, लेकिन चूड़ियां हाथ पर रहीं और उसकी आंखों में कभी आंसू दिखाई नहीं पड़े। और वह जैसे रोज रामकृष्ण की मौजूदगी में थी, वैसे ही रही। लोग तो समझने लगे कि पागल हो गई है, क्योंकि जिस वक्त ठीक रामकृष्ण के सोने का समय होता, उस वक्त वह मसहरी भी डालती, उन्हें सुलाती भी। जब उनके भोजन का वक्त होता, तो उन्हें बुलाने भी आती, उनका खाना भी लगाती, थाली भी लगाती, बैठ कर पंखा भी चलाती।
एक दफा विवेकानंद ने उससे पूछा कि मां, यह भी मान लें कि देह मिट गई, वे हैं, लेकिन यहां तो नहीं हैं? तो शारदा हंसने लगी। उसने कहा, देह की वजह से यहां और वहां का सवाल था। जब देह ही मिट गई, तो अब सब जगह हैं। अब तो जहां भी देखूं, उनको देख पा सकती हूं, जहां भी उनको निमंत्रण दे सकूं, वहीं से वे निमंत्रित हैं। देह की वजह से अड़चन थी कि वे कहीं होते थे; अब सब जगह हैं। पर हमारे भीतर भी अस्तित्व है। उस अस्तित्व पर एक भारी पर्दा है--एक झूठ का पर्दा। और वह पर्दा वास्तविक हो गया है, शरीर की सहायता से। शरीर दुश्मन नहीं है आपका, दुश्मन अहंकार है। जैसे आपने देखा न, वृक्षों पर एक पीले रंग की बेल फैल जाती है। वह बिना जड़ों की होती है, उसे अमरबेल कहते हैं। अहंकार अमरबेल है। उसमें कोई जड़ नहीं है। लेकिन किसी भी वृक्ष पर अमरबेल फैल जाती है, तो वृक्ष का रस चूसने लगती है; उसी को चूस कर जीती है। वृक्ष धीरे-धीरे सूखता जाता है और बेल फैलती रहती है। और उसकी कोई जड़ नहीं है!
अहंकार अमरबेल है। वह शरीर को पकड़ लेता है; उसी को चूसने लगता है और हम शरीर के खिलाफ हो जाते हैं। हम सोचते हैं कि शरीर हमें दिक्कत डाल रहा है। शरीर की वजह से हमें आत्मा का पता नहीं चलता। भूल है आपकी। शरीर कोई बाधा नहीं डाल रहा है। शरीर तो सिर्फ वाहन है। आप जहां ले जाएं--नरक ले जाएं तो नरक चला जाएगा, स्वर्ग ले जाएं तो स्वर्ग। आप मुक्त होना चाहें, तो मुक्ति के द्वार तक आपको पहुंच देगा। शरीर तो केवल साधन है। असली अड़चन शरीर से नहीं, अहंकार से है। लेकिन दिखाई पड़ती है शरीर में; क्योंकि अहंकार की अमरबेल शरीर को ग्रस लेती है और शरीर से रस पाती है। झूठ को कोई न कोई सच्चा सहारा चाहिए।
"अहंकार जब तक निकल न जाए और यात्री यह न कह सके कि मैंने क्षणभंगुर शरीर का त्याग कर दिया है"
त्याग का अर्थ है कि अब मैं नहीं मानता हूं कि यह क्षणभंगुर शरीर मैं हूं। त्याग का मतलब यह न समझना कि आप शरीर को छोड़ दें, कि शरीर से अलग हो जाएं। यह बोध कि मैं शरीर नहीं हूं, त्याग हो गया। यह प्रतीति कि मैं शरीर नहीं हूं, त्याग हो गया।
"मैंने कारण का नाश कर दिया है।"
कारण है अहंकार।
"अतः जो छायाएं पड़ती हैं, वे अब नहीं टिक सकतीं। क्योंकि अब उच्चस्थ
और निम्नस्थ आत्मा के बीच महायुद्ध आरंभ हो गया है। इस महायुद्ध में समस्त रण-क्षेत्र समा गया है। वह मानो है ही नहीं।"
यहां एक बहुत विचारणीय बात है, और जटिल भी। इस जगत में प्रत्येक चीज द्वंद्व में है। इस जगत में प्रत्येक चीज अपने विपरीत के साथ है। होने का यही उपाय है। जन्म है मृत्यु के साथ। हम कितना ही चाहें कि जन्म हो और मृत्यु न हो, यह हो नहीं सकता। जन्म एक छोर है उसी चीज का, मृत्यु दूसरा छोर है उसी चीज का। कोई उपाय नहीं है इस द्वंद्व में से एक को बचाने का, और दूसरे को समाप्त करने का।
अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि हर चीज की विपरीत चीज अनिवार्य है। और
वे तो यहां तक गए हैं कि बहुत न समझ में आनेवाली बातें विज्ञान को ख्याल में आने लगी हैं। अभी एक विचारक ने प्रस्तावना की है कि समय बढ़ता है आगे की

तरफ; अतीत जाता है, वर्तमान आता है; वर्तमान जाता है, भविष्य आता है। यह समय अगर है, तो इसके विपरीत समय भी होना चाहिए। नहीं तो यह नहीं हो सकता। इसका दूसरा छोर होना चाहिए, रिवर्स टाइम--जहां पहले भविष्य होता हो, फिर वर्तमान होता हो, फिर अतीत होता
हो। इससे उल्टी कोई धारा होनी चाहिए। हमें पता न हो, लेकिन जरूर कोई उल्टी धारा होनी चाहिए। उस उल्टी धारा के बिना यह समय न हो सकेगा।
पदार्थ है, तो भौतिक विज्ञान फिजिक्स का नया सिद्धांत है कि एंटी- मैटर, विपरीत पदार्थ भी होना चाहिए। क्या होगा विपरीत पदार्थ? बड़ा कठिन है। लेकिन एक बात ख्याल में लेनी जरूरी है कि विज्ञान भी इस बात को स्वीकार कर रहा है कि जगत में किसी भी चीज में एक ध्रुव नहीं हो सकता। दो ध्रुव अनिवार्य हैं। जैसे हम सोचें, पुरुष ही पुरुष हों जगत में, स्त्रियां न हों, यह हो नहीं सकता। हम सोचें, स्त्रियां हों, पुरुष न हों जगत में, यह हो नहीं सकता। यह पोलर अपोजिट हैं। ये दो ध्रुव हैं। और ये दोनों एक साथ ही हो सकते हैं, जैसे ऋण और धन विद्युत एक साथ हो सकती हैं। लाओत्से ने चीन में हजारों साल पहले जो विचार प्रस्तुत किया था, वह बहुत ठीक-ठीक विकसित होता चला गया है। और अनेक-अनेक आयामों में सही सिद्ध हुआ है। चीन में वे कहते हैं "यिन" और "यांग"। "यिन" है स्त्री का नाम और "यांग" है पुरुष का नाम। या "चिन" को हम कहें निषेध, और "यांग" को हम कहें विधेय। या "यिन" को हम कहें पृथ्वी और "यांग" को हम कहें स्वर्ग--कोई भी दो। लेकिन "यिन" और "यांग" दो से अस्तित्व बना है। और एक के होते ही हम शून्य में विलीन हो जाते हैं। एक का कोई अस्तित्व नहीं होता।
ब्रह्म इसलिए शून्य है, वह अकेला है। जैसे ही हम दो से हटे कि हम ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। वह है, लेकिन शून्यवत। उसके होने को पदार्थवत नहीं कहा जा सकता। जब तक हम हैं पदार्थ में, तब तक विपरीत होगा। तो अगर आपके भीतर आत्मा है, तो आपके भीतर विपरीत आत्मा जैसी चीज भी होगी; नहीं तो आत्मा नहीं हो सकती। अगर आपके भीतर उच्चाशय है, तो निम्नाशय भी होगा। और आपके भीतर अगर श्रेष्ठ है, तो निकृष्ट भी होगा। और आपके भीतर अगर स्वर्ग की तरफ उड़ान की कामना है, तो नर्क की तरफ जानेवाली जड़ें भी होंगी। आप एक कुरुक्षेत्र हैं; उसमें आपके भीतर पांडव भी होंगे और कौरव भी होंगे। आप हो ही नहीं सकते इस द्वंद्व के बिना।
जैसे राज मकान बनाता है, दरवाजे उठाता है, तो गोल दरवाजे बनाता है, विपरीत ईंटों को लगा देता है। विपरीत ईंटें एक-दूसरे से टकरा जाती हैं। तो उनकी टकराहट से ही मंडल निर्मित हो जाता है शक्ति का। उस शक्ति पर बड़ा भवन खड़ा हो जाता है। वह भवन गिरेगा नहीं, क्योंकि वह बीच में विपरीत ईंटें जो नीचे लगी हैं, वे एक-दूसरे से टकरा कर शक्ति का एक वर्तुल निर्मित कर रही हैं। बड़ा भवन उस पर टिका रहेगा। वही विरोध उस बड़े भवन का आधार है।
आपके भीतर भी एक विरोध है। उस विरोध के कारण ही आप संसार में हैं। इसलिए बुद्ध कहते हैं, जिस दिन विरोध नहीं होगा, उस दिन तुम मुझसे यह मत पूछो कि आत्मा, तुम्हारी आत्मा मोक्ष में होगी कि नहीं होगी। मैं तुमसे कहता हूं, नहीं होगी; क्योंकि तुम्हारी आत्मा को होने के लिए भी द्वंद्व अनिवार्य है। निद्वंद्व अवस्था में होने का कोई अर्थ नहीं है, न-होने का कोई अर्थ नहीं है। दोनों बातें व्यर्थ हैं। इसलिए बुद्ध ने निर्वाण शब्द चुना। निर्वाण का अर्थ होता है, दीये का बुझ जाना। द्वंद्व ही खो गया, तो तुम भी खो जाओगे। जैसे कोई दरवाजे में लगी इट यह पूछे कि अगर यह विपरीत जो विरोध हम ईंटों में है, अगर यह न रहे तो दरवाजा होगा कि नहीं होगा? द्वंद्व गया, दरवाजा गया। आकाश बचेगा, जो दरवाजे में था; दरवाजा नहीं बचेगा। आपके भीतर जो एक है, वह बचेगा; जो दो की वजह से दिखाई पड़ता था, वह खो जाएगा। उस एक का आपको कोई पता नहीं। आपको इन दो का जरूर पता है। आपके भीतर कोई निरंतर ऊंची आवाज मालूम पड़ती है। चोरी करने जाते हैं, कोई भीतर शंकित होने लगता है। हत्या करने जाते हैं, भीतर द्वंद्व खड़ा हो जाता है। दान देने जाते हैं, तो भी एक नीचे की आवाज है, जो रोकने लगती है कि ठहरो अभी।
मैंने सुना है कि मार्कट्वेन एक बार एक चर्च में गया। वह जो चर्च का पुरोहित था, बोल रहा था। वाणी उसकी मधुर थी, शब्द उसके प्यारे थे, बड़ा

काव्य था, और धर्म की बड़ी सरल उसकी व्याख्या थी। मार्कट्वेन बड़ा प्रभावित हो गया। उसने खीसे में हाथ डाल कर सोचा कि दस डालर दान कर दूं। डालर खीसे में थे। लेकिन दस मिनट व्याख्यान और आगे चला, तो मार्कट्वेन ने सोचा, दस भी देने की क्या जरूरत है, पांच से भी काम चल सकता है और फिर अभी किसी को बताया भी तो नहीं है कि दस देना है, तो कोई अपराध भी नहीं कर रहे हैं। पांच से ही काम चल जाएगा। और व्याख्यान लंबा चला, तो ढ़ाई-दो पर उतरता गया मार्कट्वेन। और उसने लिखा है, जब मेरे सामने बर्तन आया दान का, तो मेरी तबीयत हुई कि एकाध-दो डालर इसमें से उठा लूं। तब तक मैं वहां पहुंच चुका था। किसी तरह अपने को रोक कर भागा कि कहीं उठा ही न लूं! देने की तो बात ही खतम हो गई। वह जो आपके भीतर जब भी शुभ करने का कुछ होता है, तो एक विपरीत शक्ति बोलती है। जब अशुभ करने का होता है, तब भी एक विपरीत शक्ति बोलती है। ये दो आपके भीतर आवाजें हैं। इन आवाजों को जो ठीक से पहचानने लगता है, उसे अपने भीतर का द्वंद्व और युद्धक्षेत्र स्पष्ट हो जाता है। और जैसे ही व्यक्ति अपने अहंकार को छोड़ता है, अनुभव करता है कि मैं शरीर नहीं हूं, वैसे ही यह युद्ध स्पष्ट होता है। तब एक नये तल पर उसे दिखाई पड़ता है कि मेरा होना ही दो में विभाजन है। कुछ है मेरे भीतर जो नीचे की तरफ जा रहा है, और कुछ है मेरे भीतर जो ऊपर की तरफ जा रहा है। और उन दोनों के खिंचाव के मध्य में "मैं" हूं। और उन दोनों के खिंचाव की वजह से मेरा संताप है; मेरी चिंता, दुख, पीड़ा।
"इस महायुद्ध में समस्त रण-क्षेत्र समा गया है। वह मानो है ही नहीं।" रणक्षेत्र नहीं बचा है, सिर्फ सेनाएं छा गई हैं दोनों तरफ। पर ये आपको दिखाई नहीं पड़ेगा, क्योंकि आप तो शरीर में इतने उलझे हुए हैं कि आपको यह पता चलना भी मुश्किल है कि शरीर के पीछे छिपी आत्मा के अस्तित्व में क्या घटित हो रहा है। आप तो शरीर के तल पर लगे हैं। वहीं आपका संघर्ष संसार में चल रहा है; किसी से धन के लिए, किसी से पद के लिए।
भीतर का संघर्ष तो उन्हीं को पता चलता है, जो शरीर से हटते हैं, आंख उठाते हैं भीतर को, देखते हैं कि बाहर भी संघर्ष है, भीतर भी संघर्ष है। बाहर का संघर्ष तो बहुत क्षुद्र है, भीतर का संघर्ष बहुत विराट है। वह शाश्वत युद्ध है, जहां दो शक्तियां आपको खींच रही हैं--एक ऊपर की तरफ, एक नीचे की तरफ। और जब आप ऊपर की तरफ जाना चाहते हैं, तो नीचे की तरफ संतुलन बनाने के लिए आपको फौरन खिंचाव शुरू हो जाता है।
यह बहुत मजे की बात है, जब तक आप ऊपर की तरफ नहीं जाना चाहते हैं तब तक नीचे का खिंचाव ज्यादा नहीं होता। जिस दिन आप संत होना चाहेंगे, उस दिन आपको पता चलेगा कि आपके भीतर का शैतान बहुत प्रबल है। जब तक संत नहीं होना है, तब तक शैतान का पता नहीं चलेगा। क्योंकि इसकी कोई जरूरत नहीं है। शैतान को चुनौती तो तब मिलती है, जब आप संत होने की कोशिश करते हैं। तब आपको पता चलता है कि कितनी शैतानी भीतर छिपी है।
कथाएं हैं बौद्ध कि बुद्ध जब ठीक अपने भीतर प्रवेश करने लगे, तो मार ने, काम ने उनके ऊपर हमला किया। जीसस जब परमज्ञान के निकट पहुंचने लगे, तब की घटना है, कि शैतान उन्हें बहुत प्रलोभन देने लगा। और जीसस को कहना पड़ा कि शैतान हट, तेरे प्रलोभन मेरे लिए निरर्थक हैं। हमें बहुत हैरानी होती है कि कुछ वहम हो गया होगा कि शैतान कहां है? कौन जीसस के पीछे खड़ा होगा? खुद का ही कोई वहम हो गया होगा। बुद्ध को कौन मार हमला करने आता है? कौन कामदेव बाण लेकर खड़ा है? खुद का ही कोई वहम हो गया होगा।
जहां हम हैं, वहां ऐसा सोचना स्वाभाविक है; क्योंकि हमें भीतर के युद्ध का कोई भी पता नहीं, भीतर के तनाव का कोई पता नहीं। वह तो उन्हीं को पता चलता है, जो उस भीतर के तनाव में एक दिशा को पकड़ना शुरू करते हैं, दूसरी दिशा तत्काल बलवती हो जाती है।
अगर आप जमीन पर लेटे हुए हैं, तो आपको थकान का पता नहीं चलता। इसलिए रात हम लेट जाते हैं, लेटने से थकान मिट जाती है। क्यों? आपको पता है, लेटने में होता क्या है? लेटने का मतलब है कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण से दिन भर आपका जो संघर्ष चल रहा था, वह आपने छोड़ दिया; अब आप लड़ नहीं रहे हैं। अब आप जमीन पर लेट गए हैं, गुरुत्वाकर्षण से अब आप दुश्मनी नहीं कर रहे

हैं। जब आप खड़े हैं, तब आप जमीन से लड़ रहे हैं। जमीन नीचे खींच रही है, आप खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं।
आपको पता है, कमर का दर्द सिर्फ आदमी की जाति में होता है, जानवरों में कहीं नहीं होता। सीधे खड़े होने का उपद्रव है कमर का दर्द।
जो लोग शरीर को अनुभव करते हैं, जैसे शरीर-शास्त्री हैं वे कहते हैं, आदमी की रीढ़ अभी तक पूरी सीधी नहीं हो पाई; जमीन उसको खींचती है। और इसलिए अगर योग में रीढ़ को सीधा करने के बड़े उपाय किए हैं, तो उसके पीछे कारण है। वह संघर्ष है नीचे के गुरुत्वाकर्षण से। जब आप रात लेट जाते हैं, संघर्ष आपने छोड़ दिया, फिर कोई थकान नहीं आती। और कोई आदमी दौड़ता रहा हो दिन भर, और वह कहे कि मैं बिल्कुल थका हूं। और आप सदा लेटे रहे हों, तो आप कहेंगे कि वहम में पड़ गए हो, थकने का कोई सवाल ही नहीं, हम भी तो हैं।
बुद्ध और महावीर खड़े होकर चल रहे हैं भीतर की दुनिया में; हम वहां लेटे हुए हैं। वे थकते हैं, उन्हें विपरीत का अनुभव हो रहा है। जीसस जब भगवान होने लगते हैं, तब तत्क्षण शैतान का अनुभव होता है। शैतान का मतलब यह है कि खुद के ही भीतर की नीचे की ताकत भी आखिरी उपाय करती है कि कहां जाते हो? और यह द्वंद्व भी तब तक नहीं मिटता, जब तक कोई ऊपर जाना चाहता है, तब तक नीचे का खिंचाव जारी रहता है। इसलिए हमारे पास तीन शब्द हैं। एक शब्द है "स्वर्ग", वह ऊपर की दिशा का सूचक है--उच्चस्थ आत्मा जहां जाना चाहती है, जैसी होना चाहती है। दूसरा शब्द है हमारे पास "नरक", वह निम्नस्थ आत्मा की तीर्थ-यात्रा का सूचक है--जहां हमारी नीचे की वृत्तियां जाना चाहती हैं। एक और शब्द है हमारे पास "मोक्ष"--उस अवस्था का सूचक है, जहां हम न ऊपर जाना चाहते हैं, जहां न नीचे जाना चाहते हैं; हम कहीं जाना ही नहीं चाहते। उस मध्य के बिंदु पर छुटकारा है।
मुसलमान फकीर औरत थी राबिया। एक दिन लोगों ने बाजार में देखा, एक हाथ में आग लिए है, लपटें हैं, मशाल है; और एक हाथ में ठंडे पानी की मटकी लिए, राबिया भागी चली जा रही है। लोगों ने पूछा, राबिया, क्या कर रही हो? दिमाग तो खराब नहीं हो गया? और जा कहां रही हो? तो राबिया ने कहा कि तुम्हारे नरक को बुझाने और तुम्हारे स्वर्ग को जलाने।
या तो तुम नीचे जाते हो या तुम ऊपर जाते हो, लेकिन तुम जाते जरूर हो। उसी में कलह है और उसी में संघर्ष है। लेकिन ध्यान रहे मध्य में कोई एकदम से जा भी नहीं सकता। ऊपर जाए, तो नीचे जानेवाली शक्तियों का अनुभव होना शुरू होता है। और जब ऊपर और नीचे जाने का तनाव पूरा होता है और कोई तनाव का आगे उपाय नहीं रह जाता, जब तार बिल्कुल पूरे खिंच जाते हैं अपनी आत्यंतिक स्थिति में, तभी आप को, अपने आंतरिक जीवन का जो ढांचा है, उसकी पूरी प्रतीति होती है कि वह नरक और स्वर्ग दोनों से मिलकर बना है। तभी आपको प्रतीति होती है कि वह भीतर शैतान और भगवान दोनों एक साथ खड़े हैं। इन दोनों की पूरी जो एक साथ प्रतीति है, उस प्रतीति के बाद ही दोनों से छुटकारा हो सकता है। दोनों से छुटकारा ही वस्तुतः भगवत्ता में प्रवेश है, वस्तुतः ब्रह्म में प्रवेश है।
यह सूत्र कहता हैः लेकिन जब एक बार तू धैर्य के द्वार को पार कर जाता है, तब तीसरा चरण भी उठ जाता है। तेरा शरीर तेरा सेवक है। और अब चौथे चरण की तैयारी कर। यह लोभ का द्वार है, जो अंतरस्थ मनुष्य को फांसता है।
चौथा द्वार है विराग, और इसे सूत्र कह रहा है कि यह द्वार लोभ से बहुत गहन रूप से संबंधित है। हैरानी होगी यहां! विराग का लोभ से क्या संबंध? उलटे मालूम पड़ते हैं। कहीं कोई भूल तो नहीं हो गई सूत्र में। विराग का द्वार लोभ का द्वार क्यों है?
विराग का द्वार लोभ का द्वार है, भूल जरा भी नहीं है। लेकिन जरा जटिल
और सूम है बात। संसार से विरक्त हो गया मन; संसार की व्यर्थता जान ली, सब देख लिया, कहीं कुछ पाया नहीं; राख ही हाथ में आई, हाथ खाली के खाली रहे, कुछ भर न सका, मन का भिक्षापात्र खाली रहा; कोई वासना, कोई कामना, कोई मांग पूरी न हुई। उल्टे जितना मांगा, उतने दुख आए; जितना चाहा, उतनी पीड़ा मिली; जितने दौड़े उतने भटके; यात्रा बहुत की, मंजिल कोई न मिली। ऐसा सारा अनुभव विराग ले आता है। यह द्वार है विराग का। संसार व्यर्थ हो गया।

लेकिन ध्यान रहे, संसार के व्यर्थ हो जाने से जरूरी नहीं कि लोभ व्यर्थ हो गया हो। लोभ नया रूप भी ले सकता है। विरागी के भी लोभ हो सकते हैं। इसलिए विराग के द्वार पर एक तरफ संसार का लोभ छूट गया, अब कहीं परलोक का लोभ न पकड़ ले! इसलिए विराग के द्वार लोभ से बहुत सचेत होना जरूरी है। देखें चारों तरफ दिखाई पड़ जाएगी, यह बात सच है। पूछें किसी तपस्वी को, किसलिए तप कर रहे हो? फौरन लोभ का पता चल जाएगा। कहता है कि मुझे शाश्वत आत्मा चाहिए, कि मुझे स्वर्ग चाहिए, कि मुझे परम आनंद चाहिए, कुछ चाहिए या मुझे परमात्मा चाहिए, कुछ चाहिए। चाह, चाहे धन की हो, चाहे धर्म की, चाह तो चाह है।
लोभ तो लोभ है; लोभ का विषय क्या है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लोभ की वृत्ति तो वही है। कल तक मैं चाहता था, यहां पद मिले; अब मैं कहता हूं परम-पद मिले, मुझे परमात्मा चाहिए। कल तक मैं कहता था कि यहां धन मिले, लेकिन मैंने पाया कि यहां का धन तो क्षणभंगुर है; अब मैं कहता हूं मुझे ऐसा धन मिले जो शाश्वत हो। यह लोभ घटा या बढ़ा?
संसारी का लोभ बड़ा छोटा होता है, कौड़ियों से भर जाता है। सरल लोभ है, जटिल नहीं है। साधु का लोभ जटिल है, कौड़ियों से नहीं भरता। वह कहता है, ये कौड़ियां हैं, इनको इकट्ठा करके मैं क्या करूंगा? इकट्ठा वह भी करना चाहता है, लेकिन कौड़ियां इकट्ठी नहीं करना चाहता! कोई हीरे मिलते हों, तो इकट्ठे करे। लेकिन इसमें लोभी कौन बड़ा है? जो कौड़ियां इकट्ठी कर रहा है वह? या जो इसलिए कौड़ियां छोड़ रहा है कि कौड़ियां हैं, मुझे हीरे चाहिए वह?
यह लोभ नया हो गया और इसने नया आयाम ले लिया।
अगर हम शास्त्रों को देखें, तो सौ में से निन्यानबे शास्त्र लोभ के शास्त्र हैं। इनमें लोभ भरा पड़ा है; लोभ आध्यात्मिक है। लेकिन क्या आध्यात्मिक लोभ हो सकता है? क्या लोभ भी आध्यात्मिक हो सकता है? लोभ ही तो संसार है। लेकिन धोखा है; क्योंकि हम पदार्थ बदल लेते हैं। जो आदमी धन मांगता है, हम उसे कहते हैं, क्या क्षुद्र मांग रहे हो! जो कहता है, मुझे तो परमात्मा तू ही चाहिए--इसको हम कहते हैं, देखो, धन नहीं मांगता, परमात्मा को ही मांगता है। संतों की, तथाकथित बहुत संतों की कथाएं हैं कि वे परमात्मा के सामने खड़े हो कर धन नहीं मांगते, पद नहीं मांगते, स्वास्थ्य नहीं मांगते; वे कहते हैं, हमें तो तू ही चाहिए। लेकिन मांगते हैं। यह लोभ छोटा हुआ या बड़ा हुआ? और ये ज्यादा कुशल और चालाक लोग हैं; क्योंकि वे परमात्मा को मांग रहे हैं, बाकी सब तो उसके पीछे मिल ही जाएगा। उस बाकी के लिए क्या मांगना?
मैंने सुना है कि एक सम्राट यात्रा पर गया था। और जब वह वापिस लौट रहा
था युद्ध जीत कर, बहुत धन लूटकर, तो उसने अपनी सारी रानियों को खबर भिजवाई, तुम क्या चाहती हो? तो किसी रानी ने कहा कि कोहिनूर लेते आना, किसी रानी ने कहा यह ले आना, वह ले आना। हजार चीजें थी दुनिया की; जिसकी जो वासना थी। लेकिन एक रानी ने कहा कि मैं तो सिर्फ तुम्हें ही चाहती हूं। सम्राट अपने साथ एक फकीर को ले गया था, उससे वह कभी-कभी सलाह लेता था। उसने फकीर को कहा कि रानी तो यह है एक सच्ची, जिसने कुछ भी न मांगा। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा कि इसकी तरकीब हमसे पूछो। यह रानी हम जैसी है, यह होशियार है। बाकी सबने व्यर्थ की चीजें मांगीं, इसने तुमको ही मांगा है। और बाकी सब जो तुम लूट कर ला रहे हो, वह तुम्हारे साथ अपने आप आ जाता है। उसकी कोई बात नहीं है।
फकीर ने कहा, यह रानी हम जैसी है, इसका गणित हमसे समझो। हम परमात्मा को
ही मांगते हैं, हम और संसार वगैरह नहीं मांगते हैं। सब संसार उसके हैं और वही मिल गया, तो फिर पाने को कुछ बचता नहीं है। लेकिन लोभ बदलता नहीं है, लोभ के विषय बदल जाते हैं।
विराग के द्वार पर सचेत होना जरूरी है, कि संसार ही न छूटे, लोभ भी छूट जाए। नहीं तो विराग का द्वार नये लोभ की शुरुआत, नये संसार का जन्म बन जाता है। तब उसकी चिंता पकड़ लेती है। कोई आदमी रात भर नहीं सोया; क्योंकि धन नहीं मिला, जितना चाहिए था। कोई आदमी रात भर नहीं सोया; क्योंकि अभी तक भगवान के दर्शन नहीं हुए। पर फर्क क्या है? चिंता तो दोनों को पकड़ लेती है,

दुख दोनों को पकड़ लेता है। रोते दोनों हैं, तड़पते दोनों हैं। फर्क क्या है? आदमी वही का वही है, सिर्फ दिशा बदल ली लोभ की। अब यह जो लोभ है वह ज्यादा सूम, ज्यादा खतरनाक है। मात्रा इसकी बहुत बारीक है, लेकिन यह रोएं- रोएं में बिंध जाएगी।
वास्तविक संन्यासी वह नहीं है, जो संसार का लोभ छोड़ कर मोक्ष का लोभ करने लगता है। वास्तविक संन्यासी वह है, जो लोभ की व्यर्थता समझ लेता और लोभ नहीं करता है। जो यह भी लोभ नहीं करता कि ध्यान मिलना चाहिए। जो यह भी लोभ नहीं करता कि आनंद मिलना चाहिए। क्योंकि जहां तक चाहिए लगा है, वहां तक कुछ मिलेगा भी नहीं। चाह ही तो उपद्रव है। हम उसी को जोड़ते चले जाते हैं नई-नई चीजों से; लेकिन उसको साथ रखते हैं। और जब कुछ भी नहीं चाहिए, तब कोई दुख नहीं है। इसलिए बुद्ध ने तो आनंद शब्द का उपयोग करने से अपने को रोका है।
बुद्ध से किसी ने पूछा है कि आप कभी नहीं कहते हैं आनंद की कुछ बात। तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारे लोभ को जगाने की मेरी इच्छा नहीं; मैं कहूं आनंद, तुम समझोगे सुख। क्योंकि तुम सुख ही जानते हो। तो मैं तुम से ज्यादा से ज्यादा इतना ही कह सकता हूं कि वहां दुख न होगा। आनंद होगा, यह मैं तुम से नहीं कह सकता। तुम्हारे लोभ का डर है। इतना ही कह सकता हूं कि वहां दुख न होगा। इसलिए बुद्ध ने मोक्ष की परिभाषा की है "दुख-निरोध", आनंद की उपलब्धि नहीं। स्वभावतः बुद्ध को माननेवाले बहुत लोग नहीं मिल सके इस मुल्क में। आज तो बुद्ध का भिक्षु खोजना मुश्किल है।
लेकिन शंकर को हजारों संन्यासी मिल सके। और आज तो सारे संन्यासी करीब-करीब शंकर के हो गए हैं। क्या बात होगी? और बात वही कह रहे हैं, बुद्ध भी और शंकर भी। शंकर के जो विरोधी हैं, रामानुज और दूसरे, वे तो कहते हैं, शंकर भी छिपा हुआ बौद्ध है, प्रच्छन्न बौद्ध है। यह आदमी हिंदू है ही नहीं, यह छिपा हुआ बौद्ध है; सिर्फ हिंदू शब्दों में बौद्ध धर्म की बातें कर रहा है। उनकी बात में सच्चाई है; क्योंकि शंकर वही कह रहे हैं, जो बुद्ध ने कहा। लेकिन एक फर्क है। और बुद्ध जहां कहते हैं दुख-निरोध, वहां शंकर कहते हैं परम आनंद। हमारे लोभ को शंकर के साथ सुविधा है, बुद्ध के साथ सुविधा नहीं है। बुद्ध कहते हैं दुख-निरोध, समझ में आ जाता है ठीक है; लेकिन सिर्फ दुख-निरोध! इतना उपद्रव, और इतनी चेष्टा, इतनी साधना, इतने पहाड़ दुर्गम पार करने और सिर्फ दुख-निरोध! बस कांटा निकल जाएगा और कुछ भी नहीं! तो मन यहीं टूट जाता है, हम बैठ जाते हैं, कोई लोभ नहीं खींचता।
लेकिन बुद्ध इस चौथे द्वार का ख्याल रख कर कह रहे हैं दुख-निरोध। नहीं
तो चौथे द्वार पर जब संसार से विराग होगा, तब परमात्मा से राग हो जाएगा। संसार से विराग होगा, मोक्ष से राग हो जाएगा। और तब हम फिर घूमकर भीतर के संसार में लौट आएंगे। यह रास्ता पर्वतीय है और घुमावदार है। और इसमें कहीं से भी आप नये चक्कर निर्मित कर ले सकते हैं, और शिखर पर पहुंचने से रुक सकते हैं।
इसलिए बहुत सोच कर कहा है सूत्र में कि विराग का चौथा द्वार लोभ का द्वार है, जो अंतरस्थ मनुष्य को फांसता है।
अंतरस्थ मनुष्य को फांसता है।
दो तरह के मनुष्य हैं। बहिर्मुखी मनुष्य, एकसटरेवर्ट, जुंग ने जिनको कहा है, उनको संसार फांसता है। अंतरस्थ, इंटरेवर्ट, अंतर्मुखी मनुष्य जिनको जुंग ने कहा है, उनको यह भीतर का लोभ, आनंद, शांति, मोक्ष, ब्रह्म, ये फांस लेते हैं। अंतरस्थ मनुष्य को फांस लेता है चौथे द्वार पर लोभ। "इसके पहले कि तू गंतव्य के निकट पहुंचे, इसके पहले कि तेरे हाथ चौथे द्वार की सांकल को उठाने के लिए उठें, तुझे अपनी आत्मा के उन सभी मानसिक परिवर्तनों को पराभूत करना और विचार-वृत्तियों का हनन करना है, जो सूम और कपटपूर्ण ढंग से आत्मा के ज्योतित मंदिर में बिना पूछे घुस जाते हैं।"
इस चौथे द्वार पर हाथ लगाने के पहले, मन में उन सारी चीजों को ठीक से समझ लेना है, जो तरकीब से, कपटपूर्ण ढंग से इस मंदिर में प्रवेश करना चाहेंगे। लोभ नये नाम ले लेगा, वासनाएं नये वस्त्र पहन लेंगी और आपके साथ मंदिर में घुस जाना चाहेंगी। लेकिन उनके साथ मंदिर एकदम तिरोहित हो

जाएगा। आप फिर दूसरे घर में प्रवेश कर गए, जो आपका ही बनाया हुआ है। मंदिर में प्रवेश तो उसी का होता है, जो मन को बाहर ही छोड़ जाता है। अगर आप मन को मंदिर के द्वार पर नहीं रख गए, तो आप मंदिर में कभी प्रविष्ट नहीं होते हैं। ऐसे आप जा-आ सकते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और मन सूम रास्ते खोजता है। सूम रास्ते मन के बड़े जटिल हैं और पकड़ में नहीं आते। अगर कोई आपसे कहे कि अहंकार छोड़ दो, तो आप अहंकार छोड़ने लगते हैं और विनम्रता पकड़ने लगते हैं। और एक दिन ऐसा आ जाता है कि आप कहते हैं कि इस पृथ्वी पर मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं है। अहंकार पीछे से आ गया वापिस।
सुना है मैंने, जंगल में रहनेवाले एक तपस्वी संन्यासी के पास एक व्यक्ति गया और उसने कहा कि "हैं संन्यासी तो आप, कितनी भीड़-भाड़ से दूर जंगल में आ गए! और मैंने सुना है कि आप किसी को शिष्य भी नहीं बनाते। आपको कोई शिष्यों का मोह नहीं है। सुना है मैंने, आप कोई प्रसिद्धि की आकांक्षा भी नहीं रखते हैं, कोई यश की कामना भी नहीं करते। और भी मैंने संन्यासी देखे हैं।" दो-चार संन्यासी की उसने बात कही। और वह जो त्यागी पुरुष था, उसकी रीढ़ सीधी हो गई, उसकी आंखों में चमक आ गई, चेहरे पर रौनक आ गई। उसने कहा कि बिल्कुल ठीक कहते हो। अरे, वे भी कोई संन्यासी हैं, जो यश चाहते हैं, पद-प्रतिष्ठा चाहते हैं! एक मुझको देखो, जो एकांत जंगल में बैठा हूं। न पद की कोई आकांक्षा है, न यश की कोई आकांक्षा है; कोई आए तो ठीक, कोई न आए तो ठीक।
अब यह आदमी सूम रास्ते से वापस लौट गया। इसे भी इसने पद बना लिया कि इधर मैं बैठा हूं अकेले में। इस ऊंचाई पर कोई भी नहीं बैठा है, जहां मैं बैठा हूं--भीड़-भाड़ से दूर। कोई इच्छा ही नहीं है कि कोई मेरे संबंध में जाने। लेकिन भीतर यह इच्छा जरूर होगी कि लोग जानें कि मेरी कोई इच्छा नहीं है, कि कोई मेरे संबंध में जाने। यह सूम है और घूम कर वर्तुलाकार आदमी को वापस वहां खड़ा कर देती है।
"यदि तुझे उनके हाथों नहीं मरना है, तो तुझे अपने सृजनों को, अपने विचारों की संतानों को निर्दोष बनाना है, जो अदृश्य और अजाने ढंग से मनुष्य-मात्र के बीच, उसके पार्थिव अर्जनों के बीच घर बना लेती है और जो पूर्ण सा भासता है, उसकी शून्यता को और जो शून्य सा भासता है उसकी पूर्णता को तुझे समझना है। ओ निर्भय मुमुक्षु अपने ही हृदय के कुएं की गहराई में झांक और तब उत्तर दे। हे बाहय छायाओं के द्रष्टा, अपनी ही आत्मा की शक्तियों को जान।
"यदि यह नहीं करता है, तो तू नष्ट हो जाएगा।"
और यह जो सारे अपने ही विचारों की संतति-परंपरा है, जो अपने ही लोभ की सूम तरंगें हैं, अपनी ही वासना के सूम जाल हैं, इनके संबंध में अगर तू ठीक से सचेत नहीं हो जाता है, तो विराग के द्वार से भी पुनः लोभ के गर्त में गिर जाएगा। नहीं जागता है, नहीं सचेत होता है, तो नष्ट हो जाएगा। और इस संबंध में जो भी तुझे कहना हो, सोच कर मत कह, अपने हृदय की गहराई में झांक, जैसे कोई कुएं में झांके और वहां से उत्तर दे।
यह थोड़ा समझ लें।
उत्तर दो तरह से हम दे देते हैं। एक उत्तर तो सीधा खोपड़ी से दे दिया जाता है; उसका कोई मूल्य नहीं है, व्यर्थ है। किसी ने आपसे पूछा कि क्या आप ईश्वर को मानते हैं? आप जल्दी उत्तर दे देंगे; कहेंगे हां या ना। आस्तिक होंगे, तो कह देंगे कि मानता हूं, ईश्वर है। नास्तिक होंगे, तो कह देंगे कि नहीं मानता हूं, ईश्वर नहीं है। लेकिन क्या कभी आपने रुक कर अपने हृदय की गहराई में झांका कि ईश्वर को मैं मानता हूं? जानता हूं, ईश्वर है? कभी आपने आंख बंद की और अपने भीतर उतरे, और खोजा कि मेरे प्राणों की गहराई में क्या भाव है? तो शायद आप जल्दी उत्तर न दे पाएं; तो शायद आप कहें कि रुको, कुछ वर्ष मुझे खोजने दो, तब मैं उत्तर दूंगा, क्योंकि अभी मुझे पता ही नहीं कि मेरे प्राणों की गहराई में क्या भाव है? ईश्वर की कोई है अनुगूंज वहां? अगर मैं आपसे कहूं कि विराग के द्वार पर समझ लेना ठीक से कि कहीं लोभ न पकड़ ले, तो अपने भीतर झांकना और देखना कि आप जो वैराग्य की चेष्टा भी कर रहे हैं, उसमें ही तो कहीं लोभ नहीं छिपा है? ध्यान अगर कर रहे हैं, तो

उसमें भी कहीं लोभ नहीं छिपा है? अगर परमात्मा की थोड़ी खोज भी कर रहे हैं, तो उसमें तो कहीं लोभ नहीं छिपा है? अगर उसमें ही लोभ छिपा है, तो समझना कि वही बाधा है। परमात्मा की तरफ से कोई बाधा नहीं है कि आप उसे न जान लें। वह उघड़ा हुआ है। अभी पर्दा आपकी आंख पर है, उस पर नहीं। और आनंद की कोई अड़चन नहीं है। वह चारों तरफ भरा है आपके; रोएं-रोएं से प्रवेश करने को तैयार है, लेकिन कोई रोआं तक आपका खुला नहीं है; द्वार सब बंद हैं।
लोभ जिस-जिस की मांग करता है, उस-उस के लिए ही बाधा है। लोभ जो मांगता है, उसी के लिए उपद्रव हो जाता है, उसी के लिए रुकावट खड़ी हो जाती है।
"... अपने अंतस की गहराई में झांक और तब उत्तर दे।"
यह उत्तर भी किसी दूसरे को देना नहीं है, यह उत्तर स्वयं को ही दे लेना
है कि मेरी मनोदशा क्या है। मंदिर भी जा रहा हूं, तो मंदिर ही जा रहा हूं, या मंदिर भी एक सौदे की जगह है, जहां मैं परलोक के कुछ सौदे कर रहा हूं, कुछ दूरगामी योजनाएं बना रहा हूं? यह अगर साफ-साफ न हो, तो श्रम व्यर्थ जाता है और साधक व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है।

समाधि के सप्त द्वार
आठवां प्रवचन

अस्तित्व से तादात्म्य

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 13 फरवरी

चौथे मार्ग विराग पर वासना या इच्छा का हलका सा झोंका भी आत्मा की शुभ्र दीवारों पर पड़ने वाले स्थिर प्रकाश को हिला देगा। अंतःकरण में, जो तेरी उच्चस्थ आत्मा और निम्नस्थ आत्मा के बीच पथ या सेतु है, जो वृत्तियों का महापथ है और जो अहंकार को झकझोर कर जगाने वाला है, माया के भ्रांत सुखों के लिए राग या खेद की छोटी से छोटी लहर भी, बिजली की कौंध जैसी भासती लहर भी, तेरे तीन पुरस्कारों को तुझसे छीन लेगी, जो तूने श्रम से जीते हैं। क्योंकि तू जान कि उस नित्य में कोई छूट नहीं है।
महाप्रभु का, पूर्णता के तथागत का जो अपने पूर्वजों के चरण चिन्हों
पर चलते चले आए हैं, वचन हैं: आठ घोर दुख सदा के लिए विदा हो जाते हैं। यदि नहीं, तो जान कि तू ज्ञान को, निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो सकता।
विराग का सदगुण बहुत कठोर और क्रूर है। यदि तू इस मार्ग का स्वामी होना चाहता है तो तुझे पहले से बहुत बढ़ कर अपने मन और दृष्टि को घातक कर्म से मुक्त रखना है।
तुझे अपने को शुद्ध आलय (परमात्मा) से परितृप्ति कर लेना है और निसर्ग
के आत्म-भाव के साथ एक हो जाना है। इसके साथ एक होकर तू अजेय है, पृथक रह कर तू समवृत्ति की क्रीड़ा-भूमि बन जाता है, जो संसार की समस्त भ्रांतियों का मूलस्रोत है।

मंजिल जैसे-जैसे शिखर पर पहुंचती है, वैसे-वैसे कठिन होती जाती है। मंजिल जैसे-जैसे पास आती है वैसे-वैसे भटकने की संभावना भी बढ़ जाती है। क्योंकि जितनी हो ऊंचाई, उतना ही गिरने का डर है। नरक से गिरने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि उससे कोई नीचे की जगह नहीं है। लेकिन स्वर्ग से गिरने की सारी सुविधा है; क्योंकि सब कुछ उसके नीचे है। मोक्ष से भी गिरने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि मोक्ष के नीचे ऊपर, दोनों तरफ कुछ भी नहीं है। नरक से सब कुछ ऊपर है, इसलिए नरक से कोई गिर नहीं सकता। स्वर्ग से सब कुछ नीचे है; इसलिए स्वर्ग से कोई भी गिर सकता है। मोक्ष से गिरने का फिर कोई उपाय नहीं--न बढ़ने का, न गिरने का; क्योंकि उसके नीचे-ऊपर दोनों ही दिशाएं नहीं हैं।
साधक जैसे-जैसे मोक्ष की तरफ पहुंचता है, वैसे-वैसे स्वर्गीय होता चला
जाता है, वैसे-वैसे उसके सुख सूम, वैसे-वैसे उसकी प्रतीति अत्यंत तरल, शुद्ध, वैसे-वैसे उसका अनुभव बहुमूल्य, नाजुक होता जाता है। और जितना नाजुक होता है अनुभव, जितना सूम होता है, उसे उतनी ही छोटी सी घटना नष्ट भी कर डालती है। जितनी मूल्यवान चीज है, उतनी ही नाजुक हो जाती है। और इस यात्रा में तो हम अपने को रोज ही नाजुक बनाते हैं--संवेदनशील, सेंसिटिव। जरा सा झोंका सब तोड़ दे सकता है। और जब हवा की आंधी उठती है तो सड़क के किनारे पत्थरों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता, लेकिन वृक्षों की शाखाओं में लगे फूल झड़ जाते हैं। पत्थर अपनी जगह बने रहते हैं, पत्थर नष्ट नहीं होते, लेकिन फूल नष्ट हो जाते हैं। जरा सा झोंका हवा का और फूल गिर जाते हैं। फिर जितना हो नाजुक फूल, उतने जल्दी गिर जाता है, और जितनी ऊंची शिखा पर हो, उतनी जल्दी गिर जाता है।
यह सूत्र इस संबंध में ही विचारणीय है।
"चौथे मार्ग विराग पर वासना या इच्छा का हल्का सा झोंका भी आत्मा की दीवालों पर पड़ने वाले स्थिर प्रकाश को हिला देगा।"
चौथे द्वार विराग पर वासना का हल्का सा झोंका भी, वह जो नये प्रकाश की झलक आ रही है, उसे हिला देगा; उस प्रकाश को डांवांडोल कर देगा, उस प्रकाश को ओझल कर देगा, कंपित कर देगा। और भीतर का प्रकाश कंपित हुआ, तो आगे नहीं

जाया जा सकता; पीछे गिरना शुरू हो जाता है। प्रकाश की स्थिरता ही आगे जाने का मार्ग है। भीतर का प्रकाश जितना डांवांडोल होता है, उतना हम नीचे गिर जाते हैं। जिस दिन भीतर का प्रकाश अकंप हो जाता है, कुछ भी उसे कंपा नहीं पाता, कंपने की संभावना नहीं रह जाती, उसी दिन हम परम स्थिति को उपलब्ध हो जाते हैं। तो भीतर की ज्योति मापदंड है कि वह कितनी कंपती है, कितनी ठहरी है।
वासनागत जगत में छोटी-मोटी वासनाओं से कुछ पता भी नहीं चलता। क्योंकि
आप इतने बड़े रोगों से भरे होते हैं कि छोटे रोगों का क्या पता चले! आपके भी अनुभव में होगा कि अगर बड़ा रोग आ जाए, तो छोटा रोग भूल जाता है। अगर पैर में कांटा गड़ा हो और कोई छुरी लेकर सामने खड़ा हो जाए, तो आपको फिर कांटे का बिल्कुल पता नहीं चलता है। आपने काले ही वस्त्र पहन रखे हों और कोई कालिख से आपको पोत डाले, आपके वस्त्रों पर, कोई पता नहीं चलता। लेकिन जितने हों शुभ्र वस्त्र, जरा सी धूल भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। पृष्ठभूमि जितनी हो शुभ्र, उतना ही अशुभ्र भयंकर मालूम पड़ता है। क्योंकि सब प्रतीतियां तुलनात्मक हैं। जैसे-जैसे आगे बढ़ता है साधक और विराग के करीब पहुंचता है, वैसे-वैसे राग की छोटी सी झलक भी भयंकर तूफान की तरह मालूम पड़ती है और सब उखाड़ कर रख देती है। क्योंकि पौधे विराग के अभी बहुत नये हैं, उनकी जड़ें अभी बहुत गहरी नहीं; अभी ये बिल्कुल बच्चे हैं।
सुना है मैंने, एक सूफी फकीर जुन्नैद जिंदगी भर रोता रहा। अपने को पीटता था, रोता था। रास्तों से निकलता था, तो अपने को खुद चांटे मारता था। लोग उससे पूछते थे कि "क्यों इतना पश्चात्ताप करता है? क्या तूने किया है पाप? क्योंकि जैसा हम तुझे जानते हैं, तुझसे ज्यादा पवित्र आदमी खोजना मुश्किल है। और अगर तू इतना दुखी है, पश्चात्ताप से भरा है, तो हमारी क्या गति होगी? और हम इतने पाप कर रहे हैं, हमें जरा भी पश्चात्ताप नहीं है। तूने पाप क्या किया है? यह गांव तुझे बचपन से जानता है--न तूने कभी चोरी की, न कभी क्रोध किया, न किसी को गाली दी, न किसी का अपमान किया। तुझसे ज्यादा पवित्र आदमी पृथ्वी पर भी शायद दूसरा न हो।" लेकिन जुन्नैद अपने को सजा देता रहा।
मरते वक्त, उसके शिष्य हजारों थे, वे इकट्ठे हुए, उन्होंने कहा, अब तो बता दो कि सजा किसको दे रहे थे? तो उसने कहा कि एक बार मेरे मन में ऐसा ख्याल आ गया था कि मैं बड़ा पवित्र हूं; वही पाप हो गया। और परमात्मा के सामने खड़े होकर मैं अब आंखें भी न उठा सकूंगा, क्योंकि मैंने एक पाप किया है। कि मैं पवित्र हूं--यह ख्याल मुझे एक बार आ गया था, उसकी ही सजा अपने को दे रहा हूं। लोगों ने कहा, पागल हो गए हो? अगर इतने से पाप से तुम परमात्मा के सामने आंखें न उठा सकोगे, तो हमारा क्या होगा? जुन्नैद ने कहा, तुम मजे से आंखें उठा सकोगे। तुम्हारे पाप इतने हैं कि तुम्हें शर्म भी न आएगी। और शर्म भी कितनी करोगे? मैं भी तुम जैसा होता, तो कोई चिंता न थी; बस वह एक अटक गया है। शुभ्र वस्त्र पर वह काला दाग ऐसा दिखाई पड़ता है कि उसे मैं भूल नहीं पाता, उसकी ही पीड़ा है।
इसे ख्याल रखें कि जैसे-जैसे आप बढ़ते हैं अंतर्यात्रा में, वैसे-वैसे छोटी-छोटी चीजें बड़ी मूल्यवान हो जाती हैं। क्षुद्र भी विराट की यात्रा पर बड़ा विराट मालूम होने लगता है। और जब तक उससे छूटना न हो जाए, तब तक आप वापिस फेंके जा सकते हैं। मार्ग संकीर्ण है, ऊंचाई ज्यादा है, और आप नये और नाजुक हैं इस यात्रा पर। जरा सी भूल भयंकर हो सकती है।
"विराग पर वासना का हल्का सा झोंका भी आत्मा की शुभ्र दीवालों पर पड़ने वाले स्थिर प्रकाश को हिला देगा। अंतःकरण में जो तेरी उच्चस्थ आत्मा और निम्नस्थ आत्मा के बीच सेतु है, जो वृत्तियों का महापथ है और जो अहंकार को झकझोर कर जगानेवाला है, माया के भ्रांत सुखों के लिए राग या खेद की हल्की छोटी सी लहर भी, बिजली की कौंध जैसी भासती लहर भी, तेरे तीन पुरस्कारों को तुझसे छीन लेगी, जो तूने श्रम से जीते हैं।"
विराग के द्वार पर खड़े होकर अहंकार की जरा सी झलक सब नष्ट कर देगी।
और विराग के द्वार पर अहंकार आता है। रागी का अहंकार है, विरागी का अहंकार है। रागी का अहंकार बहुत स्थूल है, साफ दिखाई पड़ता है। विरागी का

अहंकार बहुत सूम है, साफ दिखाई नहीं पड़ता। और इसलिए ज्यादा खतरनाक है। जो शत्रु दिखाई पड़ता हो, ज्यादा खतरनाक नहीं है, उसके कुछ उपाय किए जा सकते हैं। अदृश्य शत्रु बहुत खतरनाक है, क्योंकि वह दिखाई नहीं पड़ता। कृष्णमूर्ति ने साधुओं को, संन्यासियों को पायस ईगोइस्ट कहा है, पवित्र अहंकारी। ठीक है, वह डर है। और अपवित्र अहंकार इतना खतरनाक नहीं है; क्योंकि वह जो अपवित्रता है, वह भी तो पता चलती रहती है। पवित्र अहंकार बहुत खतरनाक है; क्योंकि पवित्रता में अहंकार बिल्कुल छिप जाता है। जहर के चारों तरफ शक्कर की एक पर्त हो जाती है और तब उस जहर को पी जाना बहुत आसान है। अपवित्र अहंकार तो शुद्ध जहर है। उसके आसपास शक्कर की पर्त भी नहीं, उसका तो पीने वाले को पता भी चलता है। पवित्र अहंकार का पता भी नहीं चलता है।
धर्मों में जो संघर्ष चलता है, वह पवित्र अहंकारियों का संघर्ष है। शुद्ध जहर है, लेकिन पर्त पर पवित्रता है। त्यागी है कोई, तो वह भी उतनी ही अकड़ से चलता है, उसकी अकड़ बहुत सूम है, भोगी भी उतनी अकड़ से नहीं चलता है। जिनके पास धन है, वे क्या अकड़ कर चलेंगे--उसके मुकाबले जिसने धन को लात मार दी। स्वभावतः जिसके पास धन है, जिसने धन को लात मार दी, उससे छोटा अहंकार है। और धन तो बहुतों के पास होता है; धन को लात मारना बहुतों की हिम्मत नहीं होती। वह जो सब छोड़ दिया है, उसे एक नई चीज पकड़ लेती है कि मैंने सब छोड़ दिया है। त्याग भी भोग बन जाता है, और विनम्रता अहंकार हो जाती है और पवित्रता भी पाप बन जाती है।
विराग के क्षण में यह भाव पकड़ेगा कि "मैंने छोड़ा, दूसरे नहीं छोड़ पा रहे हैं; मैंने त्यागा, दूसरे नहीं त्याग पा रहे हैं--मुझसे बड़ा त्यागी कौन! मैंने संसार को लात मार दी! जो इतना कठिन था, अति कठिन को मैंने पूरा किया है।" यह "मैं" निर्मित हुआ।
सूत्र कहता है: अगर यह "मैं" निर्मित हुआ, तो वे जो तीन द्वार तूने श्रम से पार किए थे, तत्क्षण खो जाएंगे। तू वापिस अपनी जगह खड़ा हो जाएगा, जहां तू था। इसमें क्षण की देरी न लगेगी। जो श्रम से पाया है, वह बिल्कुल आसानी से खोया जा सकता है।
ध्यान रखनाः श्रम से पाया हुआ, जरूरी नहीं कि श्रम से ही खोया जाए। जिस मकान को बनाने में वर्षों लगे हों, उसे दिन भर में गिराया जा सकता है; क्षण में गिराया जा सकता है। और यह जो भीतर का भवन है, जिसको जन्मों से बनाया हो, उसे क्षण में भूमिसात किया जा सकता है। एक छोटी सी बात, और सब नष्ट हो जाता है। तो जितना आप आगे बढ़ते हैं, उतना ही सूम में विनाश की संभावना बढ़ जाती है। जितनी सृजन की संभावना बढ़ती है उतनी ही विनाश की संभावना बढ़ जाती है। इसे ऐसा समझें कि आपकी सभी संभावनाएं साथ-साथ बढ़ती हैं। इस सूत्र को, इस नियम को बहुत गहराई से पकड़ लें। आप में एक ही दिशा नहीं बढ़ती, साथ ही दूसरी दिशा भी बढ़ती है। जैसे आप जितना सुख पाने में समर्थ हो जाते हैं, उतना ही दुख पाने में भी समर्थ हो जाते हैं। सुख के साथ दुख की क्षमता बढ़ जाती है। पशु बहुत दुखी नहीं दिखाई पड़ते, क्योंकि बहुत सुखी होने का उनमें उपाय नहीं है। एक अमीर आदमी को जितना दुखी कर सकते हैं, उतना गरीब आदमी को नहीं कर सकते। क्योंकि अमीर आदमी ने जब सुख की क्षमता बढ़ा ली, तब उसकी दुख की क्षमता भी बढ़ गई।
वह जो विपरीत है, वह साथ-साथ बढ़ता है; वह किनारे-किनारे चलता है। आप एक
को नहीं बढ़ा सकते; वह दूसरा खाई की तरह हमेशा शिखर के पास मौजूद है। जितनी आपकी नीति बढ़ती है, उतनी अनीति भी आपके किनारे खड़ी है। जितना आपका पुण्य बढ़ता है, उतना पाप भी आपके किनारे खड़ा है। पापी नहीं गिर सकता, आप गिर सकते हैं। जितनी हो श्रेष्ठता, उतनी निकृष्टता का डर है। जितनी सृजन की क्षमता बढ़ती है, उतना विध्वंस भी बढ़ जाता है। दोनों चीजें साथ चलती हैं, दोनों विपरीत चीजें साथ चलती हैं। जितनी आपकी शांति बढ़ती है--यह सुन कर हैरानी होगी--उतनी ही आपकी क्रोध की क्षमता बढ़ जाती है। यह बड़ा उलटा मालूम पड़ेगा। और हमने ऋषि-मुनियों की कथाएं पढ़ी हैं, जिनमें वे भयंकर क्रोधी हैं,
तो उसका कारण आपको समझ लेना चाहिए। अगर दुर्वासा जैसे ऋषियों की कथा है, तो उसका कारण है। जितनी उनकी शांति बढ़ गई, उतनी ही उनकी क्रोध की क्षमता बढ़

गई। वे क्रोध न करें, यह दूसरी बात है; बचा ले जाएं, यह दूसरी बात है। करें, तो उन जैसा क्रोध फिर दूसरा नहीं कर सकता है। तो उनका क्रोध परिणामकारी होगा। आपका क्रोध परिणामकारी नहीं होता। इसलिए हमने यह मीठी बात सैकड़ों कथाओं में जोड़ी कि ऋषि का अभिशाप खतरनाक है। आपके अभिशाप का कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि आप तो अभिशाप देते ही रहते हैं, ऋषि देता नहीं। ऋषि से संभावना ही हम नहीं मानते कि वह अभिशाप देगा। लेकिन अगर कभी ऋषि से अभिशाप हो, तो वह फलित होगा; उसको रोकने की कोई क्षमता फिर कहीं भी नहीं।
तो ऐसी कथाएं हैं हमारे पास, बहुत मूल्यवान, बहुत प्रतीकात्मक--कि ऋषि
ने अगर शाप दे दिया, तो फिर भगवान भी उसे बदल नहीं सकता, वह झेलना ही पड़ेगा, क्योंकि वह इतनी ऊंचाई से दिया गया है। और जो आदमी इतनी ऊंचाई से गिरने को राजी हुआ है, जो इतना खो रहा है अपने अभिशाप के पीछे, उसके अभिशाप का फल होगा।
जब आप अभिशाप देते हैं तो उसका कोई फल नहीं होता। क्योंकि आप कुछ खो नहीं रहे हैं, आप दांव पर कुछ लगा ही नहीं रहे, आपकी गाली नपुंसक है।
आपका आशीर्वाद भी व्यर्थ है, आपका अभिशाप भी व्यर्थ है। जब आशीर्वाद
की क्षमता बढ़ती है, तब अभिशाप की क्षमता भी बढ़ जाती है। उस वक्त सावधान रहना जरूरी है।
समस्त धर्मों ने कहा है कि साधक को दूसरे के संबंध में बुरा विचार भूल
कर भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह तत्क्षण परिणामकारी हो सकता है। आप करते रहो, उससे कुछ हर्जा नहीं होता। आपको होता होगा, किसी और को नहीं हो सकता। आप कितना ही सोचो कि फलां आदमी मर जाए तो अच्छा। कोई आपके सोचने से मरने वाला नहीं। लेकिन ऋषि के मन में यह भाव आ जाए तो मृत्यु घटित हो सकती है। क्योंकि ऋषि के मन में यह भाव आ नहीं सकता। आ जाए, तो यह घटित हो जाएगा। क्योंकि ऋषि इस भाव के साथ नीचे गिर रहा है। और बहुत सी ऊर्जा उसके नीचे गिरने से मुक्त हो रही है, रिलीज हो रही है। वह ऊर्जा आपकी मौत बन सकती है। वह दांव पर अपने को लगा रहा है। आप जब किसी को अभिशाप देते हैं, दांव पर तो कुछ भी नहीं लगाते, सिर्फ मन का खेल है। ऋषि अपनी जिंदगी भर की कमाई, शायद अनेक जन्मों की कमाई, दांव पर लगा रहा है। वह इतनी ऊंचाई से गिर रहा है कि उसके गिरने में शक्ति है।
आपको पता है, जितनी गति हो, उतनी शक्ति हो जाती है। अगर एक छोटे से कंकड़ को भी हम प्रकाश की गति से फेंक सकें, तो दुनिया की कोई ताकत भी उसको रोक नहीं सकेगी, वह सभी चीजों को छेद करके बाहर निकल जाएगा। एक छोटा सा कंकड़, एक टुकड़ा रेत का, अगर प्रकाश की गति से फेंका जाए, तो उसके पास वही शक्ति होगी, जो एटम बम के पास है। बस गति के साथ शक्ति बढ़ जाती है। अगर बंदूक की गोली आपको मार डालती है, तो सिर्फ उसके भीतर छिपी हुई बारूद ही नहीं है, जिस गति से फेंकी जाती है, वह गति भी है। कोई यहां से धीमे से आपको फेंक कर मार दे, तो गोली नीचे गिर जाएगी, कुछ होगा नहीं। बारूद नहीं है असली चीज, असली चीज गति है--कितनी गति से फेंकी गई है।
जब ऋषि गिरता है, तो उसमें गति होती है--बड़ी ऊंचाई से गिरने की गति। और
जब आप गिरते हैं तो जमीन पर धम्म से गिर जाते हैं, कोई गति नहीं होती; जहां खड़े थे, वहीं गिरते हो। आपका अभिशाप गतिहीन है।
इसलिए दुर्वासा का खतरा है। और वह कुछ कहते हैं, तो फिर उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह कुछ कह कर अपनी ताकत खो रहा है। वह ताकत कहां जाएगी? एक गोली की तरह उसकी ताकत आपकी तरफ आ रही है। इसलिए समस्त धर्मों ने कहा है कि इसके पहले कि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक ऊंचाइयों की तरफ बढ़े, उसे शील को साध लेना चाहिए; नहीं तो वह खतरनाक है।
बुद्ध ने तो नियम बनाया था कि उनके भिक्षु हर प्रार्थना के बाद अनिवार्य रूप से प्रार्थना भी करें कि मुझे जो इस प्रार्थना से मिला है, वह सारे जगत को बंट जाए, मेरे पास न रहे। इस भाव को वह गहरा करता जाए कि जो भी मैं पाऊं अध्यात्म में, जो भी शक्ति हो, वह सबको बंट जाए, वह मेरे पास न रहे, वह मेरे लिए न हो। यह करुणा प्रार्थना के साथ-साथ बढ़ती रहे, तो बचाव रहेगा। नहीं तो प्रार्थना अकेली किसी दिन खतरनाक हो सकती है। क्योंकि शक्ति हाथ में होगी और करुणा का कोई बोध नहीं होगा। तो बुद्ध ने कहा है कि

प्रार्थना से जो भी मिले, तुम उसे रोज ही बांट देना; तुम उसे इकट्ठा ही मत करना; वह परिग्रह ही मत करना। नहीं तो किसी दिन शक्ति हाथ में होगी और खतरा पास होगा। बारूद हाथ में होगी और आग भी पास होगी। और जैसे-जैसे शिखर पर बढ़ेंगे, बारूद और आग करीब-करीब आते जाएंगे। ठेठ शिखर के पास पहुंच के बारूद और आग बिल्कुल पास-पास होगी। उस वक्त बचाना कठिन हो सकता है।
पर जितना कठिन हो, उतना ही बचाने का मजा भी है। और जितना कठिन हो उतना
रस भी है। और जितना कठिन हो, उतना ही उस कठिनाई से पार उठने में आप और बड़े शिखर पर स्थापित हो जाते हैं। और यदि गिरते हैं, तो खाई में पड़ जाते हैं। अगर नहीं गिरते, तो शिखर बहुत करीब आ जाता है।
ध्यान रहे, यह अनुपात में है। जिस जगह से आप जितने नीचे गिर सकते हैं,
उस जगह से आप उतने ही ऊपर उठ सकते हैं। यह अनुपात बराबर है। अगर एक पहाड़ से, इस आध्यात्मिक शिखर से आप हजारों मील नीचे गिर सकते हैं, अगर भूल करें; और भूल से अगर बच जाएं, तो हजारों मील ऊपर उठ जाते हैं। ये दोनों बातें साथ-साथ हैं।
कहा जाता है कि महापुरुष भूल नहीं करते; यह बिल्कुल गलत है। महापुरुष छोटी भूल नहीं करते हैं। करते हैं, तो महान भूल करते हैं। लोग कहते हैं कि छोटे आदमी, और बड़े आदमी में यही फर्क है कि छोटा आदमी भूल करता है, बड़ा आदमी भूल नहीं करता; यह बिल्कुल गलत है। छोटे और बड़े आदमी में यह फर्क नहीं है। छोटे और बड़े आदमी में यही फर्क है कि छोटा आदमी छोटी भूल करता है, बड़ा आदमी बड़ी भूलें करता है। छोटा आदमी छोटी भूलें न करे, तो थोड़ा-सा आगे बढ़ता है। बड़ा आदमी बड़ी भूलें न करे, तो बड़ा आगे बढ़ता है। आपकी भूल जितना आपको गिराती है, उतना ही आपकी न भूल आपको उठा सकती है। इससे ज्यादा नहीं हो सकता है।
दोनों चीजें साथ-साथ बढ़ती चली जाती हैं। उस दूसरे का ख्याल रखना, जो आपके साथ चल रहा है। और जितने आप शक्तिमान हो रहे हैं, उतना ही वह दूसरा भी शक्तिमान हो रहा है।
"इस विराग के क्षण में जरा सा झोंका अहंकार को झकझोर कर जगा देगा। बिजली की कौंध जैसी भासती छोटी सी हलकी लहर भी तेरे तीन पुरस्कारों को तुझसे छीन लेगी, जो तूने श्रम से जीते हैं।"
"क्योंकि तू जान कि उस नित्य में कोई झूठ नहीं है।"
उसका नियम शाश्वत है, उसमें कोई झूठ नहीं है।
अगर आप बैलगाड़ी पर से गिरते हैं, तो भी जमीन का गुरुत्वाकर्षण का नियम काम करता है; लेकिन चोट उतनी ही लगती है, जितनी ऊंचाई पर बैलगाड़ी में बैठे थे। और अब हवाई जहाज से गिरते हैं, तब भी वही नियम काम करता है गुरुत्वाकर्षण का; लेकिन तब बचने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आप बैठे हवाई जहाज में थे, बैलगाड़ी में नहीं। इसलिए बैलगाड़ी का चालक आंख बंद करके भी दोपहर में यात्रा करता है। वहां कोई ज्यादा डर नहीं है। और भटके भी, तो बहुत नहीं भटक सकता। न भी पहुंचे, तो भी मंजिल बहुत दूर नहीं होगी। पहुंच ही जाएगा। वह जो बैलगाड़ी का चालक है, सो भी जाता है, तो बैल भी चला लेते हैं। आपके जागे होने की बहुत जरूरत नहीं है। दुकान आपके बैल भी चला लेते हैं, बाजार आपके बैल भी चला लेते हैं। आपकी इंद्रियां भी काम को कर लेती हैं।
जब आप अपने घर लौटते हैं तो आपको याद रखने की जरूरत नहीं कि रास्ता कहां से कहां जा रहा है। सोचने की भी जरूरत नहीं, पैर ही खुद जाते हैं। खड़े होकर सोचना नहीं पड़ता कि अब बाएं घूमें कि दाएं घूमें, पैर ही मुड़ जाते हैं। जब आप गाड़ी डरइव करते हैं, तो हाथ ही काम चला लेते हैं; आंख की भी जरूरत नहीं होती। मन की, विचार की तो कोई जरूरत नहीं होती। और आत्मा को जगाने का तो कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन जितनी ऊंचाई पर आप हैं, उतना ही सजग होना पड़ेगा।
जो लोग अभी चांद पर भेजे गए हैं अंतरिक्ष यात्रा के लिए, उन सबको ध्यान और योग की शिक्षा देनी पड़ी है। रूस में पहली दफा ध्यान के प्रति उत्सुकता आई है अंतरिक्ष यात्रा
के कारण। क्योंकि अंतरिक्ष यात्री को तो बिल्कुल ध्यानी ही होना चाहिए, नहीं तो जरा सी चूक, इंच भर की चूक और अनंत का फासला हो जाएगा। फिर

दुबारा मिलने का कोई उपाय नहीं होगा। चांद पर उतरने की घटना सिर्फ यांत्रिक विकास का ही परिणाम नहीं है, ध्यान का भी उसमें इतना ही हाथ है। क्योंकि अंतरिक्ष यात्री को पल-पल का बोध रखना जरूरी है। और एक पल की चूक, सब चूक हो सकती है। और जरा सा भटकाव, कि हमें कभी पता भी नहीं चलेगा कि हमारे यात्री कहां गए और उनका क्या हुआ। वहां भूल-चूक नहीं चलेगी।
जितनी ऊंचाई बढ़ती है, उतना ही भूल-चूक से सावधान होना जरूरी है, और भूल-चूक उतनी ही महंगी हो जाती है। ऊंचा चढ़ने वाला खतरे अपने हाथ से मोल ले रहा है। लेकिन खतरों के बिना कोई उपलब्धि भी नहीं है।
"और वह जो नियम है, तू जान कि उस नित्य नियम में कोई छूट नहीं है।"
यह कभी मत सोचना कि तू छोड़ दिया जाएगा, तू अपवाद हो जाएगा। यह भ्रांति
मन को पकड़ती है कि इतनी सी भूल है, परमात्मा क्षमा कर देगा। जितनी ऊंचाई हो, उतनी ही क्षमा असंभव हो जाएगी। आपको क्षमा किया जा सकता है। जीसस को या बुद्ध को क्षमा नहीं किया जा सकता। आप इतनी भूलें कर रहे हैं कि क्षमा न हों, तो आप जी ही नहीं सकते। क्षमा का मतलब केवल इतना ही है कि आप जहां खड़े हैं, वहां भूल से कोई बड़ा नुकसान नहीं होता। आप जमीन पर ही खड़े हैं। बुद्ध आकाश में उड़ रहे हैं। वहां से गिरना खतरनाक है।
और जितनी आपकी योग्यता बढ़ती जाती है, यह अस्तित्व आपसे उतनी ही ज्यादा योग्यता की मांग करता है। यह कसौटी है।
सुना है मैंने कि ऐसा हुआ एक बार अवनींद्रनाथ ठाकुर बड़े कलाकार थे, रवींद्रनाथ के चाचा थे। नंदलाल बसु उनके शिष्य थे और अवनींद्रनाथ के बाद भारत में उनका कोई मुकाबला न था। और नंदलाल अवनींद्रनाथ के पास सीखते थे चित्रकला। तो एक दिन रवींद्रनाथ बैठ कर गपशप करते थे अवनींद्रनाथ से। नंदलाल कृष्ण का एक चित्र बना कर लाए। चित्र ऐसा अदभुत था कि रवींद्रनाथ ने कहा है कि मैंने ऐसा कृष्ण का कोई चित्र कभी नहीं देखा है, शायद अद्वितीय है। अवनींद्रनाथ ने, लेकिन चित्र को देखा, और चित्र को फेंक दिया बाहर, मकान के। और कहा, नंदलाल, इससे अच्छा तो बंगाल के पटिये कृष्ण का चित्र बना लेते हैं!
बंगाल में कृष्णाष्टमी के समय दो-दो, चार-चार पैसे में गांव के गरीब चित्रकार कृष्ण का चित्र बनाते हैं, वे चित्रकार पटिये कहलाते हैं, कृष्ण-पट बनाते हैं।
तुझसे अच्छा वे बना लेते हैं--इससे ज्यादा अपमान और कुछ हो नहीं सकता
दो पैसे का चित्र बनाने वाला पटिया! यह भी तू कोई कृष्ण का चित्र बना कर लाया है, जा पटियों से सीख!
रवींद्रनाथ तो दंग रह गए। और रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मुझे हुआ कि यह क्या कर रहे हैं अवनींद्रनाथ। जहां तक मेरी समझ है, इनका भी कोई चित्र इस चित्र के मुकाबले नहीं है। पर वह गुरु हैं और नंदलाल शिष्य हैं। बीच में बोलना उचित भी नहीं है। नंदलाल वापिस चले गए, वह चित्र जहां पड़ा था, वहीं पड़ा रहा।
अवनींद्रनाथ बाहर गए और चित्र उठा कर लाए, उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे। तब तो रवींद्रनाथ और हैरान हुए। उन्होंने कहा, आप कर क्या रहे हैं। शिष्य आपका चला गया, तो मैं बोल सकता हूं कि मुझे भरोसा नहीं कि आपने भी कृष्ण का इससे सुंदर चित्र बनाया हो। अवनींद्रनाथ ने कहा, वह मैं भी जानता हूं। तब बात और जटिल हो गई। और रवींद्रनाथ ने पूछा, तो फिर इतना ज्यादा कठोर होने की क्या जरूरत थी उस गरीब लड़के पर? उन्होंने कहा कि वह लड़का गरीब होता तो मैं इतना कठोर न होता। उसकी प्रतिभा अदभुत है, और अभी और संभावनाओं से उसे कसा जा सकता है। अगर मैं कह दूं कि ठीक, तो रुक जाएगा। तुम्हें पता नहीं कि कितनी पीड़ा मुझे होती है कि उसको मैं कह नहीं सकता ठीक, उसको मैं कभी नहीं कहूंगा ठीक। क्योंकि मेरा ठीक कहना उसकी हत्या है। साधारण शिष्यों को तो मैं ठीक कह ही देता। यह तो अदभुत है चित्र, इससे साधारण चित्रों को भी ठीक ही कह देता। उनसे ज्यादा आशा भी नहीं है।
जैसे-जैसे व्यक्ति ऊपर उठता है, वैसे-वैसे अस्तित्व ज्यादा आशा करता है, वैसे-वैसे चारों तरफ से शक्तियां कसती जाती हैं। कोई पीठ थपथपाने नहीं आता। जितने आप ऊपर जाते हैं, उतना ही अस्तित्व आपसे ज्यादा मांगता है।

जितने बड़े शिखर पर आप होते हैं, उतनी अस्तित्व की मांग बढ़ती चली जाती है।
क्योंकि अस्तित्व आपके भीतर से उस सबको निकाल लेना चाहता है, जो छिपा है।
जिनकी कोई योग्यता नहीं है, वे क्षमा किए जा सकते हैं। जैसे ही योग्यता बढ़ती है, वैसे ही जरा सी भूल अक्षम्य हो जाती है।
नंदलाल तीन साल के लिए नदारद हो गए। अवनींद्रनाथ जो भी आता, उससे पूछते, नंदलाल कहां है? किसी को पता नहीं कि नंदलाल कहां चले गए। तीन साल बाद लौटे, तो पहचानना मुश्किल था। वह गांव-गांव बंगाल में घूमते रहे। जहां-जहां उन्हें पता लगा कि कोई पटिया है, उसके पास जाकर सीखते कि कृष्ण का चित्र कैसे बनाते हैं? तीन साल बाद जब लौटे, तो उनकी हालत एक गरीब पटिये की हो गई थी। उनको पहचानना मुश्किल था कि लड़का वही है। अवनींद्रनाथ बूढ़े हो गए थे, उनकी आंखों में कम दिखाई पड़ता था। लेकिन नंदलाल आकर सामने खड़ा हो गया। और नंदलाल ने कहा कि आपकी बड़ी कृपा है, जो आपने मुझसे कहा। अगर उस दिन आप ऐसा न करते, तो मेरे भीतर जो छिपा था, वह छिपा ही रह जाता। आपकी कठोर करुणा के लिए धन्यवाद देने आया हूं।
हम सब सोचते हैं कि करुणा कठोर नहीं हो सकती। हम सोचते हैं कि अनुकंपा कठोर नहीं हो सकती। कठोर नहीं होती उनके लिए, जिनमें कोई योग्यता नहीं होती। उनको छोड़ा जा सकता है, अस्तित्व उन्हें क्षमा करता है। जैसे-जैसे योग्यता बढ़ती है, अस्तित्व कठोर होता जाता है; क्योंकि अस्तित्व करुणावान होता जाता है।
ये सारे शब्द जो मैं प्रयोग कर रहा हूं, ये सब प्रतीक शब्द हैं, इसका ख्याल रखना। क्योंकि एक मित्र ने आज ही पूछा है कि आप कहते हैं कि परमात्मा की तरफ हाथ जोड़ कर सिर झुका दें, मुझे पता नहीं कि कौन परमात्मा है, किसके प्रति सिर झुकाऊं? और जिसका मुझे पता ही नहीं है और फिर वह परमात्मा मेरी मदद करेगा क्या?
सवाल इसका नहीं है कि परमात्मा का पता है या नहीं, सवाल सिर्फ इसका
है कि आपने हाथ जोड़े और सिर झुकाया। यह बात मूल्यवान नहीं है कि किसके लिए झुकाया; वह गौण है, वह बहाना है सिर्फ। आप झुके, यही मूल्यवान है। परमात्मा आपकी मदद नहीं करेगा, क्योंकि वह ही मदद करता होता, तो कभी का कर देता। आप ही अपनी मदद करेंगे। लेकिन जितना आप झुकते हैं, उतनी आप अपनी मदद कर रहे हैं। और आप झुक नहीं सकते बिना परमात्मा की धारणा के, इसलिए कहता हूं झुको। नहीं पता है उसका, तो अज्ञात के लिए झुको। यह भी पता नहीं है, तो सिर्फ झुको, भूल जाओ, उसकी बात ही भूल जाओ, सिर्फ झुको।
समर्पण किसके प्रति, इसका मूल्य नहीं है। समर्पण का मूल्य है। झुक जाने का मूल्य है।
झुका हुआ आदमी अनेक शक्तियों को पाने का हकदार हो जाता है; अकड़ा हुआ आदमी अपने ही हाथ से बंद हो जाता है, उसे कोई शक्ति उपलब्ध नहीं होती। परमात्मा तो बहाना है, शब्द है। तुम्हें झुकाना असली बात है। किस बहाने तुम झुक जाते हो, यह गौण है। कोई बहाना खोज लो और झुको।
लेकिन बड़ा मजा है, बिना बहाने के अकड़े रहते हो। जब झुकने की बात आती है, पूछते हो, कौन परमात्मा, किसके लिए झुकना! अकड़े किसके लिए हो? किस कारण अकड़े हो? क्या है, जिससे अकड़े हो? यह कभी कोई नहीं पूछता कि मैं किस कारण अकड़ा हूं! क्या है मेरे भीतर जिससे मैं अकड़ा हुआ हूं? यह मिट्टी की देह से अकड़े हुए हो? इस जीवन से अकड़े हुए हो, जो अभी है और अभी नहीं हो जाएगा? बुद्धि से अकड़े हुए हो--क्योंकि दो-दो चार है, ऐसा जोड़ लेते हो? किस बात की अकड़ है? थोड़ा सोचो, बजाय इसके कि किसके सामने झुकें, ऐसा सोचो कि किसके कारण अकड़ रहे हैं, क्या है भीतर जिससे अकड़ रहे हैं?
और तब दिखाई पड़ेगा, भीतर कुछ भी तो नहीं है, जिसके कारण अकड़ रहे हैं।
यह दिखाई पड़ जाए, तो झुकना हो जाएगा। फिर सवाल नहीं कि किसके आगे झुकें। और अगर थोड़ी सी समझ हो, तो पता चलेगा, अकड़ ही सब दुखों का कारण है और झुक जाना ही सभी सुखों का द्वार है। क्योंकि झुका हुआ आदमी की कृपा संभव हो पाएगी। आप अकड़े ही खड़े रहें कि कैसे झुकें, अगर नदी को देना है, तो दे देगी। और यह भी शर्त क्या लगानी है, अगर परमात्मा इतना बड़ा देने वाला है, तो क्या शर्त लगानी कि झुको। यह भी क्या छोटी शर्त लगानी कि झुको, देना है तो दे दे। नदी

बहती रहेगी। ऐसा नहीं है कि आपको पानी नहीं देना चाहती। देने, न देने का कोई संबंध नहीं है। जो झुकता है, वह पानी पा जाता है। जो नहीं झुकता, वह प्यासा रह जाता है।
इस अर्थ में जब आपसे कहता हूं कि हाथ जोड़ कर झुक जाएं, तो समझना कि सब प्रतीक है। मुझे भी पता है कि आपको परमात्मा का पता नहीं है। पता ही होता, तो आप यहां आते क्यों? और जब आपको पता ही चल जाएगा, तब झुकिएगा? तब झुकने की कोई जरूरत न रह जाएगी। क्योंकि पता ही तब चलता है, जब आदमी पूरी तरह झुक ही गया हो। उसके पहले तो पता नहीं चलता। अगर आप यह शर्त रखते हैं कि जब पता चल जाएगा, तब झुकेंगे, तो आपको कभी पता नहीं चलेगा। आप झुक जाएं, पता का बिल्कुल ही विचार न करें; झुकते ही पता चलना शुरू हो जाएगा।
"महाप्रभु का, पूर्णता के तथागत का, जो अपने पूर्व तथागतों के चरण-चिन्हों पर चलते चले आए हैं, वचन हैंः आठ घोर दुख सदा के लिए विदा हो जाते हैं। यदि नहीं, तो जान कि तू ज्ञान को, निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो सकता।" तथागत बड़ा कीमती शब्द है और जटिल भी। बुद्धों के लिए तथागत शब्द का प्रयोग हुआ है, समस्त बुद्धों के लिए, जाग्रत पुरुषों के लिए। तथागत का शाब्दिक अर्थ होता है, जो अपने से पहले बुद्धों के चरण-चिन्हों पर चले। जटिलता यह है कि चरण-चिह्न बनते नहीं, उस लोक में कोई चरण-चिह्न नहीं बनते। सभी बुद्ध अनूठे होते हैं, और अपने ही जैसे होते हैं। और किसी दूसरे जैसे नहीं होते। किन्हीं दो बुद्धों के बीच किसी तरह की तुलना संभव नहीं है। जीसस बुद्ध हैं, महावीर बुद्ध हैं, गौतम बुद्ध हैं, कृष्ण बुद्ध हैं, सब जागे हुए पुरुष हैं। दो में कोई तालमेल नहीं है। कहां कृष्ण, कहां महावीर! कहां बुद्ध, कहां जीसस! क्या मेल है? क्या तालमेल है? चरण-चिन्ह भी कहां एक से हैं? सोलह हजार पत्नी किसी को दे दे। एक-एक पत्नी का अनुभव सभी को है। किन्हीं-किन्हीं को दो का है, तीन का भी है। वे जानते हैं कि कैसा है, कैसी अड़चन हो जाती है। सोलह हजार!
हिम्मतवर लोग थे, जो उन्होंने सोची बात। और कृष्ण इनके बीच भी बांसुरी बजा रहे हैं। एक ही पत्नी के साथ बांसुरी बजा कर देखिए!
नाच चल रहा है--यह कोई और ही है। जीसस से उसका कोई मेल नहीं, महावीर से उसका कोई मेल नहीं। यह सारा अस्तित्व एक नृत्य मालूम हो रहा है। जैसे दुख ऊपरी है और व्यर्थ है। दुख सिर्फ नासमझी है। पाप, पुण्य, पश्चात्ताप--सब ऊपरी बातें हैं। महोत्सव आंतरिक है, गहरा है।
तथागत शब्द इसलिए, समझने जैसा है। तथागत का मतलब हैः सब बुद्ध पुरुष
एक से ही हैं। लेकिन बाहर से तो बड़े भिन्न हैं, ऊपर से तो उनको साथ रखना ही मुश्किल है। कृष्ण को और क्राइस्ट को एक ही घर में ठहराएं--बड़ी मुश्किल होगी।
ऊपर से देखने पर तो बुद्ध पुरुषों में कोई मेल नहीं, प्रत्एक बुद्ध पुरुष अद्वितीय, अनूठा और अपने जैसा है, लेकिन गहरे में वे एक ही चरण-चिन्ह पर चले हैं।
गहरे में उनके चरण-चिह्न बिल्कुल एक हैं, लेकिन इतनी गहरी आंख हो तो
ही दिखाई पड़ते हैं। ऊपर के आवरण का भेद है, वस्त्रों का भेद है, व्यक्तित्वों का भेद है; आत्मा का भेद नहीं है।
"महाप्रभु का, पूर्णता के तथागत का, जो पूर्वजों के चरण-चिह्नों पर चलते चले आए हैं"
इसलिए बुद्ध पुरुष सदा नया है और सदा पुराना है। नया है, अगर आप उसको ऊपर से देखें और पुराना है अगर भीतर से जानें। अत्यंत नूतन है, मौलिक है और अत्यंत सनातन है, प्राचीन है। वह जो भी कह रहा है, एकदम अनूठा है और वह जो भी कह रहा है, वह सदा बुद्ध पुरुषों ने कहा है। ये विपरीत दिखाई पड़ने वाली बातें अगर एक साथ समझ में आ जाएं, तो तथागत शब्द का अर्थ समझ में आएगा। भीतर के लोक में बुद्ध और महावीर बिल्कुल एक जैसे हैं। क्या है उनकी
एक जैसी स्थिति?
यहां हम इतने लोग बैठे हैं, सब अलग-अलग हैं। ऊपर से चाहे, एक जैसे भी हों, क्योंकि शरीर एक ही जैसा है, वस्त्र एक जैसे हैं, ऊपर से तो बहुत सी बातें एक जैसी हैं, लेकिन भीतर वह जो विचार चल रहे हैं, वह सबके अलग-अलग

हैं। वह भीतर का विचार सबको भिन्न कर देता है। बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, महावीर, उनके भीतर विचार नहीं हैं, शून्य है। वह शून्य सबको एक जैसा कर देता है, भीतर से।
उस शून्य की अभिव्यक्ति में भेद पड़ता है। जब वह शून्य प्रकट होता है,
तो व्यक्तित्व की पर्तों से आता है। जैसे कि हम प्रकाश जलाएं और हर प्रकाश के आसपास अलग-अलग रंग के कांच के घेरे खड़े कर दें। एक नीला कांच का घेरा हो, एक लाल कांच का घेरा हो, एक हरा कांच का घेरा हो, एक सा दीया जले। और प्रकाश का रंग एक है। वह भीतर जले, लेकिन चारों घेरों के बाहर अलग-अलग प्रकाश दिखाई पड़ेगा।
बुद्ध के भीतर जो प्रकाश जल रहा है और क्राइस्ट के भीतर जो प्रकाश जल रहा है, वह एक है। वे दोनों तथागत हैं, वहां सब शून्य हो गया। दो शून्य में कोई भेद नहीं होता। दो विचारों में भेद होता है, दो मनों में भेद होता है। दो समाधियों में भेद नहीं होता। हम अगर सब यहां शांत हो जाएं तो हमारे भीतर फिर कोई भेद नहीं रह जाएगा। सब भेद ऊपरी हैं, भीतरी कोई भेद नहीं है बुद्ध पुरुष में। हममें सब तालमेल ऊपरी है, भीतरी बिल्कुल भेद है। ऊपर से हम करीब-करीब एक जैसे जीते हैं। भीतर बहुत भेद है। इसलिए दो मित्र भी बनाना मुश्किल है जगत में, क्योंकि दोनों में बड़ा भेद है। भीतर के विचार कलह उत्पन्न करते हैं। दो बुद्ध पुरुषों को मिलने की भी जरूरत नहीं है। सुना है मैंने कि महावीर और बुद्ध एक बार एक ही गांव में, एक ही धर्मशाला में ठहरे और मिले नहीं। बड़ा अशोभन मालूम पड़ता है, मिलते तो अच्छा होता, मनुष्यता का लाभ होता। ऐसा भी नहीं कि मिलाने की कोशिश न की होगी लोगों ने। बड़ी कोशिश की होगी और बड़े लोग परेशान भी हुए होंगे कि मिलते क्यों नहीं? मिल लेना चाहिए। हमारी समझ के बाहर है बात कि मिलने का कोई अर्थ ही नहीं; क्योंकि वे भीतर इतने एक जैसे हैं कि किससे मिलना, क्या मिलना? क्या अर्थ? भीतर दो शून्य हैं, वह मिल भी जाएं, तो एक ही शून्य बनेगा। दो शून्य मिलकर दो शून्य नहीं बनते, दो शून्य मिल कर एक ही शून्य बनता है। हजार शून्य भी मिला दो, तो एक ही शून्य बनता है। ऐसा नहीं कि हजार शून्य बन जाते हैं।
शून्य का मतलब है कि वह कोई इकाई नहीं है, खालीपन है। दो खालीपन मिलेंगे, तो क्या होगा? एक खालीपन हो जाएगा। अगर बुद्ध और महावीर को हम पास बिठा दें, तो वहां दो आदमी नहीं हैं; वहां एक आदमी हो जाएगा। अगर हम सारे तथागतों को इकट्ठा कर लें, तो वहां हजार तथागत नहीं होंगे; वहां एक ही शून्य रह जाएगा। इस अर्थ में तथागत को कहा जाता है कि वह अनूठा भी है और अपने पूर्वजों के चरण-चिह्नों पर भी चलता है।
"उन सब तथागतों का वचन है, आठ घोर दुख सदा के लिए विदा हो जाते हैं। यदि नहीं, तो जान, तू ज्ञान को, निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो सकता।"
अगर विराग के बाद भी तेरे दुख बने रहते हैं, तो समझना कि तू चूक गया। विरागी को दुख नहीं होना चाहिए। रागी का दुख समझ में आता है। क्योंकि राग जब पूरा नहीं होता है, तो दुख होता है। राग जब असफल होता है, तो दुख होता है। राग में अपेक्षा है--पूर्ति न होने पर दुख होता है। पूर्ति हो जाए तो भी दुख होता है; क्योंकि राग की अपेक्षा निरंतर विस्तीर्ण होती चली जाती है। विरागी को दुख नहीं होना चाहिए। अगर विरागी को दुख भी होता है, तो जानना कि तू चूक गया है। बुद्ध पुरुषों ने कहा है कि सभी दुख सदा के लिए विदा हो जाते हैं; विराग अगर सही हो जाए। और विराग के क्षण में अगर भूल से भटकाव न हो और अहंकार न पकड़ ले, और कोई सूम वासना खेल न दिखाने लगे, तो सभी दुख विसर्जित हो जाते हैं। और अगर तुझे दुख विसर्जित नहीं हुए, तो समझना कि तू चूक गया और निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो सकता।
"विराग का सदगुण बहुत कठोर और क्रूर है। यदि इस मार्ग का स्वामी होना चाहता है, तो तुझे पहले से बहुत बढ़कर अपने मन और दृष्टि को घातक कर्म से मुक्त रखना है।"
विराग का सदगुण बहुत कठोर और क्रूर है, वहां कोई अपवाद नहीं हो सकेगा। निश्चित ही होना भी यही चाहिए। जब सभी दुखों को छोड़ने के लिए कोई तैयार है, सभी दुखों से मुक्त होने की आशा रख रहा है, तो उसे कठोर परीक्षा से गुजरना

पड़ेगा। दुख छोड़ने की जो आशा रख रहा है, सब दुख से बाहर हो जाने की चेष्टा कर रहा है, उसे कठोर परीक्षा से गुजरना पड़ेगा।
वह कठोर परीक्षा क्या है? वह कठोर परीक्षा दो चीजों के बीच में है। एक
तो कि दुखों से छुटकारा तब तक असंभव है, जब तक वासना से पूर्ण छुटकारा न हो। सूम वासना रह जाए, तो सूम दुख रह जाएंगे। वासना होगी, तो कहीं न कहीं दुख होगा। मांग होगी, तो पीड़ा होगी। चाह होगी तो कांटा चुभा ही रहेगा छाती में। वह जो वासना के वस्त्र हम पहने हुए हैं, उन सबको बिल्कुल ही छोड़ देना पड़ेगा। वे ही हमें कसे हैं और दुख दे रहे हैं।
सुना है मैंने, ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दर्जी को कपड़े बनाने को दिए थे। बड़ी मुश्किल से सालों में पैसा इकट्ठा करके बड़ा बहुमूल्य कपड़ा खरीदा था। दर्जी ने कपड़े भी बना दिए, बड़ी देर लगाई, बड़े चक्कर कटवाए। आखिर एक दिन कपड़े बन कर तैयार हो गए। उत्सव का दिन कोई करीब आ रहा था और नसरुद्दीन बहुत खुश था। वह कपड़े लेने गया, लेकिन कपड़े पहन कर बड़ी मुश्किल में पड़ गया; बहुत उदास हो गया। उसने कहा, यह तुमने क्या किया? बरबाद कर दिया सारा कपड़ा। यह कालर तो देखो कि मेरे सिर तक जा रही है।
उस दर्जी ने कहा, इसमें कालर का कसूर नहीं है, थोड़ा सिर को ऊंचा करो। उसने खींच कर नसरुद्दीन की गर्दन सीधी कर दी, गर्दन ऊपर हो गई। लेकिन गर्दन तो ऊपर रह गई, पर फंस गई भीतर। अब वह नीचे न कर सका--क्योंकि वह कालर! उसने कहा एक हाथ छोटा और एक हाथ बड़ा! उसने कहा तुम्हारा शरीर ही गड़बड़ है, तो मैं क्या कर सकूंगा? जरा इस हाथ को आगे खींचो। तो उसने एक हाथ खींच कर आगे कर दिया। और नसरुद्दीन ने कहा कि यह नीचे जो कमीज है, यह नीचे तक पूरी नहीं पहुंच रही। तो उसने कहा, थोड़ा आगे झुको। तो नसरुद्दीन आगे झुक गया। पायजामे की टांग एक लंबी थी, एक छोटी थी। और वह ठीक करता गया और नसरुद्दीन बिगड़ता गया। कपड़ा ठीक होता चला गया, तो नसरुद्दीन की दशा बड़ी विकृत हो गई। वह अष्टावक्र की हालत में हो गया, आठ जगह से झुक गया। और दर्जी ने कहा, जरा आइने में तो देखो, गांव की सारी सुंदरियां पागल हो जाएंगी! महीने भर की मेहनत है मेरी इन कपड़ों पर! नसरुद्दीन ने देखा, हालत बड़ी विचित्र थी; लेकिन इस आशा से कि सुंदरियां पागल हो जाएंगी, वह खुश हुआ। उसने कहा, क्या कहते हो! दर्जी ने कहा, मैंने इतनी मेहनत कभी किन्हीं वस्त्रों पर नहीं की। नसरुद्दीन निकला, तो अपनी मुद्रा और आसन को सम्हाले हुए--एक हाथ लंबा
तो लंबा किए, गर्दन ऊंची किए, एक पैर छोटा तो भीतर सिकुड़े, एक पैर लंबा तो आगे किए, वस्त्र छोटे तो आगे झुके--इस आशा में कि सुंदरियां पागल हो जाएंगी!
सभी की गति ऐसी ही है, अपनी-अपनी मुद्रा संभाले हैं। वासना में जीने वाला आदमी अष्टावक्र हो जाता है।
नसरुद्दीन घर की तरफ चला इस आशा में कि अब देखें कि कौन सुंदरी पागल होगी। कई लोगों ने चौक कर जरूर देखा। स्त्रियों ने भी चौंक कर देखा। ऐसे विचित्र आदमी को कौन चौंक कर नहीं देखेगा! नसरुद्दीन समझा दर्जी ठीक ही कह रहा है। एक अजनबी आदमी ने जो नसरुद्दीन को नहीं जानता था क्योंकि बाकी गांव के लोग तो जानते थे कि इसमें कुछ अनूठा नहीं है, इस आदमी से ऐसी ही आशा है एक अजनबी, जो गांव में नया-नया आया था, उसने कहा कि ठहरो नसरुद्दीन, तुम्हारे दर्जी का पता क्या है? किसने बनाया है यह? नसरुद्दीन ने कहा, क्या! मेरे दर्जी का पता पूछ कर क्या करोगे? उसको लगा कि यह आदमी प्रतियोगिता करना चाहता है। उस अजनबी ने कहा कि मैं जानना चाहता हूं तुम्हारे दर्जी का पता, क्योंकि तुम जैसे अष्टावक्र के लिए जिसने कपड़े बना दिए, उसकी प्रतिभा का मुकाबला नहीं--ही मस्ट बी ए जीनियस। इतना इरछा- तिरछा शरीर और उसने कपड़े बिल्कुल ठीक-ठीक बिठा दिए--आश्चर्य! उसके मैं दर्शन करना चाहता हूं। उसको पता नहीं है यह बेचारा अष्टावक्र नहीं है, कपड़ों की वजह से अष्टावक्र है।
आपकी जो विकृत दशा है, वह वासनाओं का जो घेरा है चारों तरफ, उसके ही कारण है। कोई वासना टांग खींच रही है, कोई वासना सिर उठा रही है, कोई वासना एक हाथ खींच रही है; आप अपने को सम्हाले हैं बड़ी कठिन मुद्रा में। योगी भी

क्या ऐसे आसन करेंगे, जो आप कर रहे हैं! और संभाले हैं इस आशा से कि कोई न कोई वासना इस ढंग से शायद पूरी होगी।
यह जो मनुष्य की दशा है और जन्मों-जन्मों तक आदमी अष्टावक्र रहा है, इसलिए विराग का सदगुण बहुत कठोर और क्रूर मालूम पड़ता है। क्योंकि आपके अंग-अंग फिर से सीधे किए जा रहे हैं। आपकी विकृत दशा को फिर से सामान्य करना है। जो आप झुक गए हैं जगह-जगह से, वहां-वहां के जोड़ कठोर हो गए हैं, उन जोड़ों को तोड़ना है। और आदतें बन गई हैं मजबूत वासना की कि विराग के द्वार पर भी खड़े होकर, वे वासना की आदतें आपको अपने ढंग से झुकाती हैं। इसलिए क्रूर और कठोर मालूम पड़ता है। जैसे किसी आदमी के शरीर की सब हड्डियां गलत ढंग से जुड़ गई हों, तो फिर उनको पुनः तोड़ना पड़े और फिर से जोड़ना पड़े, और जोड़ के बाद पलस्तर बांधने पड़ें कि कहीं वे फिर गलत आड़ी-टेढ़ी न जुड़ जाएं। करीब-करीब विराग को यही काम करना पड़ता है। क्योंकि आपकी जन्मों- जन्मों में सारी व्यवस्था गड़बड़ जुट गई है। जो जहां होना चाहिए, वहां नहीं है और जहां नहीं होना चाहिए, वहां है। जिन अंगों का जो रूप आप समझ रहे हैं, जैसा आपके पास है, वह उनका स्वाभाविक रूप नहीं है--परवर्टेड, विकृत रूप है। सब चीजें विकृत हो गई हैं; राग ने सब विकृत कर दिया है। और राग की दौड़ में आदमी विकृत होने को तैयार है।
सिकंदर अफलातून का शिष्य था। अफलातून से वह दर्शन सीखता था। लेकिन सिकंदर था सम्राट और अफलातून एक गरीब दार्शनिक था। एक दिन सिकंदर ने उससे कहा कि तुम घोड़ा बन जाओ, और मैं तुम्हारे ऊपर सवारी करना चाहता हूं। तो अफलातून को उसने घोड़ा बना दिया, जैसे बच्चे बना लेते हैं, और अफलातून पर सवारी की। उसके दस-पांच दरबारी जो मौजूद थे, उनको उसने कहा, देखो ज्ञानी की दशा! यह ज्ञानी मुझे सिखाने चला है। तो अफलातून ने कहा कि मेरी ही वासनाओं की वजह से यह मेरी दशा है, जो तुम्हारा घोड़ा बना हूं। मैं तुम्हें ज्ञान सिखा कर भी सौदा ही कर रहा हूं, उससे भी मैं कुछ पाना ही चाहता हूं। वह पाने की चाह ही इस हालत में ले आई कि तुम मेरे सिर पर बैठ गए हो। मेरी चाह ने ही मुझे घोड़ा बना दिया, तुमने नहीं। तुम क्या कर सकते हो? मेरी वासना ने ही मुझे नीचे गिराया है, तुम मुझे नीचे नहीं गिरा सकते हो।
इस जगत में जो भी आपकी दशा है, वह आपकी ही वासना के कारण है। और इसलिए विराग बहुत कठोर मालूम पड़ता है। क्योंकि वह आपकी पूरी दशा को तोड़ेगा, आपको पुनः निर्मित करेगा, आपको नष्ट करेगा, तोड़ेगा, और नया निर्माण करेगा। वहां अगर जरा सी भी पुरानी आदत प्रवेश कर गई, तो आपने इस द्वार तक जो भी उपलब्धि की है--दान, शील, क्षांति--वह सब खो जाएगी और आप वापिस उस जगह खड़े हो जाएंगे, जहां से आपने यात्रा शुरू की थी। इसलिए विराग के साथ अति सावधान होना जरूरी है।
"तुझे अपने को शुद्ध-आलय (परमसत्ता) से परितृप्ति कर लेना है और निसर्ग के आत्मभाव के साथ एक हो जाना है। इसके साथ एक होकर तू अजेय है। पृथक रहकर तू समवृत्ति की क्रीड़ा-भूमि बन जाता है, जो संसार की समस्त भ्रांतियों का मूलस्रोत है।"
शुद्ध आलय परमसत्ता के साथ अपने को परितृप्त कर लेना है।
वासना का अर्थ है, जो मिला है, उससे हम तृप्त नहीं। जो है, उससे हम तृप्त नहीं। हम अस्तित्व से कहते हैं कि इतना काफी नहीं, यह और चाहिए, यह और चाहिए। अस्तित्व से हमारी मांग है कि हम तृप्त होंगे तब, जब यह सब हो जाए। अस्तित्व ने जो दिया है, उससे हम राजी नहीं। और अस्तित्व ने सब दिया है--जीवन दिया है, और जीवन के अनूठे रहस्य दिए हैं, और जीवन की बड़ी गहराई दी है, और जीवन का परम आनंद छिपा रखा है भीतर आपके। लेकिन वह खुलेगा तब जब आप राजी हो जाएं अस्तित्व से। आपको तो उसे देखने की फुरसत ही नहीं कि अस्तित्व ने क्या दिया है! आप तो मांग किए जा रहे हैं कि ये दो, ये दो, ये दो। इस देने की मांग में वह छिप ही गया है, जो दिया ही हुआ है। और आपको पता नहीं, जो आप मांग रहे हैं, वह कुछ भी नहीं है। जो आपको मिला ही हुआ है, उसके सामने, जो आप मांग रहे हैं, वह कुछ भी नहीं।
एक बहुत अरबपति महिला ने एक गरीब चित्रकार से अपना चित्र बनवाया, पोट्रट बनवाया। चित्र बन गया, तो वह अमीर महिला अपना चित्र लेने आई। वह

बहुत खुश थी। चित्रकार से उसने कहा, कि क्या उसका पुरस्कार दूं? चित्रकार गरीब आदमी था। गरीब आदमी वासना भी करे तो कितनी बड़ी करे, मांगे भी तो कितना मांगे?
हमारी मांग, सब गरीब आदमी की मांग है परमात्मा से। हम जो मांग रहे हैं,
वह क्षुद्र है। जिससे मांग रहे हैं, उससे यह बात मांगनी नहीं चाहिए।
तो उसने सोचा मन में कि सौ डालर मांगूं, दो सौ डालर मांगूं, पांच सौ डालर मांगूं। फिर उसकी हिम्मत डिगने लगी। इतना देगी, नहीं देगी! फिर उसने सोचा कि बेहतर यह हो कि इसी पर छोड़ दूं, शायद ज्यादा दे। डर तो लगा मन में कि इस पर छोड़ दूं, पता नहीं दे या न दे, या कहीं कम दे और एक दफा छोड़ दिया तो फिर! तो उसने फिर भी हिम्मत की। उसने कहा कि आपकी जो मर्जी। तो उसके हाथ में जो उसका बैग था, पर्स थी, उसने कहा, तो अच्छा तो यह पर्स तुम रख लो। यह बड़ी कीमती पर्स है।
पर्स तो कीमती थी, लेकिन चित्रकार की छाती बैठ गई कि पर्स को रख कर करूंगा भी क्या? माना कि कीमती है और सुंदर है, पर इससे कुछ आता-जाता नहीं। इससे तो बेहतर था कुछ सौ डालर ही मांग लेते। तो उसने कहा, नहीं-नहीं, मैं पर्स का क्या करूंगा, आप कोई सौ डालर दे दें। उस महिला ने कहा, तुम्हारी मर्जी। उसने पर्स खोली, उसमें एक लाख डालर थे, उसने सौ डालर निकाल कर चित्रकार को दे दिए और पर्स लेकर वह चली गई।
सुना है कि चित्रकार अब तक छाती पीट रहा है और रो रहा है--मर गए, मारे गए, अपने से ही मारे गए!
आदमी करीब-करीब इस हालत में है। परमात्मा ने जो दिया है, वह बंद है, छिपा है। और हम मांगे जा रहे हैं--दो-दो पैसे, दो-दो कौड़ी की बात। और वह जीवन की जो संपदा उसने हमें दी है, उस पर्स को हमने खोल कर भी नहीं देखा है। स्वीकृति, अस्तित्व का स्वीकार--यह अर्थ है परितृप्ति का।
जो मिला है, वह जो आप मांग सकते हैं, उससे अनंत गुना ज्यादा है। लेकिन मांग से फुरसत हो, तो दिखाई पड़े, वह जो मिला है। भिखारी अपने घर आए, तो पता चले कि घर में क्या छिपा है। वह अपना भिक्षापात्र लिए बाजार में ही खड़ा है! वह घर धीरे-धीरे भूल ही जाता है, भिक्षा-पात्र ही हाथ में रह जाता है। इस भिक्षापात्र को लिए हुए भटकते-भटकते जन्मों-जन्मों में भी कुछ मिला नहीं। कुछ मिलेगा नहीं।
"तुझे अपने शुद्ध आलय से परितृप्ति कर लेनी है--परमसत्ता से, और निसर्ग के आत्मभाव के साथ एक हो जाना है।"
मांग छोड़, यह मांग ही निसर्ग से तोड़ती है। यह जो है, उसके साथ ही राजी
हो जा। राजी होते ही रहस्य खुलने शुरू हो जाते हैं; क्योंकि आंख तब आगे मांगने के लिए नहीं उलझती; खुल जाती है, मुक्त हो जाती है। फिर हम देख सकते हैं--जो है।
"इसके साथ एक होकर तू अजेय है, फिर तेरी कोई पराजय नहीं। पृथक रहकर तू समवृत्ति क्रीड़ा-भूमि बन जाता है, जो संसार की समस्त भ्रांतियों का मूल-स्रोत है।"
समवृत्ति का अर्थ है: माया।
जैसे शंकर ने कहा है कि दो तरह के सत्य हैं--पारमार्थिक सत्य और व्यवहारिक सत्य। वैसा बुद्ध ने कहा कि दो तरह के सत्य हैं--पारमार्थिक सत्य और समवृत्ति सत्य। समवृत्ति सत्य का वही अर्थ है, जो शंकर की भाषा में माया का है। जैसे ही आदमी ने मांगा कि वह माया के जगत में प्रवेश कर गया। मांग के साथ ही आप भिखारी बन गए। अब आप सपनों में भटकेंगे।
मांग स्वप्न का द्वार है।
जैसे ही आपने मांगना बंद कर दिया, आप सम्राट हो गए, माया के बाहर हो गए। जो है पारमार्थिक सत्य, वह प्रकट होना शुरू हो जाएगा।
और जब तक हम कहते हैं, ऐसा होना चाहिए, तब तक हम स्वप्न निर्मित कर रहे हैं, तब तक हम माया में जी रहे हैं।

समाधि के सप्त द्वार
नौवां प्रवचन

स्वामी बन

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि 13 फरवरी

मनुष्य में आलय अर्थात विश्वात्मा या परमात्मा के शुद्ध और उजजवल सत्व को छोड़ कर सब कुछ मृण्मय है। मनुष्य उसकी स्फटिक किरण है, प्रकाश की एक रेखा जो भीतर अपूर्व रूप से निर्दोष और निष्कलुष है--नीची भूमि पर एक मृतिका रूप। वही प्रकाश-रेखा तेरा जीवन-गुरु और तेरी सच्ची आत्मा है-- द्रष्टा और मूक चिंतक। और तेरी निम्न-आत्मा का शिकार आत्मा केवल भूल करने वाले शरीर में आहत होती है। इन दोनों पर नियंत्रण और स्वामित्व कायम कर और तू निकट जाते हुए संतुलन के द्वार के भीतर जाने में सुरक्षित है।
दूसरे तट को जाने वाले ओ साहसी यात्री, प्रसन्न रह। कामदेव की कानाफूसी पर कान मत दे। और अनंत आकाश में जो लुभाने वाली शक्तियां हैं, जो दुष्टभाव वाली आत्माएं हैं, जो द्वेषी ल्हामयी हैं, उनसे दूर ही रह।
दृढ़ बन। अब तू मध्य द्वार के निकट आ रहा है, जो क्लेश का भी द्वार है, जिसमें दस हजार नागपाश हैं।
ओ पूर्णता के साधक अपने विचारों का स्वामी बन, यदि तुझे इसकी देहली पार करनी है।
और यदि तुझे अपने गंतव्य पर पहुंचना है, तो अमृत सत्य के खोजी अपनी आत्मा का स्वामी बन।
उस एक शुद्ध प्रकाश पर अपनी आत्म-दृष्टि को एकाग्र कर, जो प्रकाश सभी प्रभावों से मुक्त है। और अपनी स्वर्ण-कुंजी का प्रयोग कर।
कठिन कर्म पूरा हो गया। तेरा श्रम पूर्ण हुआ। और वह विस्तृत पाताल जो तुझे निगलने को मुंह फैलाए था, लगभग पाट दिया गया है... ।

मनुष्य के उसके केंद्र की तरफ से देखें, तो मनुष्य परमात्मा है। और मनुष्य को उसकी परिधि की तरफ से देखें, तो मनुष्य संसार है। बाहर से पकड़ें मनुष्य को, तो पदार्थ है; भीतर से चिन्मय ज्योति है।
मनुष्य दो का मिलन है--आकार का और निराकार का।
और यही मनुष्य की पीड़ा भी है; यही उसका आह्लाद है। मनुष्य की पीड़ा यही
है कि वह एक नहीं, दो से निर्मित है, दो विपरीत तत्वों से। इसलिए उसके भीतर निरंतर तनाव है, खिंचाव है। पदार्थ खींचता है अपनी ओर, आत्मा खींचती है अपनी ओर। और मनुष्यता दोनों के बीच में फंस जाती है, जकड़ जाती है, उलझ जाती है।
अगर एक ही तत्व हो, तो कोई तनाव न हो। मरे हुए आदमी में फिर कोई तनाव नहीं होता; उसकी देह फिर शांत हो जाती है। समाधिस्थ आदमी में भी फिर कोई तनाव नहीं होता; आत्मा ही बचती है। मृतक देह पड़ी हो, तो शरीर बचा है, समाधिस्थ व्यक्ति पड़ा हो, तो उसके लिए भीतर अब आत्मा ही बची है, शरीर भूल गया है। जब तक दोनों हैं--और दोनों के बीच हम डांवांडोल हैं--तब तक चिंता, तनाव, संताप, बेचैनी है। और कहीं भी कोई किनारा लगता मालूम नहीं पड़ेगा। और दोनों ही खींचते हैं अपनी ओर। स्वभावतः ठीक है खींचना। पदार्थ खींचता है नीचे की ओर; आत्मा उठ जाना चाहती है ऊपर की ओर।
ऐसा समझें कि जैसे एक मिट्टी का दीया हो और जलती हो एक ज्योति उसमें
तो मिट्टी का दीया तो जमीन का हिस्सा है, और ज्योति भागती रहती है सूर्य की ओर, ऊपर की ओर। कभी आपने अग्नि को नीचे की ओर भागते हुए देखा है? अग्नि भागती है ऊपर की ओर, वह सूर्य का हिस्सा है। मिट्टी का दीया नीचे पड़ा है जमीन से बंधा।
आदमी की देह मिट्टी की है। उसके भीतर का निवासी ज्योतिर्मय है। वह भीतर का निवासी ऊपर उठना चाहता है, और देह नीचे। और आदमी इन दोनों का जोड़ है। इसलिए आदमी जब तक आदमी है, बेचैन रहेगा। आदमी रहते हुए कोई समाधान नहीं है।

दो तरह से समाधान मिलता है। या तो आदमी राजी हो जाए, शरीर को पूरी तरह मान ले, ऊपर की यात्रा छोड़ दे। तो जो लोग बहुत निम्न जीवन जीते हैं, उनके बाहर कितना ही उपद्रव होता हो, दूसरे में वे कितनी ही तकलीफें खड़ी करते हों, भीतर एक अर्थ में वे शांत होते हैं। कारागृह में जाएं और अपराधियों की आंखों में देखें, साधु-गृहों में बैठे हुए साधुओं की आंखों से ज्यादा शांत अपराधियों की आंखें मिलेंगी। कारण है उसका, उन्होंने लड़ाई छोड़ दी और नीचे गिरने को तैयार हो गए। वह जो ऊपर का स्वर है, दबा डाला और नीचे के स्वर के साथ अपना पूरा तालमेल बिठा लिया। और या फिर उस व्यक्ति की आंखों में शांति मिलती है, जिसने नीचे को जीत लिया और ऊपर की यात्रा ही उसका समग्र जीवन बन गई।
एक के साथ शांति है; दो के साथ अशांति है।
और हम दो में हैं। आदमी का होना ही दो के बीच है। इस सूत्र को इस दृष्टि से समझने की कोशिश करें।
"मनुष्य में आलय के शुद्ध और उजजवल सत्व को छोड़ कर सब कुछ मृण्मय है।"
आलय बुद्ध का बड़ा प्रिय शब्द है। आलय का अर्थ तो होता है घर। लेकिन बुद्ध बड़े विराट अर्थों में उसका प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि समस्त चेतना का एक घर है, एक आलय है, एक स्टोर हाउस है। सारे जगत में जितनी चेतनाएं हैं, वे सब इकट्ठे एक ही घर की किरणें हैं, एक ही सूर्य की किरणें हैं। और उन सबका एक केंद्र है, उस केंद्र का नाम आलय है।
मनुष्य में आलय अर्थात विश्वात्मा या परमात्मा के शुद्ध और उजजवल सत्व को छोड़ कर, उस आलय से आपको जो मिला है उसको छोड़ कर, शेष सब आपके भीतर मिट्टी है। उस आलय से जो किरण आपको उपलब्ध हुई है, वही भर मिट्टी नहीं है, बाकी सब मिट्टी है। और अगर आपको इस किरण का कोई पता न चले, तो आप अपनी मिट्टी की देह को ही अपना अस्तित्व समझते रहते हैं। और तब जीवन मिट्टी का उठना और मिट्टी का गिरना हो जाता है।
और किरण को खोजना अति कठिन इसलिए हो गया है--कि मिट्टी बहुत है और किरण बहुत सूम और छोटी है। अनुपात मिट्टी का बहुत ज्यादा है। वह जो जीवन की किरण है, बड़ी मंदिम और बड़ी छोटी है। वह जो आपके भीतर आपकी आत्मा है, अति सूम है। आपकी देह स्थूल है। जो स्थूल है, वह दिखाई पड़ता है, हर क्षण अनुभव में आता है। जो सूम है, उसकी आवाज भी सुनाई नहीं पड़ती है। उसको सुनने के लिए भी कानों की तैयारी चाहिए। उसको सुनने के लिए बहुत ध्यानपूर्वक खोज करनी पड़ेगी। और जिस तरफ ध्यान जाता है, वही हमें सुनाई पड़ता है। आप मुझे सुन रहे हैं, तो आपको और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ेगा। एक पक्षी अगर गुन-गुन कर रहा हो, तो सुनाई नहीं पड़ेगा। फिर अगर ध्यान दें, तो तत्क्षण सुनाई पड़ेगा।
कभी आपने ख्याल किया हो, कमरे में बैठ कर आप किताब पढ़ रहे हैं, घड़ी दीवाल पर लगी है, उसकी टिक-टिक हो रही है, सुनाई नहीं पड़ती। फिर ध्यान दें, किताब बंद कर दें, तत्क्षण टिक-टिक सुनाई पड़नी शुरू हो जाती है। आप जब ध्यान न दिए थे, तब घड़ी बंद नहीं थी। लेकिन जब ध्यान ही न दिया हो, तो टिक-टिक धीमी आवाज है, वह चोट नहीं करती है। कोई हथौड़ा पड़ रहा होता, तो शायद सुनाई पड़ जाता, बहुत स्थूल था। टिक-टिक बहुत सूम है। ध्यान देंगे बारीकी से तो सुनाई पड़ेगी; नहीं तो नहीं सुनाई पड़ेगी, आप अपने काम में लगे रहेंगे। जिस तरफ हम ध्यान को मोड़ते हैं, उसी तरफ का आयाम सुनाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है। उसके प्रति हम संवेदनशील हो जाते हैं। लेकिन घड़ी की टिक-टिक भी बहुत स्थूल है। आपको अपने हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है? हो रही है, लेकिन अगर बिल्कुल शांत बैठ कर ध्यान दें, तो सुनाई पड़ने लगेगी।
अपने हृदय की धड़कन भी स्थूल है; वह बिल्कुल सूम नहीं है। वह जो भीतर आत्मा की किरण है, वह तो अति सूम है। किरण की तो चोट भी क्या होती है। और आप इतने व्यर्थ के शोरगुल में उलझे हैं, और इतनी स्थूल आवाजें आपके चारों तरफ हैं कि जब तक इस सबसे ध्यान खींच न लिया जाए, और मौन भीतर बैठ न जाया जाए, तब तक शायद वह जो भीतर की किरण है, उसकी कोई प्रतीति नहीं होगी।
इसलिए आत्मा की हम बातें करते रहते हैं, लेकिन आत्मा का हमें कोई पता नहीं चलता। और हम जानते यही हैं कि शरीर ही हैं। और मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। डर लगता है मिटने से, भय होता है, तो मानने का मन होता है कि आत्मा

हो। ऐसा हम चाहते हैं कि आत्मा हो और हम न मरें। लेकिन चाह का सवाल नहीं है। जिसका हमें पता ही नहीं है, वह हो भी, तो उसके होने से क्या फर्क पड़ता है? और जिसका हमें पता है, वह न भी हो, तो भी मुसीबत तो उससे होगी।
ज्ञान ही अस्तित्व है।
जिसका हमें पता नहीं, वह ना के बराबर है। होगा या नहीं होगा, क्या फर्क पड़ता है? और जिसका हमें ज्ञान है, न भी है, तो भी वह हमारे जीवन को प्रभावित करेगा। एक स्वप्न को भी आप सत्य मान लें, तो आपका जीवन उससे प्रभावित हो जाएगा। और आप इस सारे जीवन को भी स्वप्न मान लें, तो आप इससे अप्रभावित हो जाएंगे।
आपकी मान्यता में आपका अस्तित्व है, और जैसा आप मान लेते हैं, हो जाता है।
यह जो भीतर किरण है, यह इतनी सूम है कि जब तक स्थूल से हमारा ध्यान संपूर्ण रूप से न हटे, तब तक यह सुनाई न पड़ेगी। इसे सुनने के कई उपाय हो सकते हैं; कई उपाय हैं। मेरी दृष्टि में जो उपाय सर्वाधिक उपयोगी हो सकता है, वह यह है कि पहले आप अपने आस-पास पूरा तूफान उठा लें। इसलिए ध्यान के जो प्रयोग मैं आपको करवा रहा हूं, वे सब तूफानी हैं। पूरा तूफान उठा लें, जितना शोरगुल हो सकता हो, खड़ा कर लें। स्थूल की जितनी आवाजें हो सकती हैं, वे सब हो जाने दें। बाहर कुछ भी शांत न रह जाए, सभी कुछ उपद्रव हो जाए, विक्षिप्तता चारों तरफ खड़ी हो जाए, तब अचानक रुक जाएं कंटरस्ट में, इस तूफान की पृष्ठभूमि में शायद क्षण भर को आपको शांति की किरण दिखाई पड़ जाए। विपरीत में देखना आसान होता है। लेकिन तब विपरीत को अति तक ले जाना जरूरी है।
जो लोग विश्राम की कला के संबंध में खोज करते हैं, आर्ट आफ रिलेक्जेशन
के संबंध में, उन्होंने एक मौलिक सूत्र खोजा है, यह अति वैज्ञानिक है। अगर कोई आपसे कहे कि शरीर को शिथिल छोड़ दो, विश्राम में छोड़ दो, आप क्या करोगे? कैसे छोड़ दोगे? ऐसे लेट जाने का नाम विश्राम नहीं है। विश्राम एक बड़ी ही अनूठी अवस्था है, जिसका आपको पता ही नहीं। आप जागना जानते हैं, जो कि श्रम है; आप सोना जानते हैं, जो कि थकना है। विश्राम का आपको पता नहीं है। जागना श्रम है, सोना थक जाना है। इसलिए मजदूर गहरा सो लेता है। इसलिए नहीं कि उसको गहरा विश्राम पता है; इसलिए कि वह गहरा थक जाता है। अमीर नहीं सो पाता; क्योंकि वह थक नहीं पाता। हमारी नींद थकान है, सिर्फ ध्यानी की नींद विश्राम होती है। हम जितने थक जाते हैं, उतनी नींद में गिर जाते हैं। शरीर जबाब दे देता है, वहां और श्रम नहीं किया जा सकता, शरीर गिर जाता है।
थकान और श्रम के बीच में, मध्य में एक बिंदु है, जो विश्राम है।
लेकिन हम विश्राम में जाएं कैसे? हम दोनों में घूम सकते हैं--श्रम कर सकते हैं, थक सकते हैं। बीच में एक जगह है और उसका कैसे पता करें? कब विश्राम का क्षण है?
तो विश्राम की कला कहती है कि पहले लेट जाओ और सारे शरीर को जितना तान सको, तनाव से भर सको, भरो। जैसे यह हाथ है मेरा, इसको अगर मुझे विश्राम में ले जाना है, तो पहले मैं इसको खींचूं इसकी नस-नस को, इसको इतना तनाव से भर दूं कि इससे आगे तनाव में जाने का कोई उपाय न रहे। जितना मैं खींच सकूं इस हाथ को, जितना तान सकूं इसका रोआं-रोआं, इसकी चमड़ी का टुकड़ा-टुकड़ा, इसके भीतर की नस, मांस, मज्जा, खून, सब खिंच जाए। और मैं उस जगह आ जाऊं, जब मैं समझ रहा हूं कि अब इससे आगे और तनाव पैदा नहीं किया जा सकता, तब इसे एकदम से ढीला छोड़ दूं, वे जो दबी हुई थीं मांस-पेशियां, एकदम शिथिल हो जाएंगी और उनका क्रमशः शिथिल होना आप अनुभव कर सकते हैं। अगर ध्यानपूर्वक हाथ को आप अनुभव करें, तो आप पाएंगे कि सीढ़ी-सीढ़ी हाथ विश्राम में जा रहा है, और तब एक जगह आ कर हाथ रुक जाएगा, जिससे नीचे नहीं जाया जा सकता। वह विश्राम का क्षण होगा। और इस विश्राम को जानना हो, तो तनाव की पृष्ठभूमि बनानी पड़ती है। ठीक वही सूत्र ध्यान के लिए है कि पहले आपके भीतर जितना तूफान हो मन में, उसको पूरा उठा लें। जितना करना, क्रिया पूरा उठा लें। कुछ रत्ती भर भी छोड़ें न, जो भी हो सकता

है आपके भीतर पागलपन, सारा निकाल लें। तूफान हो जाए, एक बवंडर, एक आंधी
और तब एकदम से ठहर जाएं तत्क्षण; सीढ़ी-सीढ़ी, एक-एक कदम उस जगह आ जाएंगे, जहां आप पाएंगे कि अब विश्राम है।
उस विश्राम के क्षण में ही कभी आपको भीतर की किरण का पहली दफा स्पर्श होगा। नहीं कहा जा सकता, कब होगा। यह अति सूम है, इसलिए बहुत मोटे नियम काम नहीं आते। लेकिन होगा। हुआ है, बहुतों को हुआ है, आपको भी होगा। लेकिन होगा, उस दिन, जिस दिन तालमेल बैठ जाएगा। आपका तूफान बिल्कुल शांत होगा, और केंद्र बिल्कुल शांति में खड़ा होगा। अचानक किरण छू जाएगी, आप पहली दफा आत्मा हो जाएंगे। थे सदा से, लेकिन जिसका पता ही नहीं है, उसके होने का क्या मतलब है! और जिस क्षण वह किरण, जो सदा से मौजूद है, आपको दिखाई पड़ेगी और अनुभव में आ जाएगी, उस दिन ही देह मिट गई। नहीं कि आप मर जाएंगे; देह चलेगी, उठेगी, सोएगी, पर अब आप देह नहीं हैं। आपका तादात्म्य बदल गया है। कल तक देह से लगता था "मैं" हूं, आज वह बात खो गई है। आज देह के भीतर जो किरण है छिपी हुई रहस्य की, वही आप हो गए हैं। अब यह देह रहना चाहे--इसकी जरूरत है, इसका उपयोग है, इसकी आवश्यकताएं हैं, तो वह भी पूरी करेंगे। लेकिन अब इस देह का उपयोग एक घर से ज्यादा नहीं रहा। और यह घर भी एक विश्रामालय है, जहां थोड़ी देर को रुकना है। और असली घर तो अब वह हो गया, जहां से किरण आई। और जहां किरण वापिस जाए, अपने मूलस्रोत में, उद्गम में लौट जाए। तो ही हमें जीवन के मूल आधार और परम रहस्य का अनुभव हो सकता है। इसलिए बुद्ध ने उसको आलय कहा है, उसको असली घर कहा है, जहां लौटेगी मूलस्रोत, मूल उद्गम में, जैसे गंगा गंगोत्री में लौट जाए। ऐसे जिस दिन आपकी किरण के सहारे को पकड़ कर आप उस महासूर्य में पहुंच जाएंगे, जहां से इस किरण का आना हुआ था, जैसे कोई भटका हुआ यात्री अनेक-अनेक वर्षों की भटकन के बाद अचानक अपने घर में आ जाए, तो जैसा आह्लाद से नाच उठे, फिर वैसा ही नृत्य आपके जीवन में प्रकट होने लगेगा। आपको अपना असली घर मिल गया। परमात्मा असली घर है, और हम उसकी भटकी हुई किरणें हैं। पर हम वही हैं--कितने ही भटक जाएं! और किरण सूर्य से कितनी ही दूर चली जाए, सूर्य ही है।
यह सूत्र कहता है कि मनुष्य में आलय के शुद्ध और उजजवल सत्वों को छोड़
कर सब कुछ मृण्मय है, सब कुछ मिट्टी है। मनुष्य उसकी ही स्फटिक किरण है, प्रकाश की एक रेखा जो भीतर अपूर्व रूप से निर्दोष और निष्कलुष है--नीची भूमि पर मिट्टी का एक रूप।
लेकिन अपने स्वभाव में अपूर्व रूप से निर्दोष, निष्कलुष!
किरण की कुछ खूबियां हैं। एक खूबी तो प्रकाश की किरण की यह है कि उसे
आप गंदा नहीं कर सकते। उसे गंदा करने का कोई भी उपाय नहीं है। कभी आपने ख्याल किया, एक स्वच्छ सरोवर में, निर्मल सरोवर में सूर्य का प्रतिबिंब बनता है। सूर्य की किरणें निर्मल सरोवर की छाती पर नाचती हैं, लहर-लहर सोना हो जाती है। वही सूर्य, एक गंदी तलैया में भी नाचता है। गंदी तलैया में बास, गंदगी है, कीचड़-कबाड़ है, कचरा है, पास जाने का मन न हो, इतना कुरूप है; सब गंदा है। सूरज की किरण उस पर भी नाचती है, उस गंदी तलैया में। क्या आप सोचते हैं कि शुद्ध सरोवर पर नाचती किरण शुद्ध, और गंदी तलैया पर नाचती किरण अशुद्ध हो जाती होगी? क्या किरण में गंदगी प्रवेश कर सकती है? क्या गंदी तलैया किरण को गंदा कर पाती होगी? क्या गंदी तलैया में स्वर्ण-सूर्य का जो प्रतिबिंब बनता है, वह गंदा हो जाता होगा?
प्रकाश का स्वभाव है निर्दोष होना; उसे अशुद्ध नहीं किया जा सकता। आपके भीतर भी वह जो परम प्रकाश की किरण है, वह निष्कलुष और निर्दोष है, चाहे कितने ही किए हों पाप, तो भी। और चाहे कितनी ही गंदगी इकट्ठी की हो जन्मों-जन्मों में। वह सब मिट्टी के साथ ही जुड़ी है, तलैया के साथ। उस प्रकाश की किरण पर उसका जरा भी कोई प्रभाव नहीं है। वह तो शुद्ध ही है, शुद्ध होना उसका स्वभाव है।
इसे ठीक से समझ लें।
कुछ चीजें हैं जो शुद्ध हो सकती हैं अशुद्ध हो सकती हैं। उनका स्वभाव नहीं है शुद्ध होना। आप पानी को गंदा कर सकते हैं, शुद्ध कर सकते हैं।

शुद्ध होना उसका स्वभाव नहीं है। वह शुद्ध भी हो सकता है, अशुद्ध भी हो सकता है। उसमें परिवर्तन संभव है।
प्रकाश को आप गंदा नहीं कर सकते। शुद्ध होना उसका स्वभाव है, अशुद्ध होने का कोई उपाय नहीं है।
अशुद्ध आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती। शुद्ध होना आत्मा का स्वभाव है, शुद्ध ही आत्मा है। तो एक तो यह बात ख्याल में ले लें कि कुछ भी किया हो, कुछ भी हुआ हो, आत्मा अशुद्ध नहीं होती। लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि आप कुछ भी कर सकते हैं। इसका मतलब ऐसा लिया गया है।

इसलिए हमारे देश में जहां कि आत्मा की इतनी चर्चा है, आदमी इतना गंदा है। उन देशों से भी ज्यादा गंदा है जिन देशों में आत्मा की इतनी चर्चा नहीं है। उन देशों से भी ज्यादा गंदा है जहां कि आत्मा का विश्वास ही नहीं है।
अजीब बात मालूम पड़ती है। और जब पश्चिम के लोग भारत की किताबों से प्रभावित होकर भारत आते हैं, तो भारत का आदमी उनके सारे प्रभाव पोंछ डालता है। वहां से आते हैं सोच कर कि ऋषि-मुनियों के देश में जाते हैं और लौटते हैं सारी आशाएं खोकर। क्योंकि यहां जिस आदमी से मिलना होता है उसका ऋषि- मुनि से कोई लेना-देना नहीं।
यहां जो आदमी है यह इतना अपवित्र कैसे हो गया है? इतना क्षुद्र, इतना अशुद्ध क्यों है? इसका कारण यह महान सूत्र है। यह हैरानी की बात लगेगी कि मैं कहता हूं कि इसका कारण यह महान सूत्र है। महान सूत्र नहीं, हमारे हाथों में तो कुछ भी पड़ जाए, हम उसमें से जो गलत है, वह निकाल लेंगे। इस मुल्क को इस बात का सूत्र बुद्ध ने दिया, महावीर ने दिया, कृष्ण ने दिया कि तुम निष्कलुष हो, तुम पवित्र हो और शुद्ध होना तुम्हारा आत्यंतिक स्वभाव है। कोई उपाय नहीं है तुम्हारे अशुद्ध होने का। हमने कहा, तब बिल्कुल ठीक है। यह कहा था, इसलिए कि तुम आशा से भरो। यह कहा था इसलिए कि तुम इस आशा की किरण को पकड़ कर उस शुद्ध-स्वभाव की यात्रा करो। हमने कहा, तब बिल्कुल ठीक है। अगर स्वभाव शुद्ध ही है, तो फिर पाप कर लेने में हर्ज क्या है?
इसे हमने कोई जान कर ऐसा सोचा हो, ऐसा नहीं। यह हमारे अचेतन मन ने ग्रहण किया है। हम पाप करने में सरल हो गए। जब अशुद्ध होता ही नहीं है, तो फिर अशुद्धि का डर क्या रखना। और जब शुद्ध है ही तो फिर यह पाप करने की सुविधा मिली है, यह क्यों खोना? यह अचेतन में बैठ गई बात। तो यह मुल्क आत्मा का परम-ज्ञान लेकर भी मनुष्य की दृष्टि से बहुत हीन और दीन हो गया। इस सूत्र का यह मतलब आप मत लेना कि आप शुद्ध हैं ही, इसलिए बात समाप्त
हो गई। इस सूत्र से आप इतना ही मतलब लेना कि आपके भीतर जो अज्ञात किरण है, जो कि आप नहीं हो। आप तो जो हो, वह अशुद्ध है ही। आप तो गंदी तलैया हो! और उस किरण का आपको कोई भी पता नहीं है, जिसकी इस सूत्र में चर्चा है। उपनिषद जिसका गीत गाते हैं, गीता जिसका गुणगान करती है, वह आत्मा की किरण आप अभी नहीं हो। आप हो सकते हो, लेकिन होने की एक शर्त यह है कि यह गंदी तलैया से आपका तादात्म्य छूटे। अगर यह गंदी तलैया भरती चली जाती है, तो तादात्म्य का छूटना मुश्किल है, वह और बढ़ता चला जाता है। अगर इसे मैं ऐसा कहूं कि आप जैसे हैं, गंदे हैं; आप जैसे हो सकते हैं, और जो आपकी आत्यंतिक नियति है, वह सदा शुद्ध है, तो ठीक होगा। तब हमें दो बिंदु मिल जाएंगे। जैसा मैं हूं, वह गंदा हूं, लेकिन जैसी मेरी नियति है, मेरी आत्यंतिक गहरी प्रकृति है, वह अशुद्ध नहीं है।
तो जो मैं अभी दिखाई पड़ रहा हूं, उसे मुझे छोड़ना है। और जो अभी मैं हूं
और दिखाई नहीं पड़ रहा हूं, उसे मुझे पाना है। नहीं तो इस देश में ऐसा हुआ है, साधु, संन्यासी, ज्ञानी समझाते रहते हैं। चोर, पापी, बेईमान, काला- बाजारी, वे सब बैठकर सुनते हैं, और वे मन में कहते हैं कि बिल्कुल ठीक है महाराज। कहां अशुद्ध! आत्मा बिल्कुल शुद्ध है।
मैं एक संन्यासी को जानता हूं। जो भारत में थोड़े से कुछ महाज्ञानी हुए उनमें एक हैं कुंदकुंद। वह उन कुंदकुंद के शास्त्रों पर प्रवचन करते हैं। वह एक संन्यासी हैं। उनका प्रवचन सुनने जो लोग इकट्ठे होते हैं, उनके

चेहरे ही बता सकते हैं कि इनका कुंदकुंद से कोई लेना-देना नहीं है। सब चोरों की जमात--अच्छे चोरों की, क्योंकि बुरे चोर तो जेलों में पड़े हैं, उनको तो अवसर नहीं हैं। अच्छे चोरों की जमात इकट्ठी हो जाती है। काफी दान-दक्षिणा करते हैं, मंदिर बनाते हैं, आश्रम खुलवाते हैं, तीर्थयात्रा होती है। मुझसे उनका एक भक्त पूछ रहा था कि इतने धनपति सब क्यों यहां कुंदकुंद को सुनने आते हैं? कुंदकुंद में इनका क्या रस हो सकता है?
तो मैंने उनको कहा, कुंदकुंद में एक ही रस है, क्योंकि कुंदकुंद की घोषणा है कि तुम सदा शुद्ध हो, तुम अशुद्ध हो ही नहीं सकते। ए सब चोर इकट्ठे हो कर सुन के बड़े आश्वस्त होते हैं, सदा शुद्ध, बिल्कुल ठीक है। तो वे सौ रुपए की चोरी करते हैं, उसमें से दस रुपया दान-पुण्य भी करते हैं कि कुंदकुंद ठीक कहा तुमने, तुम्हारी वाणी से हम आश्वस्त हुए। नाहक परेशान हुए जाते थे, चिंता में पड़ते थे, पीड़ा झेलते थे, मन में ग्लानि होती थी। तुमने सब पोंछ डाली, सब धो डाली। वह सौ की चोरी की है, उसमें से दस प्रतिशत दान कर देते हैं। और दस प्रतिशत दान करके, फिर सौ की चोरी करने के लिए तैयार हो जाते हैं। क्योंकि अब कोई डर भी न रहा, अब कोई चिंता नहीं है, कुंदकुंद पर भरोसा पक्का है। और कुंदकुंद ठीक कहते हैं। और ये चोर बिल्कुल गलत समझ लेते हैं। पर कठिनाई है, कुंदकुंद कुछ भी कहें, इससे क्या होता है? वह जो समझने वाला आदमी है, वह क्या समझेगा, अंतिम परिणाम तो उससे होने वाला है।
यह सूत्र, इसलिए मैं कहता हूं, थोड़ा सावधानीपूर्वक समझना। इसका यह मतलब नहीं है कि आप ठीक हैं बिल्कुल। आप तो बिल्कुल गलत हैं। और जो ठीक है आपके भीतर, उसका तो आपको कोई पता ही नहीं है। इसलिए फिर उसको मैं कहूं कि आप हैं, तो ठीक न होगा। ऐसा उचित होगा कहना कि आप जब बिल्कुल मिट जाएंगे, तभी आपको उसका पता चलेगा, जो सदा शुद्ध है। यह जो गंदी तलैया है, जब तिरोहित हो जाएगी, तब वह किरण शुद्ध होगी। वह शुद्ध है। लेकिन इस गंदी तलैया से जुड़ कर वह तो खो ही गई, तलैया ही रह गई है।
"वही प्रकाश-रेखा तेरा जीवन-गुरु और तेरी सच्ची आत्मा है--द्रष्टा और मूक चिंतक।"
गुरु की तलाश आदमी करता है, स्वभावतः बाहर खोजता है। क्योंकि हम खोजते ही बाहर हैं। कुछ भी खोजना हो तो बाहर खोजते हैं। धन खोजना हो तो बाहर खोजते हैं, धर्म खोजना हो तो बाहर खोजते हैं। गुरु भी खोजना हो, तो बाहर खोजते हैं। खोज ही हमारी बाहर है। आंखें ही हमारी बाहर दौड़ती हैं, हाथ हमारे बाहर फैलते हैं, पैर हमारे बाहर भागते हैं। भीतर का हमें कुछ पता नहीं है। गुरु को भी हम बाहर खोजते हैं। कोई उपाय भी नहीं, क्योंकि भीतर का भी कौन हमें कहे।
और गुरु भीतर है। यह जीवन की जो किरण है--यही तेरा जीवन, यही तेरा गुरु है। क्योंकि इस किरण का तुझे पता चल जाए, तो रास्ता मिल गया। इसी किरण के रास्ते पर तू चलता जाए, तो तू महासूर्य तक पहुंच जाएगा। इस किरण का स्मरण आ जाए, तो हम सूर्य के हो गए। यह जीवन-किरण है तेरी गुरु, तेरी सच्ची आत्मा। लेकिन गुरु को हमें बाहर खोजना पड़ता है; क्योंकि हम सभी कुछ बाहर ही खोजते हैं। जीवन की जटिलताओं में एक जटिलता यह भी है कि गुरु भीतर है और हमें बाहर खोजना पड़ता है। इसका
क्या अर्थ हुआ? इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि तब फिर गुरु न खोजा जाए,
तो फिर गुरु की कोई जरूरत नहीं?
एक मित्र ने सवाल पूछा है कि कृष्णमूर्ति कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अगर कृष्णमूर्ति की यह बात मान ली, तो कृष्णमूर्ति तुम्हारे तो कम से कम गुरु हो ही गए। कृष्णमूर्ति कहते हैं यह, तुम नहीं कहते हो। और कृष्णमूर्ति को तुम मान लो, तो और गुरु होने में होता क्या है? बचता क्या है? मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम किसी को गुरु नहीं बना सकते हैं, क्योंकि हम तो कृष्णमूर्ति को मानते हैं। तो गुरु तो बना लिया, गुरु बनाने का और अर्थ क्या होता है? किसी को माना, क्योंकि अपने पर भरोसा नहीं है, इसलिए किसी का सहारा लिया, इतना ही गुरु का अर्थ होता है। जिस दिन अपना ही भरोसा आ जाता है, उस दिन तो गुरु की कोई जरूरत नहीं रह

जाती। लेकिन अभी वह भरोसा नहीं है। तो फिर बाहर गुरु की खोज का क्या अर्थ है?
एक तो यह बात है, जो कृष्णमूर्ति कहते हैंः गुरु की कोई जरूरत नहीं है। वे बिल्कुल ठीक कहते हैं; क्योंकि जीवन-गुरु भीतर है। लेकिन वे भी लोगों को समझा रहे हैं कि इसकी कोई जरूरत नहीं। इस अर्थ में तो गुरु हो जाते हैं, शिक्षक हो जाते हैं। और वे कितना ही कहें कि मैं कोई शिक्षा नहीं देता--फिर क्या देते हैं? और वे कितना ही कहें कि मुझसे कुछ ग्रहण मत कर लेना, लेकिन वे जो सुनने आते हैं, वे ग्रहण करके जाते हैं। वह जो सुनने आया है, वह शिष्य है, इसलिए आया है। उसे गुरु की तलाश है, और वह चाहता है कि कोई उसे बता दे रास्ता, जो उसे पता नहीं है। और यह सच है गहरे अर्थों में कि गुरु भीतर है, कोई दूसरा क्या रास्ता बताएगा, उसी से रास्ता मिलेगा। लेकिन आदमी क्या करे, वह कहां जाए? उसे खुद नहीं मिल रहा
है, यह साफ है। और खुद मिलता होता, तो कभी का मिल गया होता।
आज ही एक व्यक्ति ने मुझे आकर कहा कि अनेक ज्ञानी जब कहते हैं कि गुरु
की कोई जरूरत नहीं और गुरु भीतर है, तो फिर हम क्यों किसी को गुरु मानें? तो मैंने उनको कहा कि अब तक बिना गुरु के तुम रहे हो, मिल गया? अगर मिल गया तो बात खतम हो गई। और नहीं मिला बिना गुरु के, तो अब तुम क्या करोगे? मिलना होता तो मिल गया होता। अब तुम करोगे क्या? और तुम मेरे पास क्यों आए हो? आदमी की उलझन बड़ी है। वह आदमी मुझसे कहने लगाः "मैं इसलिए आया हूं यही पूछने आपसे कि मेरा मानना ठीक तो है कि बिना गुरु के चल जाएगा? कि अगर मैं गुरु न बनाऊं, तो कोई अड़चन तो नहीं आएगी?" गुरु बनाना हो, तो किसी से पूछने जाना पड़ता है? न बनाना हो, तो भी किसी से पूछने जाना पड़ता है? गुरु से बचने का उपाय नहीं दिखता है।
कोई गुरु के पक्ष में है, तो उसके शिष्य बन जाते हैं लोग। कोई गुरु के विपक्ष में है, तो उसके शिष्य बन जाते हैं लोग। जो गुरु के पक्ष में है, वह समझाता है गुरु बिना ज्ञान नहीं होगा। वह भी समझाता है, जो गुरु के विपक्ष में है। वह भी कहता है गुरु भर मत बनाना, नहीं तो ज्ञान नहीं होगा। वह भी समझाता है।
मेरी दृष्टि है कि आप गुरु से बच नहीं सकते। भीतर का गुरु है, उसका आपको पता नहीं है। आपको बाहर गुरु पकड़ना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा। लेकिन बाहर का गुरु सिर्फ एक काम कर सकता है। वह गुरु नहीं हो सकता, लेकिन बाहर के गुरु के निकट रह कर शांत होकर उसके सान्निध्य में, उसकी मौजूदगी में, उसके उठने-बैठने में, उसकी वाणी में, उसके मौन में, उसकी आंखों में, उसके हाथों में, उसके जीवन की जो धारा बह रही है आपके पास, उसमें किसी दिन आपको उसकी प्रतिध्वनि मिल सकती है, जो आपके भीतर है--झलक। क्योंकि गुरु का अर्थ ही हैः वह व्यक्ति जिसने भीतर के गुरु को पा लिया। और कोई अर्थ नहीं है। जिसने जीवन-गुरु को पा लिया, वह व्यक्ति गुरु हो गया। वह अपना तो गुरु
हो ही गया, लेकिन अब वह आपके लिए भी झलक का काम बन सकता है, दर्पण बन सकता है। उसकी कोई किरण आपको भी चोट कर सकती है। उसकी वीणा के स्वर नाचने लगे। उसकी नाच की धुन आपके भीतर भी प्रवेश कर जाए, तो आपकी वीणा भी झंकृत हो सकती है।
वीणावादक कहते हैं कि अगर एक शांत कमरे में एक वीणा रखी जाए शांत मौन
एक कोने में और दूसरे कोने में आहिस्ता से दूसरी वीणा के स्वर झंकृत किए जाएं और फिर झंकार बढ़ती ही जाए, तो एक घड़ी आती है कि वह जो शांत मौन रखी वीणा है, उसके तार कंपित होने लगते हैं। यह जो झंकार कमरे में गूंजती है, यह झंकार उस वीणा को भी पकड़ लेती है, उसके तार भी आहिस्ता से कंपने लगते हैं। ऐसा ही कंपन गुरु के पास आपके भीतर के गुरु में हो जाता है। इसलिए गुरु के प्रति समर्पण का इतना मूल्य है। क्योंकि समर्पण न हो तो आप अकड़े खड़े हैं। वीणा के तार ढीले छोड़ ही नहीं रहे हैं कि वे कंप सकें। समर्पण हो तो यह कंपन हो सकता है। समर्पण हो, तो आप खुल गए, आपका झरोखा खुला है।
और समान, समान को आंदोलित करता है, समान-समान को प्रभावित करता है। समान से समान गतिमान हो जाता है। अगर बाहर कोई गुरु है, वह आपका गुरु नहीं है असल में, आपका गुरु आपके भीतर छिपा है। लेकिन यह तो भीतर छिपा है, उसमें

कोई प्रतिध्वनि तो हो, कोई हलन-चलन हो, कोई चोट पड़े, कोई झंकार हो। यह बाहर का गुरु अपने अस्तित्व से, अपने होने के ढंग से ही आपके भीतर के गुरु के लिए पुकार, आवाहन बन जाता है, एक चुंबक बन जाता है। और फिर आपको पहचान भी इसके पास आनी शुरू हो जाती है कि अगर किसी दिन भीतर का गुरु मिलेगा, तो कैसा होगा।
विवेकानंद निरंतर एक कहानी कहा करते थे कि एक मादा सिंहनी छलांग लगाती थी एक पहाड़ से। गर्भिणी थी, और छलांग लगाते हुए उसको बच्चा हो गया। और नीचे भेड़ों का एक झुंड गुजरता था, बच्चा भेड़ों के झुंड में गिर गया। फिर भेड़ों ने उसे बड़ा कर लिया। और उस शेर के बच्चे ने सदा यही जाना, सिंह के बच्चे ने कि वह भेड़ है। और कोई जानने का उपाय भी न था। क्योंकि जिनके पास हम होते हैं, हम जानते हैं कि हम उन्हीं जैसे हैं। मां--दूध पिलाने वाली मां भेड़ थी, संगी-साथी भेड़ थे। सिंह को पता भी कैसे चले कि मैं भेड़ नहीं हूं?
वह भेड़ों जैसी आवाज करना सीख गया, भेड़ों जैसा भागता था। थोड़ी बेचैनी
तो उसे होती थी, क्योंकि वह भेड़ों से बहुत बड़ा हो गया। लेकिन तब यही समझा गया कि थोड़ी एबनार्मल, असाधारण देह है। भेड़ें भी उसको भेड़ ही समझती थीं; क्योंकि उन्हीं जैसी आवाज करता। उन्हीं के साथ बड़ा हुआ, उन्हीं के साथ खेला-कूदा; सिंह जैसा कोई लक्षण उसमें उनको दिखाई भी नहीं पड़ा। न हमला करता था, न काटता था, न खाता था। भेड़ें जो खाती थीं, वही खाता था। भेड़ें जो बोलती थीं, वही बोलता था। भेड़ होना उसका जीवन था। थोड़ा एबनार्मल था, थोड़ा असाधारण था। थोड़ी लंबाई ज्यादा थी, शरीर जरा बड़ा था, रंग-रूप भिन्न था। तो असाधारण बच्चे तो सभी जातियों में पैदा हो जाते हैं। भेड़ों में भी हो जाते हैं। असाधारण होने की वजह से उसे थोड़ी परेशानी भी होती थी, वह अपने को दीन-हीन भी समझता था। आप भी अगर पांच फीट लंबे लोगों में दस फीट के हो जाएं, तो आप कमर झुका कर और डरे-डरे चलेंगे। क्योंकि आप बीमार हैं।
मैं जिस विश्वविद्यालय में था, मेरे एक प्रोफेसर को बीमारी हो गई थी। सारे लोग कहते थे, बीमारी है; वे भी कहते थे, बीमारी है। वे नौ फीट होते जा रहे थे, धीरे-धीरे लंबे होते जा रहे थे। बड़े परेशान रहते थे, वे सो नहीं सकते थे--चिंता, इलाज। मैंने उनको पूछा कि तुम्हें तकलीफ क्या है? तकलीफ और कुछ नहीं, यह लंबा होता जाना ही तकलीफ है। इसमें क्या तकलीफ है? कोई तकलीफ है तुम्हें? कोई पीड़ा, परेशानी, कोई दिक्कत तुम्हें हो रही है, जिसका तुम इलाज करवा लो? बस यह बड़ा होते जाना क्योंकि जो देखता है, वह मुझे चौंक कर देखता है! पत्नी कहती है, यह क्या हो रहा है? कहीं जाती हूं तो लोग पूछते हैं, क्या ये तुम्हारे पति हैं? वे झुककर चलते थे बिल्कुल कि कितने नीचे हो जाएं!
वैसी हालत उस सिंह की रही होगी। बड़ा परेशान था, बेचैन था। और एक दिन और मुसीबत आ गई। एक सिंह ने उस झुंड पर हमला कर दिया। भेड़ें भागीं और भेड़ों के बीच में यह सिंह भी घसर-पसर भागा। वह जो दूसरा सिंह था, वह देख कर चमत्कृत हो गया। ऐसा दृश्य उसने कभी नहीं देखा था कि यह हो क्या रहा है! एक सिंह, और भेड़ों के बीच में भाग रहा है! और भेड़ें उससे घसर-पसर करती भाग रही हैं! कोई उससे परेशान भी नहीं! और यह क्यों भाग रहा है? और भेड़ें इसके साथ इतना तालमेल कैसे बनाए हुए हैं? वह सिंह भेड़ों को मारने की बात तो भूल ही गया, भूख की तो बात भूल गया। वह भागा, बामुश्किल इस सिंह को पकड़ पाया। भेड़ होती, तो पकड़ना आसान भी होता, वह था तो सिंह। तो भागता तो सिंह की तरह था। बामुश्किल पकड़ पाया, जवान था और यह बूढ़ा था सिंह।
पकड़ लिया, तो वह मिमियाने लगा, रोने लगा, हाथ जोड़ने लगा कि क्षमा कर दो, माफ कर दो, अब कभी तुम्हारे रास्ते में न आऊंगा, मुझे जाने दो। उसने कहा, तू पागल हो गया है? तू भेड़ नहीं है। उसने कहा, मैं भेड़ हूं, थोड़ी असाधारण, थोड़ी ऊंचाई मेरी ज्यादा है। रंग-रूप जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है, पर हूं मैं भेड़।
वह सिंह उसे पकड़कर नदी के किनारे ले गया। वह रोता, चीखता कि मुझे जाने दो, मेरे सब संगी-साथी पीछे पिछड़ गए हैं। उसको घबड़ाहट हो गई कि अब मारा गया, अब मेरी मौत करीब है। लेकिन वह बूढ़ा सिंह उसको किसी तरह ले गया नदी के

किनारे और कहा, झांक कर देख पागल, नदी में अपने चेहरे को। उस सिंह ने, भेड़ बने सिंह ने बड़े डरते-डरते पानी में झांक कर देखा। क्षण भर में सब बदल गया। क्षण भर में! भेड़ की आवाज खो गई। सिंह की गर्जना प्रकट हुई। जैसे ही देखा अपना चेहरा नीचे, गर्जना निकल गई। जो कभी उसने जानी न थी कि उसके भीतर छिपी है, सिंह की गर्जना। एक क्षण में वह सिंह हो गया। वह सिंह था, सिर्फ भ्रांति टूट गई।
गुरु का इतना ही अर्थ है कि वह पकड़ कर आपको किसी पानी में दिखा दे कि
आप क्या हो। या खुद पानी बन जाए और आपको दिखा दे कि आप क्या हो। एक झलक आपको अपनी मिल जाए, आपको अपना गुरु मिल गया।
यह सूत्र कहता है कि वह किरण, वह प्रकाश की रेखा ही तेरा जीवन-गुरु, तेरी सच्ची आत्मा है--द्रष्टा और मूक-चिंतक। और तेरी निम्न आत्मा का शिकार आत्मा केवल भूल करने वाले शरीर में आहत होती है। इन दोनों पर नियंत्रण और स्वामित्व कायम कर। और तू निकट आते हुए संतुलन के द्वार के भीतर जाने में सुरक्षित है।
"और तेरी निम्न आत्मा का शिकार आत्मा केवल भूल करनेवाले शरीर में आहत होती है।"
और तूने जितनी भूलें की हैं, और तूने जितने पाप किए हैं, उन सबकी छाया, प्रतिबिंब और चिन्ह तेरे शरीर में ही छूटते हैं, तुझमें नहीं। उनकी पीड़ा का, उनके फल का भोग भी तेरे शरीर में ही होता है, तुझमें नहीं। लेकिन तू अपने को शरीर के साथ एक मानता है, इसलिए तू अकारण, व्यर्थ ही पीड़ित होता है।
भेड़ के साथ जिसने अपने को एक माना है, वह भेड़ की भांति पीड़ित होगा। और
यह पीड़ा काफी वास्तविक है, इसलिए कहने से कुछ अर्थ नहीं है कि वह झूठ है। वह जो सिंह भाग रहा था भेड़ों के बीच में, क्या उसका डर कुछ कम था? क्या उसकी छाती कुछ कम घबड़ा रही होगी? और अगर भागते ही जाता, तो हार्ट अटेक उसको आता, जैसा किसी भी भेड़ को आ सकता था। यह सब वास्तविक है। इतना कहने से कि भ्रांति है, कुछ हल नहीं होता। होगी भ्रांति, लेकिन जब भ्रांति चलती है, तब तो वास्तविकता है। और तब तो उसकी पीड़ा उतनी ही सच्ची है, जितनी वास्तविक पीड़ा होगी।
कौन सी पीड़ा हो रही सिंह को?
वह सिंह है और भेड़ माने हुए है, इसलिए दुख पा रहा है।
वह दुख कहां छिपा है? उसकी धारणा में, उसके तादातमय में।
आपने जितने पाप किए हैं, जितनी भूलें की हैं, जितनी बुराइयां की हैं,
वे सब आपमें नहीं छिपी हैं, आपकी भ्रांति में छिपी हैं--और आपकी भ्रांति है कि मैं शरीर हूं। सारी छाप शरीर पर पड़ती है। और सारी छाप का फल शरीर को भोगना पड़ता है। और शरीर के साथ मेरा तादातमय है, इसलिए मैं भी भोगता हुआ प्रतीत होता हूं। वह प्रतीति है, लेकिन दुख तो पूरा है। इससे कोई भेद नहीं पड़ता।
मनसविद कहते हैं कि उनके पास लोग आते हैं। अगर उनसे कहा जाए कि तुम्हें मानसिक बीमारी है, तो इससे कुछ हल नहीं होता। पुराने दिनों में, आज से सौ वर्ष पहले, फ्रायड के पहले, कोई मन का डाक्टर तो होता नहीं था, शरीर के ही डाक्टर थे। शरीर का डाक्टर इतना ही कह देता था कि यह कोई बीमारी नहीं है--जांच कर लेता शरीर की। और आप कहते हैं कि मेरे तो सिर में दर्द होता ही चला जाता है। और सिर में कोई दर्द न हो वस्तुतः, तो चिकित्सक इतना ही कह सकता था कि आपको भ्रांति है, आपको ख्याल है कि दर्द है। दर्द है नहीं, इसलिए कोई इलाज हो नहीं सकता है, आप भ्रांति छोड़ दो। लेकिन भ्रांति कोई कैसे छोड़ दे? और जिसको दर्द हो रहा है, आपके कहने से भ्रांति हो जाती है? दर्द तो हो रहा है। और दर्द उतना ही है, जितना कोई वास्तविक दर्द हो। फ्रायड के बाद मनस्विदों ने यह बात कहनी बंद कर दी कि भ्रांति है। यह ख्याल में आया कि भ्रांति भी तो दर्द जब देती है, तो उतना ही देती है, जितना कोई सत्य दे। इसलिए यह कहने से कोई हल नहीं है। इस भ्रांति को मिटाने का उपाय करना जरूरी है।
क्या होगा उपाय?

जब तक हमारी यह तादात्म्य की भाव-दशा बनी है कि मैं शरीर हूं, तब तक हम क्या करें? कैसे खोजें कि यह भ्रांति है? क्या उपाय करें कि हमें दिखाई पड़ने लगे?
दो-तीन बातें उपयोगी हैं।
पहलीः नियंत्रण, स्वामित्व कायम कर।
हमारा अपने पर कोई नियंत्रण ही नहीं है, कोई मालकियत नहीं है। कोई स्वामित्व न हो, तो शरीर ही हमें चलाता है। हम सोचते भले हैं कि हम शरीर को चला रहे हैं, लेकिन शरीर ही हमें चलाता है। और यह बड़े मजे का मामला है, आप सदा यही सोचते हैं कि आप मालिक हैं और आप सब चला रहे हैं। आप एक चौबीस घंटे की डायरी लिखें कि आपने शरीर को चलाया कि शरीर ने आपको चलाया, तो आपको पता चलेगा कि शरीर ने आपको चलाया है। और आप शरीर को जरा भी--जरा भी नहीं चला सके। तो जो शरीर आपको चलाता है, तो फिर बहुत कठिन है भ्रांति से जागना, क्योंकि जिसमें भ्रांति है वह आपका मालिक बना है। इसको कैसे जानें? पुरानी आदत है, शरीर इतना आसानी से चुप नहीं हो जाएगा। और पहले कई दफा आपने चुप करना चाहा है, वह चुप नहीं हुआ। उसने और ज्यादा शोरगुल मचाया। फिर आपने भोजन कर लिया, तो वह जानता है थोड़ा शोरगुल मचाओ। आपके छोटे-छोटे बच्चे जानते हैं। तो शरीर तो बहुत पुराना अनुभवी है। छोटा बच्चा बाप से कहता है कि आज खिलौना लाना। बाप कहता है कि नहीं ला सकते। छोटा बच्चा जानता है कि बाप की हिम्मत कितनी है। तीन दफे ज्यादा से ज्यादा कहेगा कि नहीं ला सकते। चौथी दफे झुकेगा। वह शोरगुल मचाना शुरू कर देता है, पैर पटकता है, कूदता-फांदता है। वह जानता है कि कितनी सीमा है। बाप थोड़ा झुकता है। जब वह ज्यादा उपद्रव मचाने लगता है, वह कहता है कि भाई ठहर, दो-चार दिन रुको। वह कहता है कि बिल्कुल रुक सकते हैं। उसने पकड़ लिया हाथ। अब वह जानता है कि थोड़ा और दबाने की जरूरत है, और ये राजी होंगे। और यह कई दफे हो चुका है। और फिर भी बाप की नासमझी है कि फिर भी वह पहले ना कहता है, और फिर तीन दफे में हार जाता है। इसमें उसकी सब प्रतिष्ठा भी खो जाती है। इससे तो पहली दफा हां भर देना बेहतर है।
फ्रायड ने कहा है, सिर्फ उन्हीं बातों में ना कहना बच्चों को, जिनमें तुम ना कायम रख सको, अन्यथा तुम बच्चों को नष्ट कर रहे हो। अगर तुमको पहले से ही पता हो कि ना तुम कायम न रख सकोगे और यह बच्चा जीत जाएगा और तुमसे हां भरवा लेगा, तो बेहतर है तुम पहली दफे ही हां भर देना। उसमें तुम मालिक तो रहोगे। पर ऐसी बातों के लिए बच्चों को कहना जो तुम करवा सको।
जैसे एक बच्चा रो रहा है और आप उससे कहते हैं, चुप हो जा। अगर वह चुप नहीं होगा, तो आप क्या करेंगे? और बच्चे को एक दफा पता चल गया कि तुम कहते हो चुप हो जाओ, नहीं होता, तो आप कुछ नहीं कर सकते, तो उसको आपकी नपुंसकता पता चल गई। फ्रायड ने कहा है कि बच्चे को ऐसी बात मत कहना, जो तुम न करवा सको। बच्चे से कहना कमरे से बाहर निकल जा; अगर न निकले, तो उसे उठा
कर बाहर रखा जा सकता है, दरवाजा बंद किया जा सकता है, लेकिन उससे कहो
मत रो, तो क्या करेंगे? आप जो करेंगे उसमें और ज्यादा रो सकता है। और एक बार उसको ऐसा पता चल जाए कि कुछ चीजें हैं, जो आप कहते हैं और करवा नहीं सकते, तो मालिक वह हो रहा है; आप धीरे-धीरे कमजोर होते जा रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे ही समझ लेते हैं, तो शरीर तो बहुत प्राचीन है। हजारों बार शरीर में आप रहे और शरीर की निश्चित प्रक्रिया हो गई है। आपको भूख लगी है, तो शरीर और शोरगुल मचाएगा कि अभी चाहिए, अभी चाहिए, अभी चाहिए। तपश्चर्या का अर्थ शरीर को कष्ट देना नहीं है। तपश्चर्या का अर्थ सिर्फ नियंत्रण बदलना है। शरीर मालिक नहीं है, मालिक मैं हूं। भूख लगी है, मुझे पता चल गया। अब तुम चुप हो जाओ और मुझे भूख आज नहीं भरनी है, पूरी नहीं करनी है, आज मुझे भूखा रहना है। फिर इस बात पर टिकना। थोड़े ही दिन के प्रयोग में आप पाएंगे कि आपके कहते ही कि आज भोजन नहीं करना है, शरीर चुप हो जाएगा।
लेकिन शुरू में नहीं होगा यह। शुरू में तो वह बहुत उपाय करेगा; मन में
न मालूम कितनी तरह के विचार पैदा करेगा। न मालूम कितने जगह के निमंत्रण आ जाएंगे; न मालूम कितनी जगह राजभोज होने लगेगा। सारे रास्ते पर गुजरेंगे,

तो सब दुकानें खो जाएंगी, सिर्फ होटलें दिखाई पड़ने लगेंगी। वह सब उपाय करेगा अपनी तरफ से, सारी चेष्टा करेगा; क्योंकि उसकी पुरानी प्रतिष्ठा है और उस प्रतिष्ठा को आप हटाए डाल रहे हैं।
लेकिन अगर आप टिके रहे, और आपने साहस का उपयोग किया, तो आज नहीं कल शरीर समझ जाएगा कि मालकियत खो गई है। और वह आपका अनुगमन करने लगेगा। तब एक बड़ी अदभुत घटना घटती है, जो कि वे ही लोग जानते हैं, जो शरीर की मालकियत कर लेते हैं। तब आपके कहते ही शरीर चुप हो जाता है। कहते ही--आपने कहा कि आज भोजन नहीं, तो शरीर चुप हो जाता है। क्योंकि वह जानता है कि इस आदमी से भोजन अब मिलने का कोई उपाय न रहा।
शरीर की अपनी समझ है। और शरीर बड़ा समझदार यंत्र है। और आपका रग-रग रेशा-रेशा वह पहचानता है कि आप किस तरह के आदमी हैं। आपका ही शरीर है, चारों तरफ आपके घेरा है। सब तरह से आपसे परिचित है। कौन आपसे इतना ज्यादा परिचित है, जितना आपका शरीर है। वह इंच-इंच रत्ती-रत्ती जानता है कि किस तरकीब से आप झुकते हैं; वह सारा उपाय करता है। शरीर की भी पालिटिक्स है आपके साथ। उसकी भी राजनीति है। और वहां भी द्वंद्व और संघर्ष है। इस द्वंद्व और संघर्ष को तोड़ना पहली जरूरत है; तभी तादातमय टूट सकेगा। "दूसरे तट को जाने वाले ओ साहसी यात्री, प्रसन्न रह। कामदेव की कानाफूसी पर कान मत दे। और अनंत आकाश में जो लुभाने वाली शक्तियां हैं, जो दुष्टभाव वाली आत्माएं हैं, जो द्वेषी ल्हामयी हैं, उनसे दूर ही रह।" पहली बात, शरीर को मालकियत से उतारें। इसका मतलब यह नहीं कि शरीर के दुश्मन हो जाएं, उसको नष्ट कर डालें। इसका मतलब यह है कि उसे, जहां वह होना चाहिए--सेवक--वहां उसे बिठा दें। वह वहीं ही योग्य है, और वहां उसकी बड़ी उपयोगिता है। और एक बार आप उसके मालिक हो जाएं, तो शरीर से आप वह काम ले सकते हैं, जिसके बिना आत्मा की कोई यात्रा नहीं हो सकती। शरीर फिर अदभुत यंत्र है।
अभी तक जगत में मनुष्य के शरीर जैसा अदभुत यंत्र कोई भी नहीं है। बहुत सूम, बहुत विराट, सब उसमें समाहित है। और उसमें अनंत शक्तियां प्रसुप्त हैं, जो सब जाग जाएं, तो आपके जीवन में अनंत द्वार खुल जाते हैं। आप स्वयं एक छोटे-मोटे विश्व हैं। लेकिन वह मालिक हो शरीर, तो आप सिर्फ गुलाम हैं। और हालत ऐसी है, जैसे बैलगाड़ी आगे हो और बैल पीछे बंधे हों, तो कहीं कोई जाना नहीं होता। आप बहुत तड़पते हैं, चिल्लाते हैं, कि कहीं जाना जरूरी है, यात्रा करनी जरूरी है, मंजिल पर पहुंचना चाहिए, समय नष्ट हो रहा है। पर काम आप ऐसा कर रहे हैं कि समय नष्ट होगा ही। बैल पीछे बंधे हैं, गाड़ी आगे बंधी है; धक्का-मुक्की में गाड़ी उलटी टूटती है, बैल परेशान होते हैं, कहीं कोई यात्रा नहीं होती है।
आत्मा पीछे बंधी है शरीर के, तो यात्रा नहीं हो सकती है। आत्मा आगे होनी चाहिए, शरीर पीछे होना चाहिए, तो फिर बड़ी यात्रा हो सकती है। और शरीर अदभुत वाहन है। उसका उपयोग किया जा सकता है।
दूसरी बात ख्याल रखनी जरूरी है कि इस नियंत्रण के प्रयोग में उदासी न पकड़ ले; चित्त प्रसन्न रहे। क्योंकि शरीर की जो सबसे गहरी तरकीब है, वह आपको उदास करके पराजित करने की है। अगर आप भूखे हैं और उपवास किया है तो आपका मन उदास हो जाएगा। अगर उपवासा आदमी उदास है, तो समझना कि उपवास व्यर्थ हो गया। इससे बेहतर था, वह भोजन कर लेता और प्रसन्न रहता। अगर उपवासा आदमी उदास है, तो समझना बात व्यर्थ हो गई, बात खतम हो गई। क्योंकि उदासी शरीर की तरकीब है आपसे बदला लेने की। और शरीर आपको थका डालेगा। और उदासी कितने दिन तक झेलिएगा?
इसलिए जब शरीर पर नियंत्रण करना हो, तो दूसरा सूत्र ख्याल रखना कि शरीर उदासी की लहरें भेजेगा; शरीर सब तरफ से आपको उदास करने की कोशिश करेगा। आप उदास मत होना, आप प्रसन्न रहना। अगर आप प्रसन्नता कायम रख सकें, तो अदभुत अनुभव होते हैं। आपको पता नहीं है, इसलिए बड़ी अड़चनें होती हैं। शरीर के भीतर शक्ति के तीन तल हैं। एक तल तो रोज मर रहा है काम के लिए, वह बहुत छोटा-सा है। रोज जो आपको काम करने पड़ते हैं--उठना-बैठना, चलना, दफ्तर

जाना, वह सब काम के लिए, एक छोटा सा स्रोत आपके शरीर के ऊपर है। यह जल्दी थक जाता है, चुक जाता है। क्योंकि इसकी पूंजी बहुत कम है।
समझें ऐसा कि आप दिन भर के थके-मांदे लौटे हैं। और आप कहते हैं कि बिल्कुल पड़ जाऊं और सो जाऊं। अब एक शब्द भी बोलने की इच्छा नहीं है, हाथ भी हिलाने की इच्छा नहीं है, बस सो जाना चाहता हूं। तभी अचानक घर में आग लग जाए; आपकी सब उदासी खो जाती है, थकान खो जाती है। आप एकदम सचेत हो जाते हैं, शक्ति का स्रोत दौड़ पड़ता है। यह शक्ति कहां से आई--यह आपमें नहीं थी अभी तक? यह दूसरा स्रोत है शरीर का, इमरजेन्सी का। तात्कालिक जरूरत जब आ जाए, तो शरीर में नया स्रोत काम शुरू कर देता है; शक्ति दौड़ जाती है। अब आप रात भर आग बुझाने में लग सकते हैं और थकान नहीं आएगी।
इससे भी गहरा एक स्रोत है, जो अनंत स्रोत है। वह तभी उपलब्ध होता है,
जब दोनों स्रोत चुक जाते हैं, और आप डरते नहीं, और प्रसन्नतापूर्वक और भी आगे श्रम करते चले जाते हैं। तब एक घड़ी आती है कि तीसरा स्रोत फूटता है, जो कि कास्मिक है, जो कि जागतिक है। वह आपका नहीं है; कहना चाहिए कि आपके नीचे छिपा हुआ जो चैतन्य का सागर है, उसका है। जिस दिन वह टूट पड़ता है, उस दिन फिर चुकने का कोई उपाय नहीं। उस दिन फिर आप शाश्वत जीवन के मालिक हो गए। इधर मैं देखता हूं, ध्यान में लोग आते हैं, तो वे मुझे कहते हैं कि थक जाता है शरीर। मैं उनसे कहता हूं, फिकर मत करो, तुम चलते जाओ। एक ही ख्याल रखना कि प्रसन्नता से, उदासी से नहीं। जल्दी ही दूसरी पर्त टूट जाएगी, वह जल्दी टूट जाती है। अगर दूसरी पर्त टूट जाती है, तब वे ध्यान के बाद थकान अनुभव नहीं करते, ताजगी अनुभव करते हैं। जब यह दूसरी पर्त भी थका डालेंगे आप तब एक और तीसरी पर्त टूटेगी। उसके बाद आपके पास शाश्वत ऊर्जा है, उसके बाद अनंत जीवन आपका है, उसके बाद आप वहां आ गए, जहां कोई चीज कभी नहीं चुकती। प्रसन्नता का सहारा लेकर चलेंगे, तो ही इतने गहरे उतर पाएंगे। उदास हो गए, तो आप वापिस लौट जाएंगे।
इसलिए बहुत गहरे में आप इसको पकड़ लें कि धर्म की साधना आपका आह्लाद हो, आनंद हो। आनंद अंत में नहीं, पहले चरण पर भी हो। आखीर में मिलेगा, ऐसा नहीं है, आज भी हो। उत्सवपूर्वक नाचते, गाते, प्रसन्न उस तरफ बढ़ें तो शरीर को आप जीत लेंगे। क्योंकि शरीर की जो बुनियादी तरकीब है, उसके विपरीत आपने एंटीडोट, विपरीत औषधि तैयार कर ली। शरीर उदास करके आपको पराजित कर देता है। प्रसन्न रहकर आप शरीर के मालिक हो सकते हैं।
यह सूत्र कहता हैः दूसरे तट को जानेवाले ओ साहसी यात्री, प्रसन्न रह।
यह बड़े मजे का सूत्र है। और दूसरी ही पंक्ति में जो बात आती है, आप सोच
भी न सकेंगे कि वह बड़ी उलटी है। ठीक इसके बाद कि ओ साहसी यात्री, प्रसन्न रह, कामदेव की कानाफूसी पर कान मत दे।
अक्सर तो ऐसा होता नहीं है। वे लोग प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, जो कामदेव
की कानाफूसी पर कान देते हैं। कामदेव से जो बचते हैं, उनकी हालतें देखें, वे प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते हैं। जाएं जैन साधुओं को देखें, वे मरने के पहले मर गए हैं; कोई प्रसन्नता नहीं है। इनको क्या रोग लग गया है? ये कामदेव से लड़ रहे हैं। मनसविद कहते हैं कि जिसकी कामवासना प्रकट होकर, खुल कर बहती है, वह प्रसन्न रहता है। जिसकी काम-वासना अवरुद्ध कुंठित हो जाती है, वह अप्रसन्न और उदास हो जाता
है। वे कहते हैं कि जवान आदमी प्रसन्न दिखाई पड़ता है, क्योंकि उसकी काम-वासना अभी उभार पर है। बूढ़ा आदमी उदास हो जाता है, क्योंकि काम-वासना का ज्वर उतर गया है। बच्चे बहुत प्रसन्न मालूम होते हैं, क्योंकि अभी कामवासना उनके रोएं-रोएं में जग रही है, तैयार हो रही है, फैल रही है। अभी; रोएं-रोएं में शक्ति काम की दौड़ रही है। इसलिए वे इतने आनंदित हैं, भाग रहे हैं, दौड़ रहे हैं, कूद रहे हैं। आप उनको एक जगह बिठा नहीं सकते हैं। शक्ति नाच रही है, बच्चे प्रसन्न हैं--कामवासना के उठते हुए ज्वार की पहली झलक। जवान प्रसन्न हैं, नाचते, गीत गाते हैं। बूढ़े उदास हैं। सारा खेल कामवासना का है। और जो-जो कामवासना से लड़ते हुए लोग हैं, वे प्रसन्न नहीं देखे जाते हैं।

यह सूत्र बड़ा अजीब है। यह सूत्र कहता है, ओ साहसी यात्री, प्रसन्न रह।
और साथ ही तत्काल कहता है, कामदेव की कानाफूसी पर कान मत दे!
ध्यान रखना, यह प्रसन्नता अगर आप में न आ सके, तो आपको कामदेव की कानाफूसी पर ध्यान देना ही पड़ेगा। इस कारण तत्काल यह बात कही गई है। अगर आप उदास हो गए हों और शरीर ने आपको उदास कर दिया, तो आपको पता है, जब आप उदास होते हैं, तो कामवासना ज्यादा मन को पकड़ती है। क्योंकि फिर एक ही उपाय शरीर के पास रह जाता है प्रसन्न होने का--कामवासना। प्रसन्न चित्त हो, आनंद से भरे हों, तो कामवासना का ख्याल भी नहीं आता। क्योंकि आनंद का ख्याल तो तभी आता है, जब आप आनंदित नहीं होते।
हम उसी चीज को मांगते हैं, जो हमारे पास नहीं होती; जो पास ही होती है, उसको हम क्यों मागेंगे। दुखी और उदास लोग कामवासना के प्रति बहुत ज्यादा आकर्षित होते हैं। थोड़ी सी झलक उनको खुशी की वहां मिलती है, वही उनका आकर्षण बन जाती है। अगर इस आकर्षण से बचना है, तो कामवासना में उत्सुक हुए बिना प्रसन्न होना पड़ेगा, आनंदित होना पड़ेगा। और अगर आनंद बिना कामवासना के मिल जाए, तो फिर कामवासना खींचेगी भी नहीं। क्योंकि अब कोई जरूरत भी न रही है। सिर्फ प्रसन्नचित्त व्यक्ति ही ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है, उदास चित्त व्यक्ति कभी उपलब्ध नहीं हो सकता है; क्योंकि उदासी इतना बोझ बन जाएगी कि वह करेगा क्या, उसको हटाने के लिए फिर! उदासी हटाने का जो नैसर्गिक उपाय है, वह कामवासना है। इसलिए कामवासना से गुजर कर आपको लगाता है कि राहत मिली, विश्राम मिला, हल्के हो गए; मुस्कुरा सकते हैं।
यह सूत्र बहुत गहन है और मन की बड़ी गहराई की बात है। अगर उदास हैं, तो कामदेव आपको पराजित कर लेगा; उसकी बात फिर आपको माननी पड़ेगी। अगर प्रसन्न हैं, तो उसकी बात सुनने की कोई जरूरत नहीं, उसकी कानाफूसी से ध्यान हटाया जा सकता है। आप खुद ही इतने प्रसन्न हैं कि अब और कोई प्रसन्नता की मांग का कोई सवाल नहीं है।
"दूसरे तट को जाने वाले ओ साहसी यात्री, प्रसन्न रह। कामदेव की कानाफूसी पर कान मत दे। और अनंत प्रकाश में जो लुभानेवाली शक्तियां हैं, जो दुष्ट भाववाली आत्माएं हैं, जो द्वेषी ल्हामयी हैं, उनसे दूर ही रह।" तिब्बत का शब्द है ल्हामयी। ल्हामयी का अर्थ है, ऐसी आत्माएं, शरीर जिनके छूट गए हैं और नये शरीर जिन्हें नहीं मिले हैं--प्रेतात्माएं। लेकिन विशेष तरह की प्रेतात्माएं जो दूसरों को पथ-भ्रष्ट करने में आनंद लेती हैं। इसे हम अनुभव से भी जान सकते हैं। शरीर के भीतर भी बहुत ऐसे लोग हैं, शरीर में भी ऐसी बहुत आत्माएं हैं, जो दूसरे को अगर थोड़ा सा पथ-भ्रष्ट कर सकें, तो बड़ी प्रसन्न होती हैं।
आपको भी पता न होगा कि कई बार आप भी यह कार्य करते हैं और ल्हामयी हो जाते हैं। कोई आदमी आकर आपसे कहता है कि मैं ध्यान कर रहा हूं, ऐसे-ऐसे चरण हैं ध्यान के, कि नाचता हूं, कूदता हूं, श्वास लेता हूं, हू-हू करता हूं। आपको ध्यान का कोई भी पता नहीं, आप कहते हैं, यह क्या कर रहे हो? पागल हो जाओगे। दिमाग खराब हो गया है? जैसे कि आपको पागल होने का और पागल होने की कला का कुछ पता हो! जैसे कि आपको ध्यान के रहस्यों का कोई पता हो! जैसे कि आप ध्यान कर चुके हैं! और जैसे कि आप इस रास्ते से भी गुजर चुके हैं और पागल हो चुके हैं, अनुभवी हैं। इस भांति आप उससे कहते हैं, यह क्या कर रहे हो, पागल होना है? बिना यह समझे कि आप उसको पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं। पर ख्याल भी नहीं आता कि हम पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं, ऐसे ही कह रहे हैं। और अगर वह आदमी आपसे राजी हो जाए, तो आपका चित्त प्रसन्न होगा। और राजी न हो, तो आप थोड़े उदास होंगे।
लोग बड़ी मेहनत करते हैं दूसरों को राजी करने के लिए कि यह मत करो, और
यह करो! इतनी कोशिश वे खुद को भी नहीं करते राजी करने के लिए कि मैं वह करूं, जितनी वे दूसरों के लिए करते हैं। बड़ा सिर पचाते हैं, बड़े सेवाभावी हैं। दूसरों के काम में लगे रहते हैं। इस तरह की आत्माएं चारों तरफ मौजूद हैं।
तिब्बती खोज इस संबंध में बहुत गहरी है। जब कोई आदमी मरता है, तो साधारण आदमी अगर हो, तो तत्क्षण पैदा हो जाता है, ज्यादा देर नहीं लगती

उसको नया शरीर ग्रहण करने में, क्योंकि सामान्य गर्भ सदा उपलब्ध होते हैं। जब कोई असाधारण आदमी मरता है, कोई महापुरुष या कोई महापापी, तब उसको जन्म लेने में काफी समय लग जाता है, क्योंकि उसके योग्य गर्भ तत्काल, रेडीमेड नहीं होते हैं; कभी-कभी निर्मित होते हैं। जैसे हिटलर मर जाए, तो सैकड़ों वर्ष लग जाएंगे उसको मां-बाप खोजने में। उसके योग्य गर्भ पाने के लिए उसको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रतीक्षा के क्षण में वह प्रेत होगा। कोई ज्ञानी मर जाए और अभी उस जगह न पहुंचा हो, जहां से फिर जन्म नहीं होता, तो उसको भी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, सैकड़ों वर्ष, तभी उसके योग्य गर्भ मिल सकेगा।
नीचे के छोर पर और ऊपर के छोर पर प्रतीक्षा करनी होती है। जो लोग ऊपर
के छोरी पर प्रतीक्षा करते हैं, उनको हम देव कहते रहे हैं। जो नीचे के छोर पर प्रतीक्षा करते रहते हैं, उनको हम प्रेत कहते रहे हैं। दोनों छोर पर प्रतीक्षा करती हुई आत्माएं हैं, जिनको अभी गर्भ लेना है। देव स्वभावतः आनंदित होते हैं किसी की सहायता करने में। प्रेत आनंदित होते हैं, किसी को भ्रष्ट करने में, पथ से हटाने में। ये दोनों आत्माएं आपके आसपास काम कर रही हैं।
यह सूत्र कहता है कि प्रसन्न रह, और ध्यान रख कि अगर तू उदास हुआ, तो तेरे आसपास ऐसी ल्हामयी आत्माएं हैं, जो उदासी के क्षण में तुझे पकड़ ले सकती हैं और तुझसे ऐसे काम करवा सकती हैं, जो तूने स्वयं खुद कभी न किए होते। आपको कई बार ऐसा लगता है कि यह काम मैं नहीं करना चाहता था; फिर भी किया। यह मेरी मरजी न थी, तय भी किया था कि नहीं करूंगा; फिर भी किया। और कई बार ऐसा भी होता है कि आप कोई अच्छा काम करना बिल्कुल पक्का कर लेते हैं और फिर ऐन वक्त पर बदल जाते हैं।
एक महिला कल सांझ मेरे पास पहुंची; रो रही थी। बहुत भाव में थी। संन्यास लेना था। मैंने उसे कहा, कल; कल दोपहर। आज वह पहुंची, वह बोली कि मैं महीने भर से तैयार हूं संन्यास लेने को, और कल तो बहुत भाव में थी। लेकिन जैसे ही आपने कहा, कल आकर ले लेना, न मालूम क्या हुआ, मेरा भाव ही चला गया। मुझे संन्यास अब नहीं लेना है। और रो रही है अभी भी, और कह रही है कि मैं लेना चाहती हूं और लेने की बहुत तैयारी है और बहुत दिन से प्रतीक्षा है। और पता नहीं क्या हो गया है मेरे भीतर कि अब मैंहिम्मत ही नहीं जुट रही है लेने की। और साथ में उसे यह भी लगता है कि लेना है। और नहीं ले पा
रही है, इसलिए रो भी रही है।
हमें ख्याल में नहीं है, हमारे चारों तरफ विचार का एक विराट जगत है, उसमें आत्माएं भी हैं, उसमें विचारों के पुंज भी हैं। उनको हम किन्हीं क्षणों में पकड़ लेते हैं और आविष्ट हो जाते हैं। और उस आवेश में फिर हम जो करते हैं, वह हमारा किया हुआ नहीं है। शुभ विचार भी हम पकड़ते हैं, शुभ आत्माएं भी हमें सहारा देती हैं। अशुभ विचार भी पकड़ते हैं, अशुभ आत्माएं भी बाधा डालती हैं।
लेकिन जो अति प्रसन्न है, इस नियम को समझ लेना, वह सुरक्षित है। जो उदास है, वह असुरक्षित है। उदासी के क्षण में उपद्रवी आत्माएं, उपद्रवी विचार पकड़ लेते हैं। प्रसन्नता और आनंद के अहोभाव में, जो श्रेष्ठ है, उससे संबंध जुड़ता है। जो सदा आनंदित रहने की कोशिश करे, उसे इस जगत की जितनी दिव्य शक्तियां है, उन सभी का सहयोग मिल जाता है। जो सदा उदास बना रहे, इस जगत में जो भी मूढ़तापूर्ण है, जो भी भारी वजनी और पथरीला है, सबका उसके साथ सत्संग हो जाता है।
जब आप उदास बैठते हैं, तब आपके चारों तरफ उदास चेतनाओं की एक जमात बैठी है, जो आपको दिखाई नहीं पड़ती है। जब आप आनंदित होते हैं, तब आपके चारों तरफ कुछ आनंदित चेतनाएं नाच रही हैं, जो आपको दिखाई नहीं पड़तीं। आप अपने आसपास एक वर्तुल निर्मित कर रहे हैं।
ध्यान रहे, साधक सदा प्रसन्न रहे, न हो परिस्थिति प्रसन्न होने की, तो
भी कोई कारण खोज ले, और प्रसन्न रहे। प्रसन्नता को सूत्र बना ले।
"दृढ़ बन। अब तू मध्य द्वार के निकट आ रहा है, जो क्लेश का भी द्वार है, जिसमें दस हजार नागपाश हैं।"

अब तू करीब आ रहा है यात्रा के मध्य बिंदु पर। और मध्य बिंदु आखिरी बिंदु है। अगर तू उस पार हो गया, तो दूसरे छोर पर जाना आसान हो जाएगा। और मध्य बिंदु अटकाव बन गया, तो तू वापस गिर सकता है। और इस मध्य बिंदु पर दस हजार नागपाश हैं। दस हजार उलझनें खड़ी होंगी। दस हजार उपद्रव खड़े होंगे। जितने उपद्रव तूने किए हैं अनंत-अनंत जन्मों में, सब तुझे पकड़ेंगे और वापिस बुला लेना चाहेंगे। जिन-जिनका तूने साथ किया हो, जिन-जिन नासमझियों का, वे सब नासमझियां एक बार आखिरी कोशिश करेंगी कि लौट आओ; इतने पुराने संगी-साथी, कहां जाते हो?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम इतने अशांत तब न थे, जब ध्यान न करते थे। अब ध्यान करते हैं, तो शांति भी बढ़ रही है और बड़ी अशांति भी मालूम पड़ती है। वह अशांति आपकी पुरानी संगी-साथिन है।
यहां भी किसी को डायवोर्स करना हो, तलाक देना हो, तो बड़ी मुसीबतें आती हैं। उस भीतर के लोक में तो तलाक और मुश्किल हो जाता है, क्योंकि बहुत पुराने नाते-रिश्ते हैं, बहुत वायदे हैं आपके दिए हुए कि सदा तुम्हारा हूं, सदा तुम्हारे साथ रहूंगा। अब अचानक छोड़ने लगते हैं, तो फिर जोर से पकड़ लिए जाते हैं, ग्रंथियां कस जाती हैं। मध्यबिंदु पर दस हजार नागपाश प्रतीक्षा कर रहे हैं।
"ओ पूर्णता के साधक, अपने विचारों का स्वामी बन, यदि तुझे इसकी देहली पार करनी है।"
"और यदि तुझे अपने गंतव्य पर पहुंचना है, तो अमृत सत्य के खोजी, अपनी आत्मा का स्वामी बन।"
"उस एक शुद्ध प्रकाश पर अपनी दृष्टि को एकाग्र कर, जो प्रकाश सभी प्रभावों से मुक्त है। और अपनी स्वर्ण कुंजी का प्रयोग कर।"
"कठिन कर्म पूरा हो गया। तेरा श्रम पूर्ण हुआ। और वह विस्तृत पाताल जो तुझे निगलने को मुंह फैलाए था, लगभग पाट दिया गया है।"
अगर मध्य बिंदु पार हो गया, तो विशाल खाई, जो मुंह फैलाए थी, वह लगभग पाट दी गई है। मध्य-बिंदु के बाद पतन बहुत मुश्किल है। बहुत चेष्टा की जाए, तो ही हो सकता है। मध्य-बिंदु के पहले पतन बहुत आसान है। बहुत चेष्टा की जाए, तो ही बच सकता है। मध्य-बिंदु के बाद पतन बहुत मुश्किल है। अगर आप बहुत प्रयास ही करें, तो ही वापस गिर सकते हैं। अन्यथा अपने आप मध्य-बिंदु के बाद कोई वापस नहीं गिरता है। मध्य-बिंदु के बाद नया लोक खुल जाता है। पुराने संगी-साथी छूट जाते हैं। एक अति से अब आप दूसरी अति में प्रवेश करते हैं। इस मध्य-बिंदु को पार करने के लिए शरीर के स्वामी बनें, पहली बात। फिर विचार के स्वामी बनें, दूसरी बात। फिर आत्मा के स्वामी बनें, यह तीसरी बात।
शरीर से शुरू करें; क्योंकि उसकी ही मालकियत न हो सके, तो फिर मन की मालकियत न हो सकेगी। मन की मालकियत न हो सके, तो फिर आत्मा की भी न हो सकेगी। शरीर--मैंने कहा कि उसको जीतें। फिर जिस दिन आपको लगे कि अब शरीर पर मालकियत हो गई, उस दिन से मन पर भी वही प्रयोग शुरू कर दें। मन में एक विचार आए कि क्रोध करना है, तो कह दें कि क्रोध नहीं करना है, मन चुप हो जा। फिर अड़े रहें अपने वचन पर, फिर मन कितनी ही कोशिश करे, दूर खड़े रहें, देखते रहें, क्रोध न करें। आज नहीं कल आप पाएंगे कि मन आपकी सुनने को राजी हो गया। और जब आप कहेंगे कि नहीं करना है क्रोध तो क्रोध का भाव तत्क्षण विसर्जित हो जाएगा।
यह ऐसे ही घटता है, जैसे मेरा यह हाथ ऊपर है और मैं कहूं कि मुझे नहीं रखना है ऊपर हाथ, तो नीचे आ जाता है। यह हाथ मेरा है। अगर यह हाथ मैं कहूं कि नीचे आओ, और ऊपर ही अटका रहे, और मैं कितना ही कहूं कि नीचे आओ, और नीचे न आए, तो उसका मतलब हुआ कि हाथ मेरा नहीं है।
आप कहते हैं कि विचार आपके हैं। कहना नहीं चाहिए कि आपके हैं। क्योंकि आप एक विचार को बाहर करना चाहें, तो कर नहीं सकते। आप कहें कि यह विचार मेरे भीतर न आए, आपके वश में नहीं। आप कहें, न आए, तो और ज्यादा आता है। आप कहें कि मत सताओ मुझे, तो और सताता है। आप कहते हैं कि मैं क्रोध न करूंगा, तो और क्रोध से भर जाते हैं। विचार अभी मालिक है।

जो शरीर पर प्रयोग किया है, धीरे-धीरे वही प्रयोग मन पर भी करने का है। अगर आप साहसपूर्वक और प्रसन्न चित्तता से लगे रहें, तो मन के भी मालिक हो जाएंगे।
और तीसरी बात है आ इस संदर्भ में इस जगह आत्मा की मालकियत का मतलब इतना ही है कि आपके पूरे व्यक्तित्व की मालकियत शरीर, मन, आत्मा, ये तीनों, आपके पूरे व्यक्तित्व की जो समग्रता है, इस समग्रता की मालकियत। इस समग्र की भी आपकी ही आज्ञा से गति हो। और ऐसी स्थिति आ जाती है, जब आपकी ही आज्ञा से समग्र की गति होने लगती है। और अगर आप चाहें कि मैं इसी क्षण मर जाऊं, तो इसी क्षण मौत घट जाएगी; क्योंकि समग्र आपको मानता है। इस समग्र की मालकियत का उतना आसान सूत्र नहीं है, जितना शरीर और मन का है। लेकिन जो लोग शरीर और मन के मालिक हो जाते हैं, उनके लिए तत्क्षण आत्मा के सूत्र की कुंजी मिल जाती है कि अब वे आत्मा के लिए क्या करें। वह उनको स्वयं दिखाई पड़ जाता है। जो शरीर के लिए किया, वह बाहर था; जो मन के लिए किया, वह बीच में था; अब आत्मा के लिए वही करना है, जो बहुत गहरे में है। आत्मा के लिए करने का सार अर्थ है कि अस्तित्व भी आपकी आज्ञा मानने लगे।
अभी क्या है?
अभी आप अगर कहें कि कोई हर्जा नहीं अगर मौत आए, तो मैं स्वीकार कर लूंगा, लेकिन आपका अस्तित्व भीतर कहता है नहीं, स्वीकार नहीं करेंगे, कैसे मर सकते हैं? नहीं मरना चाहते हैं, तो मालकियत उस पर आपकी नहीं है। पर शरीर और मन की यात्रा ठीक हो जाए, तो उसी सूत्र को सूम में भीतर प्रयोग करने से अस्तित्व की भी मालकियत उपलब्ध होती है।
इस मालकियत के होते ही आपको वह प्रकाश की किरण दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है, जो आप हैं। फिर उस पर ही दृष्टि को एकाग्र करें, और उस किरण की धारा में ही अपने को छोड़ दें। वह किरण ही आपका जीवन-गुरु है। इस किरण को नाव बना लें। और वह नाव परमात्मा की तरफ चलनी शुरू हो जाएगी।

समाधि के सप्त द्वार
दसवां प्रवचन

आगे बढ़

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; 14 फरवरी, 1973

अब तू उस खाई को पार कर चुका है, जो मानवीय वासनाओं के द्वार को घेर कर खड़ी है। अब तू "काम" और उसकी दुदात सेना पर विजय पा चुका है।
तूने अपने हृदय से अशुद्धियों को निकाल दिया है और कलुषपूर्ण वासनाओं
से अब वह मुक्त है। लेकिन ओ गौरवशाली योद्धा, तेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ है। ओ शिष्य (लानू) पवित्र-द्वीप को घेरने वाली दीवार को ऊंचा उठा। यही वह बांध होगा जो तेरे मन की उस मद और संतुष्टि से रक्षा करेगा, जो बड़ी उपलब्धि के विचार से उत्पन्न होती है।
अहंकार का भाव काम को बिगाड़ कर धर देगा, अतः मजबूत बांध बना, नहीं तो कहीं लड़ाकू लहरों की भयानक बाढ़ जो महा संसार के माया के समुद्र से आकर इसके किनारों पर चढ़ाई और चोट करती है, यात्री और उसके द्वीप को ही न निगल जाए। हां यह तब भी घटित हो सकता है, जब विजय उपलब्ध हो गई हो।
तेरा द्वीप हिरण है और तेरे विचार कुत्ते हैं, जो जीवन की ओर उसकी यात्रा का पीछा कर उसकी प्रगति को अवरुद्ध करते हैं। उस हिरण के लिए शोक है, जिसे भूंकते कुत्ते उसके ध्यानमार्ग नाम की शरणस्थली पर पहुंचने के पहले ही पराजित कर देते हैं।
हे सुख-दुख के विजेता, इसके पहले कि तू ध्यान-मार्ग में स्थित हो और उसे अपना कहे, तेरी आत्मा को पके आम के जैसा होना है। दूसरे के दुखों के लिए उसके चमकदार व सुनहरे गूदे की तरह और अपनी पीड़ा व शोक के लिए उसकी पथरीली गुठली की तरह।
अहंकार के नागपाश से बचने के लिए अपनी आत्मा को कठोर बना, उसे वज्र आत्मा नाम पाने के योग्य बना।
क्योंकि जिस प्रकार धरती के धड़कते हृदय की गहराई में गड़ा हीरा धरती
के प्रकाशों को प्रतिबिंबित नहीं कर पाता है, उसी प्रकार का तेरा मन और आत्मा है, ध्यान-मार्ग में डूब कर उसे भी माया के जगत की भ्रांति-भरी शून्यता को प्रतिबिंबित नहीं करना चाहिए।

मनुष्य की सारी वासनाओं के मूल में कामवासना है।
वासना का रूप कोई भी हो, गहरे में खोजेंगे तो काम को ही पाएंगे।
हिंदुओं ने तो जगत के सृजन में ही काम को मूल माना है; सारी सृष्टि कामवासना का ही फैलाव है। चाहे कोई धन चाहता हो, चाहे कोई पद चाहता हो, चाह मात्र अपने मौलिक रूप में कामना है, कामवासना है। धन भी इसलिए चाहा जाता है, पद भी इसलिए चाहा जाता है। ये प्रकारांतर से अलग-अलग द्वारों से एक ही वासना की तरफ ले जाते हैं। तो जिसने कामवासना पर विजय पा ली, उसने सभी वासनाओं पर विजय पा ली।
कामवासना क्या है?
अगर हम वैज्ञानिकों से पूछें तो वे कहते हैं, आदमी के जीवन में दो बातें बहुत आधारभूत हैं। एक तो जीवन बचना चाहता है, सरवाइव करना चाहता है, जीवन नष्ट नहीं होना चाहता है, जीवेषणा है। मैं जीऊं अकारण, इसका कोई कारण नहीं है। अगर कोई आपसे पूछे, आप क्यों जीना चाहते हैं, तो आप कोई कारण नहीं बता सकेंगे। जीना चाहते हैं, यह अकारण है, बस ऐसा है। यह वैसे ही अकारण है जैसे सौ डिग्री पर पानी गरम हो कर भाप बन जाता है। अगर हम पूछें कि क्यों सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है, नब्बे डिग्री पर बनने में क्या अड़चन थी, या एक सौ दस डिग्री पर बनता, तो क्या हर्जा हो जाता? अगर हम वैज्ञानिक से पूछें कि हाईडरेजन आक्सीजन से मिल कर ही पानी क्यों बनता है? कोई उत्तर नहीं है। बनता है, क्यों का कोई सवाल ही नहीं है। ठीक ऐसे ही जीवन जीना चाहता है, क्यों का कोई सवाल नहीं है। जो भी है वह मिटना नहीं चाहता है। होने में ही बने रहने की कामना छिपी है।

इस कामना के दो रूप हो जाते हैं। आप भी होना चाहते हैं, रहना चाहते हैं, बचना चाहते हैं, अमरत्व की आकांक्षा है। न मिटें, ऐसा गहरे में छिपा है, इसलिए आदमी सब तरह से अपनी सुरक्षा करता है। लेकिन व्यक्ति की मृत्यु तो होगी। कितना ही उपाय हो, कितनी ही सुरक्षा हो, व्यक्ति मरेगा। क्योंकि व्यक्ति का जन्म होता है।
लेकिन व्यक्ति के भीतर जो जीवन है, वह बच सकता है। आपकी लहर मरेगी, लेकिन आपके भीतर जो सागर है जीवन का, वह बच सकता है। कामवासना उसी जीवन की बचने की चेष्टा है। आप मिट जाएंगे, लेकिन आपके भीतर से जीवन निकल कर नये रूप ले लेगा। और इसके पहले कि आप मिटें, आपके भीतर जो जीवन की धारा छिपी है, वह नये शरीर खोज लेगी। आप खो जाएंगे, लेकिन आपका कुछ मौलिक अस्तित्व का हिस्सा, आपकी जीवन-धारा का कोई अंश आपके बच्चों में, बच्चों के बच्चों में यात्रा करता रहेगा।
कामवासना जीवन को हर हालत में बचाने की आकांक्षा का हिस्सा है।
ऐसा मनुष्य में ही है, ऐसा नहीं है, समस्त जीवन में है। वृक्ष भी अपने बीजों को सुरक्षित भूमि तक पहुंचाने की कोशिश करता है। अगर आप वृक्षों का अध्ययन करें, तो चकित हो जाएंगे। बड़े वृक्ष अपने बीजों को अपने से दूर पहुंचाने की कोशिश करते हैं। क्योंकि अगर बीज वृक्ष के नीचे ही गिर जाएं, तो बड़े वृक्ष के नीचे उनके अंकुरित होने का उपाय नहीं, उसकी छाया में ही मर जाएंगे।
आपने सेमर का फूल देखा है? आपने कभी सोचा न होगा कि बीज में सेमर की रूई क्यों चिपकी होती है? उस वृक्ष की कोशिश है कि रूई के कारण हवा के झोंके में बीज दूर चला जाए। नीचे गिरेगा, तो नष्ट हो जाएगा। बीज को दूर पहुंचाने की कोशिश है, वह जो सेमर की रूई है। बीज खुद न उड़ सकेगा, रूई के सहारे उड़ जाएगा, दूर गिरेगा कहीं जा कर, जहां अंकुरित हो सकेगा। और इसलिए एक वृक्ष करोड़ों बीज पैदा करता है कि एक व्यर्थ चला जाएगा, दो व्यर्थ चले जाएंगे, लेकिन करोड़ों बीजों में से अगर एक भी अंकुरित हो गया, तो जीवन पल्लवित होता रहेगा।
मैं एक मछली की जाति के संबंध में अभी पढ़ रहा था, उस मछली का जीवन बहुत थोड़ा है, लेकिन अपने जीवन में वह मछली दस करोड़ अंडे देती है। दस करोड़ अंडे! और मछली के अंडों का जीवन बड़ा संकटपूर्ण है। दस करोड़ अंडों में से दो ही मछलियां पैदा हो पाती हैं।
आदमी के भीतर भी इतने ही बीज पैदा होते हैं। एक पुरुष चार-पांच अरब बच्चों को जन्म दे सकता है। एक संभोग में लाखों जीवाणु उपयोग में आते हैं, जो सभी जीवन बन सकते थे। लेकिन जीवन में आपके दस-पांच बच्चे ज्यादा से ज्यादा पैदा हो जाएंगे।
जीवशास्त्री कहते हैं कि जीवन बचने की आकांक्षा के कारण कोई भी अवसर खोना नहीं चाहता है। और इतने विपुलता से अपने को फैलाता है कि अगर हजारों- लाखों मिल कर भी व्यर्थ चले जाएं, तो भी जीवन बचा रहे। जीवन की बचने की यह आकांक्षा ही आपको कामवासना जैसी मालूम पड़ती है। यह गहरी से गहरी है, इससे ही आप जन्मे हैं, इससे ही जीवन आपसे जन्मने के लिए आतुर भी है। कामवासना के द्वार से जीवन में आपने प्रवेश किया है। और इसके पहले कि आपकी देह व्यर्थ हो जाए, वह जीवन जो आपने आवास बनाया था, नये आवास बनाने की कोशिश करता है। इसलिए कामवासना उद्दाम है। कितना ही उपाय करें, वह मन को पकड़ लेती है। वह आपसे बड़ी मालूम पड़ती है; आपके सब संकल्प, ब्रह्मचर्य के नियम, आपकी सब कसमें, सब प्रतिज्ञाएं पड़ी रह जाती हैं। और कामवासना जब वेग पकड़ती है, तो आप पाते हैं कि आविष्ट हो गए, कोई बड़ी धारा आपको खींचे लिए जा रही है, और आप बहे जाते हैं। इतनी मौलिक है कामवासना।
और समस्त अध्यात्म की खोज इस कामवासना के रूपांतरण में है, क्योंकि
यह जो जीवन की धारा अगर बाहर की तरफ बहती रहे तो नई देह, नये शरीर पैदा होते रहेंगे। यही जीवन की धारा अगर अपने पर लौट आए, तो आपका परम जीवन उपलब्ध हो जाएगा। इस जीवन-धारा के दो उपयोग हैं, जैविक बायोलॉजी के अर्थों में संतति, अध्यात्म के अर्थों में आत्मा। इससे शरीर भी पैदा हो सकते हैं, अगर यह बाहर जाए। और इससे आपकी आत्मा की किरण भी निखरकर प्रकट हो सकती है, अगर

यह भीतर आए। यही धारा बाहर जाकर नये शरीरों का जन्म बनती है; यह धारा भीतर जाकर आपका नया जन्म बनती है।
जिस व्यक्ति की कामवासना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है, अंतर्मुखी हो जाती है, वह द्विज हो जाता है; उसका नया जन्म हो गया। एक जन्म तो मिलता है मां- बाप से, वह शरीर का जन्म है। और एक जन्म आपको स्वयं अपने को देना पड़ता है, वह आत्मा का जन्म है। इसलिए समस्त धर्म कामवासना के प्रति उत्सुक हैं। क्योंकि वही मूल शक्ति है, जिसका उपयोग किया जाना चाहिए। अगर आप संतति के निर्माण में ही लगे रहें, तो जिस शक्ति से आपका पुनर्जन्म हो सकता था, नव-जन्म हो सकता था और जिससे आप उसका अनुभव कर सकते थे, जो अमृत है, उससे आप वंचित हो जाएंगे। अनेक-अनेक जन्मों में आप भटकते रह सकते हैं। जिस दिन यह धारा भीतर मुड़ जाएगी, उसी दिन देह में भटकना बंद हो जाएगा। इसको हमने आवागमन से मुक्ति कहा है। और जब तक यह धारा बाहर चलती रहती है, तब तक आपको बाहर भटकना ही पड़ेगा।
अति कठिन है इस धारा को भीतर की तरफ मोड़ना, लेकिन असंभव नहीं है। और कठिनाई भी नासमझी की वजह से है। समझपूर्वक इस धारा को भीतर ले जाया जा सकता है। जीवन की सभी शक्तियां समझपूर्वक काम में आ जाती हैं।
आज से पहले, इस सदी के पूर्व भी आकाश में बिजली चमकती थी, लेकिन आदमी
के लिए सिर्फ भय का कारण था, डर पैदा होता था। उसकी कड़क, उसकी चमक, गरमाहट, छाती को डांवांडोल कर जाती थी। आदमी सोचता था कि परमात्मा नाराज है, और हमसे कोई पाप, कोई भूल हुई है; इसलिए वह बिजली कड़का कर हमें डरा रहा है। इंद्र का व्रज, इंद्र का शस्त्र समझी जाती थी। फिर हम बिजली को समझ पाए कि वह क्या है। हमने उस शक्ति के राज को समझ लिया। आज उसी बिजली से कोई भय नहीं रहा। आज वही बिजली बंधी हुई घर घर में प्रकाश दे रही है; आज वही बिजली बंधी हुई हजारों यंत्र चला रही है। आज वही बिजली जीवन की सहयोगी हो गई है। ज्ञान विजय है, अज्ञान पराजय है।
अज्ञान में शक्ति से डर लगता है; ज्ञान में वही शक्ति सहयोगी और सेवक
हो जाती है। जैसे आकाश में कौंधती बिजली कभी हमें डराती थी, वैसे ही कौंधती कामवासना की शक्ति भी हमें डराती है, भयभीत करती है। क्योंकि हम अभी भी उस संबंध में अज्ञानी हैं। उस भीतर की विद्युत के संबंध में हम अभी भी अज्ञानी हैं। ऐसा नहीं है कि उसके सूत्र नहीं जान लिए गए हैं, और ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने उस भीतर की विद्युत को नहीं बांध लिया और ऐसा भी नहीं है कि उस विद्युत को बांध कर लोगों ने उस विद्युत से भीतर के जगत में सेवा नहीं ले ली। और जैसे बाहर की विद्युत बांधकर हमने बाहर प्रकाश कर लिया, वैसे ही उस भीतर की विद्युत को बांध कर भी भीतर प्रकाश कर लिया गया है। लेकिन एक कठिनाई है। बाहर का विज्ञान सामूहिक संपत्ति बन जाता है; एक बार जान लिया गया कि बिजली को कैसे पैदा किया जाए, जान लिया गया कि बिजली से कैसे उपयोग लिया
जाए, तो फिर हर आदमी को खोजना नहीं पड़ता। सूत्र जाहिर हो गए; उनकी शिक्षा दी जा सकती है। तो हर आदमी को एडीसन होने की जरूरत नहीं है। फिर एक साधारण सा इंजीनियर भी सभी काम कर देता है। वह कोई एडीसन नहीं है, उसने कुछ खोजा नहीं है, उसका कोई बड़ा ज्ञान भी नहीं है, लेकिन जानकारी है। फिर एक टेक्नीशियन जो कि इंजीनियर भी नहीं है, वह बिजली का काम कर देता है। उसे कुछ भी पता नहीं कि बिजली क्या है, पर उसे इतना पता है कि उसका कैसे उपयोग किया जाए।
लेकिन भीतर के विज्ञान के साथ एक कठिनाई है। नियम खोज लिए जाएं, तो भी सार्वजनिक नहीं हो पाते। हो नहीं सकते। उनका स्वभाव ऐसा है। बुद्ध को पता है, कृष्ण को पता है, महावीर को पता है कि भीतर की यह जो विद्युत-धारा है-- काम-ऊर्जा, सेक्स-एनर्जी--वह कैसे बांधी जाए, कैसे इसकी धारा बदली जाए, कैसे इसे बहाया जाए अपने अनुकूल, कैसे इससे भीतर प्रकाश पैदा किया जाए; कैसे भीतर की शुद्धि में इसका उपयोग किया जाए, कैसे भीतर के जीवन को पाने के लिए यह मार्ग बन जाए। सब इन्हें पता है, और वे कहते हैं, लेकिन फिर भी आप इंजीनियर या टेक्नीशियन की तरह उसका उपयोग नहीं कर पाते।

भीतर के विज्ञान के संबंध में एक मौलिक बात है कि फिर उसमें आपको एडीसन बनना पड़ेगा, बुद्ध बनना पड़ेगा, क्राइस्ट बनना पड़ेगा। उसके पहले आप उसका उपयोग न कर सकेंगे, क्योंकि वह आपके भीतर की घटना है, मात्र सूचना और जानकारी से कुछ भी न होगा। अनुभव ही वहां मार्ग बनेगा।
संसार के संबंध में सूचना काफी है; अध्यात्म के संबंध में अनुभव जरूरी है।
संसार के संबंध में जो भी हम जानते हैं, उसकी प्रयोगशालाएं बाहर हो सकती हैं। अध्यात्म के संबंध में आप ही प्रयोगशाला हैं।
और भी जटिलता है--आप ही हैं प्रयोग करनेवाले, आप ही हैं प्रयोगशाला।
आप ही हैं उपकरण प्रयोग के, आप ही हैं शक्ति जिस पर प्रयोग होना है। और आप ही हैं जो अंततः इस प्रयोग से रूपांतरित होंगे। वहां आपके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। इसलिए जटिलता बढ़ जाती है।
जैसे एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता हो, तो पत्थर अलग होता है, जिस पर मूर्ति बनानी है; छेनी अलग होती है, जिससे मूर्ति बनानी है; मूर्तिकार अलग होता है, जिसको मूर्ति बनानी है; खरीददार अलग होता है, जो मूर्ति खरीदेगा। अध्यात्म की इस मूर्तिकला में आप ही सब कुछ हैं। आप ही हैं पत्थर, जिसकी मूर्ति बननी है; आप ही हैं छेनी, जिससे मूर्ति बनाई जानी है; आप ही हैं कलाकार, जिसको मूर्ति बनानी है, और आप ही हैं ग्राहक, खरीददार। वहां सब कुछ आप हैं। इसलिए जटिलता बढ़ जाती है, उलझन गहरी हो जाती है।
लेकिन क्योंकि मूर्तियां बन गई हैं, तो ही हमने बुद्धों को देखा और जाना है। और जो एक में हो सकता है, वह सभी में हो सकता है। इस सूत्र को इस दृष्टि से समझने की कोशिश करें। और ख्याल रखें कि काम-ऊर्जा की समझ ही उसकी विजय है, लड़ने से नहीं जीतेंगे, जानने से जीतेंगे। लड़ते नासमझ हैं, समझदार लड़ते नहीं हैं, वे समझने की कोशिश करते हैं। जितना जान लेते हैं वे, उतने ही मालिक हो जाते हैं।
बेकन ने कहा है, ज्ञान शक्ति है। विज्ञान के लिए उसने यह कहा था। लेकिन अध्यात्म के लिए भी यह सत्य है। ज्ञान शक्ति है। जिस शक्ति को आप जानते नहीं, उससे आप परेशान होंगे। और अनजान में जो भी करेंगे, उससे और जटिलताएं बढ़ जाएंगी। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो काम-ऊर्जा के संबंध में कुछ न कुछ न करता हो। बिल्कुल मुश्किल है। बुरे से बुरा आदमी भी, अनैतिक आदमी भी, कामुक आदमी भी कामवासना के संबंध में कुछ न कुछ करता रहता है। रोकने की कोशिश करता है, संभालने की कोशिश करता है। इस सारी कोशिश में वासना विकृत हो जाती है। सुधरती नहीं, बदलती नहीं, और कुरूप हो जाती है। सारी दुनिया कुरूप कामवासना से भरी है। हजारों रूपों में कामवासना विकृत रोगों का रूप लेती है। यह नासमझों द्वारा किए गए काम हैं। ऐसा है, जैसा बिजली के संबंध में कुछ भी न जानता हो, वह बिजली के किसी उपकरण को सुधारने में लग जाए। उससे आशा है कि और बिगाड़ देगा। अच्छा हो छुओ ही मत, जब तक समझ न लो। ठीक समझ के ही भीतर चलना, अन्यथा जिस शक्ति से आत्मा का जन्म हो सकता था, उससे आत्मघात भी हो सकता है। और बहुत लोग आत्मघाती हो जाते हैं। अगर हम लोगों की मानसिक विकृतियों का अध्ययन करें, तो हम पाएंगे उनके मूल में कामवासना के साथ किया गया अज्ञानपूर्ण कार्य है।
फ्रायड के गहरे अध्ययन ने यह बात जाहिर कर दी है कि आदमी की मन की बीमारियों में सौ बीमारियों में निन्यानबे बीमारियों के मामले में कामवासना की विकृति है। उस ऊर्जा के साथ कभी भूल हो जाती है, और तब तक सब नष्ट हो जाता है। हजार तरह के पागलपन हैं, हजार तरह के मानसिक रोग हैं, हजार तरह की मानसिक चिंताएं हैं। उनके रूप कुछ भी हों, उनके गहरे में कामवासना होगी। और कामवासना इसलिए उनके गहरे में होती है कि आपने कुछ करने की कोशिश की है उस यंत्र के संबंध में, जिसका आपको कोई भी पता नहीं। और कामवासना जीवन का आधार है, इसलिए बहुत गहरी होनी चाहिए उसकी जानकारी, उसकी समझ, उसका अनुभव।
तीन बातें स्मरण रखें, फिर हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
पहली, स्वाभाविक कामवासना को अस्वाभाविक मत होने देना। जो स्वाभाविक है, उसे स्वीकार करना। अस्वीकार करने से, वह अस्वाभाविक हो जाएगी।

अस्वाभाविक करने से उसके विकृत परवर्टेड रूप पैदा हो जाएंगे। स्वाभाविक कामवासना को बदलना आसान है, अस्वाभाविक को बदलना बहुत कठिन है।
समझें इसे ऐसा कि एक पुरुष एक स्त्री में आकर्षित होता है, यह स्वाभाविक है। इस कामवासना को बदलना आसान है। लेकिन सारी दुनिया में होमो-सेक्सुअलिटी है कि एक पुरुष एक पुरुष में उत्सुक हो जाता है या एक स्त्री एक स्त्री में उत्सुक हो जाती है! इस कामवासना को बदलना कठिन है। यह विकृत है, यह अस्वाभाविक है, इसकी बदलाहट बहुत मुश्किल है। हेटरे- सेक्सुअलिटी को बदलना आसान है; क्योंकि स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। होमो-सेक्सुअलिटी को बदलना अति कठिन है; क्योंकि अप्राकृतिक है। इस तरह के हजार-हजार रूप आदमी को पकड़े हुए हैं।
एक आदमी जिसे प्रेम करता है, उसको पास लेना चाहता है, निकट लेना चाहता है; स्वाभाविक है। इस स्वाभाविक वासना को बदलना आसान है। लेकिन एक आदमी किसी को प्रेम नहीं करता, किसी को निकट नहीं लेना चाहता, लेकिन भीड़-भड़क्के में अगर स्त्री मिल जाए, तो धक्का मार कर नदारत हो जाता है; इस आदमी की कामवासना को बदलना बहुत मुश्किल है। यह विकृत है, यह स्वाभाविक नहीं है। जिससे प्रेम है, उसे निकट लेना स्वाभाविक है। लेकिन जिससे प्रेम नहीं है, उसको धक्का मारकर भीड़ में चले जाना रोग है। इसकी बदलाहट जरा मुश्किल पड़ेगी। और इसकी बदलाहट के लिए अड़चनें हो जाएंगी। लेकिन एक आदमी क्यों किसी स्त्री को भीड़ में धक्का मारने में उत्सुक हो जाता है? शायद किसी स्त्री को पास लेने का जो मन था, वह उसने दबा लिया है, रोक लिया; वह दबा हुआ झरना कहीं से भी फूट कर बह रहा है। तो पहली बात तो यह ख्याल रखना कि स्वाभाविक कामवासना ठीक है, उससे आगे की यात्रा सीधी है; अस्वाभाविक कामवासना खतरनाक है, उससे सावधान रहना, उससे बचना।
दूसरी बात ख्याल रखना कि स्वाभाविक कामवासना को सिर्फ भोगना ही मत, भोग के साथ-साथ उस पर ध्यान भी करना। क्योंकि वासना में दंश नहीं है; मूर्छित वासना में दंश है। अगर आपको लगता है कि मन को काम पकड़ता है, तो भोग में उतरना; लेकिन होशपूर्वक उतरना। ध्यान रखना
क्या हो रहा है, ध्यान रखना क्या मिल रहा है, ध्यान रखना कि कौन से सुख की, कौन से आनंद की, कौन सी शांति की उपलब्धि हो रही है। ध्यानपूर्वक भोग में उतरना, ताकि भोग के गहरे रहस्य आपके ध्यान में समाविष्ट हो जाएं। वही आपकी समझ बनेगी।
और तीसरी बात--इस बात की खोज जारी रखना जो सुख या शांति की झलक मिलती है, वह वस्तुतः कामवासना के कारण मिलती है या कारण कोई और है?
स्वाभाविक वासना हो, ध्यानपूर्वक वासना हो, तो यह तीसरी बात भी समझने में आपको ज्यादा देर नहीं लगेगी, और पता चल जाएगी कि कामवासना के कारण सुख और आनंद की प्रतीति नहीं होती। इसको जो जानते हैं, उन्होंने काकतालीय न्याय कहा है। काकतालीय न्याय का मतलब होता है कि आप एक वृक्ष के नीच बैठे हैं और एक कौवे ने आवाज दी, कौवे की आवाज के साथ संयोग की बात वृक्ष से एक फल टपक कर आपके पास गिर गया, तो आपने समझा कि कौवे की आवाज के कारण फल गिरा। यह काकतालीय न्याय है। कोई कौवे की आवाज से फल नहीं गिरा। कौवे की आवाज से फल के गिरने का कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। लेकिन जटिलता और बढ़ जाएगी कि जब भी आप कौवे की आवाज सुनें, तभी अगर फल गिरे। तब बहुत मुश्किल हो जाएगी। आपने सुनी होगी उस बुढ़िया औरत की कहानी, जिसके मुर्गे के बांग देने से रोज सुबह सूरज उगता था। एक दिन की बात हो, तो संयोग भी मान लें; वर्षों का अनुभव है कि जब भी मुर्गा बांग देता है, सूरज उगता है। स्वभावतः उस बूढ़ी औरत ने मान रखा था कि मेरा मुर्गा जिस दिन बांग न देगा, उस दिन सूरज न उगेगा। गांव से झगड़ा हो गया, तो उसने कहा कि अच्छा ठहरो, तुम्हें मैं मजा चखाती हूं। मैं अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली जाती हूं; तब तुम्हें पता चलेगा, जब अंधेरे में भटकोगे और तड़पोगे, और जब सूरज नहीं उगेगा। तो वह बूढ़ी औरत अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव में चली गई। और जब मुर्गे ने दूसरे गांव में बांग दी, सूरज उगा, तो उसने कहा अब समझेंगे नासमझ लोग। उस गांव की क्या हालत रही होगी? सूरज तो यहां उग गया। जहां मेरा मुर्गा, वहां सूरज का उगना होगा। यह काकतालीय न्याय है।

कामवासना के संबंध में यह हो रहा है। कामवासना से जो सुख मिलता है उससे इतना ही संबंध है, जितना मुर्गे की बांग में और सूरज के उगने में है। कामवासना से सुख नहीं मिलता है, न मुर्गे की आवाज से सूरज उगता है। लेकिन कोई और गहरे कारण से सुख की प्रतीति होती है। उसका आपको पता हो जाए, तो फिर यह भ्रांति टूट जाएगी कि मुर्गे की आवाज से सूरज उग रहा है। और फिर सूरज उगाने के लिए मुर्गे की आवाज पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है। फिर सूरज आपका मुर्गे की आवाज के बिना भी उग सकता है।
काम की तृप्ति में जो सुख मिलता है, उसका मौलिक कारण काम नहीं है; उसका मौलिक कारण ध्यान है, समाधि है। कामवासना के शिखर पर एक क्षण को मन शून्य हो जाता है। इस शून्य होने के कारण आपको सुख की झलक मिलती है। शून्य हो जाता है? आप कामवासना में इतने तल्लीन हो जाते हैं; काम-कृत्य में और क्रीड़ा में इतने तल्लीन हो जाते हैं, जितने आप किसी में तल्लीन नहीं होते। उस तल्लीनता के कारण मन शांत हो जाता है। मन के शांत होने के कारण सुख की झलक मिल जाती है। अगर आप किसी और काम में भी इतने ही तल्लीन हो जाएं, तो आप पर कामवासना की पकड़ छूट जाएगी। इसलिए जो लोग स्रष्टा हैं जो कुछ सृजन कर सकते हैं, उनको कामवासना ज्यादा नहीं पकड़ती। इसलिए स्रष्टा पुरुषों के साथ स्त्रियां कभी प्रसन्न नहीं होतीं।
सुकरात है, तो उसकी स्त्री सुकरात से प्रसन्न नहीं होती है। हो नहीं सकती क्योंकि सुकरात इतना लीन हो जाता है दर्शन के चिंतन में कि कामवासना उसकी क्षीण हो गई है। उसी लीनता से उसे वह सुख मिल जाता है, जो कामवासना से उसे मिलता है।
एक चित्रकार अपने चित्र बनाने में अगर लीन हो जाए, तो उसके मन को कामवासना नहीं पकड़ती। एक मूर्तिकार अपनी मूर्ति को बनाने में लीन हो जाए, तो उसकी कामवासना क्षीण हो जाती है। इस क्षीण होने का कारण यह नहीं कि वह कोई ब्रह्मचर्य साध रहा है। इसका कारण यह है कि उसका सूरज पुराने मुर्गे की बांग के बिना उगने लगा। वह जो क्षण आता था मौन का, काम के द्वारा, अब वह मूर्ति में ही निर्माण करने में आने लगा।
अगर आप अपने गीत में डूब जाएं, अपने नृत्य में डूब जाएं, अपने ध्यान में डूब जाएं, तो आपको पता चल गया कि सूरज के उगने का मुर्गे की बांग से कोई संबंध नहीं है। यह सूरज और तरह से भी उग सकता है।
ये तीन बातें ख्याल रखें--स्वाभाविक हो काम, ध्यानपूर्वक हो काम, और सतत यह खोज बनी रहे कि जो गहरे में शांति की प्रतीति होती है, वह कामवासना के कारण होती है या कारण कोई और है, जिसका हमें पता नहीं? जिस दिन आपको वह कारण साफ हो जाएगा, उस कारण का सीधा ही उपयोग किया जा सकता है। ध्यान, समाधि, योग सब उसी कारण पर खड़े हैं। योग ने उस कारण को खोज लिया है सीधा। इसलिए लोग कहते हैं कि जब तक आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होंगे, तब तक योगी न बन सकेंगे। और मैं कहता हूं कि जब तक आप योग को उपलब्ध न होंगे, ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं होगा। इसलिए मैं ब्रह्मचर्य को योग की शर्त नहीं बनाता; ब्रह्मचर्य को मैं योग का परिणाम कहता हूं। इसलिए मैं आपसे नहीं कहता हूं कि ध्यान अगर आपको करना है, तो पहले ब्रह्मचर्य साधो। जो कहते हैं, उन्हें पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं। मैं आपसे कहता हूं कि आप ध्यान साधो, ब्रह्मचर्य की चिंता मत करो।
जिस दिन ध्यान में आपको कामवासना से मिले सुख से गहन सुख का अनुभव होने लगेगा, उस दिन दुनिया की कोई भी ताकत आपको कामवासना में ले जाने की सामर्थ्य नहीं रखेगी। दुनिया में महत्तर सुख के लिए छोटे सुख छोड़े जा सकते हैं, बड़े आनंद के लिए छोटे आनंद छोड़े जा सकते हैं। लेकिन बड़े आनंद का कोई अनुभव होना चाहिए। आपके हाथ में कंकड़-पत्थर हैं। मैं आपसे कहूं कि छोड़ दो। कुछ तो है हाथ में, कंकड़-पत्थर ही सही। हाथ भरा है, तो ही तो अच्छा लगता है, खाली हाथ में बेचैनी होगी। आप छोड़ने को राजी न होंगे, और कंकड़-पत्थर रंगीन हैं और हीरों का ख्याल देते हैं। लेकिन अगर मैं एक हीरा आपके हाथ में रख दूं, तो आपको पता भी नहीं चलेगा कब आपके हाथ के कंकड़-पत्थर छूट गए, और कब आपने हीरे पर मुट्ठी बांध ली। और क्या फिर आप लोगों से कहते फिरेंगे कि मैं महात्यागी हूं, मैंने कंकड़-पत्थर छोड़ दिए? पता ही नहीं रहेगा आपको

कि आपने कंकड़-पत्थर छोड़े, वे छूट गए। ध्यान आपको उस हीरे को शुद्धता में दे देता है, जो कामवासना में--बड़ी मुश्किल से जिसकी झलक और बड़ी अशुद्ध झलक कभी-कभी मिलती है। वह शुद्धतम हीरा जब हाथ में हो जाता है, अशुद्धि की खोज बंद हो जाती है।
"अब तू उस खाई को पार कर चुका है, जो मानवीय वासनाओं के द्वार को घेर कर खड़ी है। अब तू "काम" और उसकी दुर्दान्त सेना पर विजय पा चुका है।"
"तूने अपने हृदय से अशुद्धियों को निकाल दिया है और कलुषपूर्ण वासनाओं से अब वह मुक्त है। लेकिन ओ गौरवशाली योद्धा, तेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ है। ओ शिष्य, पवित्र-द्वीप को घेरने वाली दीवाल को और ऊंचा उठा। यही वह बांध होगा, जो तेरे मन की उस मद और संतुष्टि से रक्षा करेगा, जो बड़ी उपलब्धि के विचार से उत्पन्न होती है।"
काम पर विजय पाना अति कठिन है। इसलिए जो विजय पा लेते हैं, वे बड़े मद
से भर जाते हैं। ब्रह्मचर्य का एक मद है। कामवासना का मद है। यह तो आपने सुना होगा कि कामवासना से भरा हुआ आदमी मूर्छित होता है, मदमस्त होता है। लेकिन क्या कभी आपने सुना कि ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है, तो कामवासना से भी बड़ा मद आदमी के मस्तिष्क को घेर लेता है। स्वभावतः इतनी कठिन है यह विजय कि जब मिलती है, तो आदमी नाच उठता है, झूम उठता है। एक बड़ी गहन, सूम अहंकार की भावना जगती है कि मैंने ब्रह्मचर्य पा लिया, कि मैंने कामवासना जीत ली, कि अब मैं विजेता हूं। और यह युद्ध सबसे बड़ा है।
महावीर ने कहा है, सारी पृथ्वी को जीत लेना आसान है, लेकिन इस भीतर की कामवासना को जीतना कठिन है। तो सिकंदर अगर अकड़ जाता हो दुनिया को जीत कर, जो कि इतना कठिन नहीं, तो ब्रह्मचारी को अकड़ नहीं आती होगी, जो सिकंदर से भी ज्यादा कठिन काम कर चुका है? दुनिया को जीतना तो रूपों को जीतना है। कामवासना को जीतना तो दुनिया के रूप जिस वासना से पैदा होते हैं, उस मूलस्रोत को जीत लेना है, दुनिया जिससे निर्मित होती है, उस शक्ति को जीत लेना है। निश्चित ही एक गहरा मद पकड़ लेता है।
और यह सूत्र कहता है कि कामवासना को तूने जीत लिया, लेकिन ध्यान रखना तेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ। अब तू एक खतरे के द्वार पर फिर खड़ा हो गया है, जहां यह विजय तेरा मद बन सकती है। अब तू इस द्वीप के आसपास, यह जो महासागर में छोटा-सा एक द्वीप निर्मित हो गया है तेरे ब्रह्मचर्य का--जगत तो कामवासना का सागर है, इसमें तूने एक छोटा सा द्वीप कर लिया, आइलैंड। लेकिन यह चारों तरफ जो सागर है, वह तेरे द्वीप को किसी भी क्षण डुबा दे सकता है। अगर तू मद से भर गया, तो यह सागर तेरे द्वीप को डुबा दे सकता है वापिस। इस पवित्र द्वीप को घेरने वाली दीवाल को उठाने में लग। अभी काम बाकी है। "यही वह बांध होगा, जो तेरे मन की उस मद और संतुष्टि से रक्षा करेगा, जो बड़ी उपलब्धि के विचार से उत्पन्न होती है।"
मद और संतुष्टि--दो खतरे हैं। एक तो इस बात का मद कि पा लिया, जो पाना अति कठिन था। वह मिल गया, जिसकी खोज थी जन्मों-जन्मों से। जिसको हजारों बार कोशिश करके भी नहीं पा सके थे, वह पा लिया गया है। यह एक मद, अहंकार, अस्मिता हुई। और उससे भी खतरनाक एक और बात है--एक गहरी संतुष्टि, एक कंटेन्टमेंट कि अब ठीक पहुंच गए, मंजिल आ गई, अब कुछ करने को न रहा। यह संतुष्टि भी खतरा है; क्योंकि तब विकास बंद हो जाता है। जहां संतोष है वहां विकास समाप्त है। इसलिए जहां आगे विकास हो ही न, वहीं संतुष्ट होना; उसके पहले संतुष्ट मत हो जाना।
परमात्मा हो जाने के पहले सब संतोष खतरनाक है; क्योंकि इसका मतलब है
कि जहां आप संतुष्ट हुए, वहां बैठ गए। परमात्मा होकर ही संतुष्ट होना। क्योंकि फिर बैठने में कोई हर्जा नहीं; क्योंकि चलने को कोई जगह नहीं बची। लेकिन इसके पहले चलने को जगह बाकी है। जहां-जहां संतोष, वहां-वहां खतरा है। असंतोष को जगाए रखना है। यह ब्रह्मचर्य जब उपलब्ध होता है, तब बड़ी गहरी तृप्ति मिलती है। रोआं-रोआं जैसे तृप्त हो जाए। कुछ पाने को न बचा, ऐसा लगने लगता है। यह भ्रम है; अभी पाने को बचा है, अभी पाने को बहुत बचा है। यह तो जो पाया है, यह केवल शक्ति है, जिसका उपयोग करना है--अब जो असली पाने को है, उसके लिए।

यह तो ऐसे है कि एक आदमी ने धन कमा लिया और तृप्त होकर बैठ गया तिजोरी
के पास। धन का मूल्य ही नहीं है कोई, अगर इसका उपयोग नहीं किया जा सके। धन का तो मूल्य ही यही है कि जो खरीदना था, वह खरीदा जा सकता है, शक्ति पास है। लेकिन आप देखते हैं, अधिक लोग धन कमाकर तिजोरी के रक्षक हो जाते हैं। यह मूढ़ता है, क्योंकि धन कमाया ही इसलिए था कि कुछ वासनाएं तृप्त करनी थीं, इस धन के बिना नहीं तृप्त हो सकती थीं। इस धन से अब तृप्त हो सकती हैं। लेकिन धन कमाते-कमाते भूल ही जाता है आदमी कि धन किसलिए कमाया है। आखिर में ऐसा लगने लगता है कि धन धन के लिए कमाया है। और तब धन की तिजोरी के पास संभलकर बैठ जाता है, फिर रक्षक हो जाता है! धनपति अक्सर पहरेदार से ज्यादा नहीं होते।
और यह बड़ी मूढ़ता है; यह तो सारा जीवन व्यर्थ गया। यह हम भूल ही गए कि किसलिए! यह तो साधन साध्य हो गया। तो आपकी तिजोरी में सोने की इट रखी है कि मिट्टी की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। आपको पहरा देना है। अगर किसी धनपति की तिजोरी में से रातों-रात उसकी सब सोने की ईंटें निकालकर मिट्टी की रख दी जाएं, तो भी--कोई उसको पता भर नहीं चलना चाहिए--वह अपनी तिजोरी पर पहरा देता रहेगा और उतना ही आनंदित रहेगा। क्योंकि सोने और मिट्टी में फर्क तो तब है, जब उपयोग करना हो। अन्यथा क्या फर्क है?
यह जो ब्रह्मचर्य की अवस्था उपलब्ध होगी, तो धनपति जैसी कृपणता आ सकती है, अगर आप तृप्त हो जाएं।
ब्रह्मचर्य शक्ति है--साधन है; साध्य नहीं है।
साध्य तो ब्रह्म है।
इस ब्रह्मचर्य से मिली शक्ति का उपयोग हो सकता है अब। अब आपके पास वह ताकत है, वह गति है, वह यान है, वह नाव अब आपके पास है, जिसमें बैठकर दूसरे किनारे जा सकते हैं। इस नाव की पूजा मत करने लगना बैठकर इस किनारे पर। इस नाव को सजाकर और उत्सव मत मनाने लगना। तृप्त मत हो जाना कि नाव मिल गई। क्योंकि नाव मिलने से क्या होता है? नाव में यात्रा करने से कुछ होता है। ब्रह्मचर्य नाव है। इसलिए यह सूत्र कहता है कि मद और संतुष्टि से रक्षा करने की जरूरत है।
"अहंकार का भाव काम को बिगाड़ कर धर देगा, अतः मजबूत बांध बना, नहीं तो कहीं लड़ाकू लहरों की भयानक बाढ़ जो महा संसार के माया के समुद्र से आकर इसके किनारों पर चढ़ाई और चोट करती है, यात्री और उसके द्वीप को ही न निगल जाए। हां, यह तब भी घटित हो सकता है, जब विजय उपलब्ध हो गई हो।"
यह तब भी घटित हो सकता है, जब विजय उपलब्ध हो गई हो। जरा-सी गफलत और विजय भी पराजय में परिवर्तित हो सकती है। जरा सी चूक, जरा सी भूल और ठेठ आखिरी क्षण में भी वापिस लौटना हो सकता है। जब तक साध्य ही न मिल जाए, तब तक लौटना होता रह सकता है। जब तक साधन ही हाथ में है, तब तक साध्य खोया जा सकता है। और कई बार तो इसी ख्याल से कि सब मिल गया, जो मिला था, वह खो जाता है। तो एक ख्याल तो साधक को निरंतर ही मन में बनाए रखना चाहिए कि कहीं भी तृप्त नहीं होना है। अतृप्ति की एक जलती लहर भीतर बनी ही रहे, एक लपट कि और, और, और रास्ता अभी बाकी है। एक दिन जरूर ऐसा आता है कि रास्ते सब समाप्त हो जाते हैं। उस दिन फिर अतृप्ति का कोई कारण नहीं रह जाता।
लेकिन ध्यान रखना कि इस जगह की पहचान क्या है? थोड़ी जटिल है बात। कैसे पहचानेंगे कि वह जगह आ गई, जहां अब अतृप्ति का कोई कारण नहीं?
जिस दिन तृप्ति का भी कोई कारण न रह जाए, उस दिन समझ लेना अब अतृप्ति
का भी कोई कारण नहीं है। इसलिए जटिल है बात। जहां मन में न तृप्ति रह जाए, न अतृप्ति, समझना
कि मंजिल आ गई। अगर तृप्ति भी मालूम पड़ रही हो, तो समझना कि अभी मंजिल नहीं आई है।
कोई आता है मेरे पास और कहता है कि ध्यान में बड़ी शांति आ रही है, तो उससे मैं कहता हूं, अभी अशांति कायम है, नहीं तो शांति का अनुभव कैसे होगा? शांति का अनुभव तो अशांति की पृष्ठभूमि में ही होता है। जैसे कि काली लकीर खींचनी हो, तो सफेद कपड़े पर खींचो; सफेद लकीर खींचनी हो, तो काले

ब्लैकबोर्ड पर खींचो। सफेद दीवाल पर सफेद लकीर दिखाई पड़ेगी? नहीं दिखाई पड़ेगी। सफेद लकीर काली दीवाल पर दिखाई पड़ सकती है।
अगर आपको लगता है कि बड़ी शांति आ रही है, तो भीतर अशांति की दीवाल अभी मौजूद है। नहीं तो शांति दिखाई नहीं पड़ सकती। उसका पता ही नहीं चलेगा। शांति का पता चलना भी, अशांत आदमी का ही हिस्सा है। यह थोड़ा जटिल है मामला। क्योंकि हमको लगता है अशांत आदमी को अशांति का पता चलता है। लेकिन यह भी उसे इसलिए चलता है कि उसे भी शांति का थोड़ा अनुभव है, नहीं तो उसको भी अशांति का पता नहीं चल सकता है। अगर आपको लगता है कि आप बहुत अशांत हैं, तो इसलिए लगता है कि कभी किन्हीं क्षणों में शांति भी आपको मिलती है; नहीं तो तोलेंगे कैसे?
आपको लगता है कि आप बीमार हैं; क्योंकि आपको स्वास्थ्य का अनुभव है, थोड़ा सा ही सही। और किसी आदमी को अगर पता चलने लगे कि मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं, मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं, तो समझना कि बीमारी कायम है। क्योंकि यह पता कैसे चलेगा? परम स्वास्थ्य तो उस दिन घटित होता है, जिस दिन बीमारी का तो पता चलता ही नहीं, स्वास्थ्य का भी नहीं चलता; क्योंकि स्वास्थ्य के पता चलने में भी दंश है।
पूर्ण शांति उस दिन घटित होती है, जिस दिन शांति का भी पता नहीं चलता है।
अगर आप बुद्ध से पूछेंगे, तो वे यह नहीं कहेंगे कि मैं शांत हूं। वे कहेंगे कि कुछ पता ही नहीं चलता कि शांत हूं कि अशांत हूं; कि शांति क्या अशांति क्या। यह भी पता नहीं चलता
कि मैं हूं, कि नहीं हूं। कि मेरा होना क्या और न-होना क्या, कुछ भी पता नहीं।
जब तक यह तृप्ति है, तब तक समझना कि अभी अतृप्ति कायम है। और अभी बैठ
मत जाना, अभी यात्रा जारी रखना। जिस दिन तृप्ति भी मालूम न पड़े, उस दिन अतृप्ति को छोड़ा जा सकता है। छूट ही गई। उस दिन फिर कहीं जाने को न बचा। आप पहुंच गए वहां, जहां पहुंचना आपकी नियति थी। हो गया वह घटित। जो बीज आपमें छिपा था, वह फूल बन गया। खुल गए, फैल गए, विस्तीर्ण हो गए, ब्रह्म हो गए। "तेरा द्वीप हिरण की भांति है और तेरे विचार कुत्ते हैं जो जीवन की नदी की ओर उसकी यात्रा का पीछा कर उसकी प्रगति को अवरुद्ध करते हैं। उस हिरण के लिए शोक है, जिसे भौंकते कुत्ते उसके ध्यान-मार्ग नाम की शरणस्थली पर पहुंचने के पहले ही पराजित कर देते हैं।"
जैसे कोई शिकारी या शिकारी कुत्ते एक हिरण का पीछा कर रहे हों, तो वे दौड़-दौड़ कर उसके मार्ग को अवरुद्ध करते हैं, चारों तरफ से घेर कर उसे नष्ट कर देने की तैयारी करते हैं। यह सूत्र उदाहरण के लिए कहता है कि तेरा ध्यान तो तेरा हिरण है, और तेरे विचार हैं शिकारी कुत्ते, जो तेरे ध्यान को सब तरफ से अवरुद्ध करते हैं। अगर ध्यान को उपलब्ध होना हो, तो इन शिकारी कुत्तों से छुटकारा चाहिए। लेकिन हम ध्यान की भी खोज करते हैं और इन विचारों को भी अपना मानते हैं। इसलिए यह बड़े उपद्रव की बात है। जिसे ध्यान चाहिए, उसे विचारों से तादात्मय तोड़ना है। उसे धीरे-धीरे कहना बंद करना चाहिए कि ये विचार मेरे हैं।
ध्यान के अतिरिक्त आपका कुछ भी नहीं है। एक भी विचार आपका अपना है नहीं। सब विचार उधार हैं, मिले हैं, किसी ने दिए हैं। शिक्षा से, संस्कार से, समाज से, शास्त्र से, कहीं से इकट्ठे हुए हैं। धूल की तरह आप पर जम गए हैं, जमाए गए हैं। कोई बच्चा विचार लेकर पैदा नहीं होता, लेकिन ध्यान लेकर पैदा होता है।
विचार तो हम उसे देते हैं, जरूरी है, उपयोगी है। विचार हम उसे देते हैं, उसके ध्यान की क्षमता तो भीतर होती है। विचार की पर्त चारों तरफ से जम जाती है। बड़ा होकर वह यह भूल ही जाता है कि उसके भीतर ध्यान का भी कोई केंद्र है। इस विचार की परिधि से ही वह अपने को एक कर लेता है। कहता है, मैं हिंदू हूं, मुसलमान हूं, जैन हूं, ईसाई हूं, सोशलिस्ट हूं, कम्युनिस्ट हूं। कुछ विचारों की पर्त से अपने को जोड़ लेता है कि यह मैं हूं! अड़चन खड़ी हो जाती है।

विचार की पर्त बाहर से आई है, इसे स्मरण रखे ध्यान का खोजी। कोई विचार आपका नहीं है। चेतना आपकी है, चैतन्य आपका है, ध्यान आपका है। लेकिन विचार पराए हैं, बारोड, उधार हैं। उनसे अपना संबंध मत जोड़ना। क्योंकि उनसे संबंध जोड़ लिया, तो फिर ध्यान से संबंध न जुड़ सकेगा। ध्यान की तरफ चलनेवाले व्यक्ति को विचार से अपना संबंध तोड़ लेना चाहिए। और उसे तो एक ही बात ख्याल रखनी चाहिए कि जन्म के साथ मेरे भीतर था, वह था मात्र चैतन्य। क्योंकि अगर चेतना न होती, तो दूसरे विचार दे भी नहीं सकते थे आपको।
एक पत्थर को विचार देकर देखें, एक जानवर को विचार देकर देखें, तो जानवर थोड़े से विचार ले लेगा, जितनी उसमें चेतना है। पत्थर बिल्कुल ही नहीं लेगा; क्योंकि उतनी भी चेतना उसमें नहीं है। आदमी विचार ले लेता है, क्योंकि चेतना उसके पास है। दर्पण लेकर पैदा होता है, इसलिए धूल दर्पण पर इकट्ठी हो जाती है। ये विचार इकट्ठे हो जाते हैं। लेकिन आपका ध्यान नष्ट नहीं होता है, वह आपमें छिपा है। जिस दिन भी इस पर्त से आप अपने को अलग तोड़ लेते हैं और प्रतीति कर लेते हैं कि विचार मेरे नहीं हैं।
आप में से बहुत से लोग सोचते हैं कि यह शरीर मेरा नहीं, यह शरीर मेरा नहीं, यह शरीर मेरा नहीं; मैं आत्मा हूं। उससे ज्यादा फायदा नहीं होगा। ज्यादा गहरा फायदा इससे होगा कि कोई विचार मेरा नहीं। यह विचार भी कि शरीर मेरा नहीं, यह भी आपका नहीं है; यह भी आपने सीखा है, सुना है। विचार मात्र से अपना संबंध विच्छिन्न कर लें, और सिर्फ उस चैतन्य में ठहरने लगें, जो विचार के पूर्व है और विचार के बाद है। तो आप हिरण हो रहे हैं, शिकारी कुत्तों से बच रहे हैं।
यह प्रतीति निरंतर भीतर बनी रहे कि कोई विचार मेरा नहीं, विचार मात्र पराए हैं और बाहर से आए हैं। जो मेरे भीतर से आ रहा है, वही मेरा है। जो मैं जन्म के पूर्व था, और मृत्यु के बाद भी रहूंगा, वही मेरा है। उस गहरे केंद्र के साथ अपने तादात्मय को स्थापित करते जाएं, तो आपके आसपास वह बांध खड़ा हो जाएगा, जिस बांध से भीतर के इस कोमल द्वीप की रक्षा हो सकेगी। अन्यथा सागर इसे कभी भी डुबा ले सकता है। और चारों तरफ विचार का सागर है। इसलिए सदगुरु मैं उसे कहता हूं, जो आपके विचार छीन ले, आपको रिक्त कर दे, खाली कर दे। सदगुरु उसे नहीं कहता, जो आपको और नये विचार दे दे, उससे आपका बोझ और बढ़ जाएगा, वैसे ही आप काफी पीड़ित और परेशान हैं, ये विचार और आपको मुसीबत देंगे।
बुद्ध के पास एक युवक पहुंचा और उसने कहा कि मुझे कुछ सवाल पूछने हैं,
तो बुद्ध ने कहा कि सवाल के जवाब अगर मैं दूंगा, तो तेरे बोझ को और बढ़ा दूंगा। अगर तू बोझ ही बढ़ाने आया हो, तो बात और है। अगर तू बोझ हल्का करना चाहता है, तो न तो पूछ और न उत्तर मांग। मेरे पास चुपचाप रह; साल भर रुक, साल भर मौन हो, साल भर ध्यान कर। साल भर सवाल-जवाब नहीं, साल भर वाणी का उपयोग नहीं, साल भर शब्द का संबंध ही तोड़ दे। फिर साल भर बाद मुझ से पूछना, फिर मैं तुझे उत्तर दूंगा।
जब यह बात बुद्ध ने कही इस युवक को, उसका नाथ था मौलुंकपुत्त। तो सारिपुत्त एक दूसरा संन्यासी बुद्ध का, एक वृक्ष के नीचे बैठा था पास में, वह खिलखिला कर हंसने लगा। और उसने मौलुंकपुत्त से कहा, सावधान! तो मौलुंकपुत्त बोला, समझ नहीं पड़ता मामला क्या है! हंसते क्यों हो? सारिपुत्त ने कहा, फंस मत जाना। अगर पूछना हो, तो अभी पूछ लेना! हम भी ऐसे फंस गए। आए थे पूछने, इस आदमी की बात माल ली; चुप होकर बैठ गए। साल बीत गया, प्रश्न भी खो गए; वे भी अशांति के हिस्से थे। फिर यह आदमी कहता है पूछो। पूछने को ही न बचा कुछ। पूछना हो, तो अभी पूछ लेना, साल भर का आश्वासन तो झूठा है। बुद्ध ने कहा, मैं आश्वासन देता हूं, मैं मजबूत रहूंगा आश्वासन पर। अब तुम्हीं न पूछो, बात और है।
साल बीता, मौलुंकपुत्त चुप रहा, ध्यान किया, मौन रहा, विचार से संबंध तोड़ा, चैतन्य से संबंध जोड़ा, जाना कि मैं वही हूं, सिर्फ होना मात्र हूं; बाकी सब जो ख्याल हैं, शब्द हैं, प्रत्यय हैं, धारणाएं हैं, वह मेरे चारों तरफ धूल की तरह जम गई हैं। वह वस्त्र से ज्यादा नहीं हैं, जैसे वस्त्र के

भीतर नग्न देह है, ऐसे विचारों के भीतर नग्न चेतना है। साल बीता, वह भूल ही गया कि पूछने का दिन करीब आ गया।
लेकिन बुद्ध न भूले। ठीक साल भर बीतने पर ठीक उसी दिन, उसी मुहूर्त में बुद्ध ने कहा, कि मौलुंकपुत्त साल बीत गया, अब तू खड़ा हो जा और पूछ ले क्या पूछना है। मौलुंकपुत्त हंसने लगा, उसने कहा, वह सारिपुत्त क्यों हंसा था, अब मैं भी जानता हूं। पूछने को कुछ भी नहीं बचा है। और उत्तरों की अब कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि उत्तर बाहर के हैं; और धूल जम जाएगी। चैतन्य से संबंध, विचार से संबंध-विच्छेद--यही बांध बनेगा आपके चारों तरफ।
"हे सुख-दुख के विजेता, इसके पहले कि तू ध्यान-मार्ग में स्थित हो और उसे अपना कहे, तेरी आत्मा को पके आम जैसा होना है--दूसरे के दुखों के लिए उसके चमकदार व सुनहले गूदे की तरह और अपनी पीड़ा और शोक के लिए उसकी पथरीली गुठली की तरह।"
जीवन का एक सामान्य प्राकृतिक नियम और वृत्ति है कि हमें अपने दुख से पीड़ा होती है और दूसरे के सुख से दुख। सहज ऐसा है, आप कितने ही बताते हों दूसरों के सुख में सुख, झूठा होता है; गहरे में पीड़ा होती है। अगर यह सच है कि दूसरे के सुख में पीड़ा होती है--जब आपके पड़ोस में किसी का मकान बड़ा हो जाता है, तो भला आपका मित्र हो और आप कहते हों कि बड़ी खुशी हुई कि अच्छा मकान बना लिया; लेकिन अपने भीतर खोजना, वहां कोई कांटा चुभता है, कहीं कोई दुख मन को पकड़ता है। दूसरे के सुख में दुख होता है। इसको ठीक से समझें, तो अच्छा है; इसे झुठलाने में कोई सार भी नहीं है। और अगर यह सच है, तो फिर दूसरे के दुख में आपको सुख होता होगा।
कभी देखें, किसी के मकान में आग लग गई, आप कहेंगे, यह बात जरा जंचती नहीं है, दूसरे के सुख में हो सकता है ईर्ष्या है, पीड़ा है, लेकिन दूसरे के दुख में सुख नहीं होता है, मकान में आग लगने से हम भी दुखी होते हैं। लेकिन जब किसी के मकान में आग लगती है और आप सांत्वना प्रकट करने जाते हैं, तब थोड़ा अध्ययन करना अपना, सांत्वना में कितना मजा आता है। आएगा ही। लोग सहानुभूति प्रकट करने में बड़ा मजा लेते हैं। मजा कई तरह का है। एक तो हम सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं और तुम उस हालत में आ गए जिस पर सहानुभूति प्रकट की जा रही है; तुम नीचे, हम ऊपर हैं। आपने कभी ख्याल किया है कि जब कोई बहुत सहानुभूति आपके प्रति प्रकट करने लगता है, तो आपको थोड़ी पीड़ा होती है कि ठीक कोई बात नहीं, कभी भगवान हमको भी मौका देगा; ठहरो थोड़े दिन जल्दी वह वक्त आएगा, जब हम भी सहानुभूति प्रकट करेंगे। ऐसा भी क्या है, इतने खुश मत हो जाओ।
अगर आप किसी के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे हों, और वह कहे, क्यों फिजूल की बातें कर रहे हो, तो आपको बहुत पीड़ा होती है। एक अवसर छीन लिया। इसे थोड़ा गहरे में खोजना, क्योंकि अचेतन है। जब आप सहानुभूति प्रकट करते हैं, तो मन में रस आता है, अच्छा लगता है। चाहे चेतन रूप से आपको पता भी न हो, दूसरे के सुख में अगर पीड़ा होती है, तो दूसरे के दुख में पीड़ा नहीं हो सकती है। कैसे होगी? अपने दुख में पीड़ा होती है, अपने सुख में सुख होता है। यह सहज आदमी जैसा है।
यह सूत्र कहता है, इस आदमी को उल्टा कर लेना, तो ही आगे गति होगी। एक सीमा पर अगर आदमी अपनी इस वृत्ति को बदल न ले, तो संसार के बाहर नहीं जाता है। यह संसार का नियम है। इस नियम को बदलते ही आप संसार के बाहर होने शुरू हो जाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि अपने को दुख झेलना सीखना। सिर्फ झेलना ही कहना ठीक नहीं, शुरू में झेलना सीखना, फिर जैसे-जैसे झेलने की क्षमता बढ़ जाए, तो अपने दुख में एक तरह का सुख भी लेना सीखना। वह जरा कठिन है। लेकिन हो सकता है। दूसरे के सुख में दुख लेना बंद करना। और जैसे-जैसे क्षमता बढ़ती जाए, दूसरे के सुख में सुख लेना शुरू करना। दूसरे के दुख में पीड़ित होना। दूसरे के दुख के लिए बहुत नाजुक हो जाना, संवेदनशील हो जाना, सेंसिटिव हो जाना और अपने दुख के लिए बहुत कठोर, मजबूत हो जाना।
यह सूत्र कहता है, दूसरे के दुखों के लिए ऐसे बन जाना, जैसे आम का पका हुआ फल, दूसरों के दुखों के लिए आम का रस, आम का गूदा और अपने दुखों और पीड़ा

के लिए गुठली की तरह मजबूत बनना, आम की गुठली की तरह, अपनी पीड़ा को झेलना, और अपनी पीड़ा को धीरे-धीरे स्वीकार करना और अपनी पीड़ा को सुखद अनुभव करना। कठिन है बहुत, और मन को समझ में नहीं आता। मन को समझ में आएगा भी नहीं। क्योंकि मन उस नियम को मानता है, जिसमें अपनी पीड़ा पीड़ा और दूसरे की पीड़ा पीड़ा नहीं है। जिसमें अपना सुख सुख और दूसरे का सुख सुख नहीं है। इसलिए मन की समझ में नहीं आएगा। लेकिन साधक अगर थोड़ी सी चेष्टाएं करे तो इसके अनुभव होने शुरू हो जाएंगे और बड़े अनूठे अनुभव होंगे।
अगर दूसरे के सुख में आप सुख अनुभव करने लगें, तो आपका दुख पहले तो हजार गुना एकदम कम हो जाएगा। क्योंकि हमारे ज्यादा दुख अपने दुख नहीं हैं, दूसरों के सुखों के कारण हैं। आपका झोपड़ा छोटा है, ऐसा झोपड़े के कारण नहीं है; पास में जो बड़े मकान खड़े हैं, उनके कारण है। और आपकी पत्नी सुंदर नहीं है, ऐसा आपकी पत्नी के साथ नहीं है, वह जो औरों की पत्नियां सुंदर हैं, उसके कारण है। तुलना। दूसरों का सुख चारों तरफ घेरे हुए है, और सब सुखी मालूम पड़ रहे हैं, सिर्फ आपको छोड़ कर। दूसरे भी यही मानते हैं। सभी की दृष्टि यही है कि मेरे सिवाय सारा जगत सुखी है। "हे परमात्मा, मुझ पर ही क्यों इतना नाराज है! मैंने ऐसा क्या बिगाड़ा है? सब सुखी दिखाई पड़ रहे हैं।" यही सब कह रहे हैं।
दूसरों का सुख दिखाई पड़ता है, अपना दुख दिखाई पड़ता है।
अपना सुख दिखाई नहीं पड़ता, दूसरे का दुख दिखाई ही नहीं पड़ता! मन के जिस नियम में हम रहते हैं, वहां यही होगा। अपना सुख हम स्वीकार कर लेते हैं कि उसमें क्या सुख है? है ही क्या उसमें? अगर आपके पास दस हजार रुपये हैं, तो उसमें क्या सुख है? दस हजार भी कोई रुपये हैं? वह तो जिसके पास दस रुपये हों, उसको दिखाई पड़ रहा है कि मजा ले रहे हो दस हजार का। और आप दस हजार का दुख ले रहे हैं! क्योंकि आप दस वाले से कभी नहीं तौलते अपने को, आप दस लाख वाले से तौल रहे हैं।
जहां जाना है, वहीं से आदमी तौलता है। तो दस रुपए वाले की दुनिया में
तो जाना नहीं है, जाना है दस लाख की दुनिया में, तो तोल है! दस रुपए वाला दुखी है, दस हजार वाले के कारण; दस के कारण नहीं। दस हजार वाला दुखी है, दस लाख वाले के कारण। दस लाख वाला दुखी है, दस करोड़ वाले के कारण।
सब दुखी हैं--अपने दुख के कारण नहीं, दूसरे के सुख के कारण।
और जब तक आपकी यह वृत्ति है, तब तक आप कैसे सुखी हो सकते हैं? दस लाख हों, तो भी दुखी होंगे! दस करोड़ हों तो भी दुखी होंगे। कहीं भी हों, जिस मन को आप लेकर चल रहे हैं, वह दुख पैदा करेगा।
सुखी होने का उपाय कुछ और है। दूसरे का दुख अगर आपको दिखाई पड़ने लगे,
तो आप सुखी होना शुरू हो गए। तब आपके चारों तरफ सुख का सागर दिखाई पड़ेगा। मैंने सुना है, एक फकीर था, जुन्नून। कोई भी आदमी उसके पास मिलने आता,
तो वह हंसता खिलखिला कर और नाचने लगता। लोग उससे पूछते कि बात क्या है? वह कहता एक तरकीब मैंने सीख ली है सुखी होने की। मैं हर आदमी में से वह कारण खोज लेता हूं, जिससे मैं सुखी हो जाऊं। एक आदमी आया, उसके पास एक आंख थी, जुन्नून नाचने लगा। यह क्या मामला है? उसने कहा कि तुमने मुझे बड़ा सुखी कर दिया; मेरे पास दो आंखें हैं, हे प्रभु इसमें तेरा धन्यवाद! एक लंगड़े आदमी को देख कर वह सड़क पर ही नाचने लगा। उसने कहा कि गजब--अपनी कोई पात्रता न थी, दो पैर दिए हैं! एक मुद की लाश--मुद को लोग मरघट ले जा रहे थे। जुन्नून ने कहा, हम अभी जिंदा हैं, और पात्रता कोई भी नहीं है। और कोई कारण नहीं है, अगर हम मर गए होते इस आदमी की जगह, तो कोई शिकायत भी करने का उपाय नहीं था। उसकी बड़ी कृपा है।
जुन्नून दुखी नहीं था, कभी दुखी नहीं हो सका। क्योंकि उसने दूसरे का दुख देखना शुरू कर दिया। और जब कोई दूसरे का दुख देखता है, तो उसकी पृष्ठभूमि में अपना सुख दिखाई पड़ता है। और जब कोई दूसरे का सुख देखता है तो उसकी पृष्ठभूमि में अपना दुख दिखाई पड़ता है।
सुना है मैंने कि एक यहूदी फकीर हुआ, हसीद फकीर बालसेन। एक ईसाई पादरी बालसेन के ज्ञान से प्रभावित था। यहूदी और ईसाईयों में तो बड़ी दुश्मनी थी; लेकिन बालसेन आदमी काम का था। तो कभी-कभी एकांत में उस यहूदी के पास ईसाई

पादरी मिलने जाता था। एक दिन ईसाई पादरी ने पूछा कि तुम यहूदियों का तर्क कैसा है? तुम सोचते किस ढंग से हो? क्योंकि तुम्हारे सोचने के मुकाबले कोई तर्क नहीं दिखाई पड़ता। तुम जिस काम में लगते हो, सफल हो जाते हो, तुम जहां हाथ उठाते हो, वहीं सफलता पाते हो। मिट्टी छूते हो, सोना हो जाती है। तुम्हारा क्या तर्क है? व्यवस्था क्या है तुम्हारी सोचने की?
तो उस बालसेन ने कहा कि एक कहानी तुमसे कहता हूं।
दो आदमी एक मकान की चिमनी से भीतर प्रवेश किए। दोनों शुभ्र कपड़े पहने हुए थे। चिमनी धुएं से काली थी। एक आदमी बिल्कुल साफ-सुथरा चिमनी के बाहर आया, जरा भी दाग नहीं। दूसरा आदमी कालिख से पुता हुआ बाहर निकला, एक भी जगह साफ न बची थी। तो मैं तुमसे पूछता हूं कि इन दोनों में से कौन स्नान करेगा? तो पादरी ने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है? क्या तुमने मुझे इतना
मूढ़ समझ रखा है? जो काला हो गया, कालिख से भर गया है, वह स्नान करेगा। बालसेन ने कहा, यही यहूदी तर्क में फर्क है। जो आदमी सफेद कपड़े पहने हुए है, वह स्नान करेगा। उसने कहा, हद हो गई! क्या मतलब--समझाओ? तो बालसेन ने कहा, जो आदमी सफेद कपड़े पहने हुए है, वह अपने मित्र की हालत देखेगा। और जिसके कपड़े काले हो गए हैं, वह अपने मित्र की हालत देखेगा। क्योंकि दुनिया में हर आदमी दूसरे की हालत देख रहा है। इसलिए मैं कहता हूं, जिसके कपड़े सफेद हैं, वह स्नान करेगा; क्योंकि वह समझेगा कि कैसी गंदी हालत हो रही है, चिमनी से निकलने पर। क्योंकि लोग दूसरे को देख रहे हैं। और वह जो आदमी काले कपड़े पहने हुए है, वह मजे से घर चला जाएगा। क्योंकि वह देखेगा कि अरे, गजब की चिमनी है, इतनी कालिख, लेकिन निशान एक नहीं आया है! क्योंकि हर आदमी दूसरे को देख रहा है।
ठीक कहा बालसेन ने। हर आदमी दूसरे को देख रहा है, और उसी आधार पर निर्णय ले रहा है। आप देख रहे हैं दूसरे का सुख, दुखी हो रहे हैं; उसके आधार पर निर्णय ले रहे हैं। देखें दूसरे का सुख और आप सुखी होना शुरू हो जाएंगे, क्योंकि तब आपको अपना दुख नहीं दिखाई पड़ेगा। और न केवल देखें दूसरे का सुख, दूसरे के सुख में उत्सव मनाएं।
यह थोड़ा और आगे बढ़ना है। और जो आदमी दूसरे के सुख में उत्सव मना सकता है, उसके सुख के अवसर की कमी न रहेगी। उसे प्रतिपल सुख का अवसर मिल जाएगा। और उत्सव मनाया जा सकता है। क्योंकि तब हजार करोड़, अरब लोगों के सुख, तब आपकी संपत्ति, सभी के सुख आपकी संपत्ति हो गए। और ऐसी मनोदशा हो, तो अपने दुख को स्वीकार करने में अड़चन न आएगी। सच तो यह है, वह तिरोहित हो जाएगा। और कभी-कभी अगर आएगा भी, तो स्वाद परिवर्तन का काम करेगा, उसमें भी रस आएगा।
कभी-कभी दुख बुरा नहीं होता, उससे थोड़ा स्वाद बदलता है।
जैसे कोई मिठाई ही मिठाई खाए, तो तकलीफ हो जाती है। थोड़ा नमकीन अच्छा होता है। वैसे-वैसे सुख के बीच थोड़ा सा दुख एक नई ताजगी दे जाता है, और सुख को अनुभव करने को जीभ फिर तैयार हो जाती है।
"अपने दुख के प्रति कठोर, दूसरे के सुख के प्रति बहुत संवेदनशील, ऐसा
जो साध लेता है, वह इस जगत के बाहर होना शुरू हो गया। यह जगत फिर आपको न पकड़ पाएगा।"
"अहंकार के नागपाश से बचने के लिए अपनी आत्मा को कठोर बना, उसे वज्र आत्मा नाम पाने के योग्य बना।"
"क्योंकि जिस प्रकार धरती के धड़कते हृदय की गहराई में गड़ा हीरा धरती
के प्रकाशों को प्रतिबिंबित नहीं कर पाता है, उसी प्रकार तेरा मन और आत्मा है। ध्यान-मार्ग में डूब कर उसे भी माया के जगत की भ्रांति-भरी शून्यता को प्रतिबिंबित नहीं करना चाहिए।"
इस जगत के सभी नियम भ्रांति-भरे हैं। और जैसे कोई हीरा जमीन में गड़ा हो, उस जमीन में गड़े हुए हीरे में फिर सूरज का कोई प्रतिबिंब नहीं बनता है, ऐसे ही तू भी ध्यान में अपने को गड़ा ले, ताकि इस जगत के कोई प्रतिबिंब तुझमें न बनें और जगत की कोई छाया तुझे न पकड़े और जगत के नियम तुझे आंदोलित न करें। तू अपने ही ध्यान के नियमों में जी और उनमें ही डूब। और ध्यान के नियम जगत के नियम से बिल्कुल विपरीत हैं।

समाधि के सप्त द्वार
ग्यारहवां प्रवचन

मन के पार

ध्यान शिविर, आनंद शिला, अंबरनाथ रात्रि 14 फरवरी, 1973

जब तू विराग की उस अवस्था को प्राप्त कर चुकेगा, तब वे द्वार, जिन्हें तुझे मार्ग पर चल कर जीतना है, तुझे अपने भीतर लेने के लिए अपना हृदय पूरे का पूरा खोल देंगे। प्रकृति की बड़ी से बड़ी शक्तियां भी तब गति को नहीं रोक सकेंगी। तब तू सप्तवर्णी मार्ग का स्वामी हो जाएगा; लेकिन, ओ परीक्षा के प्रत्याशी! उसके पहले यह संभव नहीं है।
तब तक एक बहुत कठिन काम तुझे करना हैः तुझे अपने को एक साथ सर्व-विचार
भी अनुभव करना है और अपनी आत्मा से सर्व-विचारों को निष्कासित भी करना है। तुझे मन की उस स्थिरता को उपलब्ध होना है, जिसमें तेज से तेज हवा भी किसी पार्थिव विचार को उसके भीतर प्रविष्ट न करा सके। इस तरह परिशुद्ध होकर मंदिर को सभी सांसारिक कर्म, शब्द व पार्थिव रोशनी से रिक्त हो जाना है। जिस प्रकार पाला की मारी तितली देहली पर ही गिर कर ढेर हो जाती है, उसी प्रकार सभी पार्थिव विचारों को मंदिर के सामने ढेर हो जाना चाहिए।
यह जो लिखित है, इसे पड़ः
"इसके पहले कि स्वर्ण-ज्योतिशिखा स्थिर प्रकाश के साथ जले, दीप को वायुरहित स्थान में सुरक्षित रखना जरूरी है। बदलती हवाओं के सामने होकर प्रकाश की धारा हिलने लगेगी और उस हिलती शिखा से आत्मा के उज्जवल मंदिर पर भ्रामक काली और सदा बदलने वाली छाया पड़ जाएगी।"

अस्तित्व का एक गहरा नियम समझ लेना जरूरी है। देखा भी होगा उस नियम को जीवन के बहुत अनुभवों में, लेकिन शायद उसकी सारभूत अंतरात्मा ख्याल में न आई हो।
एक जिंदा आदमी नदी में डूब सकता है, अगर उसे तैरना न आता हो; लेकिन मुर्दा बिना तैरे ही नदी पर तैर जाता है। मुर्दा आदमी को कौन सी कला आती है, जो कि जिंदा आदमी को नहीं आती थी। मुर्दा डूबता नहीं, नदी खुद उसे ऊपर उठा लेती है। निश्चित ही जिंदा आदमी कोई भूल कर रहा है, जो मुर्दा नहीं कर रहा है। जिंदा आदमी कोई गलती कर रहा था, जो मुर्दा नहीं कर रहा है। क्योंकि मुर्दा कुछ ठीक तो नहीं कर सकता, मुर्दा कुछ कर ही नहीं सकता। इतना ही हो सकता है कि जिंदा आदमी जो कर रहा था, वह मुर्दा न कर रहा हो, और इसलिए नदी पर तैर गया।
जिंदा आदमी नदी से लड़ रहा था, जिंदा आदमी नदी को दुश्मन समझ रहा था, जिंदा आदमी नदी के विपरीत अपनी आकांक्षाओं के बल पर कुछ करने की कोशिश कर रहा था। नदी ने उसे डुबा दिया, तोड़ डाला। उल्टी हो गई बात; चाहता था बचना और मिट गया। और मुर्दा अपने को बचाना नहीं चाहता, क्योंकि मुद के पास अब बचाने को कुछ है भी नहीं। बचाने का उपाय भी नहीं है, शक्ति भी नहीं है, जीवन भी नहीं है। जो मुर्दा अपने को बचाना नहीं चाहता, नदी खुद ही उसे ऊपर तैरा देती है और बचा लेती है।
फ्रांस के एक बहुत बड़े मनसविद कुए ने इस नियम को "लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट" कहा है, उलटे परिणाम का नियम। जो आप चाहते हैं, उससे उलटा हो जाता है। आपके चाहने के कारण ही उलटा हो जाता है। और हमारी पूरी जिंदगी इसी नियम से भरी हुई है। सुख चाहते हैं, दुख मिलता है। सफलता चाहते हैं, असफलता हाथ लग जाती है। जीतना चाहते हैं, हार के सिवाय कुछ भी नहीं होता! हर जगह जो हम चाहते हैं, उलटा होता हुआ दिखाई पड़ता है। फिर हम चीखते हैं, चिल्लाते हैं, रोते हैं। और प्रार्थना भी करते हैं कि हे परमात्मा, क्या भूल हो रही है, कौन सा कसूर है; कौन से कर्म का फल है कि जो भी मैं चाहता हूं, वह नहीं होता है और उलटा हो जाता है! और जो मैं कभी नहीं चाहता, वह हो जाता है! और जो मैं सदा चाहता हूं और जिसके लिए श्रम किया हूं, वह नहीं हो पाता!

इस नियम को ठीक से समझें। जब भी आप अस्तित्व के सामने अपनी चाह रखते हैं, तभी आप उसके विपरीत हो जाते हैं। अस्तित्व की मर्जी के खिलाफ आप कुछ भी करेंगे, उसमें हारेंगे और टूटेंगे। और सभी चाह उसके खिलाफ हैं। ऐसी कोई चाह नहीं है, जो अस्तित्व के खिलाफ न हो। होगी ही। हम तो परमात्मा से भी प्रार्थना करते हैं मंदिर में, उसके ही खिलाफ। घर में कोई बीमार है, हम परमात्मा से कहते हैं कि इसे ठीक कर दे। अगर परमात्मा ही सब कुछ करता है, तो यह बीमारी भी उसके द्वारा है। और जब हम कहते हैं कि इसे ठीक कर दे, तो हम यह कह रहे हैं कि हम तुमसे ज्यादा समझदार हैं और तूने हमसे सलाह क्यों नहीं ले ली इस आदमी को बीमार करने के पहले। इसे बदल दे।
हमारी सब मांग, हमारी सब प्रार्थनाएं, अस्वीकृतियां हैं। जो है, उसका हमें स्वीकार नहीं है। और ध्यान रहे, जो है, उसका जब तक हमें स्वीकार नहीं है, तब तक जो भी हम चाहेंगे, उससे उलटा होगा। और जिस दिन जो भी है, उसका हमें पूरा स्वीकार है--तो इस स्वीकार को ही मैं आस्तिकता
कहता हूं। आस्तिकता का अर्थ ईश्वर को मान लेना नहीं है, क्योंकि ईश्वर को बिना माने भी कोई आस्तिक हो सकता है। और ईश्वर को मानते हुए भी लाखों लोग नास्तिक हैं, करोड़ों लोग नास्तिक हैं।
आस्तिकता का अर्थ हैः सर्व स्वीकार का भाव--जो है, उसके साथ राजी होना।
जैसे मुर्दा नदी में बहता है जहां नदी ले जाए, तो नदी उसे खुद ऊपर उठा लेती है। और जिस दिन कोई व्यक्ति इस अस्तित्व में मुद की भांति हो जाता है, जहां ले जाए यह अस्तित्व, उस दिन यह अस्तित्व खुद ही उसे उठा लेता है। और जब तक अस्तित्व से करते हैं छीना-झपटी, तब तक उसके सब रहस्य-द्वार बंद होते हैं; हम इस योग्य नहीं।
शत्रु के लिए अस्तित्व का रहस्य खुल भी नहीं सकता है। दुश्मनी से इस दुनिया में क्या खुला है? सब चीजें बंद हो जाती हैं। अस्तित्व के साथ अस्तित्व के हृदय को खोलने के लिए वही कुंजी काम आती है, जो किसी भी व्यक्ति के हृदय को खोलने के काम आती है। जब हम किसी व्यक्ति को स्वीकार कर लेते हैं प्रेम के किसी क्षण में, उसका हृदय अपनी सब सुरक्षा हटा लेता है, उसका हृदय खुल जाता है; अब हम उसके हृदय में प्रवेश कर सकते हैं। अब हमसे उसे कोई भी भय नहीं है। प्रार्थना का यही अर्थ है। श्रद्धा का यही अर्थ है। गहरे प्रेम का यही अर्थ है।
अस्तित्व तभी खुलता है हमारे सामने, अपने सब रहस्य खोल देता है, जिस दिन पाता है कि अब हम संघर्ष नहीं कर रहे हैं, विरोध नहीं कर रहे हैं; अब हमारी कोई चाह नहीं है।
अब हम इस सूत्र को समझें।
"जब तू विराग की उस अवस्था को प्राप्त कर चुकेगा, तब वे द्वार, जिन्हें तुझे मार्ग पर चल कर जीतना है, तुझे अपने भीतर लेने के लिए अपना हृदय पूरा का पूरा खोल देंगे।"
लेकिन जब तू विराग की अवस्था को प्राप्त कर चुका होगा! विराग की अवस्था का अर्थ है, जब तूने चाह छोड़ दी होगी। जब तक तू चाहता है, ऐसा हो, ऐसा न हो; तब तक राग है। और जिस दिन तू कहता है कि जो हो रहा है वही मैं चाहता हूं। जो नहीं हो रहा है, वह मैं नहीं चाहता हूं।
अभी हम कहते हैंः चाह मेरी है। अगर उसके अनुकूल हो, तो मैं सुखी होऊंगा और प्रतिकूल हो, तो दुखी हो जाऊंगा। हम दुखी ही दुखी होते हैं, सुखी कभी भी नहीं होते। विराग की अवस्था का अर्थ है कि हमने पूरी चीज को बदल दिया। अब मैं यह नहीं कहता हूं कि मेरी चाह के अनुकूल हो। अब मैं कहता हूं, जो भी हो, मैं उसके अनुकूल हूं। या जो भी हो, मेरी चाह उसके अनुकूल है। विराग का अर्थ है अस्तित्व से अब मेरी कोई मांग, कोई अपेक्षा नहीं है,
अब मैं राजी हूं। जैसा भी है, जो भी है, उसके साथ पूरी तरह एक होने की मेरी तैयारी है। अब मेरा कोई राग नहीं है।
यह सूत्र कहता है, विराग की ऐसी अवस्था के घटते ही प्रकृति, परमात्मा
के सब रहस्य-द्वार खुल जाते हैं और वे जो बंद द्वार थे, अपने में लेने को पूरी तरह राजी हो जाते हैं।

बहुत कुछ बंद है, हमारे चारों तरफ दीवालें हैं, द्वार नहीं। और वे दीवालें हमारे कारण हैं, क्योंकि हम इतने जोर से संघर्ष कर रहे हैं उन्हें खोलने का।
स्वामी राम कहा करते थे, एक बार अमरीका के एक दफ्तर में उनसे बड़ी भूल
हो गई। संन्यासी थे, द्वार-दरवाजों का कुछ पता नहीं था। जिस झोपड़ी में रहते आए थे हिमालय में, उसमें कोई द्वार-दरवाजा भी न था। एक दफ्तर में प्रवेश करने के लिए बड़े जोर से उन्होंने धक्का दिया--बिना देखे कि दरवाजे पर "पुल" लिखा है या "पुश", अपनी तरफ खीचों या धकाओ क्या लिखा है, यह देखा नहीं--और जोर से धक्का दिया। दरवाजा नहीं खुला, दरवाजा सख्त दीवाल हो गया। तब उन्होंने नीचे देखा, लिखा था, खींचो, पुल। खींचते ही द्वार खुल गया। फिर वे बहुत बार कहा करते थे कि परमात्मा के द्वार पर भी पुश नहीं लिखा है, पुल लिखा है। "धक्का दो" नहीं लिखा है--खींचो अपनी ओर।
अपनी ओर खींचने की कला क्या है?
अपनी ओर खींचने की कला समर्पण है।
पहाड़ पर भी वर्षा होती है, लेकिन पहाड़ वर्षा को रोक नहीं पाता; क्योंकि पहाड़ पहले से ही भरा हुआ है, जगह भी नहीं है कि अब कुछ और वर्षा उसमें समा जाए। होती है पहाड़ पर वर्षा, उतर आती है नीचे, भर जाती है खाई-खड्डों में, झीलों में; क्योंकि झीलें खाली हैं, खींच लेती हैं।
समर्पण खींचता है, क्योंकि आप जब भीतर खाली होते हैं, झुके होते हैं, ग्राहक होते हैं, गर्भ बन जाते हैं। तब आप खींचना शुरू कर देते हैं, उस खिंचाव में ही दीवालें, दरवाजे बन जाते हैं।
प्रेम खींचता है, संघर्ष धकेलता है, समर्पण खींचता है, संघर्ष धकेलता
है।
और हम सब संघर्षरत हैं। वही हमारी तकलीफ है, वही हमारी पीड़ा है। और हम अपने ही हाथों से दरवाजे को दीवाल बना लिए हैं। और फिर छाती पीटते हैं, सिर पटकते हैं, रोते हैं कि यह क्या हो रहा है--कितनी मैं मेहनत कर रहा हूं, दरवाजा खुलता नहीं है। लेकिन इस दरवाजे पर सनातन नियम है कि धकाओ मत, खींचो।
और खींचने की कला गहरी है। धकाना बहुत आसान है, खींचना बहुत मुश्किल है। क्योंकि धकाने में हिंसा है, और हिंसा हममें काफी है। और खींचने के लिए प्रेम चाहिए, और प्रेम हममें बिल्कुल नहीं है। धकाना आसान है; क्योंकि धकाने में आक्रमण है और हमारा अहंकार बहुत आक्रमक है। खींचना मुश्किल है, क्योंकि खींचने में समर्पण है और हमारा अहंकार समर्पित नहीं होने देता। आज ही कोई मित्र मेरे पास आए थे और कह रहे थे कि आपसे बहुत कुछ सीखना चाहता हूं, लेकिन समर्पण नहीं कर सकता हूं। तो मैंने उनको कहा कि मत करें, और सीखने की कोशिश करें। लेकिन सीख न पाएंगे; क्योंकि सीखने की जो वृत्ति है, वह समर्पण के पीछे ही फलित होती है, उसके पहले फलित नहीं होती।
समर्पण का मतलब ही यह होता है कि अब आप कुछ दें, तो मैं लेने को राजी हूं--कि मैं गड्ढा बन गया हूं, अगर वर्षा होगी, तो मैं भर जाऊंगा, और झील बन जाएगी। यह ऐसी ही बात है, जैसे कोई पहाड़ कहे कि मैं वर्षा की झील तो बनने को राजी हूं, लेकिन गड्ढा बनने को राजी नहीं हूं। तो क्या कहेंगे हम उस पहाड़ से कि मत बन। लेकिन तब झील बनने का ख्याल छोड़ दो।
सीखना संभव है, जब कोई झुकने को राजी हो। और जितना झुकता है, उतना ही सीख लेता है। और यह सवाल भी नहीं कि किसके सामने झुकता है। झुकने की कला आनी चाहिए, झुके होने का भाव होना चाहिए, फिर सब तरह से आदमी सीख लेता है। और यह सवाल भी नहीं है कि कोई महा गुरु के पास ही सीखने जाना पड़ेगा। असल में झुकना आता हो, तो पूरा अस्तित्व गुरु हो जाता है। और झुकना
न आता हो, तो परमात्मा भी आपके सामने खड़ा रहे--वह गुरु नहीं है। आप झुककर किसी भी चीज को गुरु बना लेते हैं। और आप झुककर किसी भी चीज को दरवाजा कर देते हैं।
यह अस्तित्व अपनी संपत्ति को लुटाने को सदा तैयार है; जरा सी भी कंजूसी नहीं है। और अस्तित्व जरा भी कोशिश नहीं कर रहा है कि आप वंचित रह जाएं। अगर आप वंचित हैं, तो समझना कि आपकी ही कुशलता, आपकी ही कला, आपकी ही

समझदारी, आपकी ही बुद्धिमानी कारण रही है। धक्के दे रहे हैं--वहां, जहां खींचना है। लड़ रहे होंगे वहां, जहां हारना ही जीतने की कला है। सभी जगह जीत कर जीत नहीं मिलती। और जितनी गहन हो यात्रा, उतनी ही मुश्किल हो जाती है जीत--जीतने की आशा से। कुछ जगह तो जीतने वाले बुरी तरह हारते हैं।
एक अनुभव जो सामान्यतः सबको है, शायद नहीं भी है, लेकिन हो सकता था--वह
है प्रेम का अनुभव। प्रेम में अगर किसी ने जीतने की कोशिश की, तो वह प्रेम से वंचित रह जाएगा। अगर उसने जबर्दस्ती की, तो सब द्वार प्रेम के बंद हो जाएंगे। अगर छीना-झपटी की, तो कुछ भी न मिलेगा; उसका भिक्षा-पात्र खाली रह जाएगा, वह भिखारी ही मरेगा। जिन्हें प्रेम की थोड़ी सी भी झलक है, वे समझ सकते हैं कि वहां हार जाना ही जीतने की कला है। और जो जितना हार जाता है, उतना जीता हुआ हो जाता है।
प्रार्थना प्रेम का ही विस्तार है। पूजा प्रेम का ही विराट रूप है। वहां समस्त के सामने हम अपने को हारा हुआ छोड़ रहे हैं। हम कह रहे हैं कि हम पराजित हो गए, हम झुकते हैं, हम मिटने को राजी हैं। और जो मिटने को राजी है, वह कभी नहीं मिटेगा। और जो अकड़ा रहने की कोशिश कर रहा है, वह प्रतिपल मिट रहा है, और खंडहर होता जा रहा है। जब कोई मर जाता है, नदी उसे संभाल लेती है; और जब कोई लड़ता है, तब उसे डुबा देती है। यह अस्तित्व की नदी के संबंध में ख्याल रहे।
"विराग की अवस्था को जब तू प्राप्त कर चुकेगा, तब वे द्वार, जिन्हें तुझे मार्ग पर चल कर जीतना है, तुझे अपने भीतर लेने के लिए अपना हृदय पूरा- का-पूरा खोल देंगे, प्रकृति की बड़ी से बड़ी शक्तियां भी तब गति को रोक नहीं सकेंगी।"
अभी हमें प्रकृति की छोटी से छोटी शक्तियां भी खींच लेती हैं। क्योंकि कोई और बड़ा खिंचाव हमारे भीतर नहीं है, जो सुरक्षा बन सके। अभी क्षुद्र सी बात भी हमें आकर्षित कर लेती है, क्योंकि हमारे पास विराट से आकर्षित होने की सुविधा, मार्ग, द्वार अभी बंद हैं।
हम क्षुद्र से प्रभावित भी इसलिए होते हैं, उसका कारण कुल इतना है कि हमने विराट से प्रभावित होने का रास्ता ही बंद कर रखा है। और लोग लड़ते ही रहते हैं। या तो क्षुद्र पाने को लड़ते हैं या क्षुद्र से छूटने को लड़ते हैं।
एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहने लगा कि--और व्यक्ति उस भांति के आते हैं--कि बस मुझे क्रोध से छुटकारा चाहिए। मैंने उसे कहा कि क्रोध से छुटकारा सीधा नहीं हो सकता। क्रोध होता ही इसलिए है कि तुझे शांति का कोई पता ही नहीं है। और शांति का तुझे पता होना शुरू हो जाए, तो क्रोध अपने आप गिरेगा और शांत हो जाएगा। तू क्रोध की फिक्र छोड़ दे। इस चिंता से भी क्रोध बढ़ेगा, घटेगा नहीं। इस निरंतर ख्याल से कि क्रोध से कैसे बचूं, तेरा ध्यान और भी क्रोध पर एकाग्र हो गया।
और जहां चित्त एकाग्र हो जाता है, वही चीज शक्तिशाली हो जाती है।
वह आदमी चौबीस घंटे कोशिश कर रहा है कहीं क्रोध न हो जाए, और चौबीस घंटे क्रोध में उलझा हुआ है। और दिन भर बचा-बचा कर किसी तरह संभाल पाता है। संभाल क्या पाता है, वह जो दिन में अलग-अलग फूट कर क्रोध निकलता है, वह इकट्ठा हो जाता है और सांझ सबेरे कभी न कभी वह फूट पड़ता है। यह क्रोध और खतरनाक हो गया; इससे तो छोटा-छोटा निकल जाना बेहतर था, कम घातक था। यह तो जहर इकट्ठा हो कर निकला, बहुत भयंकर हो गया। और इसकी ही लपटें बन जाती हैं। आपको शायद पता न हो, जो लोग धीरे-धीरे रोज क्रोध करते हैं, वे कभी कोई बड़ा उपद्रव नहीं कर पाते हैं। आप पक्का समझें कि वे किसी की हत्या नहीं कर सकते, न आत्महत्या कर सकते हैं। लेकिन जो लोग संभाले रखते हैं, वे खतरनाक हैं। ऐसा कोई आदमी आसपास हो, तो उससे सावधान रहना, जो क्रोध संभाले रखता है, क्योंकि वह जहर इकट्ठा कर रहा है, और जहर में से सत्व इकट्ठा कर रहा है। वह छोटा उपद्रव नहीं करेगा। जब भी होने वाला है, बड़ा ही उपद्रव होने वाला है। उसके निकास के द्वार बंद हो गए, जहां से गंदगी रोज निकल जाती थी, और रेचन हो जाता था। अब तो गंदगी तभी निकलेगी जब वह संभाल ही न पाएगा। अब तो गंदगी तभी निकलेगी, जब उससे ज्यादा हो जाएगी, उसके वश के बाहर होगी।

छोटा क्रोध बुरा नहीं है, रेचक है। पर बड़ा क्रोध खतरनाक है। लेकिन छोटा हो या बड़ा, क्रोध से सीधा नहीं छूटा जा सकता। क्रोध की फिक्र ही छोड़ दें। शांत होने की कला क्या है, इसकी चिंता करें। जैसे-जैसे शांति की लहरें भीतर उतरने लगेंगी, और शांति का संगीत गूंजने लगेगा, और शांति के थोड़े से फूल खिलने लगेंगे; अचानक आप पाएंगे कि वह जो क्रोध की क्षमता थी, वह तिरोहित हो गई। वह अब नहीं है। वह थी ही इसलिए।
क्षुद्र इसलिए खींचता था, क्योंकि विराट का द्वार बंद था। व्यर्थ इसलिए सार्थक मालूम होता था कि सार्थक का हमें कोई पता नहीं था। सार्थक का पता होते ही व्यर्थ, व्यर्थ हो जाता है। व्यर्थ होते ही कोई उसे नहीं पकड़ता। जब तक हम उसे पकड़ते हैं, तब तक वह सार्थक है। और हमें सार्थक की कोई प्रतीति नहीं हो रही है, इसलिए वह सार्थक है।
यह सूत्र कहता है, प्रकृति की बड़ी से बड़ी शक्तियां भी तब तेरी गति को रोक नहीं सकेंगी। तब तू सप्तवर्णी मार्ग का स्वामी हो जाएगा; लेकिन, ओ परीक्षा के प्रत्याशी, उसके पहले यह संभव नहीं है, विराग के पहले यह संभव नहीं है।
क्षुद्र शक्तियों में हम जी रहे हैं। जीना पड़ता है, कोई उपाय भी नहीं
है और क्योंकि विराट शक्तियां हमें उपलब्ध नहीं हैं। निकट ही उनके स्रोत हैं कि हम थोड़ा खटखटाएं, तो वे स्रोत हमारे हो जाएं। लेकिन या तो हमें खटखटाने का ख्याल ही नहीं आता, या हम गलत खटखटाते हैं।
जीसस ने कहा हैः "नॉक एण्ड दि डोर शैल बी ओपन्ड अनटू यू", "खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे।" सच तो यह है कि द्वार बंद ही नहीं हैं। लेकिन हमें खटखटाना ही नहीं आता। और जो भी हम करते हैं, उससे हम उलटा कर लेते हैं। हमारी अवस्था ऐसी है, जैसे किसी आदमी को नींद न आती हो, तो वह हजार उपाय करता है नींद लाने के। जितने उपाय करता है, उतनी नींद और मुश्किल हो जाती है क्योंकि उपायों से नींद और नहीं आ सकती है। उपाय और नींद में विरोध है। जिसको नींद नहीं आती, उससे कहें कि उपाय मत करो, तो वह नाराज होगा। वह कहता है, वैसे तो मुझे नींद नहीं आती, उपाय करके भी नहीं आती और तुम कहते हो कि उपाय मत करो। वह उपाय क्या करता है?
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को नींद नहीं आती थी। हजार उपाय
कर चुका था। जो भी बताता था, वह करता था। उपायों की वजह से और मुसीबत हो गई क्योंकि रात उपाय करने में बीत जाती थी। और उपाय करके वह इतना एक्साइटेड, इतना उत्तेजित हो जाता था कि उसकी वजह से और भी नींद मुश्किल हो जाती थी। आखिर उसकी पत्नी ने कहा कि मुल्ला, तुम फिजूल के बड़े जटिल उपायों में पड़े हो। मैंने तो सुना है बचपन से कि कुछ ज्यादा करने की जरूरत नहीं है, तुम ऐसा करो कि भेड़ों की गिनती किया करो। घर में भेड़ें हैं। गिनती करो एक से सौ तक। जब तक तुम सौ पर पहुंचोगे, सारा ख्याल छोड़कर--एक भेड़, दो भेड़, तीन भेड़ गिनती करते गए, भेड़ों को देखते गए, सौ तक भी नहीं पहुंच पाओगे कि नींद लग जाएगी।
मुल्ला ने वह भी कोशिश आजमाई। सुबह उसकी पत्नी ने पूछा, कैसा हाल है? उसने कहा कि मूरख, तूने मुझे ऐसा उलझाया कि एक रात तो क्या कई रात न सो सकूंगा। क्या हुआ? उसने कहा, मैं गिनती करता ही गया, लाखों के पार गिनती निकल गई, सिर चकराने लगा। फिर मैंने सोचा यह ठीक नहीं है, फिर मैंने सोचा कुछ और करूं, तो लाखों भेड़ें थीं घर में--क्या करूं? ऊन काट डाला। ऊन कट गया लाखों भेड़ों का। फिर इस ऊन का क्या करना? कोट सिला डाले, फिर एक मुसीबत आई कि लाखों कोट इकट्ठे हो गए, इनको खरीदेगा कौन? बिकेंगे कहां? और अभी मैं इसी चिंता में पड़ा था कि तू आकर पूछ रही है।
वह जो नींद है, उसका अर्थ ही है कि वह तब आती है, जब आप कुछ कर नहीं रहे हों। जब आप कुछ कर रहे होते हैं, तब वह नहीं आती। करना ही उसमें बाधा है, प्रयत्न ही विरोध है, चेष्टा ही उपद्रव है। नींद आती है तब, जब आप कुछ कर नहीं रहे हैं; नींद लाने की कोशिश भी नहीं कर रहे हैं। जब सब कोशिश नहीं हो जाती है, अचानक आप पाते हैं, नींद उतर गई।
अगर हम जीवन के द्वारों को गलत ढंग से खटखटाएं, तो भी मुसीबत हो जाएगी। और जितना सूम में प्रवेश होता है, उतनी ही जटिलता बढ़ती चली जाती

है। क्योंकि स्थूल को तो हम समझ भी लें, सूम को समझना और भी मुश्किल हो जाता है। बड़ी से बड़ी तकलीफ यही है कि हम क्षुद्र के साथ उलझे हुए हैं। चाहे हम गृहस्थ हों, चाहे हम संन्यासी हों। गृहस्थ उलझे हैं क्षुद्र के साथ कैसे क्षुद्र को इकट्ठा कर लें--धन को कैसे इकट्ठा कर लें, मकान कैसे बना लें, जायदाद कैसे बड़ी हो, जमीन कैसे बड़ी हो--इसमें उलझा है।
संन्यासी भी इसी क्षुद्र में उलझा है कि मकान का मोह कैसे छूटे, धन की तृष्णा कैसे छूटे, कैसे मुक्त हो जाऊं जमीन-जायदादों के उपद्रव से। वह भी उससे उलझा है। दोनों के भाव विपरीत हैं, लेकिन दोनों का केंद्र एक है। दोनों ही क्षुद्र में ग्रसित हैं। एक पीठ किए खड़ा है और एक मुंह किए खड़ा है। एक क्षुद्र की तरफ भाग रहा है और एक क्षुद्र की तरफ से भाग रहा है। लेकिन क्षुद्र दोनों के प्राणों में समाया है।
वास्तविक संन्यासी क्षुद्र की चिंता नहीं करता, विराग की चिंता करता
है। क्षुद्र का विचार ही नहीं करता है। उसको इतना भी मूल्य नहीं देता
कि उसका विरोध करना है। विरोध करना भी मूल्य देना है, विरोध करना भी क्षुद्र की शक्तियों को स्वीकार करना है। विराग का अर्थ है, क्षुद्र की शक्ति की हम कोई चिंता ही नहीं करते--पक्ष या विपक्ष दोनों में। हम खोज करते हैं विराट की।
और जिस दिन भी विराट की किरण टूटनी शुरू हो जाती है, क्षुद्र तिरोहित
हो जाता है। वह आपके हृदय में तभी तक है, जब तक विराट का संस्पर्श नहीं है। इसलिए नकार में न पड़ें, संसार के नकार में न पड़ें। दुनिया के अधिक धर्म इसलिए व्यापक नहीं हो पाए कि वे संसार के नकार में पड़ गए, क्षुद्र की लड़ाई में पड़ गए।
मैं ऐसे संन्यासी को जानता हूं, जिनका चौबीस घंटे चिंतन इसी में बीतता है--यह नहीं खाना, यह नहीं पीना; ऐसे उठना, ऐसे बैठना; इतनी रात सोना, इतनी सुबह उठना। इसमें बुरा कुछ भी नहीं है। लेकिन चौबीस घंटे अगर इसी में बीतता हो, तो यह आदमी अति क्षुद्र में गिर गया। ठीक है कि कोई सुबह पांच बजे उठ आए, और ठीक है कोई रात नौ बजे सो जाए। कुछ हर्जा नहीं; बहुत अच्छा है। लेकिन यह आब्सैसन बन जाए, चौबीस घंटा यही चिंतन चलने लगे कि अगर नौ बजे न सोएं तो कोई पाप हो गया, कि सुबह पांच बजे ब्रह्ममुहूर्त में नींद न खुली, तो नरक में पड़ जाएंगे, तो फिर यह अतिशय हो गई बात। यह आदमी बीमार है। मनसविद इस तरह के आदमी को रुग्ण कहते हैं। यह रोग अलग-अलग तरह से प्रकट होता है।
मैं एक सज्जन को जानता हूं, जो घर की सफाई में पागल हैं। सफाई अच्छी चीज है और कोई नहीं कहेगा कि बुरी है, लेकिन सफाई पागलपन बन जाए! उनके घर वे मित्रों को नहीं बुलाते; उनके सोफा, कुर्सी गंदे हो सकते हैं। जब भी कोई उनके घर जाता है तो वे नीचे से ऊपर तक पहले देखते हैं कि आदमी बिठाने लायक है या नहीं! जरा सा कचरे का टुकड़ा घर में प्रवेश नहीं कर सकता। घर उनका बिल्कुल साफ-सुथरा है कि रहने के योग्य नहीं! वे खुद ही मुश्किल से उसमें रहते हैं, क्योंकि उनसे भी तब थोड़ी गंदगी कुछ हो जाए, तो वे बच-बच कर जीते हैं! जैसे कि वे सफाई करने के लिए इस घर की, पैदा हुए हैं। सफाई ठीक है, लेकिन सफाई रोग हो जाती है, जब वही जीवन का लय हो जाए।
विवेकानंद ने कहा है कि मेरे मुल्क का धर्म चौके-चूल्हे में नष्ट हो गया है। पूरे वक्त चिंता लगी है कि किसी ने भोजन तो नहीं छू दिया, पानी किसी ने स्पर्श तो नहीं कर दिया। किसने स्पर्श किया है?
एक मित्र को मैं जानता हूं, कभी एक बार उनके साथ मुझे यात्रा करने का मौका आया, तो उनकी चिंताएं देख कर मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने कहा कि अगर इन चिंताओं से कोई आदमी मोक्ष की तरफ जाता है, तो फिर नरक जाना बेहतर है। क्योंकि उनकी चिंताएं ऐसी हैं कि नरक से बदतर--नारकीय हैं। और चौबीस घंटे उन्हीं चिंताओं में हैं वे। वे मुझसे कहने लगे कि चल तो रहे हैं, लेकिन खबर नहीं कर पाए क्योंकि मैं सफेद गाय का दूध पीता हूं। सफेद गाय का, काला- चिट्ठा भी हो, तो नहीं पीते।
शुभ्र, अच्छी बात है। लेकिन किसने कहा? यह पागलपन हो गया। और शुभ्र गाय अच्छी होती है, काली गाय बुरी होती है, यह किसने कहा? काले रंग की

बुराई इतनी गहरी पकड़ गई दिमाग में। और दूध के सिवा कुछ लेते नहीं हैं! सिर्फ दूध लेते हैं, वह भी सफेद गाय का दूध लेते हैं! जिसके घर में वे रुक जाते हैं, वह घर भी उनके साथ पगला जाता है। यह अतिशय है। तीन बजे रात को उठ जाते हैं। जिनके घर में रुकते हैं, उस घर के सारे लोगों को भी तीन बजे रात उठ जाना पड़ता है। तीन बजे रात से वे जोर से मंत्रोच्चारण शुरू करते हैं। उनकी पत्नी ने मुझसे शिकायत की, तब मुझे उनका परिचय हुआ। उनकी पत्नी ने मुझे आकर कहा कि आपके पास कभी-कभी आते हैं, थोड़ा उनको समझाइए कि आधी रात मंत्रोच्चारण ठीक नहीं है। घर में बच्चे भी हैं, मैं भी हूं और सब मुश्किल में पड़ गए हैं। लेकिन वे धार्मिक हैं, और हम कुछ भी कहें, तो वे समझते हैं, यह नास्तिकता है। और उनकी आंखों में ऐसा भाव आ जाता है कि हम सब नरक जा रहे हैं और वे स्वर्ग जा रहे हैं। और आधी रात से शुरू कर देते हैं।
मैंने उनसे पूछा कि आपको आधी रात से मंत्रोच्चारण करने को किसने कहा? तीन बजे सुबह, आधी रात नहीं है? और कुछ गलत नहीं कर रहे हैं, पर तीन बजे सुबह! और जो सो रहा है तीन बजे, वह गलती कर रहा है। उनकी हालत धीरे-धीरे खराब होती चली गई और इन छोटी-छोटी बातों में घिर कर करीब-करीब रोग-ग्रस्त हो गए हैं। और परमात्मा और मोक्ष तो बहुत दूर रहे, इन सब बातों से कुछ लेना- देना भी नहीं।
मैंने सुना है, कि कहीं एकनाथ ने कहा है कि जब मेरी नींद खुल जाती है,
तब ब्रह्ममुहूर्त है, क्योंकि जब ब्रह्म मुझे जगा देता है तभी ब्रह्ममुहूर्त है। मैं अपनी तरफ से न जागने की कोशिश करता हूं, न अपनी तरफ से सोने की कोशिश करता। जब ब्रह्म मुझे सुला देता है, तो सो जाता हूं, और जब ब्रह्म मुझे जगा देता है, तो उठ जाता हूं। मैं क्यों फिक्र करूं, जब वही फिक्र ले रहा है?
हम तो इस तरह के लोग हैं कि अगर रेलगाड़ी में भी बैठे हैं तो सिर पर अपना बिस्तरा रख लेते हैं कि रेलगाड़ी पर ज्यादा वजन न पड़े। जिस अस्तित्व में हम बहे जा रहे हैं, वह हम सबको, हमारे भार को लिए जा रहा है। अब हम और भार अपने सिर पर रखकर क्यों बैठ जाएं? इसका मतलब यह नहीं कि मैं आपको कह रहा हूं कि घर को गंदगी से भर दें। वैसे लोग भी हैं और ये सब लोग अब तक धार्मिक समझे जाते रहे हैं, ये सब मनस्चिकित्सा के योग्य हैं। ऐसे लोग भी हैं, जिनको आपने सुना होगा, इन लोगों को लोग परमहंस कहते हैं, वे वहीं पाखाना कर लेंगे और वहीं बैठ कर खाना खाएंगे! तब लोग कहते हैं ये हुए परमहंस; अब भेद मिट गया। पर इनकी चिकित्सा की जरूरत है।
स्वच्छता भी इतना पकड़ सकती है कि आप पागल हो जाएं, और गंदगी भी इतना पकड़ सकती है कि आप पागल हो जाएं। और दोनों छोरों पर संत विराजमान हैं। आप मध्य में रहना। और समझ, बोध। और किसी भी चीज को रोग मत बना लेना। क्षुद्र से बचना, उसका मतलब यह नहीं है कि क्षुद्र को छोड़ने में लग जाना। उसका इतना ही मतलब है कि क्षुद्र को मूल्य ही मत देना।
ठीक है, फिकर करना विराग की। अपनी चेतना, अपना ध्यान, अपनी ऊर्जा विराट की तरफ लगाना। जल्दी ही द्वार खुल सकते हैं। और जिस दिन विराट की शक्ति आपको मिलनी शुरू हो जाती है, क्षुद्र ऐसे ही बह जाता है, जैसे जोर की बाढ़ आ जाए और सब गंदगी बह जाए। जैसे सुबह का सूरज निकले और ओस के कण तिरोहित हो जाएं। कोई पागल है, जो ओस के कणों को साफ करता फिरे। कोई जरूरत नहीं है। सूरज के निकलने की प्रतीक्षा करें। या ऐसा समझें कि कोई अंधेरे को हटाने की कोशिश कर रहा है, तो पागल है। दीया
जलाना काफी है; दीया जलाते ही अंधेरा नहीं पाया जाता।
"तब तू सप्तवर्णी मार्ग का स्वामी हो जाएगा। लेकिन, ओ परीक्षा के प्रत्याशी, उसके पहले यह संभव नहीं है।"
किसके पहले?
विराग के पहले यह संभव नहीं है।
विराग के संबंध में एक बात और, फिर आगे प्रवेश करें।
विराग एक विधायक अवस्था है, नकारात्मक नहीं। शब्द नकारात्मक है, इससे झंझट होती है। और शब्दों के नकारात्मक होने का कारण है; क्योंकि शब्द आदमी को देखकर बने हैं, जैसे हिंसा विधायक शब्द है और अहिंसा नकारात्मक। होना

नहीं चाहिए ऐसा। बड़ी भूल है। अहिंसा बड़ी विधायक स्थिति है, पॉजिटिव। हिंसा नकारात्मक है।
लेकिन फिर ये शब्द उल्टे क्यों हैं?
ये शब्द उल्टे इसलिए हैं कि जैसा आदमी है, उसमें हिंसा विधायक है। और अहिंसा का तो वहां कोई पता नहीं है। आदमी ने शब्द बनाए हैं। आदमी ने अपने काम के लिए शब्द बनाए हैं। हिंसा आदमी में विधायक है, और अहिंसा का तो कुछ पता नहीं है। कभी किसी बुद्ध, महावीर में विधायक होती है। और जब बुद्ध, महावीर में अहिंसा प्रगट होती है तब पता चलता है कि हिंसा नकारात्मक है। अहिंसा का अभाव है--कहना ठीक है। हिंसा का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन हमारे सब कीमती शब्द नकारात्मक हैं। क्रोध विधायक है, अक्रोध नकारात्मक है। परिग्रह विधायक है, अपरिग्रह नकारात्मक है। राग विधायक है, विराग नकारात्मक है। जब कि सब स्थिति बिल्कुल उल्टी है। राग सिर्फ इसलिए है कि आपके जीवन में विराग मौजूद नहीं है। अंधेरा इसीलिए है कि प्रकाश मौजूद नहीं है। अंधेरे का अपना होना नहीं है। प्रकाश होगा और अंधेरा नहीं हो जाएगा। विराग होगा और राग शून्य हो जाएगा।
यह बात ठीक से समझ लें कि विराग चित्त की एक विधायक स्थिति है। राग का विरोध नहीं है, राग का अभाव है, राग की समाप्ति है। और सिर्फ राग की समाप्ति और अभाव ही नहीं है, विराग का अपना होना है।
क्या हुआ मतलब विराग का?
राग का मतलब है चित्त भागता है, किसी के पीछे। विराग का अर्थ हुआ चित्त रुका हुआ है, भागता नहीं है किसी के पीछे। राग है भागता हुआ मन, विराग है ठहरा हुआ मन। राग है मांगता हुआ भिखारी, विराग है सम्राट। लेकिन हमारे तो सम्राट भी भिखारी हैं। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि हमारे कुछ भिखारी सम्राट हो गए हैं।
बुद्ध भिखारी हैं। और अपने संन्यासियों को उन्होंने भिक्षु नाम दे दिया। भिखारी का नाम दे दिया, जानकर। क्योंकि सम्राट इतने भिखारी मालूम पड़ रहे हैं, तब उचित यही है कि सम्राट अपने को सम्राट न कहें और भिखारी कहें। जहां भिखारी अपने को सम्राट कह रहे हैं, वहां यही उचित है कि वह जो सम्राट है, वह अपने को सम्राट न कहे। इसलिए हिंदुओं का शब्द स्वामी बुद्ध ने उपयोग नहीं किया। क्योंकि स्वामी का अर्थ होता है सम्राट। तो बुद्ध ने कहा, जहां सब भिखारी अपने को सम्राट समझे बैठे हैं, अब वहां असली सम्राट अपने को सम्राट कहे, तो बड़ी विबूचन होगी; विडंबना हो जाएगी। इसलिए मैं अपने स्वामी को, अपने संन्यासी को, अपने सम्राट को भिक्षु कहूंगा।
यह हमारे मुंह पर चोट थी, मगर समझी नहीं जा सकी। हमारा सम्राट भी भिखारी है; क्योंकि राग में है, मांग रहा है।
सुना है मैंने, एक मुसलमान फकीर हुआः फरीद। उसका गांव बड़ी मुसीबत में था। और गांव के लोगों ने फरीद से कहा कि अकबर तुझे इतना मानता है, तू एक बार जाकर इतना कह कि इस गांव के लिए कुछ इंतजाम कर दें, कम से कम एक पाठशाला खुलवा दें।
फरीद ने कभी मांगा नहीं था किसी से। गांव के लोगों ने कहा, तो फरीद इंकार भी न कर सका। इंकार करने की उसकी आदत भी न थी। तो चल पड़ा दिल्ली की तरफ। सुबह-सुबह पहुंचा, तो पता चला कि सम्राट अभी नमाज पढ़ रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं। तो फरीद पीछे जाकर खड़ा हो गया कि ठीक मौके पर आ गया हूं। प्रार्थना करने के बाद आदमी में दान करने की वृत्ति थोड़ी ज्यादा होती है।
इसलिए भिखारी सुबह-सुबह आपके पास आते हैं। शाम को कोई भिखारी भिक्षा मांगने आपसे नहीं आता है। शाम तक आप इतने पिट चुके हैं, और इतने नाराज हैं दुनिया से कि आप दे नहीं सकते। भिखारी से कुछ छीन लें, इसका डर है। एकांत पाकर अकेले में, अंधेरे में, भिखारी के पास जो है, वह ले लें, इसका डर है। भिखारी सुबह की रोशनी में आता है। रात भर के थोड़े ताजे, संसार से थोड़े शांत, सुबह डर कम है, आशा ज्यादा है।
तो सोचा फरीद नेः चलो, पीछे खड़ा हो जाऊं, जैसे ही सम्राट की पूजा, प्रार्थना पूरी हो, तत्क्षण कहूंगा कि एक छोटा सा मदरसा मेरे गांव में

खुलवा दें। लेकिन जब पीछे जाकर खड़ा हुआ, तो सुना कि अकबर हाथ जोड़ कर कह रहा है कि हे परमात्मा, मेरा धन बढ़ा, मेरी दौलत बढ़ा, मेरे साम्राज्य को बड़ा कर। तो फरीद की श्वास ही घुट गई। अब यह खुद ही मांग रहा है, इस गरीब आदमी से और एक पाठशाला खुलवानी, नाहक और गरीब हो जाएगा! लौटने लगा कि कहीं देख न ले, नहीं तो मुझे बताना पड़ेगा कि किसलिए आया था। भागने लगा।
अकबर ने लौटकर देखा कि क्या हुआ। देखा--फरीद। फरीद का बड़ा सम्मान था अकबर के मन में। उसने कहा, आए और चले! कैसे? फरीद ने कहा, पूछो ही मत; क्योंकि झूठ मैं बोल नहीं सकता, और सच कहना अब योग्य नहीं है, अशिष्टता हो जाएगी। तुम मुझे माफ करो, गलती से आ गया हूं, मैं जा रहा हूं। अकबर ने हाथ पकड़ लिए कि ऐसे नहीं जाने दूंगा, कम से कम पता तो चले। तुम तो कभी आए नहीं आज तक, क्या है बात, कहो? मेरी सामर्थ्य में होगी, तो जरूर पूरा करूंगा। फरीद ने कहा कि तेरे सामर्थ्य में नहीं है, बड़ी कठिन बात है। और गलती से हम आ गए। और जिसकी सामर्थ्य में है, उसका भी पता हमें आकर चल गया; इतना लाभ हुआ।
अकबर ने कहा कि फिर भी सुनूं तो मैं। न भी पूरा कर सकूं, तो भी यह चिंता मेरे मन पर मत छोड़ जाओ कि तुम क्यों आए। उसने कहा कि कोई बात थी, जरा जटिल है। गांव के लोग पीछे पड़ गए हैं, एक पाठशाला खुलवाने को। वे कहते हैं अकबर से कहो। नहीं नहीं, पर तू इसकी चिंता में पत पड़ अकबर, क्योंकि मैंने अभी तुझे भीख मांगते देख लिया। अब अगर मांगना ही है, तो उसी से मांग लेंगे, जिससे तू मांग रहा था। और अब बीच के भिखारी को क्यों दलाल बनाएं?
सम्राट भी हमारा भिखारी है, मांग रहा है, चाह रहा है।
राग भीख है, विराग स्वामित्व है।
वह विधायक अवस्था है, जब हम मांग नहीं रहे हैं। और जब तक हम मांग रहे हैं, तब तक प्रकृति से कुछ भी न मिलेगा। और जिस दिन नहीं मांगते, उस दिन प्रकृति की सारी संपदा बरस पड़ती है। ला आफ रिवर्स इफेक्ट, विपरीत परिणाम का नियम है।
"तब तक एक बहुत कठिन काम तुझे करना हैः तुझे अपने को एक साथ सर्व-विचार
भी अनुभव करना है और अपनी आत्मा से सर्व विचारों को निष्कासित भी करना है।"
यह जटिल काम है थोड़ा। यह थोड़ा जटिल इसलिए है। अगर समझने की कोशिश करेंगे, तो जटिल है। अगर करने की कोशिश करेंगे, तो इतना जटिल नहीं है। अभी तो विचार से भरे हैं, ग्रसित हैं। लेकिन कुछ विचार को अपना मानते हैं, कुछ विचार को अपना नहीं मानते! कुछ को अपना दुश्मन मानते हैं। एक हिंदू है, तो हिंदू-विचार को अपना मानता है; एक मुसलमान है, तो मुसलमान विचार को अपना मानता है। किसी का कुरान है अपना, किसी की गीता! किसी की बाइबिल अपनी है! और जिसकी बाइबिल अपनी है, कुरान उसके लिए शत्रु है, गीता उसके लिए शत्रु है।
तो विचार में हमने चुनाव कर लिया है। जैसे पूरी पृथ्वी पर हमने एक छोटा सा मकान बना लिया, और कहते हैं कि यह जमीन मेरी है! हालांकि जमीन अविभाजित है, और जमीन को बांटने का कोई उपाय नहीं है। सब जमीन का बंटाव नक्शों में है, और जमीन पर नहीं है। चाहे आप कहें कि भारत मेरा है, और पाकिस्तान मेरा नहीं है। तो भी जमीन पर भारत और पाकिस्तान एक हैं। आपके नक्शे में अलग होंगे। आदमी के नक्शों में बंटाव है, प्रकृति अविभाज्य है। जैसे जमीन नहीं बंटती, और बांटने का कोई उपाय नहीं है; खंड नहीं हो सकती, लेकिन हमारीफ्लड़ाई ऐसी है।
सुना है मैंने कि एक गुरु दोपहर को सोया। उसके दो थे शिष्य, वे दोनों सेवा के लिए बड़े उत्सुक थे। और दोनों एक साथ सेवा करना चाहते थे। तो गुरु ने कहा कि तुम ऐसा करो कि मुझे आधा-आधा बांट लो, एक का बायां, एक का दायां। शिष्य बड़े प्रसन्न हुए। इससे ज्यादा शिष्य और क्या पसंद करेंगे, गुरु को बांट लें! एक ने बायां पैर और बायां अंग ले लिया। एक ने दायां पैर और दायां अंग ले लिया। गुरु बड़ी मुसीबत में पड़ गया; क्योंकि गुरु बंट तो नहीं सकता था। गुरु ने करवट ली, बाएं पैर के ऊपर दायां पैर आ गया। बाएं पैर वाले शिष्य ने कहा, हटा अपने पैर को। अलग करो उस पैर को, यह नहीं चलेगा, मेरे पैर

पर, और तेरा पैर! मार-पीट की नौबत आ गई, गुरु पिट गया। बामुश्किल बच पाया शिष्यों से। उसने कहाः रुको भी, ठहरो भी, यह भी तो देखो कि मैं अविभाज्य हूं!
जमीन अनबंटी है। विचार का जगत भी अनबंटा है। विचार का जो जगत है, वह जमीन की भांति ही अनबंटा है। उसमें हिंदू और मुसलमान, और मेरा और तेरा, यह विचार अच्छा और यह विचार बुरा, और यह दुश्मन का और यह मित्र का, यह मेरे संप्रदाय का और यह तेरे संप्रदाय का, ये सारे के सारे, जैसे जमीन के नक्शे पर हम बांट लेते हैं, ऐसे ही विचार के नक्शे पर हमने बांट लिया है। ये सब झूठे बंटाव हैं। विचार का जगत एक है, जैसे जमीन एक है।
अभी इस युग में डिल्लार डी चार्जन ने, एक बड़े वैज्ञानिक ने, एक ख्याल दिया। वह ख्याल इस संदर्भ में समझने जैसा होगा। वह ख्याल यह है कि जैसे जमीन है, तो यह पहली पर्त फिर जमीन के बाद वायुमंडल है, हवा है; वह कोई दो सौ मील जमीन को चारों तरफ से घेरे हुए है--हवा का

वायुमंडल, एट्मासफियर। फिर चार्जन ने एक ख्याल दिया कि हवा के इस मंडल के पास विचारों का एक मंडल है। उसको उसने नो-स्फीयर, विचार-मंडल कहा है। वायुमंडल, फिर विचार-मंडल। यह बात बहुत दूर तक सच है।
इस जगत में जो भी विचार है, वह भी संगृहीत होता चला जाता है। नष्ट तो कुछ भी होता नहीं है; नष्ट कुछ हो नहीं सकता। चीजें बदलती हैं, नष्ट नहीं होतीं। कुछ समाप्त नहीं होता, कुछ पैदा नहीं होता; सतत प्रवाह है। एक जगह जो चीज हमें नष्ट होती दिखाई पड़ती है, वह केवल अदृश्य हो गई है; किसी दूसरी जगह फिर प्रकट हो जाती है। जैसे नदी की धारा जमीन के नीचे बहने लगी और हमें लगा कि समाप्त हो गई। या समझो कि नदी की धारा सागर में मिल गई और हमने समझा कि समाप्त हो गई। कुछ समाप्त नहीं होता। क्योंकि फिर बनेंगे बादल, और फिर उठेगा आकाश में नदी का जल, फिर बरसेगा उसी हिमालय पर; फिर गंगोत्री, फिर गंगा, फिर सागर; एक वर्तुल है। एक जगह से प्रकट और एक जगह से अप्रकट; लेकिन नष्ट कुछ भी नहीं होता। विचार भी इकट्ठे होते चले जाते हैं। वायुमंडल के चारों तरफ विचार का मंडल, इकट्ठा होता जा रहा है।
यह सूत्र कहता है कि तू अपने को विचार में मत बांटना, तू सर्व विचार अपने को मानना। तू समझना कि तेरा मन सर्व विचार है।
क्यों?
क्योंकि अगर सर्व विचार कोई अपने मन को मान ले, और समझ ले कि मैं सर्व विचार हूं, तो विचार से छुटकारा शुरू हो गया। क्योंकि विचार से बंधने के लिए जरूरी है कि कुछ विचार मेरा हो और कुछ मेरा न हो। तभी बंधन हो सकता है। अगर पूरी ही पृथ्वी मेरी हो, तो कहां उठाऊंगा
दीवाल, कहां करूंगा सुरक्षा? छोटा-मोटा टुकड़ा हो, तो दीवाल उठा लूं, आंगन घेर लूं। अगर पूरी पृथ्वी मेरी है, तो कैसे उठाऊंगा दीवाल, कहां उठाऊंगा दीवाल? किसके लिए उठाऊंगा, जब बांटना ही कुछ नहीं है? किसके लिए दीवाल उठाऊंगा?
सर्व विचार मैं हूं, ऐसी जिसकी प्रतीति है, वह संप्रदाय से मुक्त हो जाएगा, संकीर्णता से मुक्त हो जाएगा। और एक अनूठी बात घटित होगी; अगर सर्व विचार मैं हूं, तो आपको दिखाई पड़ेगा कि जो विपरीत विचार दिखाई पड़ते हैं, वे भी विपरीत नहीं हैं, वे भी जुड़े हुए, संयुक्त हैं। जो उलटा मालूम पड़ता है, जो दुश्मन मालूम पड़ता है, वह भी आपका ही हिस्सा है। जहां कंटरडिक्शन दिखाई पड़ता है, विरोधाभास दिखाई पड़ता है, वह भी आभास ही है। विरोध वहां भी नहीं है। लेकिन जब सर्व के साथ एकता होगी, तब होगा। और इतनी एकता हो जाए, तो छोड़ने में कठिनाई नहीं होगी।
यह बड़े मजे की बात है। अगर मेरे पास एक छोटा सा मकान है और जमीन का छोटा सा घेरा है, तो उसको घेरा बना कर मुझे रक्षा करनी भी पड़ती है। क्योंकि दूसरों से बचाना है। और फिर छोड़ने में भी बड़ी मुश्किल हो जाती है। जिसकी इतनी रक्षा की, इतना घेरा बनाया, उसके साथ राग, आसक्ति-भाव निर्मित हो जाता है। उसमें मैं प्रविष्ट हो जाता हूं, वह जमीन का टुकड़ा मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि क्षुद्र को छोड़ना बहुत मुश्किल बात है। लेकिन अगर पूरी पृथ्वी मेरी है, तो छोड़ना बहुत आसान है। क्योंकि पूरी पृथ्वी मेरी है, या पूरी पृथ्वी मेरी नहीं है, दोनों में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इसे ख्याल में ले लें। अगर छोटा टुकड़ा मेरा है, और छोटा टुकड़ा मेरा नहीं है, तो बहुत फर्क पड़ेगा। पूरी पृथ्वी मेरी है, या पूरी पृथ्वी मेरी नहीं है, क्या फर्क पड़ता है? दोनों बराबर हैं। अगर पूरा आकाश मेरा है, और पूरा आकाश मेरा नहीं है तो भी दोनों बराबर हैं। पूर्ण को छोड़ना बहुत आसान है।
इसलिए अगर बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति धन का त्याग कर सके, तो उसका कारण है। क्योंकि वे दरिद्र नहीं थे, उनके पास बहुत था, और बहुत को छोड़ना आसान है। क्षुद्र को छोड़ना बहुत मुश्किल है। सम्राट अपने साम्राज्य को छोड़ सकते हैं, फकीर अपनी लंगोटी को नहीं छोड़ पाते। सम्राटों के साम्राज्य से लंगोटी बड़ी सिद्ध होती है। है ही इतना कम कि और अब क्या छोड़ा जाए? और इतना कम है कि छूटा कि प्राण निकल जाते हैं।
जितना ज्यादा हो, उतना छोड़ना आसान हो जाता है।
यह बात सुन कर बहुत हैरानी होगी। और अगर वह पूर्ण हो, तो छोड़ना बिल्कुल ही सुगम है। क्योंकि दो पूर्णताओं में कोई भेद नहीं है। अगर पूरी पृथ्वी मेरी है और पूरी पृथ्वी मेरी नहीं है, इन दोनों में कोई भेद नहीं है। दोनों पूर्ण हैं। अगर सर्व विचार मेरे हैं, तो फिर सर्व विचार का त्याग आसान है।
यह सूत्र कहता हैः तब तक एक बहुत कठिन कार्य तुझे करना है। तुझे अपने
को एक साथ सर्व-विचार भी अनुभव करना है, और अपनी आत्मा से सर्व विचारों को निष्कासित भी करना है।
ये दोनों बातें घटित हो जाती हैं। अगर सर्व विचार मेरे हैं, तो सर्व विचार का त्याग भी इतनी ही आसानी से हो जाता है। पहले काम की फिक्र करें, तो दूसरा काम छाया की तरह आसान है। पहला काम ही कठिन है।
एक आदमी वेद को पकड़े हुए है, छोड़ना मुश्किल है। क्योंकि वेद मेरे हैं। कुरान तुम्हारा है, कुरान को छोड़ सकता हूं। बाइबिल को छोड़ सकता हूं, वे मेरे नहीं हैं। वेद मेरा है, या बाइबिल मेरी है तो कुरान छोड़ सकता हूं। छोड़ा ही हुआ है। पर बाइबिल को पकड़े हुए हैं। लेकिन यदि सभी शास्त्र मेरे हैं, तो छोड़ने में कोई अड़चन नहीं रही; अब कोई लगाव ही न रहा। सब बराबर हो गया। अब कोई तुलना न रही कि कौन छोटा है, कौन बड़ा है; कौन मेरा है, कौन मेरा नहीं है। सभी मेरे हैं और छोड़े जा सकते हैं।
जो व्यक्ति संप्रदाय नहीं छोड़ पाता, वह कभी धार्मिक नहीं हो पाता। सांप्रदायिक व्यक्ति कितना ही धार्मिक होने की चेष्टा करे, धार्मिक नहीं हो सकता। सीमा रोक लेती है। और सीमा जहां हो, वहां असीम से मिलन नहीं हो पाता। सब विचारों को समझ लें कि मेरा है। ऐसा सोचते ही आप पाएंगे, चित्त का बोझ हल्का हो गया। मस्जिद भी मेरी, मंदिर भी मेरा, शिवालय भी मेरा, गिरजा भी मेरा, बात ही खतम हो गई। कहीं जाने की जरूरत ही नहीं है। फिर आप जहां बैठे हैं, वहीं मंदिर, वहीं गिरजा, वहीं शिवालय, और वहीं मस्जिद है।
"तुझे मन की उस स्थिरता को उपलब्ध होना है, जिसमें तेज से तेज हवा भी किसी पार्थिव विचार को उसके भीतर प्रविष्ट न करा सके। इस तरह परिशुद्ध होकर मंदिर को सभी सांसारिक कर्म, शब्द व पार्थिव रोशनी से रिक्त करना है। जिस प्रकार पाला की मारी तितली देहली पर ही गिर कर ढेर हो जाती है, उसी प्रकार सभी पार्थिव विचारों को मंदिर के सामने ढेर हो जाना चाहिए।"
तुझे मन की उस स्थिरता को उपलब्ध होना है, जिसमें तेज से तेज हवा भी किसी पार्थिव विचार को उसके भीतर प्रविष्ट न होने दे। स्थिरता को जीएं। हमारा मन है कंपित, प्रतिपल कंपा हुआ। उसके कंपन के कारण ही कुछ भी इसमें प्रवेश कर जाता है। उसके कंपन के कारण ही संध हो जाते हैं, छिद्र हो जाते हैं। उसके कंपन के कारण ही हमारे भीतर कोई एक मजबूत अवस्था नहीं होती, कोई एक स्थिर अवस्था नहीं होती।
इसे थोड़ा ऐसा समझें, कि जब आपका मन बहुत चिंतित होता है, तब ख्याल करें, तब आप में न मालूम कितने-कितने विचार भीतर आने लगते हैं। जब आपका मन

शांत होता है, तब आप पर विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, विचार चारों तरफ आपके आस-पास हैं ठीक ऐसे ही हैं, जैसे आपके पास मक्खियां भिनभिना रही हों; जब भी छिद्र मिल जाता है, वे प्रवेश कर जाती हैं। और छिद्र मिल जाता है आपके कंपित होने से। अगर आप अकंप हैं भीतर, मन कंपता नहीं, तो कोई विचार भीतर प्रवेश नहीं करेगा।
इसे थोड़ा अनुभव से देखें तो आपको ख्याल में आ जाएगा, कि जब आप शांत होते हैं, तब एक अभेद दीवाल जैसी आपके भीतर खड़ी हो गई। अब कुछ आपके भीतर प्रवेश नहीं करता। जब आप अशांत होते हैं, तो ऐसा लगता है कि सब कुछ प्रवेश कर रहा है। कूड़ा-करकट, कुछ भी आपमें प्रवेश कर रहा है। और आप असमर्थ हैं रोकने में।
स्थिरता मन की कैसे हो उपलब्ध? क्या हम करें कि मन स्थिर हो जाए, रुक जाए?
दो-तीन बातें ख्याल रखें। उसी का हम यहां प्रयोग भी कर रहे हैं।
एक, जैसे ही यह ख्याल आए कि मन अतीत में गया, तत्क्षण उसे वापिस वर्तमान में ले आएं। सोचने लगे बचपन की, कोई अर्थ नहीं है। बचपन गंवाया होगा, बुढ़ापे की सोचने में, कि जवानी की सोचने में। अब जवानी गंवाएं बचपन को सोचने में। कोई अर्थ नहीं है, जो गया, वह गया; जो बीत चुका, वह बीत चुका। मत सोचें। उसमें अब कुछ भी किया नहीं जा सकता। और उसके संबंध में सोच कर वह जो समय अभी हाथ में है, वह खोया जा रहा है। कल उसके लिए पछताएंगे।
मैं एक जगह गीता पर बोल रहा था, दूसरे अध्याय पर बोल रहा था। एक सज्जन आए, दसवें अध्याय का सवाल लेकर! मैंने उनसे कहा, रुकें, दूसरा तो समझ लें। और दसवें पर जब बोलूंगा, तो देखा जाएगा। संयोग की बात अभी मैं दसवें पर बोल रहा था, कि वही सज्जन दूसरे अध्याय का सवाल लेकर आ गए। मैं उनको बोला, आप भूल गए, मैं नहीं भूला हूं। जब मैं दूसरे पर बोल रहा था, तब तुम दसवें का सवाल लेकर आए; अब मैं दसवें पर बोल रहा हूं, तो तुम दूसरे का सवाल लेकर आए! जो है, उसको नहीं समझोगे; जो नहीं है, उसकी चिंता में पड़े हो! तो ऐसे तो तुम सभी चूक जाओगे। और हम यही कर रहे हैं। यह क्षण पर्याप्त है। मत पीछे जाएं। आदत बन गई है, तो जैसे ही ख्याल आ जाए, फौरन वर्तमान में लौट आएं। कोई उपाय कर लें और वर्तमान में आएं। अगर ख्याल आ गया बचपन का तो छोड़ें। सामने पड़ा हुआ पत्थर है, उसको उठाकर उसको ही देखने लगें; आकाश में चांद है, उसको देखने लगें; वृक्ष में फूल खिले हैं, उसी को देखने लगें; हवा एक सुगंध ला रही है, उसको सूंघने लगें। कुछ न हो, लेट जाएं जमीन पर, वह जो जमीन उत्तप्त है, या शीतल है, उसकी ही संवेदना अनुभव करें। लेकिन वर्तमान में लौट आएं। अभी यहां कुछ हो रहा हो, उसमें हो जाएं।
ऐसे ही जब भविष्य में मन भागे, तो तत्क्षण वर्तमान में ले जाएं। अतीत
और भविष्य से बचें। आप थोड़े दिन में पाने लगेंगे कि मन स्थिर होने लगा। क्योंकि वर्तमान में कंपन का कोई उपाय नहीं है। सब कंपन पीछे से या आगे से आते हैं। अतीत जो नहीं है अब और भविष्य जो हुआ नहीं है, उसकी चिंता आपको कंपाती है।
एक दूसरी बात ख्याल रखें, कि जब भी मन बहुत कंपने लगे, तो उसके साक्षी
हो जाएं। देखें जैसे दूर खड़े हो गए अपने ही मन से, और देखने लगे। जैसे मन एक नदी की धार है और बही जा रही है। या मन जैसे एक पक्षियों की कतार है, और आकाश में उड़ी जा रही है। या मन जैसे सड़क का टैफिक है कि चला जा रहा है और आप किनारे खड़े हैं, और उसे देखते हैं दूर खड़े होकर, चुपचाप देखते हैं। अपने मन को दूर खड़े होकर देखने लगें। जल्दी ही पाएंगे, मन स्थिर हो गया, शांत हो गया। और यह कला जैसे बढ़ती जाएगी, वैसे ही तत्क्षण, जैसे ही आप साक्षी होंगे, विटनेस होंगे, कि मन स्थिर हो जाएगा।
तीसरी बात ख्याल में रखें, जो भी काम कर रहे हों, उसमें पूरी तरह तल्लीन हो जाएं। चाहे वह काम कितना ही क्षुद्र हो। भोजन कर रहे हों, पूरी तरह तल्लीन हो जाएं, जैसे अब जगत में कुछ और करने को नहीं है, बस भोजन ही करने को है। और इस भोजन में जितने उपाय हो सकें लीन होने के, सब उपाय कर लें, इसका स्वाद लें ठीक से।

आप कहेंगे, इसका तो स्वाद हम ठीक से लेते हैं। मैं नहीं मान सकता, क्योंकि आप भोजन करते वक्त भोजन में लीन होते ही कब हैं; दफ्तर में होते हैं; दुकान में होते हैं, बाजार में होते हैं, मित्र के पास होते हैं, किसी से झगड़ रहे होते हैं, या कुछ और कर रहे होते हैं, हजार काम कर रहे होते हैं, जब आप भोजन कर रहे होते हैं। स्वाद इतने कामों के साथ आपको नहीं आ सकता है। स्वाद लें, आहिस्ता चबाएं। स्वाद लें, गंध अनुभव करें। आंख से भी देखें, हाथ से भी स्पर्श करें, सभी इंद्रियों को लीन कर दें।
और मन में एक ही ख्याल रह जाए कि अभी मैं भोजन कर रहा हूं तो भोजन ही करूंगा। स्नान कर रहा हूं तो स्नान ही करूंगा। दुकान पर हूं तो दुकान पर ही रहूंगा। और मकान पर जाऊंगा, तो मकान पर आ जाऊंगा। जो कर रहे हैं, उसमें अपने को डुबा दें। आप पाएंगे कि मन स्थिर हो जाता है।
ये तीन बातें ख्याल में रहें, तो जल्दी मन स्थिर हो जाता है। फिर उसमें कोई तेज से तेज हवा भी एक विचार को प्रवेश नहीं करवा सकती। और तब इस स्थिर मन के बाहर विचार अगर बाहर फेंक भी जाएं, तो ऐसे ही गिर जाते हैं, जैसे पाला की मारी तितली, देहली पर ही गिर कर ढेर हो जाती है। ऐसे ही आपकी देहली पर भी विचार गिर कर ढेर हो जाते हैं। यह प्रतीक नहीं है, यह वास्तविक यथार्थ है। आप विचार का ढेर देख सकते हैं, अपनी देहली पर पड़ा हुआ। अगर यह स्थिरता आपके अंदर आ गई, और तब आप पाएंगे कि आप विचारों के न मालूम कितने दिन से शिकार हैं। न मालूम कैसे-कैसे विचार आप में प्रवेश करते रहे हैं। घर असुरक्षित था, द्वार पर कोई पहरेदार नहीं था। अब साक्षी का पहरेदार बैठ गया है। और वे जो हवाएं बहती थीं अतीत और भविष्य की वे भी, आपने उनका भी त्याग कर दिया। और वह जो आप वर्तमान के क्षण के कृत्य को छोड़ कर यहां-वहां भाग जाते थे, उसका भी आपने त्याग कर दिया। अब कोई उपाय नहीं है। अब विचार आपकी देहली पर गिर कर ढेर होते जाएंगे। और भीतर निर्विचार बढ़ता जाएगा। यह निर्विचार ही समाधि की तरफ रास्ता बनता है।
यह जो लिखित है उसे पढ़
"इसके पहले कि स्वर्ण-ज्योति-शिखा स्थिर प्रकाश के साथ जले, दीप को वायु-रहित स्थान में सुरक्षित रखना जरूरी है। बदलती हवाओं के सामने होकर प्रकाश की धारा हिलने लगेगी और उस हिलती शिखा से आत्मा के उज्जवल मंदिर पर भ्रामक, काली और सदा बदलने वाली छाया पड़ जाएगी।"
ऐसा बना लें अपने मन को, जैसे वायु-रहित कोई कक्ष हो, जिसमें कोई दीया जलता हो, तो कंपता न हो। विचार-रहित कक्ष जिस दिन आपके भीतर हो जाएगा, वायु-रहित हो गया। विचार-रहित जिस दिन कक्ष हो जाएगा, भीतर की ज्योति-शिखा जलेगी पूर्ण प्रकाश में, बिना जरा भी कंपित हुए। और एक भी विचार अगर उसमें आएगा, तो इस ज्योति-शिखा के आसपास आया विचार तत्क्षण मन की दीवाल पर छाया बन जाएगा। बहुत विचार आ जाते हैं, तो दीवाल अंधेरी हो जाती है, क्योंकि ज्योति-शिखा बिल्कुल रंग जाती है। एक भी विचार न होगा, तो मंदिर की अंतस दीवाल बिल्कुल स्वच्छ, शुद्ध, निर्दोष होगी। एक छाया जरा सी भी नहीं बनेगी। इस छाया-रहित मन में, इस अकंप वायु-रहित कक्ष में वह घटना घटती है, जिसको हम ब्रह्म ज्ञान कहते हैं। इसके लिए यह सब तैयारी से गुजरना जरूरी है।

समाधि के सप्त द्वार
बारहवां प्रवचन

सावधान!

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; प्रातः 15 फरवरी

और तब, ओ सत्य के संधानी, तेरे मन, आत्मा जंगल में दौड़ते-फिरने वाले पागल हाथी की तरह हो जाएंगे। जंगल के वृक्षों को जीवित शत्रु मानकर पागल हाथी सूर्य से प्रकाशित चट्टानों पर नाचने वाली अस्थिर छायाओं को मारने की चेष्टा में ही समाप्त हो जाता है।
सावधान हो, नहीं तो कहीं अहं की चिंता में देव-ज्ञान की भूमि पर तेरी आत्मा के पैर न उखड़ जाएं!
सावधान हो, नहीं तो कहीं तेरी आत्मा परमात्मा को भूल अपने कांपते मन
के ऊपर नियंत्रण न खो बैठे और इस प्रकार अपनी जीत का फल भी गंवा दे। परिवर्तन से सावधान, क्योंकि परिवर्तन तेरा बड़ा शत्रु है। यह परिवर्तन लड़ कर तुझे तेरे मार्ग से निकाल बाहर करेगा और तुझे संदेह के दुष्ट दलदल में गाड़ देगा।

और भी गहन कठिनाई सामने होनी शुरू होती है। जैसे ही हम जगत से अपनी चेतना को भीतर की तरफ मोड़ते हैं, वैसे ही क्या यथार्थ है और क्या अयथार्थ है, इसकी जांच कठिन हो जाती है। जैसे स्वप्न में होता है, स्वप्न में जो भी दिखाई पड़ता है, प्रतीत होता है यथार्थ है। क्योंकि मापदंड का कोई उपाय नहीं होता; कोई संगी-साथी साथ नहीं होते, कोई समाज नहीं होता, आप होते हैं अकेले, और जो आप देखते हैं, वह होता है। अगर मैं अभी आपको देख रहा हूं, तो उपाय है कि औरों से भी पूछ लूं कि आप दिखाई पड़ते हैं या नहीं? लेकिन अगर किसी को भी दिखाई न पड़ते हों और मुझे ही दिखाई पड़ते हों, तो संदेह हो जाएगा कि भ्रम है। लेकिन अगर मैं अकेला ही हूं और आप दिखाई पड़ते हैं और कोई नहीं है जिससे पूछ सकूं कि जो मैं देख रहा हूं, तुम्हें भी दिखाई पड़ता है या नहीं, तो फिर जांच का कोई उपाय न रहा।
स्वप्न में और यथार्थ में इतना ही तो फर्क है कि स्वप्न है निजी अनुभव, जिसमें दूसरा भागीदार नहीं हो सकता। क्या आप अपने स्वप्न में किसी को ले जा सकते हैं साथी बना कर कि वह भी आपके स्वप्न को देख ले? कोई उपाय नहीं। एक ही स्वप्न को दो व्यक्ति नहीं देख सकते। और इसलिए इसका कोई मार्ग नहीं है कि दोनों तालमेल बिठा लें कि हमने जो देखा, वह तुमने भी देखा है या नहीं देखा? कि जो देखा वह यथार्थ है या स्वप्न है। इसे कैसे जांचें? बाहर के जगत में जांच हो जाती है। सामूहिक सत्य और निजी सत्य में फर्क हो जाता है। जो आदमी सामूहिक सत्य में जीता है, उसे हम कहते हैं स्वस्थ। और जो निजी स्वप्नों में जीने लगता है, उसे हम कहते हैं, पागल है। पागल और आप में फर्क क्या है?
पागल में और आप में इतना फर्क है कि वह ऐसी सचाइयों में जी रहा है, जो केवल उसके लिए ही सचाइयां हैं और किसी के लिए सचाइयां नहीं हैं। एक पागल अकेला बैठा है, वह किसी से बात कर रहा है। वह जिससे बात कर रहा है, किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता है; सिर्फ उसी को दिखाई पड़ता है। आप उसे पागल कह पाते हैं; क्योंकि जो मात्र उसी को दिखाई पड़ता है और किसी को दिखाई नहीं पड़ता, वह भ्रम होगा। पागल अपने स्वप्न को सत्य मान रहा है। अगर आपको भी उसका साथी दिखाई पड़ने लगे, और सबको दिखाई पड़ने लगे, तो फिर वह पागल नहीं होगा। क्योंकि निजी न रही बात, सार्वजनिक हो गई। सार्वजनिक अगर कोई स्वप्न भी हो जाए, तो यथार्थ मालूम पड़ेगा। और कोई सत्य अगर निजी भी हो, तो बड़ी कठिनाई है जांच करने की कि वह सत्य है या स्वप्न है? इसलिए गुरु बहुत उपयोगी हो जाता है--उस अंतर्यात्रा में आपको जो अनुभव में आ
रहा है, वह सच में हो रहा है या सिर्फ कल्पना चल रही है? किससे मेल बिठाएंगे? कौन कहेगा कि ठीक है या गलत? कोई और जिसको अनुभव हो चुका हो, तो उसके अनुभव से आपका मेल बिठाया जा सकता है, तो थोड़ी सी सुविधा बनती है कि

हम स्वप्न में नहीं खो रहे हैं। लेकिन भीतर की यात्रा पर सबसे बड़ा खतरा यही है कि वहां बहुत कुछ होना शुरू होगा, जिसको आप तौल न पाएंगे कि वह वस्तुतः हो रहा है या सिर्फ प्रतीत हो रहा है, आभास है। और आप अकेले ही होंगे भीतर।
यह सूत्र इसी बात में संबंधित है, इस महाखतरे से संबंधित है। तो बहुत बार पागल लोग भी अपने को समझ लेते हैं कि वे आध्यात्मिक हो गए हैं। और तथाकथित आध्यात्मिक लोगों की अगर खोज की जाए, तो उनमें से सौ में से नब्बे विक्षिप्त अवस्था में होते हैं। थोड़ी संख्या नहीं है--सौ में से नब्बे विक्षिप्त हालत में होते हैं। और जो उन्हें प्रतीत हो रहा है, वह केवल स्वप्न होता है। लेकिन उनकी भी मजबूरी है और वे दया योग्य हैं। क्योंकि वे करें क्या? उन्हें अनुभव हो रहा है। कोई कृष्ण से बातें कर रहा है अपने भीतर, कोई राम के दर्शन कर रहा है अपने भीतर, किसी को स्वर्ग-नरक दिखाई पड़ रहा है। वस्तुतः यह हो रहा है या सिर्फ कल्पना चल रही है? यह स्वप्न का खेल है या वस्तुतः कृष्ण मौजूद हैं?
बड़ी कठिन है बात और मन मान लेने का होता है कि जो हो रहा है, वह सच है; क्योंकि सच मानने में अहंकार की तृप्ति होती है। अगर आपको कृष्ण के दर्शन हो रहे हैं भीतर और मैं कहूं कि नहीं यह सच नहीं है, तो आप क्रोधित होंगे। आप बड़ा मजा ले रहे थे; सपना बड़ा मीठा था, सुखद था। और एक बार कोई खलल डाल दे कि यह सपना है, फिर सुख खो जाता है।
सपने में सुख तभी तक आता है, जब तक सत्य मानते रहें। जैसे असत्य का
ख्याल हुआ कि सुख डांवांडोल हो जाता है। दोनों बातें संभव हैं कि भीतर जो हो रहा है, वह वास्तविक हो, और भीतर जो हो रहा है, वह काल्पनिक हो। दोनों बातें संभव हैं।
क्या है रास्ता? कैसे हम समझेंगे कि जो हो रहा है, वह वास्तविक है या अवास्तविक है? और भीतर आने वाली विक्षिप्तता से कैसे बचेंगे?
साधारण पागल भी हैं, आध्यात्मिक पागल भी हैं। और अक्सर तो ऐसा होता है
कि साधारण पागलों को अगर मौका मिल जाए, तो वे बहुत जल्दी आध्यात्मिक पागल हो जाते हैं। साधारण पागल की तो निंदा भी होती है, आध्यात्मिक पागल को सम्मान मिलने लगता है! लोग कहते हैं मस्त है, लोग कहते हैं समाविष्ट है। आप जान कर हैरान होंगे कि आधुनिकतम मनुष्य-विज्ञान की खोजों में एक खोज यह भी है कि जिन मुल्कों में धर्म कम हो जाता है, वहां पागलों की संख्या बढ़ जाती है। इससे लोग यह समझते हैं, कि कम से कम भारत के धार्मिक लोग ऐसा समझते हैं कि धर्म बड़ी ऊंची चीज है; इसलिए जहां धर्म नहीं रहता, वहां लोग पागल हो जाते हैं। ऐसा मामला नहीं है।
जहां धर्म हो, वहां पागलों को आध्यात्मिक होने का मौका रहता है-- आध्यात्मिक ढंग से पागल हो सकते हैं। इसलिए वहां पागलों की संख्या ज्यादा नहीं दिखाई पड़ती। क्योंकि उनमें से बड़ी संख्या आध्यात्मिक साधु-संत होकर बैठ जाते हैं। और जिन मुल्कों में धर्म नहीं है, वहां पागल को सिर्फ साधारण पागल होने का उपाय है, आध्यात्मिक पागल होने का उपाय नहीं। इसलिए जहां धर्म नहीं है, वहां पागलों की संख्या बढ़ जाती है। इसलिए आप यह नहीं समझना कि जहां धर्म है, वहां पागलों की संख्या कम है। संख्या उतनी ही है, लेकिन वहां पागल पागल की तरह नहीं समझे जाते हैं, उनको उपाय है।
अब जैसे समझें। ऐसे पागलों से मेरा काफी संबंध रहा है। अगर एक आदमी सौ बार हाथ धोता हो नल के नीचे शुद्धि के लिए, तो सारी दुनिया में उसको पागल समझा जाएगा; हिंदुस्तान में वह साधक हो सकता है! मैं एक सज्जन को जानता हूं, जो सुबह नल पर तीन बजे चार बजे पहुंच जाते हैं पानी भरने को; क्योंकि उनको ऐसा ख्याल है कि अगर किसी स्त्री की दृष्टि पड़ जाए पानी भरते वक्त, तो वह पानी अशुद्ध हो गया। फिर भी अगर किसी स्त्री की दृष्टि पड़ जाए, तो वह तत्काल पानी उंडेल कर बर्तन को फिर साफ करके, फिर पानी भरते हैं। ऐसा कई दफा हो जाता है। उन्हें सौ-सौ बार वह बर्तन साफ करके पानी भरना पड़ता है। लोग उनको बड़ा आदर देते हैं कि अदभुत साधक हैं। उनका काम यही है, ज्यादातर इसी में उनका समय व्यतीत होता है, बर्तन साफ करने में, फिर पानी भरने में! फिर कोई स्त्री--क्योंकि स्त्रियों की कोई कमी नहीं है--वह निकल रही है,

जरा सी भनक पड़ गई कि अशुद्ध हो गया! उनको लोग कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का बड़ा गहरा साधक है। पानी अपवित्र हो जाए जिसका स्त्री को देख कर उसकी ब्रह्मचर्य की साधना जरूर होगी; मगर यह आदमी पागल है। आब्सेसन है, कुंठा है इसके मन में; स्त्री से इतना भयभीत है कि इसका पानी अशुद्ध हो जाता है! और स्त्री से ही यह आदमी पैदा हुआ है। और कितना ही धोए शरीर को, स्त्री से यह शरीर मुक्त हो नहीं सकता। स्त्री का ही खून, मांस, मज्जा, हड्डी शरीर में है। जिस पानी को यह शुद्ध करके शरीर में पी रहा है, वहां स्त्री मौजूद है, वह सब नष्ट कर देगी। दुनिया में कहीं भी यह आदमी होता, यह पागलखाने में होता। इस मुल्क में यह आदमी सम्मानित है, आदृत है।
और पुरुष ही आदर देते हों, ऐसा नहीं, स्त्रियां और ज्यादा आदर देती हैं।
स्त्री उस आदमी को कभी आदर नहीं दे सकती, जो स्त्री को आदर दे। स्त्री उसी को आदर दे सकती है, जो उसकी निंदा करे। क्योंकि जो निंदा करता है, लगता है ऊपर हो गया। और जो आदर करता है, लगता है अभी हमारे साथ ही खड़ा है। इस तरह के जो पागल हैं, उनको स्त्रियां जितना आदर देती हैं, उतना पुरुष नहीं देते। क्योंकि वह स्त्रियों की भयंकर निंदा कर रहे हैं। अब इससे बड़ी और निंदा कुछ नहीं हो सकती कि स्त्री को देख कर उनका बर्तन का पानी अपवित्र हो जाता हो।
ये विक्षिप्तताएं हैं, ऐसी विक्षिप्तताएं बाहर भी चलती हैं, भीतर भी चलती हैं। बाहर चलती हैं, तो हमें दिखाई भी पड़ जाती हैं, भीतर चलती हैं, तो हमें दिखाई भी नहीं पड़ती हैं।
यह सूत्र इस संबंध में सचेत करने वाला है कि भीतर साधक जब प्रवेश करता है, तो कैसे खतरे उसे पकड़ ले सकते हैं।
प्रक्षेपण, प्रोजेक्शन सबसे बड़ा खतरा है।
"और तब ओ सत्य के संधानी, तेरे मन-आत्मा जंगल में दौड़ने-फिरने वाले पागल हाथी की तरह हो जाएंगे। जंगल में वृक्षों को जीवित शत्रु मानकर पागल हाथी सूर्य से प्रकाशित चट्टानों पर नाचने वाली अस्थिर छायाओं को मारने की चेष्टा में ही समाप्त हो जाता है।"
इस सूत्र के पहले हमने समझा कि जब व्यक्ति की चेतना भीतर स्थिर हो जाती है, लौ की भांति, जहां हवा का कोई कंपन न हो, तब छोटा सा भी विचार इस चेतना के आसपास आए, तो मन के पद पर उसकी छाया बनती है। जैसे कि कोई कमरा है शुभ्र दीवालों का, बंद है, कोई हवा का झोंका नहीं आता, दीए की ज्योति सतत जल रही है अकंप, तब एक छोटी तितली कमरे में उड़ने लगे, तो उस उड़ती तितली और प्रकाश के संबंध से दीवाल पर तितली की बड़ी छाया निर्मित होने लगेगी। तितली उड़ेगी, दीवाल पर छाया उड़ेगी।
साधारणतः इसका पता नहीं चलता, क्योंकि कमरे में बहुत चीजें हैं, बहुत छायाएं बन रही हैं। और दीये की लौ खुद ही कंप रही है, इसलिए सब छायाएं कंप रही हैं। कमरा छायाओं से भरा है और दीवालें सफेद भी नहीं हैं, काली हैं। कुछ पता नहीं चल रहा है। जैसे-जैसे मन शुद्ध होता जाएगा, दीवालें शुभ्र होने लगेंगी। जरा सी भी छाया होगी, तो स्पष्ट दिखाई पड़ेगी, अंकित होगी। और जैसे-जैसे लौ स्थिर होने लगेगी, दीवालें साफ होंगी, लौ बिल्कुल ठहरी होगी, तो जरा से विचार की भी कंपन की स्थिति छाया निर्मित करेगी।
विचार की भी छाया होती है। विचार भी पारदर्शी नहीं हैं, टरंसपेरेंट नहीं हैं। और चेतना जब स्थिर होती है, तो विचार की छाया मन के पद पर बनती है। उस छाया को अगर हमने जोर से पकड़ लिया, तो हम विक्षिप्त हो जाएंगे। और बड़ी सुखद छायाएं भी बनती हैं, बड़ी प्रीतिकर, जिनको पकड़ लेने का मन होता है। अब अगर कृष्ण बांसुरी बजा रहे हों दीवाल पर खड़े होकर, तो कौन नहीं होगा, जो उनके पैर न पकड़ ले? और फिर छोड़ने की हिम्मत किसकी होगी? जब सारे संसार के विचार छूट जाते हैं, तो हमारे अचेतन गर्भ में जो विचार सदियों-सदियों के संस्कार बन कर पड़े हैं, जो हमारे खून-मांस-मज्जा में प्रवेश कर गए हैं, उनकी छाया बननी शुरू हो जाएगी।
अब जैसे अगर एक आदमी हिंदू घर में कई बार पैदा हुआ है, तो कृष्ण, राम उसके बहुत गहरे में उतर गए हैं। कोई अगर जैन घर में बहुत बार पैदा हुआ है,

तो महावीर उसके बहुत गहरे में उतर गए हैं। वह विचार गहरी से गहरी भूमि में प्रविष्ट हो गया है। और जब हम सारे विचार उखाड़ कर फेंक देंगे, तब भी वह विचार नहीं उखड़ गया है, वह मौजूद है। और जब मन परिपूर्ण शुद्ध होने लगेगा और चित्त की लौ शांत स्थिर हो जाएगी, तो वह महावीर का जो विचार अचेतन में पड़ा है, वह जो प्रतिमा महावीर की अचेतन में पड़ी है, उसकी छाया बननी शुरू हो जाएगी। वह जो छाया दीवाल पर बनेगी, लगेगी कि महावीर का दर्शन हो रहा है। और कितनी बार चाहा था कि महावीर का दर्शन हो, कृष्ण का, क्राइस्ट का दर्शन हो और आज वह अहोभाग्य का क्षण आया कि दर्शन हो रहा है। अब यह छाया खतरनाक हो सकती है।
राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट सहयोगी हैं, बड़े दूर तक सहयोगी हैं, लेकिन अंतिम क्षण में वे भी बाधाएं हो जाती हैं और अंतिम क्षण में उनसे भी मुक्त हो जाना पड़ता है। ये छायाएं सुखद हों, तो पकड़ लेने का मन होता है। ये छायाएं दुखद हों, तो इनसे भयभीत होकर आदमी पागल हो सकता है। पागलपन दो तरह के हो सकते हैं भीतर। अगर आपको भीतर नरक दिखाई पड़ने लगे, तो आप उससे लड़ने में लग जाएंगे। अगर आपको भीतर स्वर्ग दिखाई पड़ने लगे, तो आप उसके साथ एक होने में लग जाएंगे। लेकिन दोनों हालत में आप चूक जाएंगे ज्योति और दोनों हालत में फंस जाएंगे छाया से।
एक संसार है हमारे बाहर। और एक संसार हमारे भीतर भी है स्वप्न का। जब
हम बाहर के संसार से छूटते हैं, तो उस स्वप्न के संसार के साथ हमारा मिलना होता है। वह संसार अलग-अलग ढंग का है, क्योंकि हर आदमी ने अलग-अलग तरह के सपने देखे हैं, और हर आदमी ने अलग-अलग तरह के विचार किए हैं, और हर आदमी ने अलग-अलग तरह की वासनाएं और आकांक्षाएं और इच्छाओं का सार अपने भीतर संगृहीत कर लिया है। अगर हम इसको ही भारत की पारिभाषिक शब्दावली में कहें तो यही हमारा कर्म-संस्कार है। जब सब छूट जाता है। तब हमारे कर्मों की शुद्धतम विचार-धारणाएं, प्रत्यय, कांसेप्ट हमारे चित्त की दीवाल पर प्रकट होने शुरू हो जाते हैं।
अभी पश्चिम में एल.एसड़ी. और उस तरह के बहुत से ड्रस पर बड़ा काम चलता है। और एक बहुत अनूठी बात पता चली, जो कि भारत को हजारों बल्कि लाखों साल से ख्याल में थी। लेकिन पश्चिम को जब तक कोई वैज्ञानिक ढंग से पता न चल जाए, बात तब तक स्वीकृत नहीं होती है। एल.एसड़ी. के प्रयोग से एक अनूठी बात अनुभव में आई।
पश्चिम में एक बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने एल.एसड़ी. लिया। लेने के बाद यह जगत खो गया और इस जगत की जगह स्वर्गवत मनोकामनाओं का एक लोक प्रगट हुआ! तो हक्सले तो इतना प्रभावित हो गया एल.एसड़ी. से, इस मादक औषधि से इतना प्रभावित हो गया कि उसने लिखा है कि कबीर और नानक और मीरा जिस स्थिति को सैकड़ों जन्मों और न मालूम कितने उपायों के बाद उपलब्ध हुए--एल.एसड़ी. का एक इंजेक्शन या एक गोली तत्क्षण उस लोक में प्रवेश करवा देती है। स्वर्ग प्रकट हो गया! साधारण पत्थर भी अल्डुअस हक्सले ने देखा, तो साधारण न रहा। कोई कोहिनूर उसका मुकाबला न कर सके, इतने रंग उससे प्रगट होने लगे! साधारण कमरा जिसमें वह बैठा था, वह ऐसा हो गया कि इंद्र का कक्ष भी उतना सुंदर न होगा। जरा सी आवाज मधुर संगीत बन गई! सब रंग गहन और प्रगाढ़ हो गए! क्षुद्र खो गया, विराट का सौंदर्य प्रगट हो गया। उसने लिखा कि मैंने स्वर्ग देखा! फिर एक कैथलिक विचारक जायनर ने एल.एसड़ी. लिया, लेकिन उसने नरक देखा। उसे स्वर्ग दिखाई नहीं पड़ा। उसने भयंकर आग की लपटें देखीं, जलते हुए लोग देखे, बड़ी कराह पीड़ा देखी। छोटी सी आवाज भी तांडव नृत्य बन गई भीतर। जो भी देखा, विध्वंस देखा। और उसने अल्डुअस हक्सले के खिलाफ लिखा कि यह बात ठीक नहीं है कि स्वर्ग है भीतर। एल.एसड़ी. से स्वर्ग पैदा होता है, यह बात ठीक नहीं। एल.एसड़ी. से नरक पैदा होता है।
एल.एसड़ी. से कुछ भी पैदा नहीं होता। न जायनर ठीक है, न हक्सले ठीक है। एल.एसड़ी. से वही दिखाई पड़ने लगता है, जो आपके भीतर गहन संस्कारों में छिपा है। वही प्रोजेक्टेड हो जाता है। एल.एसड़ी. आपके भीतर के दरवाजे तोड़ देता है और आपके अचेतन की दीवालें तोड़ देता है, और जो आपके भीतर छिपा है, प्रकट हो जाता है। जायनर के भीतर अगर नरक छिपा था, तो नरक प्रगट हो गया। और

हक्सले के भीतर अगर स्वर्ग छिपा था, तो स्वर्ग प्रगट हो गया। जो छिपा था, वह प्रगट हो गया था। उसको आपने ही मन की दीवालों पर देख लिया। वह जो रंग है सप्तवर्णी, और वह जो सुगंध है, और जो संगीत का अनुभव है--या तांडव का, विध्वंस का, आग का, वह सब आपके ही मन का संस्कार है। जो आपकी चेतना के सामने आता है, फिर मन की दीवाल पर प्रकट हो जाता है। अगर ठीक से समझें, तो स्वर्ग और नरक कहीं भी नहीं हैं। और मरते क्षण में कुछ लोगों को लगता है कि वे नरक जा रहे हैं, कुछ लोगों को लगता है कि वे स्वर्ग जा रहे हैं। वह भी मृत्यु की चोट में आपका अचेतन टूट गया है और आपके मन के पद पर चीजें फैल गई हैं। तिब्बत में इसके लिए बड़े गहन प्रयोग पैदा किए गए। एक बड़ा प्रयोग है, बारदो। तिब्बत में मरते आदमी को मरते वक्त वह एक साधना करवाते हैं, पर वह एकदम से नहीं करवाई जा सकती। जीवन में उसने की हो, तो मरते वक्त उसका प्रयोग किया जा सकता है। बारदो एक तरह का ध्यान है। इस ध्यान में साधक को सचेतन रूप से स्वर्ग और नरक की यात्रा करवाई जाती है। साधक शांत होकर पड़ जाता है, शिथिल हो जाता है। उसका जो मार्गदर्शक है, उसका जो गुरु है, उसके प्रति अपने को समर्पित कर देता है, और कहता है, अब तुम मुझे जहां ले चलो। एक विशेष वातावरण में जब साधक बिल्कुल शिथिल होता है, और करीब-करीब सम्मोहित, हिप्नोटाइज अवस्था में होता है, और अपना चिंतन, अपना विचार, अपना तर्क सब छोड़ देता है, वह जो गुरु उसके पास है, उसका मार्गदर्शक, गाइड, जो उसे स्वर्ग-नरक में ले जा रहा है उसके साथ चलने को राजी होता है। फिर गुरु उसे क्रमशः, जैसे कि सम्मोहित व्यक्ति को क्रमशः गहरे में ले जाया जा सकता है, वैसे उसे गहरे ले जाने लगता है। पहले वह उसे गहरा सुझाव देता है कि तू मूर्छित हो रहा है, बेहोश हो रहा है। और वह स्वीकार करता है, सहयोग करता है। फिर उसे सुझाव देता है कि यह मूर्च्छा इतनी गहन हो गई कि अब तेरे कानों को मेरी आवाज के सिवाय किसी की आवाज न सुनाई पड़ेगी। वह इसे भी स्वीकार कर लेता है। सब आवाज बंद हो जाती हैं, सामान्य सम्मोहन में भी यही प्रयोग होता है। जब सारी आवाजें बंद हो जाती हैं, और जब सिर्फ मार्गदर्शक की आवाज सुनाई पड़ती है, तब मार्गदर्शक प्रयोग करके देखता है। हाथ में सुई चुभोता है और कहता है कि हाथ में मैं कोई सुई नहीं चुभो रहा हूं, तुझे किसी तरह की पीड़ा का अनुभव नहीं होगा। हाथ में सुई चुभोता है, हाथ हटता भी नहीं, साधक पीड़ा की कोई खबर नहीं देता है! पैर में अंगारा छुआ देता है और कहता है कि साधारण ठंडा पत्थर तेरे पैर से स्पर्श कर रहा हूं; साधक चीख मार कर पैर नहीं हटा लेता है। अंगारा पैर को छूता है, साधक को कोई पता नहीं चलता है। अब मार्गदर्शक जानता है कि साधक ने अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया। अगर पूरा समर्पण हो, तो अंगारे से छुए गए पैर में भी फफोला नहीं आता है। और अगर आपने सुना हो कि लोग आग पर नाचकर निकल जाते हैं और आग उनको नहीं जलाती, तो इसमें कुछ जादू मत समझ लेना। सिर्फ मन का भाव है। इससे उल्टा भी होता है। सम्मोहित, हिप्नोटाइज्ड व्यक्ति को अगर हाथ में कंकड़ रख दिया जाए और कहा जाए कि भयंकर जलता हुआ अंगारा है, तो वह सम्मोहित व्यक्ति चीख मार कर हाथ हटा लेगा, कंकड़ को फेंक देगा। यहां तक तो ठीक है क्योंकि मन की बात है। लेकिन मजा तो यह है कि हाथ पर फफोला आ जाता है।
हम जो देख रहे हैं, वह बहुत कुछ हमारे मन का खेल है।
हम जो जी रहे हैं, वह बहुत कुछ हमारे मन का खेल है। अगर किसी के पास आपको बहुत सुख मिलता है, वह भी मन का खेल है। और किसी के पास आपको बहुत दुख मिलता है, वह भी मन का खेल है। जब कंकड़ से फफोले आ जाते हों, और अंगारे से हाथ पर फफोला न आता हो, तो आप समझ सकते हैं कि मन की कितनी क्षमता है।
जब मार्गदर्शक ठीक से देख लेता है कि अब साधक पूरा समर्पित है और अगर मैं उसकी गर्दन भी काट दूं तो भी इसकी चीख न निकलेगी, तब वह उसे यात्रा पर ले चलता है। वह कहता है, पहले नरक में--पहले नरक के द्वार पर तू खड़ा है। फिर वह पूरा वर्णन करता है नरक के द्वार का। फिर नरक के भीतर का। फिर नरक का पूरा वर्णन करता है, और वह जो जो कहता जाता है, साधक वही-वही देखने लगता है। साधक के मन में जो संस्कार पड़े हैं, इस सहयोग में वे सारे संस्कार प्रगट हो जाते हैं, और मन की दीवाल पर नरक निर्मित हो जाता है। आप साधक के चेहरे को भी बाहर से देख कर कह सकते हैं कि वह भयंकर पीड़ा से गुजर रहा है। फिर दूसरा

नरक, फिर तीसरा नरक, फिर वह सात नरकों की यात्रा पर ले जाता है। इस सारी पीड़ा में, भयंकर पीड़ा में गुजर कर साधक उसके भीतर जो-जो पीड़ा के भाव छिपे थे, इन नरकों में उन्हीं के प्रतीक हैं। जो-जो संभावना थी पीड़ा की, जिसकी वह कल्पना कर सकता था, नरकों में उन्हीं की चित्रावली है।
नरक आदमी के मन को देख कर सोचे गए हैं, स्वर्ग भी जब इस सारी पीड़ाओं से
वह गुजर जाता है तो उसके मन में जो-जो विचार छिपे थे, वे सब सचेतन हो गए होते हैं। वे सब सचेतन होकर उनसे छुटकारा हो गया होता है। अब तो आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि मन में जो बात भी गहरे में पड़ी है, यदि कांशस सचेतन हो जाए, तो उससे हमारा छुटकारा हो जाता है।
फ्रायड का मनोविश्लेषण वर्षों तक यही करता है। कोई बीमार है, तो वर्षों तक साइको एनालिसिस चलती है। वह बीमार अपनी बातें कहता जाता है, चिकित्सक सुनता जाता है। और पूछता है, और पूछता है, उसके भीतर जो-जो दबा है, उसे निकालता चला जाता है। जब सारी बातें भीतर से निकल कर बाहर आ जाती हैं विचार में, बीमार अचानक अपनी बीमारी से मुक्त हो जाता है।
अचेतन में दबा हुआ विचार धक्के देता है, निकलने के लिए। उसकी निकलने
की कोशिश और हमारी दबाने की कोशिश से ही रोग पैदा होता है। जब हम उसे निकाल नहीं लेते हैं बाहर तक जैसे केटली में भाप भरी हो ढक्कन बंद किए हो, मुंह भी बंद किए हो, केटली की टोटी भी बंद किए हों, तो फिर केटली रुग्ण अवस्था में आ गई। अब विस्फोट होगा। इसे निकल जाने दें।
हम सब ऐसी ही हालत में हैं--ज्वालामुखी। न मालूम क्या-क्या जन्मों- जन्मों में, हमने दबा कर इकट्ठा कर रखा है, उसमें ही हमारे नरक हैं। और न मालूम कितनी वासनाएं और कामनाएं हमने संजो रखी हैं, उसी में हमारे स्वर्ग हैं।
जब साधक पहुंच जाता है नरकों में, फिर उसे स्वर्गों में ले जाया जाता है। फिर यह पहला स्वर्ग, दूसरा स्वर्ग और सात स्वर्ग, उन सबका वर्णन, और साधक का चेहरा बताता है कि अब वह अदभुत लोक में प्रवेश कर रहा है। उसके चेहरे की शांति, आनंद की पुलक, उसका रोमांच बाहर से ही अनुभव होता है कि भीतर वह कहीं जा रहा है। न कहीं जा रहा है, न कहीं से आ रहा है, लेकिन मन प्रोजेक्टर का काम कर रहा है, और मन के पद पर सारी चीजें बनती जा रही हैं। वह देख रहा है।
इस प्रयोग को मरते वक्त भी करवाया जाता है। और साधक को कहा जाता है इस प्रयोग को करवाकर, कि यह सब तेरे मन का खेल है। और मरने के बाद शरीर के छूटते ही तेरे मन में दबा हुआ जो भी है--वह शरीर के सहारे ही दबाया जा सकता था, शरीर के छूटते ही तेरा दबा हुआ सब विस्फोट होगा, तब तू स्मरण रखना और घबराना मत--कि यह मन का ही खेल है। इसलिए मरते वक्त जिन लोगों को स्वर्ग, नरक के अनुभव हो जाते हैं--वे मन के ही खेल हैं। पर जिन्होंने उन अनुभवों को लिखा है, उन्होंने तो वास्तविक ही जाना है। जो देखा है, वह वास्तविक था भीतर, बिल्कुल वास्तविक था।
स्वर्ग-नरक प्रतीक भले हों, लेकिन बिल्कुल झूठे नहीं हैं, मन के सत्य हैं।
बारदो में साधक को मरते वक्त समझा दिया जाता है कि यह सब तू अभी देख रहा है, मरने के बाद बहुत प्रगाढ़ होकर देखेगा, तब घबराना मत और होश कायम रखना। यह सब मन का ही खेल है। ये नरक मेरे हैं, ये स्वर्ग मेरे हैं। अगर तू दोनों का ख्याल रख सका कि ये मन के ही खेल हैं तो उनके पार चला जाएगा। और मुक्त हो जाएगा। अगर मरने के पहले यह प्रयोग कई बार करा दिया गया हो, तो मरने के बाद भी ख्याल रखा जा सकता है।
जीने की ही कला नहीं होती, मरने की भी कला होती है।
और हम तो जीना ही नहीं जानते, तो मरना तो हम कैसे जानें? यही पता नहीं
कि कैसे जीएं! कैसे मरना भी सीखना होता है। कोई ठीक से न मरे, तो बड़ी मुश्किल में पड़ता है। और ठीक से जो मरता है, वह मुश्किल से छूट जाता है। यह सूत्र कहता है कि तेरी स्थिति, जब तू बिल्कुल भीतर प्रविष्ट हो जाएगा और बाहर का लोक छूट जाएगा, एक पागल हाथी जैसी हो सकती है। सावधान रहना। क्योंकि पागल हाथी देखता है चट्टानों पर वृक्षों की हिलती शाखाओं

की छाया, समझता है कोई दुश्मन है, जूझ जाता है चट्टानों से, टूट जाता है खुद ही, क्योंकि चट्टानों का क्या बिगड़ेगा, अपने को ही क्षत-विक्षत कर लेता है, लहू-लुहान कर लेता है। अपनी ही मौत का कारण बन जाता है। मगर जब पागल हाथी लड़ता है चट्टानों से, तब उसको पता नहीं कि वह जिससे लड़ रहा है वह कल्पना का खेल है।
संसार में भी हम जिनसे लड़ रहे हैं, थोड़ा खोजबीन करेंगे, तो बहुत कुछ कल्पना का खेल ही पाएंगे। फिर भीतर भी यही लड़ाई चल सकती है। लड़ना मत, मोहित भी मत होना, साक्षी बने रहना, और जानना कि जरूर मेरी चेतना और मन की दीवाल के बीच कोई विचार है, कोई बीच में संस्कार आ गया है, जिससे मुझे यह सब दिखाई पड़ रहा है। यह होश रखना। दुख हो तो भी, सुख हो तो भी; नरक हो तो भी, स्वर्ग हो तो भी।
"सावधान हो, नहीं तो कहीं अहं की चिंता में देव-ज्ञान की भूमि पर तेरी आत्मा के पैर न उखड़ जाएं!"
यह पैर उखड़ सकते हैं दो तरह से। या तो तू लड़ने में लग जाए और या
तू भोगने में लग जाए। स्वर्ग दिखाई पड़ने लगे, तो आदमी भोगने में लग जाता है। नरक दिखाई पड़ने लगे, तो लड़ने में लग जाता है। दोनों ही हालत में उस भूमि से पैर उखड़ जाते हैं। दोनों ही हालत में वह जो चेतना है, उस पर दृष्टि नहीं रहती; वह जो बाहर मन के पद पर खेल हो रहा है, उस पर दृष्टि चली जाती है।
"सावधान हो, नहीं तो कहीं तेरी आत्मा परमात्मा को भूल अपने कांपते मन
के ऊपर नियंत्रण न खो बैठे और इस प्रकार अपनी जीत का फल भी न गंवा दे। "परिवर्तन से सावधान, क्योंकि परिवर्तन तेरा बड़ा शत्रु है। यह परिवर्तन लड़कर तुझे तेरे मार्ग से निकाल बाहर करेगा और तुझे संदेह के दुष्ट दल-दल में गाड़ देगा।"
परिवर्तन से सावधान! क्या आधार होगा भीतर जांचने का कि जो मैं देख रहा हूं, वह स्वप्न है या सत्य?
एक होगा आधार, अगर वह बदल रहा हो, तो स्वप्न; अगर वह न बदल रहा हो, तो सत्य।
परिवर्तन--इसे हम समझें।
सत्य की बहुत परिभाषाएं खोजी गई हैं जगत में। अनेक मनीषियों ने सत्य
को न मालूम कितने-कितने रूपों में परिभाषित किया है। सत्य क्या है, इसका अनुसंधान चलता रहा है। सदियों-सदियों में सारा दर्शन, सारे शास्त्र, इसकी ही खोज में लगे हैं कि क्या है सत्य, और क्या है असत्य। आसान नहीं है काम। जितनी आसानी से हम किसी चीज को कह देते हैं असत्य, और किसी चीज को कह देते हैं सत्य, उतना आसान नहीं है। बहुत जटिल है और बहुत सूम है। और कोई मापदंड होना चाहिए, जिससे हम जांच सकें कि क्या है सत्य, क्या है असत्य।
कुछ लोग कह देते हैं जो आंख से दिखाई पड़ता है, वह सत्य। जो प्रत्यक्ष है, वह सत्य। आंख से तो स्वप्न भी दिखाई पड़ते हैं, आंख से तो झूठ भी दिखाई पड़ते हैं। एक रस्सी पड़ी है और आंख से सांप दिखाई पड़ता है। आंख से ही दिखाई पड़ती है। आंख बंद करने से नहीं दिखाई पड़ती। अंधे को नहीं दिखाई पड़ती, आंखवाले को ही दिखाई पड़ती है; किसी अंधे को कभी वहम नहीं होता कि रस्सी जो पड़ी है, वह सांप है। न रस्सी दिखाई पड़ती है, न सांप का कोई उपाय है देखने का। आंखवाले को दिखाई पड़ जाती है अंधेरे में कभी कि रस्सी सांप है, और भाग खड़ा होता है। जो दिखाई पड़ा था, वह दिखाई तो पड़ा ही था, आंख से ही दिखाई पड़ा था, और अपनी ही आंख से दिखाई पड़ा था।
लोग कहते हैं, दूसरे की आंख पर भरोसा मत करना। अपनी ही आंख पर भरोसा करने से क्या होनेवाला है? सपने अपनी ही आंख से हम देखते हैं, भ्रम भी हम अपनी ही आंख से देखते हैं। और जब वे हमें दिखाई पड़ते हैं, तब बिल्कुल वास्तविक होते हैं, तब उनमें रंचमात्र भी संदेह नहीं होता। आंख से देखने से सत्य का कोई निर्णय नहीं होता।
किस चीज को सत्य कहें?
जिसको सब मानते हैं?

ऐसी भी परिभाषाएं हैं कि जिसको लोक-मान्यता हो, वह सत्य है। व्यक्ति
की बातों में मत पड़ना; क्योंकि भूल में पड़ सकता है। लेकिन पूरे के पूरे लोग, पूरे के पूरे समाज भूल में पड़ सकते हैं; पड़े हैं। एक समाज एक बात को मानता है, तो उस समाज को वह बात दिखाई पड़ती है; मान्यता से दिखाई पड़ती है। आपके ख्याल में नहीं आती, उस समाज को ख्याल में आती है, उसको दिखाई पड़ती है।
अब जैसे अगर चीन में चपटी नाक को सुंदर मानते हैं, तो पूरे चीन में वह दिखाई पड़ती है कि सुंदर है, और आपको सोचने में भी नहीं आती कि दबी-चपटी नाक कैसे सुंदर हो सकती है। आप यह मत सोचना कि आप समझदार हैं और वे ना-समझ हैं। लंबी नाक सुंदर है, यह आपकी मान्यता है। क्योंकि सुंदरता का क्या हिसाब है? लंबी क्यों सुंदर है? आखिर लंबाई में क्या सौंदर्य है? धारणा है कि लंबी सुंदर है, तो पूरे समाज को दिखाई पड़ती है।
धारणा है कि गोरा शरीर सुंदर है, तो फिर पूरे समाज को दिखाई पड़ता
है। लेकिन ऐसे समाज हैं, जहां कि गोरा शरीर सुंदर नहीं है। इस मुल्क में भी हमने गोरे शरीर को बहुत गहरा सुंदर नहीं माना है, इसलिए राम और कृष्ण को हमने सांवला रखा। थे कि नहीं, पक्का नहीं; क्योंकि जैसा हम पोतते हैं, वैसा सांवला रंग होता भी नहीं। लेकिन सांवले को हमने सुंदर माना था उस समय। वक्त बदला, फैशन बदल जाती है। अब अगर कृष्ण पैदा हों, तो सांवले पैदा होना ठीक नहीं है। अब अगर उनको सांवले ही पैदा होना हो, तो अमरीका में नीग्रोज में पैदा होना चाहिए। क्योंकि अब उन्होंने वहां नारा दिया है "ब्लैक इ.ज ब्यूटीफुल"; काला जो है, वह सुंदर है। अब काला सुंदर है, यह भी मान्यता है। और सफेद सुंदर है, यह भी मान्यता है। और सिखावन पर यह निर्भर है। जो हम सीख लेते हैं, वह हमें सुंदर दिखाई पड़ने लगता है; जो हम मान लेते हैं कुरूप है, वह हमें कुरूप दिखाई पड़ने लगता है। ये मान्यताएं हैं, सत्य नहीं है। और पूरा समाज मान लेता है, तो बहुत सत्य मालूम पड़ता है।
अब देखें जैन मुनि हैं दिगंबर, वे स्नान नहीं करते, दातुन नहीं करते, उनके मुंह में बदबू आती है--आएगी ही। उनके पास बैठकर बातचीत करने में मतली आने लगेगी, घबराहट होने लगेगी। लेकिन जैन इस कारण उनको बहुत आदर देते हैं। क्यों? क्योंकि एक मान्यता है। और वह मान्यता यह है कि उन्होंने शरीर का मोह छोड़ दिया। तो जब मोह ही छोड़ दिया, तो क्या दातुन और क्या स्नान? यह तो सजावटें हैं, शृंगार है। स्नान करना, दातुन करना, यह तोशृंगार है, सजावट है। जो शरीर अपने को मानता ही नहीं, अपने को आत्मा मानता है, वह क्यों दातुन करे और क्यों स्नान करे? शरीर को क्यों सजाए?
जो ऐसा मानते हैं, उनको मुनि के मुंह से आती बास बड़ी सुगंधित मालूम पड़ती है। पड़ेगी ही। इस बास में त्याग की सुगंध है, इस दुर्गंध में विराग की सुगंध है। और ऐसा माननेवालों को अगर मुनि के मुंह से बास न आए तो, वह समझेगा कि चोरी-छिपे टूथपेस्ट कर रहा है। कर रहे हैं, वह दोहरा फायदा ले रहे हैं। चोरी-छिपे वह अपना टूथपेस्ट भी रखते हैं, उसको भी कर लेते हैं, और मौका मिल जाता है, तो स्पंज भी कर लेते हैं शरीर पर; क्योंकि बदबू बदबू है। पर अगर शरीर से बदबू न आए, तो भक्त को संदेह हो जाता है कि कुछ गड़बड़ हो रही है। अब यह बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है, लेकिन इतनी कठिन नहीं है।
अभी अमरीका में युवकों के, हिप्पियों के समूह हैं। उन्होंने पश्चिम में चलनेवाले सब सौंदर्य के साधनों का विरोध कर दिया है। साबुन का उपयोग नहीं करेंगे, डयोडरेंट का उपयोग नहीं करेंगे, पाउडर का उपयोग नहीं करेंगे; क्योंकि वे कहते हैं कि शरीर की गंध बड़ी सुखद है, प्राकृतिक है। तो अगर शरीर से पसीने की बास आती है, तो स्वाभाविक है, और आनी चाहिए। इसको छिपाना आर्टीफिशियल है। इस पर साबुन लगा कर इसको दबाना, और पाउडर छिड़क कर इसको रोकना, झूठा है। यह आदमी झूठा है, जो ऐसा कर रहा है। और अगर ऐसे आदमी के पास आप जाते हैं, तो असली आदमी से आपका मिलना नहीं हो पाएगा।
तो हिप्पीज कहते हैं कि जो सहज है, वह सुंदर है; जो स्वाभाविक है, वह सुंदर है। इसलिए अगर स्त्री के शरीर से बास आ रही है, तो उस बास का आनंद लो; क्योंकि वह स्वाभाविक है। और सारी दुनिया में सारे पशु उसका आनंद ले रहे हैं, आदमी क्यों नहीं ले रहा? क्योंकि आदमी फाल्स है, झूठा है। तो हिप्पी

गंदे रहने लगे। गंदे उनके हिसाब से जो मानते हैं कि यह गंदगी है, अपने हिसाब से नहीं। अपने हिसाब से तो वह सहज, स्वाभाविक हो रहे हैं। आप गंदे हैं; क्योंकि आप झूठे हैं। ये सब मान्यताएं हैं।
अगर आप हिप्पियों के समूह में जाएं और ठीक साफ-सुथरे कपड़े पहने हों,
और शरीर से पसीने की बदबू न आती हो, तो आपको हिप्पियों का समूह स्वीकार नहीं करेगा, आपको निकाल बाहर करेगा। क्योंकि आदमी आप ठीक नहीं हैं; थोड़े गड़बड़ हैं, पुरानी धारणा के, पिटे-पिटाये हैं, और झूठे हैं। वास्तविक नहीं हैं।
समूह भी एक मान्यता को मान ले, तो वह सत्य दिखाई पड़ने लगती है। और जो समूह में पैदा होता है, वह उसी धारणा में पलता है और बड़ा होता है, वह उसको सत्य दिखाई पड़ने लगता है।
तो क्या है सत्य?
अपनी आंख से देखा हुआ भी असत्य हो जाता है; समूह की मान्यता भी असत्य
हो जाती है। जिसको एक समूह महात्मा मानता है, दूसरा समूह उसको बिल्कुल महात्मा मानने को तैयार नहीं होता।
जैनों से पूछें कि कृष्ण भगवान हैं? मान नहीं सकते, उन्होंने अपनी किताबों में उनको नरक में डाल दिया है। क्योंकि ये आदमी कैसे भगवान हो सकता है? भगवान तो होना चाहिए विरागी। और यह आदमी बांसुरी बजा रहा है और नाच रहा है। और इसके आसपास स्त्रियां हैं, नाच रही हैं। यह आदमी कैसे भगवान हो सकता है? यह आदमी भगवान नहीं है। तो जैनों ने अपने शास्त्र में कृष्ण को नरक में डाल रखा है। और इस पूरे कल्प के समाप्त होने के बाद ही वह नरक से छूट सकेंगे। इसमें कुछ नाराज होने की बात नहीं है, इसमें जैनी सिर्फ इतना कह रहे हैं, कि उनकी धारणा का जो सत्य है, उसमें कृष्ण बिल्कुल ठीक नहीं पड़ते, बिल्कुल ठीक नहीं पड़ते।
अपनी-अपनी धारणाएं हैं।
मुहम्मद को--जो लोग अहिंसा को मानते हैं, वे कैसे मान सकेंगे कि पैगंबर हैं, हाथ में तलवार है। और जो मुहम्मद को मानते हैं, वे महावीर और बुद्ध को भगोड़े मानते हैं; क्योंकि वे जिंदगी को छोड़ कर भाग गए। और जिंदगी जहां कि बुराई से लड़ना है, जहां कि बुराई को पराजित करना है, वहां से जो भाग गए, इन भगोड़ों को पैगंबर और तीर्थंकर कैसे माना जा सकता है? ये तो कायर हैं। मुहम्मद लड़ रहे हैं जिंदगी में। जहां बुराई है, उसको काटना है। और तलवार लेकर खड़े हैं, और ये सब भाग खड़े हुए हैं। भागने से बुराई तो मिटती नहीं है। इसलिए इस्लाम कहता है, बुराई से तो लड़ना पड़ेगा। और अगर बुरे आदमी के हाथ में तलवार है, तो अच्छे आदमी के हाथ में भी तलवार होनी चाहिए, नहीं तो बुरा आदमी जीतेगा। तो इस्लाम कहता है कि महावीर, बुद्ध इन सबक कारण बुराई जीत गई; क्योंकि बुरा आदमी तलवार छोड़ता नहीं, अच्छा आदमी तलवार छोड़ देता है। अब किसको कहो कि कौन सत्य है।
समूह के सत्य भी मान्यताओं के सत्य हैं। और जो आदमी उसमें बड़ा होता है, वह उसी आंख से देखता है, चश्मा उसकी आंख पर होता है। उसको वही दिखाई पड़ता है, जो उसके समूह ने उसे दे दिया है।
भारत ने एक सत्य की और ही कसौटी खोजी है। न तुम्हारी आंख, न समूह की आंख, सत्य की एक कसौटी खोजी है, जो बाहर भीतर दोनों जगह काम आएगी। और वह यह है कि जो परिवर्तनशील है, वह सत्य नहीं है। जो शाश्वत है, वही सत्य है। रात स्वप्न देखा था, सुबह उठ कर पाया झूठ था। क्यों आप पाते हैं कि झूठ था? क्या कारण है झूठ पाने का? क्या आधार है आपके पास कहने का कि स्वप्न झूठ था?
पहली तो बात यह है कि स्वप्न मौजूद नहीं है कि आप तौल सकें जागरण से;
वह जा चुका। जब स्वप्न था, तब जागरण नहीं था।
आप एक कमरे में सोए और रात आपने देखा कि आप स्वप्न में एक महल में हैं। फिर सुबह उठे, आपने अपने को अपने कमरे में पाया। आप कहते हैं कि वह महल झूठा था। लेकिन कैसे तोलते हैं? क्योंकि महल अब मौजूद नहीं कि इस कमरे से तौल सकें--कि कौन झूठा कौन सच्चा? सच्चा? तो जब आप महल में थे, तब यह कमरा मौजूद नहीं था। दो चीजों को तौलने के लिए मौजूदगी साथ-साथ चाहिए। यह भी हो

सकता है कि रात का महल भी सच्चा रहा हो, और आप एक महल में प्रवेश कर गए हों चेतना के एक द्वार से, और यह भी हो सकता है यह कमरा भी सच हो। और यह भी हो सकता है कि जैसे वह महल झूठा था वैसे यह कमरा भी झूठा हो। और किसी दिन आप जागें और पाएं कि यह कमरा भी झूठा था।
आधार क्या है?
भारतीय प्रज्ञा की निष्पत्ति है कि हमारा आधार सिर्फ इतना ही है कि
जो बदल जाता है, वह सत्य नहीं है। बदलता हुआ स्वप्न है। भीतर का स्वप्न भी बदल रहा है, और बाहर का जो जगत है, वह भी प्रतिपल बदल रहा है; इसलिए उसको हम सत्य नहीं मानते। इसलिए हमने जगत को भी माया कहा है। तो जब आप रात सपना देखते हैं, तो वह जगत के विपरीत नहीं है, जगत के बड़े स्वप्न में एक छोटा स्वप्न है। स्वप्न के भीतर एक स्वप्न है।
आपको पता भी होगा, कभी आपने स्वप्न के भीतर अगर स्वप्न देखा हो तो। आप स्वप्न देखते हैं कि सो रहे हैं, आप स्वप्न देखते हैं कि भीतर की खाट पर पड़े सो रहे हैं। यह सोया हुआ आदमी सपने में है, और तब आप देखते हैं कि वह सोया हुआ आदमी एक सपना देख रहा है। सपने के भीतर स्वप्न और उसके भी भीतर स्वप्न हो सकते हैं। जिनकी कल्पना बहुत प्रबल होती है, वह कई स्वप्नों के भीतर स्वप्न देख सकते हैं। अक्सर कवि देख लेते हैं।
इस सूत्र को अगर ख्याल में रखा कि परिवर्तन असत्य है और शाश्वतता, नित्यता सत्य है, तो फिर भीतर भी काम पड़ेगा यही। तो ध्यान रखना कि वह जो दीवाल पर मन के पद पर चित्र बन रहे हैं, वे सब परिवर्तित हो रहे हैं। वे एक क्षण वही नहीं रहते हैं।
आपके भीतर कोई विचार दो क्षण नहीं टिकता। आया, गया। दूसरा आया, तीसरा आया, धारा चल रही है। चाहें भी पकड़ना एक विचार को, तो पकड़ नहीं सकते, मुट्ठी से छूट-छूट जाता है। इसलिए तो लोग कहते हैं, एकाग्रता में इतनी मुश्किल है। होगी ही। क्योंकि जिसको आप बांधना चाह रहे हैं, वह प्रवाह है। जैसे कोई मुट्ठी में पारे को बांधना चाहे और पारा हजार टुकड़े होकर गिर जाए, ऐसे आप भीतर कुछ भी पकड़ें, वह भाग रहा है, कुछ भी पकड़ आता नहीं।
इन दीवाल पर बनी छायाओं पर ध्यान रखना। चाहे वे छायाएं नरक की हों चाहे स्वर्ग की, चाहे कृष्ण की, चाहे राम की, चाहे क्राइस्ट की, चाहे बुद्ध की। एक बात ध्यान रखना, क्या
वे बदल रही हैं? तो देखते रहना गौर से, क्या वे बदल रही हैं। अगर वे बदल रही हों, तो समझना कि सत्य नहीं हैं। सिर्फ एक चीज नहीं बदलती है, वह आपका केंद्र है, वह आपकी चेतना है; वह कभी नहीं बदलती। आकाश में बादल घिरते हैं, वे बदल जाते हैं। आकाश में बादल घिरें तो, बादल घिरे हैं, वह वहीं है। फूल खिल जाते हैं तो, फूल गिर जाते हैं तो; वृक्ष उठते हैं, विलीन हो जाते हैं; पृथ्वियां बनती हैं, नष्ट हो जाती हैं; संसार आते हैं, खो जाते हैं; वह जो आकाश उन्हें घेरे हुए है, वह वही है। सब बदल जाता है, सिर्फ यह फैलाव, स्पेस, यह शून्य है, महाशून्य है, यह वही है। यह उदाहरण के लिए कह रहा हूं। ठीक ऐसे ही चेतना के आकाश में बहुत कुछ आता है, स्वर्ग आते हैं, नरक आते हैं; जन्म आते हैं, मृत्युएं आती हैं। पशु बनते हैं आप, पक्षी बनते हैं आप, पौधे बनते हैं आप, पत्थर बनते हैं, देव बनते हैं, दानव बनते हैं, गृहस्थ बनते हैं, संन्यासी बनते हैं, बहुत-बहुत रूप आते हैं। सिर्फ वह भीतर की जो चेतना का आकाश है, वह भर खाली, वही का वही बना रहता है सदा। तो जब तक वहां न पहुंच जाएं, तब तक आपको परिवर्तन मिलता ही रहेगा। और जहां-जहां परिवर्तन है, वहां-वहां समझना कि स्वप्न है, असत्य है।
सावधान!
यह सावधानी इसलिए बरतनी है कि एक दिन इस परिवर्तन को छोड़ते-छोड़ते, इलीमिनेट करते-करते, निषेध करते-करते, वह जगह आ जाएगी, जहां अचानक आपको पता चलेगा अब यहां कोई परिवर्तन नहीं है। वही है सत्य। रात स्वप्न देखा सुबह जाग कर पाया कि झूठ हो गया। सुबह जाग कर दुनिया देखी; सांझ फिर नींद आई, वह झूठ हो गई, फिर सपना सच हो गया। लेकिन दोनों हालत में सब चीजें बदल जाती हैं। वह जो जाग कर देखा, वह भी बदल जाता है; जो सो कर देखा, वह भी बदल जाता है। सिर्फ देखनेवाला नहीं बदलता है। वह जिसने रात सपना देखा, वही सुबह जाग

कर दुनिया देखता है, वही, वह नहीं बदलता। द्रष्टा नहीं बदलता है, होश नहीं बदलता है।
परिवर्तन है बाहर, शाश्वता है भीतर। परिवर्तन है गाड़ी का चाक। और शाश्वतता है गाड़ी की कील, जिस पर चाक घूम रहा है। धीरे-धीरे इस चाक से हटते जाना, हटते जाना, हटते जाना, हटते जाना और केंद्र पर आ जाना, जहां कोई परिवर्तन नहीं है। जब तक इस अपरिवर्तित का पता न हो, तब तक हम स्वप्न में ही भटकते हैं। स्वप्न बहुत तरह के हो सकते हैं। भले आदमी के स्वप्न, बुरे आदमी के स्वप्न, पापी के, पुण्यात्मा के, महात्मा के, वे सब स्वप्न हैं। जब तक उसका पता न चल जाए, स्वप्न देखने वाले का, तब तक सावधान।
एक मित्र ने प्रश्न पूछा है कि सक्रिय ध्यान के प्रयोग में "हू" महामंत्र का उपयोग हम करते हैं। इस्लाम के अनुयायी मानते हैं कि इस मंत्र का उपयोग करने से सब कुछ फना, नष्ट हो जाता है। अतः वे लोग शहर में "हू" की ध्वनि करने के पक्ष में नहीं हैं। इस संबंध में कुछ कहें।
बात तो सच है। यह मंत्र है तो फना के लिए, समाप्त हो जाने के लिए, मिट जाने के लिए। लेकिन यह मिट जाना, और बड़े हो जाने का उपाय है। सूफियों ने इस मंत्र का प्रयोग किया है। यह अल्लाहू का आखिरी हिस्सा है। सूफी साधक अल्लाह से शुरू करता है। अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह की गूंज उठाता है। जैसे- जैसे यह गूंज सघन होती जाती है, अल्लाह का रूप अल्लाहू, अल्लाहू हो जाता है। अपने आप हो जाता है।
अगर आप जोर से तेजी से भीतर चिल्लाएंगे अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह, तो धीरे धीरे आप पाएंगे अल्लाहू, अल्लाहू, अल्लाहू होता जा रहा है। यह सब अपने आप होता जा रहा है। यह सब अपने आप हो जाता है, इसको करना नहीं पड़ता है। जब यह गूंज और तीव्र हो जाती है, और जब दो अल्लाहू के बीच जगह नहीं छोड़नी होती, जरा भी जगह नहीं छूटती, एक अल्लाहू पर दूसरा अल्लाहू चढ़ने लगता है तब लाहू, लाहू रह जाता है। और तीव्रता जब लानी होती है और सघन करते हैं इसे, और कंडेनसड करते हैं, तो "ला" भी छूट जाता है, और "हू" रह जाता है। फिर "हू" की ही हुंकार रह जाती है।
यह "हू" मंत्र निश्चित ही फना के लिए है। इस मंत्र का साधक उपयोग करता है, अपने को मिटाने के लिए, अपने को समाप्त करने के लिए। यह अपने ही हाथ अपनी मौत को निमंत्रण है--इस साधारण मौत का नहीं, जो इस शरीर की है। उस महामृत्यु का, जो कि अहंकार की और मन की है, जो कि मुझे बिल्कुल मिटा देगी। क्योंकि यह जिसको हम मौत कहते हैं, यह बिल्कुल नहीं मिटाती है। सच तो यह है कि यह मिटाती ही नहीं। और भी सच यह है कि यह हमें मिटने से बचाती है। जब एक शरीर बिल्कुल सड़-गल जाता है, अगर हम उसमें ही रहे आएं तो मिट जाएंगे; तो यह मौत हमें नया शरीर दे देती है। जैसे कि कोई आपके पुराने मकान को, गिरते खंडहर को देख कर कहे इसमें मिट न जाओ; आपको निमंत्रण दे और कहे कि आओ, मेरे नए मकान में बस जाओ। तो मौत मिटाती नहीं, सिर्फ आपके खंडहर को हटाती है; और नया, ज्यादा स्वस्थ, ज्यादा ताजा शरीर आपको दे देती है।
फना सूफियों का शब्द है, उसका मतलब है वास्तविक मौत। वास्तविक मौत सच में ही आपको मिटाती है। वह जो भीतर "मैं" का भाव है, उसे छिन्न-भिन्न कर देती है। इस "हू" की ध्वनि में वह राज छिपा है, जो आपके "मैं" के भाव को तोड़ता है।
"मैं" भी क्या है? क्योंकि बहुत लोगों को ऐसा लगता है कि "मैं" को एक ध्वनि कैसे तोड़ेगी?
आपको पता नहीं, "मैं" भी एक ध्वनि है।
"मैं" भी क्या है? एक ध्वनि है। उसके विपरीत ध्वनियां भी हैं, जिनका उपयोग किया जाए, तो वह विसर्जित हो जाएगी, टूट जाएगी, नष्ट हो जाएगी। हजारों साल की साधनाओं के बाद उन ध्वनियों को खोज लिया गया है, जो एंटीडोट हैं। "मैं" एक स्वर है, "हू" भी एक स्वर है। "हू" का स्वर एंटीडोट है, विपरीत औषधि है। और इसलिए डर भी पैदा होता है, कि मैं मिट जाऊंगा। तो घबराहट भी पैदा होती है।
पर नगर में प्रयोग करने से डरने की कोई जरूरत नहीं है। डर पैदा होता है--डर पैदा होता है, लेकिन डरने की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि नगर में जो

हैं, उन सभी को बिना फना हुए, बिना मिटे, वास्तविक जीवन नहीं मिलेगा। लेकिन घबड़ाहट भी ठीक है; क्योंकि आदमी अपने को बचाना चाहता है, सोचता है कहीं कोई मिटने का उपाय न हो जाए। आपको ख्याल न होगा, अगर एक आदमी को आप बीच में बिठाल लें और बारह आदमी चारों तरफ हाथ बांध कर जोर से हू की हुंकार करना शुरू करें, तो वह आदमी कंपना शुरू हो जाएगा और घबराना शुरू हो जाएगा; वह ना भी करे, तो भी। हू भीतर एक भय पैदा करता है।
एक बहुत मजेदार घटना घटी, भरोसे योग्य नहीं, इसलिए अब तक मैंने कही नहीं।
एक संन्यासी हैं आनंद विजय। जबलपुर में नगर के बाहर एक एकांत स्थल पर उन्होंने अपने रहने की जगह बना ली, और वहां उन्होंने "हू" का, इस महामंत्र का प्रगाढ़ता से प्रयोग शुरू किया। कभी ज्यादा मित्र भी इकट्ठे होकर करते, अकेले तो वे करते ही। दो चार, जो उनका परिवार है, वे तो करते ही। वे बड़े जोर से बीमार पड़े। बीमारी में एक दिन उनकी हालत करीब-करीब सन्निपात जैसी हो गई। लेकिन जब इधर सन्निपात होता है, तो कभी-कभी उधर के द्वार खुल जाते हैं। कभी-कभी जब इधर से आदमी मरने के करीब पहुंच जाता है, तो कुछ चीजें उसे दिखाई पड़ने लगती हैं, जो जिंदा आदमी को कभी नहीं दिखाई पड़तीं। क्योंकि वह मौत के करीब सरक गया, जिंदगी से दूर हट जाता है। कोई 106 डिग्री उनको बुखार था और सन्निपात की हालत थी, तब उनको ऐसा लगा कि उनके कमरे में कई प्रेतात्माएं खड़ी हैं। और वे सब उनसे कह रही हैं कि तुम ठीक न हो सकोगे, जब तक तुम यह हू का उच्चार, वह नगर के बाहर देवताल पर तुम जो "हू" का उच्चार कर रहे हो; जब तक तुम बंद नहीं सावधान! करोगे, तब तक तुम ठीक न हो सकोगे। हम सब आत्माएं हैं, जो वहां बहुत दिन से रह रही हैं और तुम्हारे "हू" के उच्चार से हम बहुत भयभीत हो गई हैं। होश में आने पर उनको यह याद रहा, और उन्होंने मुझे पत्र लिखा और कहा कि मुझे भरोसा नहीं आता कि यह सच है। मेरी कोई कल्पना ही हो सकती है, कोई ख्याल ही हो सकता है। बाकी फिर दो बार यह घटना और घटी। अब तो वे चेहरा भी पहचानने लगे। और वे सारी आत्माएं चाहती हैं कि तुम यहां से हट जाओ, हमारा आवास यहां बहुत दिन से है, और अगर तुम यहां "हू" करते ही रहे, तो या तो हमको हटना पड़ेगा या तुम यहां से हट जाओ।
यह कल्पना हो सकती है, लेकिन एक और कारण मिला है, जिससे लगा कि यह कल्पना नहीं है। आनंद विजय को भी चिंता थी कि यह कल्पना तो नहीं है, इसलिए उनकी निष्ठा भी साफ है। उनको भी भय है कि किसी को कहूं या न कहूं। क्योंकि यह बिल्कुल स्वप्न हो सकता है। और उनको भी भरोसा नहीं आता कि कोई प्रेतात्माएं इस "हू" के हुंकार से घबड़ा सकती हैं। सिर्फ जांच के लिए, उन्होंने एक प्रयोग किया। उसी समय, उसी के थोड़े दिन पहले लामा कर्मप्पा ने मेरे संबंध में कुछ कहा था, वह उन्होंने पढ़ा था। कर्मप्पा ने यह कहा था कि मेरा एक शरीर तिब्बत की एक गुफा में सुरक्षित है, पुराने जन्म का। वहां निन्यानबे शरीर सुरक्षित हैं, तो उसमें एक शरीर मेरा है, ऐसा कर्मप्पा ने कहा था।
तिब्बत में उन्होंने कोशिश की है कि हजारों वर्षों में जिन शरीरों में कुछ विशेष घटनाएं घटी हैं, उनको प्रयोग की तरह सुरक्षित रखा है। क्योंकि वैसी घटनाएं दुबारा नहीं घटतीं, और आसानी से नहीं घटतीं। कभी-कभी लाखों साल बाद घटती हैं। जैसे किसी व्यक्ति का तीसरा नेत्र खुल गया और तीसरे नेत्र के खुलने के साथ ही उसकी हड्डी में छेद हो गया, जहां तीसरा नेत्र है। ऐसी घटना कभी लाखों साल में एक बार घटती है। वह जो तीसरा छेद है, तीसरी आंख तो कई आदमियों की खुल जाती है, लेकिन वह छेद सभी को नहीं होता। कभी जब वह छेद हो जाता है, तो तीसरी आंख अपनी पूर्णता में खुलती है। तब वह छेद होता हो तो फिर वैसी खोपड़ी को वह सुरक्षित रख लेते हैं या वैसे शरीर को वे सुरक्षित रख लेते हैं।
जैसे किसी व्यक्ति की काम-ऊर्जा पूरी उठी और उसके अस्तित्व को फाड़ कर ब्रह्मांड में लीन हो गई, तो वहां छेद हो जाता है। वह छेद कभी-कभी होता है। बहुत लोग विश्वात्मा में लीन होते हैं। लेकिन ऊर्जा इतनी धीमी-धीमी और इतने लंबे अंतराल में लीन होती है कि छेद नहीं होता, बूंद-बूंद रिस जाती है। कभी-कभी सडन, इतनी त्वरा से यह घटना घटती है कि पूरी ऊर्जा मस्तिष्क को

फोड़ लीन हो जाती है, तो छेद हो जाता है। तो उस शरीर को वे सुरक्षित रखते हैं। ऐसे उन्होंने अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में सबसे बड़ा महाप्रयोग किया है। निन्यानबे शरीर उन्होंने संरक्षित रखे हैं। तो कर्मप्पा ने कहा था कि एक मेरा शरीर भी उन निन्यानबे शरीर में सुरक्षित है।
यह आनंद विजय ने पढ़ा था। तो उन्होंने सोचा कि अगर यह सच है, यह मेरी अवस्था जब मैं सन्निपात जैसी अवस्था में हो जाता हूं, मुझे खुद ही भरोसा नहीं आता कि मैं होश में हूं या पागल हूं--अगर यह सच है और अगर मैं इतने करीब पहुंच जाता हूं प्रेतात्माओं के, तो मैं जानना चाहूंगा कि वह कौन सा शरीर है, निन्यानबे में कौन सा शरीर मेरा है। तो मैं गिनती करूंगा, और अगर मुझे दिखाई पड़ जाए और वही निकले, तो मैं समझूंगा कि जो कुछ हो रहा है, वह सच है। उन्होंने मुझे खबर की, मैंने कहा प्रयोग करो। उन्होंने मुझे खबर की, वह तीसरा शरीर है। एक-दो-तीन यह तो भूल भरा है। लेकिन फिर भी ठीक है। उन्होंने दूसरे छोर से गिनती की है। वह तीसरा शरीर नहीं है, वह सन्तानबेवां शरीर है, पर फिर भी सच है। निन्यानबे शरीर रखे हैं, उन्होंने शुरू से गिनती की। वह जहां से उन्होंने समझा कि प्रारंभ है, वह प्रारंभ नहीं है, अंत है। लेकिन तीसरा वे गिन पाए, यह बड़ी गहरी बात है। सन्तानबेवां है, लेकिन अगर उलटा गिना जाए, तो तीसरा हो सकता है।
तो मैंने उनको कहाः तुम घबड़ाओ मत, जो हो रहा है, वह तो ठीक हो रहा है। तुम जारी रखो और एक घटना और घटेगी, उसकी प्रतीक्षा करना।
वह घटना भी घट गई। वे बीमार पड़ते चले गए और वे आत्माएं उनको बार-बार कहती चली गईं। और उनको मैंने कहा था, तुम स्पष्ट कह देना, यहां से मैं हटने वाला नहीं हूं। यह "हू" यहां जारी रहेगा, तुम्हें रुकना हो तो रुको, तुम्हें भी सम्मिलित होना हो तो सम्मिलित हो जाओ; भागना हो तो भाग जाओ, मैं यहां से हटने वाला नहीं हूं। जिस दिन उन्होंने यह संकल्प पूरा कर लिया, उस दिन दूसरी आत्माएं उन्हें दिखाई पड़ीं, और उन्होंने कहा, तुम जारी ही रखो। हम भी उसी स्थान पर रहने वाली आत्माएं हैं, लेकिन हम भली आत्माएं हैं। और यह जो उपद्रवी आत्माएं हैं, जो तुम्हारे "हू" से परेशान हैं, ये हट ही जाएं, तो हम पर भी बड़ी कृपा हो।
भरोसा न आएगा, उस जगत की बातें हैं। लेकिन "हू" से तकलीफ हो सकती है।
लेकिन जिन मित्रों को ऐसी तकलीफ होती हो, उनको समझाना कि परमात्मा के रास्ते पर फना होने के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। अपने को मिटाना ही होगा--अगर चाहते हो, उसे पा लेना, जो फिर मिटता नहीं है।
मृत्यु ही अमृत का द्वार है।
सहज स्वीकार से जो मृत्यु को पकड़ लेता है, मृत्यु उसके लिए समाप्त हो जाती है।
जो अपने को बचाता है, वह खोता है और जो खोता है, वह सदा के लिए बचा रहता है।

समाधि के सप्त द्वार
तेरहवां प्रवचन

समय और तू

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि, 15 फरवरी,

तैयार रह और समय रहते चेत जा। यदि तूने प्रयत्न किया और विफल हो गया, अदम्य लड़ाके, तो भी साहस न छोड़। लड़े जा और बारबार युद्ध में जुटता रह। जिसके घावों से उसका कीमती जीवन-रक्त बह रहा हो, ऐसा निर्भीक योद्धा प्राण त्यागने के पहले शत्रु पर फिर-फिर आक्रमण करेगा और उसे उसके दुर्ग से निकाल बाहर करेगा। कर्म करो, तुम सब जो निष्फल और दुखी हो, उसकी तरह ही कर्म करो और निष्फल होने के बाद भी अपनी आत्मा के सभी शत्रुओं को-- महत्वाकांक्षा, क्रोध, घृणा और अपनी वासना की छाया तक को--निकाल बाहर करो याद रहे, तू मनुष्य की मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा है, अतः तेरे लिए प्रत्येक विफलता भी सफलता है। और प्रत्येक निष्ठापूर्ण प्रयत्न समय में पुरस्कृत होता है। शिष्य की आत्मा में जो पवित्र अंकुर उगते हैं और अनदेखे बढ़ते हैं, उनकी डालियां प्रत्येक परीक्षा से गुजर कर बड़ी होती हैं। और सरकंडे की तरह वे झुक जाती हैं, लेकिन कभी टूटती नहीं हैं और न वे कभी नष्ट हो सकती हैं। और जब समय आता है, तब उनमें फूल भी आ खिलते हैं। लेकिन यदि तू तैयारी करके आया है, तो भय की कोई बात नहीं है।
यहां से सीधे वीर्य-द्वार के लिए रास्ता साफ हो जाता है, सप्त द्वारों में यह पांचवां द्वार है।
अब तू उस राह पर है, जो ध्यानाश्रय या छठे बोधि-द्वार को जाती है।

मनुष्य के जीवन में जो भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वह है समय। समय--जो दिखाई भी नहीं पड़ता। समय--जिसकी कोई परिभाषा भी नहीं की जा सकती है। समय-- जो हमें जन्म से लेकर मृत्यु तक घेरे हुए है, वैसे जैसे मछली को सागर घेरे हुए है। लेकिन न जिसका हमें कोई स्पर्श होता है, न जो हमें दिखाई पड़ता है, न हम जिसका कोई स्वाद ही ले सकते हैं--हम निरंतर उसकी बात करते हैं। और कहीं गहरे में कुछ अनुभव भी होता है कि वह है। लेकिन जैसे ही पकड़ने जाते हैं परिभाषा में, हाथ से छूट जाता है।
संत अगस्तीन ने कहा है कि समय बड़ा अदभुत है। जब मुझसे कोई पूछता नहीं,
तो मैं जानता हूं कि समय क्या है, और जब कोई पूछता है, तभी मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं। आप भी जानते हैं कि समय क्या है, लेकिन कोई अगर पूछे कि समय क्या है तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे।
क्या है समय?
आप ही मुश्किल में पड़ जाएंगे, ऐसा नहीं है, बड़े-बड़े चिंतक, विचारक, दार्शनिक भी समय के संबंध में उलझन से भरे हैं। अब तो विज्ञान भी समय के संबंध में चिंता से भर गया
है कि समय क्या है? जो-जो सिद्धांत समय के लिए प्रस्तावित किए जाते हैं, उनसे, कोई से भी कुछ हल नहीं होता।
कुछ बातें समझनी जरूरी हैं। क्यों इतनी उलझन है समय के साथ? क्या कारण होगा कि हम समय को अनुभव करते हैं, नहीं भी करते हैं? क्या कारण होगा कि प्रकट रूप से समय हमारी समझ में नहीं आता है?
पहली बात मछलियों को भी सागर समझ में नहीं आता है; जब तक मछली को सागर
के किनारे कोई उठा कर फेंक न दे, तब तक सागर का पता भी नहीं चलता है। सागर में ही मछली पैदा हो, और सागर में ही मर जाए, तो उसे कभी पता नहीं चलेगा कि सागर क्या था। क्योंकि जिसे जानना है, उससे थोड़ी दूरी चाहिए। जिसमें हम घिरे हों, उसे जाना नहीं जा सकता। ज्ञान के लिए फासला चाहिए। फासला न हो तो ज्ञान नहीं हो सकता। तो मछली को अगर कोई सागर के किनारे मछुआ पकड़ कर डाल दे रेत में, तब उसे पहली दफा पता चलता है कि सागर क्या था। सागर के बाहर होकर पता चलता है कि क्या है सागर! जब सागर नहीं होता है तब पता चलता है कि सागर क्या था! नकार से पता चलता है कि विधेय क्या था! न-होने से पता चलता है कि

होना क्या था! रेत पर जब मछली तड़पती है, तब उस तड़पने में उसे पता चलता है कि सागर मेरा जीवन था! सागर मुझे घेरे था, सागर के कारण ही मैं थी, और सागर के बिना मैं न हो सकूंगी!
समय भी ऐसे ही मनुष्य को घेरे हुए है। और जटिलता थोड़ी ज्यादा है। सागर
के किनारे तो फेंकी जा सकती है मछली, समय के किनारे मनुष्य को फेंकना इतना आसान नहीं है। और मछली को तो कोई दूसरा मछुआ सागर के किनारे तो फेंक सकता है रेत में, आपको कोई दूसरा आदमी समय के किनारे रेत में नहीं फेंक सकता। आप ही चाहें तो फेंक सकते हैं। मछली खुद ही छलांग ले ले, तो ही किनारे पर पहुंच सकती है।
ध्यान समय के बाहर छलांग है।
इसलिए ध्यानियों ने कहा हैः ध्यान है कालातीत, बियांड टाइम।
ध्यानियों ने कहा है, जहां समय मिट जाता है, वहां समझना कि समाधि आ गई।
जहां समय का कोई भी पता नहीं चलता, जहां न कोई अतीत है, न कोई भविष्य, न कोई वर्तमान; जहां समय की धारा नहीं है, जहां समय ठहर गया, टाइमलेस मोमेंट, समय-रहित क्षण आ गया--तब समझना कि ध्यान हो गया।
ध्यान और समय विपरीत हैं।
अगर समय है सागर, तो ध्यान सागर से छलांग है।
और जटिलता है। और जटिलता यह है कि मछली सागर के बाहर तड़पती है, सागर में उसका जीवन है। और हम समय में तड़पते हैं, और समय के बाहर हमारा जीवन है।
हम समय में तड़पते ही रहते हैं। समय के भीतर कोई आदमी तड़पन से मुक्त नहीं हो पाता है।
समय के भीतर दुख अनिवार्य है।
समय में रहते हुए पीड़ा के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। हां, एक उपाय है, वह धोखा है। और वह है बेहोश हो जाना। बेहोश होकर हम समय भूल जाते हैं, समय के बाहर नहीं होते हैं। जैसे मछली को बेहोशी का कोई इंजेक्शन दे दे, रहे सागर में ही। लेकिन सागर के बाहर जैसे ही हो जाएगी, क्योंकि बेहोश हो जाएगी। जिसका बोध ही नहीं है, उससे हम बाहर मालूम पड़ते हैं।
समय के भीतर जितनी पीड़ाएं हैं, उनका हल बेहोशी है। इसलिए नाराज मत होना लोगों पर, अगर कोई शराब पी रहा है। वह भी ध्यान की तलाश कर रहा है। कोई और मादकता में डूब रहा है--कोई संगीत में, कोई नृत्य में। कोई कामवासना में लीन हो रहा है--वह भी मूर्च्छा खोज रहा है। वह यह कोशिश कर रहा है कि यह जो समय की पीड़ा का सागर है, इसके बाहर कैसे हो जाऊं?
दो ही उपाय हैं। एक झूठा उपाय है, मिथ्या उपायः बेहोश हो जाएं। बाहर
तो नहीं होंगे, लेकिन होश ही नहीं रह जाएगा, तो पता भी नहीं चलेगा कि बाहर हैं या भीतर। जब होश आएगा, तब पता चलेगा। इसलिए शराबी जब होश में आता है, तब संसार का दुख और भी घना हो जाता है। वह फिर-फिर शराब पीना चाहता है, ताकि यह भूले--भूल जाए बिल्कुल। लेकिन कितना ही भूलें, भूलने से कोई चीज मिटती तो नहीं है। सिर्फ समय टलता है, समय व्यतीत होता है, स्थगन होता है। लेकिन समस्याएं अपनी जगह बनी रहती हैं, शायद और भी बढ़ जाती हैं, क्योंकि इकट्ठी हो जाती हैं। तो बेहोशी कोई उपाय नहीं है।
शराबी दया का पात्र है, क्रोध का पात्र नहीं। वह पाप नहीं कर रहा है, भूल कर रहा है। और भूल उसकी यह है कि उसकी वास्तविक खोज समय के बाहर जाने के लिए है। वह चाहता तो ध्यान है, लेकिन ध्यान का उसे पता ही है, तो एक झूठा ध्यान है, शराब। इसलिए समस्त ध्यानियों ने शराब का विरोध किया है, इसलिए नहीं कि शराब पाप है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।
नैतिक आदमी भी शराब का विरोध करता है, उसके विरोध के कारण दूसरे हैं--
कि शराब से स्वास्थ्य खराब होगा, कि शराब से घर-गृहस्थी बरबाद हो जाएगी, कि शराब से तुम्हारे बच्चों का क्या होगा, कि शराब से समाज की व्यवस्था का क्या होगा? यह नैतिक आदमी की चिंता है।
धार्मिक आदमी की यह चिंता नहीं है। और नैतिक आदमी की चिंता को हल किया
जा सकता है और शराब भी पी जा सकती है। उसमें बहुत अड़चनें नहीं हैं। अच्छी शराब पीएं, स्वास्थ्य को नुकसान न होगा। और आज नहीं कल, और अच्छी शराब बनाई

जा सकती है, जिससे स्वास्थ्य को लाभ भी हो सके। क्योंकि शराब तो रसायन है। और अब तो हम इतना जानते हैं कि शराब से वह निकाला जा सकता है जो नुकसान करता है और वह डाला जा सकता है जो लाभ करे। लेकिन नैतिक विचारकों की वजह से यह नहीं हो पा रहा है! यह बड़ी अजीब बात है। लेकिन जिंदगी में बड़ी अजीब बातें हैं।
आज दुनिया में शराब से जो नुकसान हो रहा है, वह नैतिक लोगों की वजह से
हो रहा है। क्योंकि वे शराब को ठीक नहीं बनाने देने के पक्ष में हैं। क्योंकि वे डरते हैं अगर शराब ठीक हो जाए, तो फिर शराब का विरोध कैसे करेंगे। शराब आज ठीक हो सकती है। आदमी के पास इतना रासायनिक ज्ञान है कि अगर शराब ठीक न हो सके, तो हम कुछ भी न कर पाएंगे। हमने जिनने अणुबम खोज लिए, हमने जिनने चांद पर पैर रख लिया, वे शराब की बोतल से नुकसान नहीं निकाल सकते बाहर? वह निकाल सकते हैं, लेकिन दुनिया भर के नैतिक पुरुष उसके विरोध में हैं। क्योंकि अगर खराबी निकल गई और शराब सुखद हो गई और स्वास्थ्यकर हो गई तो फिर नैतिक आदमी क्या करेगा?
धर्म का विरोध शराब से नहीं है, कि वह पाप है। उसका विरोध इस बात से है
कि बेहोशी की खोज का मतलब है कि तुम ध्यान चाहते थे, और तुमने सस्ता, झूठा उपाय खोज लिया। तुम चाहते थे, समय के बाहर जाना, पीड़ा के बाहर जाना, संसार से हट जाना। और तुमने संसार में रहकर ही अपने को भुलाने का उपाय खोज लिया। इसलिए ध्यानियों ने विरोध किया है। ध्यानियों के विरोध के कारण बिल्कुल अलग हैं। गहरा कारण यही है कि बेहोशी और होश विपरीत हैं।
ध्यान है होश और शराब है बेहोशी।
अगर होश चाहिए तो बेहोशी से बचना उचित है। और होश अगर बढ़ता जाए तो समय
के बाहर पहुंचना हो जाता है--जागते हुए, होशपूर्वक। और एक बार जो व्यक्ति समय के बाहर की झलक पा लेता है, उसकी जिंदगी दूसरी हो जाती है। उसे असली वास्तविकता का अनुभव हो जाता है। तब यह सब झूठा और असत्य और स्वप्नवत मालूम होने लगता है।
समय के संबंध में एक बात तो यह जान लेनी जरूरी है कि हम उसमें ही पैदा होते हैं, उसमें ही बढ़ते हैं, उसमें ही मर जाते हैं। और इसलिए हमें उसका कोई पता नहीं चलता कि वह क्या है। सिर्फ ध्यानी को पता चलता है कि समय क्या है। क्योंकि ध्यानी तट पर खड़ा हो जाता है। सागर साफ अलग दिखाई पड़ने लगता है। हमें पता तो नहीं चलता कि समय क्या है, लेकिन फिर भी हम समय का उपयोग तो करते ही हैं उपयोग के लिए ज्ञान अत्यंत आवश्यक नहीं है।
यह बिजली जल रही है, इसको बटन दबा कर जलाना-बुझाना कोई भी कर सकता है। ऐसा करने के लिए बिजली क्या है, यह जानना जरूरी नहीं है। आप अपनी मोटर में बैठकर, अपनी कार में बैठ कर अगर थोड़ा-सा चलाना जानते हैं, तो आपको जानना जरूरी नहीं कि गाड़ी के इंजन में क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है। हो सकता है कि आपने इंजन कभी देखा ही न हो। जरूरत भी नहीं है। कि बोनिट के नीचे क्या छिपा है उससे कुछ लेना-देना नहीं है। आप अपनी गाड़ी को चलाना भर जानते हैं, तो काफी है।
उपयोगिता बिना ज्ञान के भी हो सकती है।
समय का हम सब उपयोग करते हैं। लेकिन समय क्या है, इसका हमें पता नहीं है। मछली भी सागर का उपयोग करती है, लेकिन सागर क्या है, उसको भी पता नहीं है। हम जो उपयोग करते हैं--लेकिन बिना जाने उसमें बहुत भूल-चूक की संभावनाएं हैं। भूल-चूक होगी ही। उपयोग कर सकते हैं--लेकिन भूल होगी। समय को हम जानते नहीं, इसलिए हम जो भी उसमें करते हैं, उसमें अनेक भूलें हो जाती हैं। पहली भूल तो यह हो जाती है कि हम सबको ऐसा ख्याल बना रहता है कि समय काफी है। यह पहली भूल है। पर्याप्त समय है।
एक मित्र आज ही आए, उन्होंने मुझसे कहा कि संन्यास तो मुझे लेना है, लेकिन थोड़ा रुकूंगा। मैंने पूछाः कितनी देर रुकने का ख्याल है? उन्होंने कहा कि अभी तो कुछ तय नहीं किया, लेकिन साल दो साल के बीच। साल दो साल आपके पास हैं? नहीं, ऐसा कोई पूछता नहीं, और ऐसा पूछना
उचित भी नहीं है। दो दिन, चार दिन भी आपके पास हैं? आने वाला पल भी होगा, इसका पक्का है? नहीं, हर आदमी को ख्याल है कि समय पर्याप्त है। सभी

को भीतर ऐसी धारणा है कि समय कहीं चुकता है। कर लेंगे कभी भी! कल कर लेंगे, परसों कर लेंगे!
समय पर्याप्त नहीं है, समय सदा अपर्याप्त है। और जो करना है, उसके लिए सदा थोड़ा है। और आप क्षुद्र में ही उसे व्यतीत कर रहे हैं, और जो विराट है, उसको टालते चले जाते हैं, पोस्टपोन्ड करते चले जाते हैं। स्थगन की वृत्ति पैदा होती है--इस ख्याल से कि समय पर्याप्त है; कर लेंगे, कल कर लेंगे! जो व्यर्थ है, उसे आज कर लेते हैं और जो सार्थक है, उसे कल पर छोड़ देते हैं! यह आपसे कभी भी न होगा। यह कल पर टालने की आदत गहरी है, यह कल भी आपके साथ रहेगी। जब कल आएगा, तो वह आज हो चुका होगा और यह आदत फिर भी कहेगी कि कल। आप मर जाएंगे और यह आदत नहीं छूटेगी।
और ध्यान रखना, मौत जब भी आती है, आज आती है, वह कल नहीं आती। आप मौत से
न कह सकेंगे कि कल, रुको, कल आ जाना। जब मौत से आप नहीं कह सकते कि कल आ जाना, तो थोड़ा सोचना, समय पर्याप्त नहीं है और समय आपके हाथ में भी नहीं है, और समय के आप मालिक नहीं हैं।
याद आती है मुझे छोटी सी घटना। युधिष्ठिर बैठे हैं अपने अज्ञातवास, वनवास के समय। छिपे हैं, वेशभूषा बना रखी है, किसी को पता नहीं है कि कौन हैं--कुटी के सामने बैठे हैं! भीम एक कोने में बैठा हुआ कुछ सोच रहा है। एक भिखारी आया और उसने युधिष्ठिर को कहा, कुछ भीख मिल जाए। युधिष्ठिर ने कहा कि तू कल आ जाना। भीम एकदम उछल कर खड़ा हो गया और नाचने लगा और भीतर घर की तरफ दौड़ा। युधिष्ठिर ने पूछा कि तुझे क्या हो रहा है।
तो भीम ने कहा कि मैं खबर करने जा रहा हूं कि मेरे भाई ने समय पर विजय
पा ली। मैं यही सोच रहा था कि यह समय क्या है? और तुमने कहा कि कल आ जाना! एक बात तो पक्की है--कि तुम्हें पक्का है कि कल आएगा, तो मैं जरा गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने समय पर विजय पा ली है। युधिष्ठिर भागे, उस भिखारी को लौटाया, और कहा, तू आज ही ले जा, क्योंकि कल का सच में ही, कहां भरोसा।
कल के लिए क्या उपाय है कि हम कुछ तय कर सकें? जो टालता है, वह अपने को धोखा देता है। जो कल पर छोड़ता है, वह बेईमान है। किसी और से बेईमानी नहीं कर रहा, अपने से ही बेईमानी कर रहा है।
अगर कल आपके हाथ में हो तो स्थगित करना, और कल अगर हाथ में न हो, तो स्थगित मत करना। और अगर स्थगित ही करना हो कल के लिए तो बुराई के लिए करना; क्योंकि कल कभी नहीं आता। क्रोध करना हो तो कहना, कल करेंगे। चोरी करना हो तो कहना, कल करेंगे। गर्दन किसी की काटनी हो तो कहना, कल काटेंगे। फिर तुमसे पाप हो ही नहीं सकेंगे। क्योंकि कल कभी नहीं आता। जो ठीक करना हो, शुभ करना हो, तो वह अभी कर लेना। अगर उसे कल पर टाला, तो वह भी नहीं हो सकेगा।
हम बुरे को अभी कर लेते हैं, शुभ को कल पर टाल देते हैं! इसका मतलब जाहिर है कि जो हम करना चाहते हैं, वह हम अभी कर लेते हैं और जो हम नहीं करना चाहते हैं, वह हम कल पर डाल देते हैं। मगर साफ क्यों नहीं समझते कि नहीं करना चाहते। क्या जरूरत है कि एक आदमी कहे कि संन्यास मैं कल लूंगा। इतना ही क्या कम है--काफी है कि आज संन्यास नहीं लेना है। बात खतम। मगर ऐसा अगर कोई कहे कि आज संन्यास नहीं लेना है, तो भीतर तकलीफ होती है। हम लेना भी नहीं चाहते और लेने का मजा भी लेना चाहते हैं। हम संन्यासी होना भी नहीं चाहते हैं--डर भी लगता है और लोभ भी पकड़ता है। तो तरकीब निकाल लेते हैं, कि कल लेंगे। इससे ऐसा लगता है कि थोड़ा तो ले ही लिया, काफी तो ले ही लिया; थोड़ी सी ऊपरी औपचारिकता रह गई है, वह कल कर लेंगे। संन्यासी तो हम हो ही गए, एक प्रतिशत बचा है कि कपड़े बदल लेने हैं, कि नाम ले लेना है; वह कल कर लेंगे। दीक्षा कल हो जाएगी। ऐसे अपने को धोखा देना आसान हो जाता है।
समय पर्याप्त नहीं है। और सभी को ख्याल है कि काफी है, जरूरत से ज्यादा है, इसलिए तो टालते हैं!
अगर आपको इसी वक्त पता लगे कि कल सुबह नहीं होगी और सूरज नहीं उगेगा
और जिंदगी समाप्त हो जाएगी, तो मैं आपसे पूछता हूं, आप पहला काम क्या करना चाहेंगे? धन इकट्ठा करना चाहेंगे? मुकदमा अदालत में लड़ना चाहेंगे? मकान बनाना चाहेंगे? चोरी, हत्या, क्रोध--क्या करना चाहेंगे? अगर यह पक्का हो

जाए कि कल सुबह सूरज नहीं उगेगा और वैज्ञानिक खबर कर दें कि अंत आ गया, आज आखिरी रात है, तब आप क्या करेंगे? जो भी आपको करने जैसा लगे, उसे आज ही कर लेना। चाहे वैज्ञानिक खबर करे, चाहे न करे, क्योंकि कल का भरोसा नहीं हो सकता है कि आपके लिए कल ना ही हो। बहुतों के लिए कल नहीं होगा, आप भी उसमें हो सकते हैं। लेकिन आदमी सदा अपने को अलग छोड़ लेता है। सब नियम औरों के लिए होते हैं, खुद के लिए नियम नहीं होता। खुद आदमी अपवाद होता है!
दूसरी बात समय के संबंध में बहुत मजेदार, समझने जैसी है। और वह यह है
कि समय को हम दबाए रखे हैं। समय को हमने दमन किया हुआ है। इसलिए भी हमें समय क्या है, यह पता नहीं चलता। क्योंकि समय के साथ मृत्यु बंधी है। इसे ऐसा समझें कि अगर आदमी अमर होता, अगर आप अमर होते, तो आपको समय का कोई बोध ही न होता। अगर मौत न हो तो समय का क्या मतलब? कोई मतलब नहीं। अगर मौत न हो, तो समय ही नहीं फिर।
मौत ही समय को निर्मित करती है। इसलिए पशुओं को मौत का कोई पता नहीं है, समय का भी कोई पता नहीं है। पशु अभी जीता है, यहीं जीता है। उसे कल की कोई खबर नहीं, उसे बीते कल की भी कोई खबर नहीं, उसको मौत का कोई पता नहीं है।
जिन समाजों में, जैसे हमारे मुल्क में यह ख्याल है कि आत्मा अमर है, जिन लोगों को यह ख्याल है कि आत्मा अमर है, उनका भी समय का बोध बहुत क्षीण होता है, बहुत तीव्र नहीं होता है। ईसाइयत ने समय के बोध को बहुत प्रगाढ़ कर दिया पश्चिम में। क्योंकि ईसाइयत और इस्लाम मानते हैं कि एक ही जन्म है। फिर कोई दुबारा जन्म नहीं है। जो भी करना है, इसी जन्म और मृत्यु के बीच कर लेना, इतना ही समय मिला है।
भारत में हमारे पास अनंत जन्मों की धारणा है--एक जन्म, दूसरा जन्म, तीसरा जन्म। हम कहते हैं कि इस जन्म में न हुआ, तो अगले जन्म में कर लेंगे। अगले जन्म में न हुआ, तो जल्दी क्या है? यह तो संसार चलता ही रहेगा, कभी भी कर लेंगे। अनंत विस्तार है हमारे सामने। इसलिए भारत में टाइम-कांशसनेस, समय का बोध नहीं है। अगर कोई आपसे कहता है कि पांच बजे आ जाएंगे, और सात बजे आता है तो आप नाराज मत होना, यह भारतीय चिंतना का परिणाम है, इसमें कोई उसका कसूर नहीं है। उसको कोई फिक्र ही नहीं इस बात की, कि पांच या सात में कोई फर्क होता है? पश्चिम में दो मिनट में बेचैनी होती है। बेचैनी का कारण, बेचैनी का कारण है ईसाइयत।
ईसाइयत का ख्याल है कि एक ही जन्म है। तो समय बहुत थोड़ा रह गया। उसमें
आप किसी का दो घंटा खराब कर लें, तो आप उसकी जिंदगी छीन रहे हैं। यहां आप किसी के दो दिन खराब करते हैं, कुछ भी नहीं छीन रहे हैं। फर्क ही क्या पड़ता है? इस समय के विस्तीर्ण प्रवाह में दो दिन का लेना-देना क्या है? तो यहां हम खूब एक-दूसरे का समय खराब करते हैं। कोई चिंता ही नहीं मानता इस बात की। पश्चिम में ईसाइयत के विचार के कारण समय का बोध जगा। और अगर जिंदगी इतनी ही है पचास साल, सौ साल, सत्तर साल, तो उसमें से किसी के दो घंटे अकारण खराब कर देना हत्या है। किसी के घर अकारण पहुंच जाना और कुछ भी बातचीत शुरू कर देनी और घंटों खराब कर देना--उसकी जिंदगी छीन रहे हैं। और जिंदगी सीमित है। और दो घंटे जो आपने छीन लिए हैं, वे वापिस नहीं लौटेंगे।
तो किसी से बिना पूछे किसी के घर पहुंच जाना पश्चिम में अशिष्टता है। यहां किसी से पूछकर जाने में अशिष्टता मालूम पड़ती है कि आप भी क्या बात कर रहे हैं, पूछ कर आने की बात ही क्या है? अतिथि तो देवता है, जब आ जाए। और फिर अतिथि जितना टिक जाए उतनी उसकी कृपा।
समय का बोध मृत्यु से बंधा है। अगर मृत्यु से निकट है, तो समय की चेतना गहरी हो जाएगी। अगर मृत्यु बहुत दूर है, तो है ही नहीं; आत्मा अमर है, तो समय का भाव बिल्कुल विलीन हो जाएगा।
ध्यान रखें, समय का हम ज्यादा विचार नहीं करते, क्योंकि अगर उसका हम ज्यादा विचार करेंगे, तो मौत का विचार भी करना पड़ेगा। मौत है टैबू, उस पर विचार करना नहीं, डर लगता है। तो समय पर भी विचार करना नहीं, उससे भी भय लगता है। मान कर चलना अच्छा है कि पर्याप्त है। मान कर चलना अच्छा लगता है

कि आत्मा अमर है। समय की कोई कमी नहीं है, समय सदा रहेगा, कोई जल्दी नहीं है।
इसके परिणाम घातक हो सकते हैं। हम ऐसे ही बैठे-बैठे समय को गंवा सकते हैं। और एक-एक पल चुका जाता है। और एक-एक चुकते पल के साथ आप भी चुकते जाते हैं। एक-एक चुकते पल के साथ आपकी ऊर्जा भी बूंद-बूंद रिक्त होती जाती है, आप खाली होते जाते हैं।
मौत है क्या?
आपके भीतर से समय की रेत का चुका जाना।
अगर आपने रेत की घड़ी देखी है--तो कांच के एक बर्तन में रेत भरी होती है। एक-एक रेत का दाना नीचे के बर्तन में गिरता रहता है, उसके गिरने के साथ एक-एक पल का पता चलता
रहता है। जब पूरी रेत खाली हो जाती है ऊपर के बर्तन से, तो समझो चौबीस घंटे समाप्त हो गए। फिर घड़ी उल्टा कर देते हैं। नीचे का बर्तन ऊपर, ऊपर का बर्तन नीचे कर देते हैं। फिर एक-एक रेत का दाना नीचे गिरने लगता है। चौबीस घंटों में रेत फिर से नीचे के बर्तन में आ जाती है।
मौत है क्या?
आपके जीवन से समय का एक-एक बूंद करके चुक जाना।
और जिस दिन आपके भीतर समय बिल्कुल चुक जाएगा, आप मर गए। कन्टेनर रह गया, कन्टेन्ट चला गया। सिर्फ बर्तन रह गया--खाली। जो भीतर था जीवन, वह रिक्त हो गया, चुक गया।
इस सूत्र को समझने के लिए समय के संबंध में यह बात जान लेनी जरूरी है
कि समय बहुत कम है, करने को बहुत ज्यादा है। और करने को इतना महत्वपूर्ण है कि क्षुद्र में समय को मत गंवा देना। और जो महत्वपूर्ण है, उसे कल पर मत टाल देना। जो व्यर्थ है, उसे कल पर टाल देना। जो सार्थक है, उसे अभी कर लेना, यही इकॉनामिकल है, यही अर्थशास्त्रीय है, जो जरूरी है, एसेंशियल है उसे अभी कर लेना।
लेकिन हम अजीब हैं। अखबार हम पहले पढ़ लेते हैं, ध्यान हम सोचते हैं, कल
कर लेंगे! अखबार पहले पढ़ लेते हैं, जैसे जीवन उस पर अटका है और नहीं पढ़ पाएंगे तो मर जाएंगे। और अखबार नहीं जाना, तो ज्ञान से वंचित रह जाएंगे! ध्यान बाद में भी किया जा सकता है, अखबार तो अभी पढ़ना होगा! सिनेमा आज देख लेते हैं और संन्यास कल पर छोड़ देते हैं। सिनेमा जरूरी है, पता नहीं फिल्म कल लगी रहे या न लगी रहे, और कल का भरोसा क्या है जेब में पैसे रहें या न रहें। आज पैसे हैं, फिल्म भी लगी है, संन्यास तो कल भी है।
ऐसे हम व्यर्थ को तत्काल करते हैं, सार्थक को हम कल पर छोड़ देते हैं। इसे बदलें हम और ख्याल रखें कि समय का एक ही उपयोग है। और जो आदमी वह उपयोग कर लेता है, वह इस संसार में विजेता हो जाता है।
क्या है समय का उपयोग?
आप सोच भी न सकेंगे। समय का एक ही सार्थक उपयोग है--समय के बाहर जाने
के लिए उपयोग कर लेना। अगर आपने समय का इतना उपयोग कर लिया कि आप समय के तट पर पहुंच गए, तो आपका जीवन सार्थक, और आपने समय का सार निचोड़ लिया। और अगर समय का आप इस काम के लिए उपयोग न कर सके तो आपने कुछ भी किया हो, कितने महल खड़े किए हों, कितनी तिजोरियां भरी हों, आप नासमझ हैं और आपके महल और आपकी तिजोरियां जरा भी काम न आएंगी। समय के बाहर का एक अनुभव भी हो जाए, रत्ती भर भी, तो आपने अनेक-अनेक जीवन के समय का मूल्य पा लिया।
इस सूत्र को समझेंः
तैयार रह।
"तैयार रह और समय रहते चेत जा। यदि तूने प्रयत्न किया और विफल हो गया अदम्य लड़ाके, तो भी साहस न छोड़। लड़े जा और बारंबार युद्ध में जुटता रह।" समय रहते चेत जा।
हम सबको लगता है, समय तो सदा है, चेतने की जल्दी क्या है, कल चेत जाएंगे। सुना है मैंने, कलकत्ता में एक सुबह एक घटना घटी। एक वृद्ध सज्जन साठ वर्ष के अपने रोज के नियम के अनुसार घूमने निकले, अपनी लाठी लिए, सुबह की चहलकदमी पर। किसी मकान में, द्वार बंद था, कोई स्त्री किसी को जगा रही

थी, शायद उसके बेटे को, शायद उसके देवर को, शायद किसी और को। वह कह रही थीः राजाबाबू उठ, रात जा चुकी, सुबह हो गई, अब सोना उचित नहीं। संयोग की बात, वे जो बूढ़े आदमी थे, उनका नाम था राजाबाबू। ठिठक गए, सुनाई पड़ा राजाबाबू उठ, सुबह हो गई, अब सोने के लिए समय नहीं, जाग। घर की तरफ लौट रहे थे टहलकर--वहीं से किसी को कहा कि मेरे घर खबर कर देना कि राजाबाबू जाग गए हैं और अब न लौटेंगे।
एक संन्यासी का जन्म हो गया।
घर के लोगों ने आकर बहुत समझाया कि वापिस चलें, यह भी क्या पागलपन है, कौन औरत किसको जगा रही है? तुम्हें उससे क्या लेना-देना, तुमसे तो उसने कहा नहीं। उस वृद्ध ने कहा, जिंदगी ने बहुत बार कहा था कि जाग, समय रहते जाग। नहीं जाग पाया। संयोग की बात थी कि आज चोट लग गई। अब नहीं लौटूंगा, सोने के लिए अब नहीं जाऊंगा। अब जागकर ही रहूंगा। और समय है भी कितना कम। अब मेरे पास समय है कहां?
समय रहते चेत।
किस तरफ चेतना है, किस तरफ जागना है? क्षुद्र में ही न उलझा रह, व्यर्थ में ही समय न गवां। जिसका आत्यंतिक मूल्य नहीं है, उसको बहुत मूल्य मत दे। यही मतलब है चेत का। आत्यंतिक मूल्य किन चीजों का है? क्या फर्क पड़ेगा कि एक गज जमीन ज्यादा थी कि कम? क्या फर्क पड़ेगा कि तिजोरी का वजन कितना था? मौत सामने खड़ी होती है, तो हमेशा एक विचार आप करते रहना कि अगर मौत आज
ही आपके सामने खड़ी हो जाए, तो आपके पास जो है, उसका क्या मूल्य होगा? यही कसौटी है तौलने की कि मेरे पास मूल्यवान कुछ है या नहीं? रोज-रोज सांझ को सोते वक्त यह सोचना कि अगर मौत आज रात आ जाए, तो मेरे पास क्या है, जो मौत की मौजूदगी में मूल्यवान होगा! क्या मेरा धन, क्या मेरी जमीन, क्या मेरा नाम, पद-प्रतिष्ठा--कौन सी चीज मूल्यवान होगी? प्राण एकदम तड़फड़ाने लगेंगे, क्योंकि मौत को सामने देख कर ये कोई भी चीजें मूल्यवान नहीं हैं। सिर्फ ध्यान ही मूल्यवान हो सकता है।
मौत के क्षण में अगर कोई चीज बच सकती है, जो मौत नहीं मिटा सकती, तो वह आपके ध्यान की क्षमता है, आपके भीतर का मौन है, आपके भीतर की शांति है, आपका अपना आनंद है।
जो आनंद दूसरों से मिलता है, वस्तुओं से मिलता है, बाहर से आता है, मौत उसे छीन लेगी। जो भी बाहर का जगत है, मौत उसे छीन लेगी। समझें कि जो भी बाह्य है, मौत उसे छीन लेगी। आंतरिक क्या है आपके पास? है कोई संपदा जो आंतरिक हो? है ऐसा कोई सुख, जो अकारण हो, जिसकी बाहर कोई जड़ें न हों? है कोई ऐसी मौत जो आपकी अपनी हो, जो पत्नी के कारण नहीं है, पति के कारण नहीं है, पुत्र के कारण नहीं है, पिता के कारण नहीं है, मित्र के कारण नहीं है? -- किसी के कारण नहीं है, बस आपके ही कारण है। जो आपके कारण है, मौत उसे न छीन पाएगी। मौत आपको नहीं मिटाती, लेकिन लगता ऐसा है कि मौत आपको मिटाती है। वह इसलिए लगता है कि आप हैं ही नहीं। आपके पास जो है, वह सब उधार है, बाहर से लिया हुआ। रिफ्लेक्टेड है, प्रतिबिंबित है।
ऐसा समझें कि चांद है। चांद की रात है और चांद बड़ी रोशनी देता है; लेकिन चांद की रोशनी उधार है। उसके पास अपनी कोई रोशनी नहीं है। सूरज की किरणें ही उस पर लौट कर वापस लौट आती हैं। वे ही हमें रोशनी मालूम पड़ती हैं। इसलिए ठंडी है उसकी रोशनी। क्योंकि सूरज की गर्मी तो पी जाता है और सिर्फ रोशनी रिफ्लेक्ट होती है। इसलिए चांद ठंडा है। बाकी रोशनी उसके पास सूरज की ही है। यह मत सोचना कि चांद पर जो लोग उतरे हैं, उनको चांद पर रोशनी मिली होगी। वहां कोई रोशनी नहीं है। वह तो चांद केवल रिफ्लेक्टेड है। रोशनी हमारी आंखों तक, हमारी आंख पर चोट करके हमें मालूम होती है।
हमारी पृथ्वी भी चांद पर खड़े होकर चांद जैसी मालूम पड़ती है। यह आपको ख्याल में न होगा कि आपकी यह जमीन गंदी, मटमैली, यह चांद का टुकड़ा है। चांद "पर" से रोशन है, इसके पास भी उधार संपत्ति है; सूरज के पास अपनी रोशनी है।
सांसारिक आदमी चांद की तरह है, आध्यात्मिक व्यक्ति सूरज की तरह होने लगता है।

आपकी मौत आपसे वह सब छीन लेगी, जो उधार है। सिर्फ आपका अपना जो है, वही आपसे नहीं छिनेगा।
इसे रोज रात सोते समय सोच लेना कि अगर मौत घट जाए, तो मेरे पास क्या है,
जो मौत नहीं मिटा सकेगी। उससे बेचैनी हो, तो घबड़ाना मत। बेचैनी अच्छी है। उस बेचैनी से शायद यह ख्याल जागना शुरू हो कि मैं कुछ कमाऊं जो मौत मुझसे छीन सके। एक ही कमाई है, कमाने जैसी--वह यह है, जिसे मौत न छीन सके। मौत परीक्षक है। जो मौत छीन ले, आप समझना, आपने कचरा-कूड़ा इकट्ठा किया था।
समय रहते चेत जा। मौत किसी भी पल आ सकती है, उसके पहले सार्थक की खोज
पर निकल जा।
"यदि तूने प्रयत्न किया और विफल हो गया, अदम्य लड़ाके, तो भी साहस न छोड़।"
डर क्या है?
इस अंतर्यात्रा में जाने का एक ही डर है कि कहीं विफल न हो जाऊं। और डर स्वाभाविक है, क्योंकि जटिल है यात्रा। मुश्किल से कभी कोई बुद्ध, और महावीर, और कृष्ण, और क्राइस्ट होता है। अरबों-खरबों लोग पैदा होते हैं, तब कभी एक बुद्ध पैदा होता है। तो स्वभावतः अरबों-खरबों लोगों को लगता है कि यह कभी-कभी होता है एक बुद्ध, अपने बस के बाहर है। अपने बस के भीतर तो यही है कि दस गज जमीन है, तो बारह गज जमीन कर लो। अपने बस में तो यही है कि दुकान एक है, तो दो दुकान कर लो। अपने बस में तो यही है कि एक बैंक में बैलेंस है, तो दूसरे बैंक में भी कर लो। अपने बस में यही है कि कागज के नोट इकट्ठे करते जाओ। लेकिन अपने बस में यह नहीं है कि बुद्ध हो जाओ। बुद्ध तो करोड़ों में कभी एक होता है। यह अपने बस की बात नहीं है। इसलिए सूत्र कहता है कि तूने प्रयत्न किया और विफल हो गया, अदम्य लड़ाके, तो साहस न छोड़।
बुद्ध करोड़ों में एक होता है, इसका मतलब यह नहीं कि करोड़ों में एक की
ही होने की क्षमता हो। करोड़ों की भी क्षमता होती है। लेकिन उस क्षमता का कोई प्रयोग नहीं करता है। हमें ख्याल नहीं है कि हमारी कितनी क्षमताएं ऐसे ही नष्ट हो जाती हैं।
अभी मनस्विद कहते हैं कि साधारण आदमी अपने मस्तिष्क का केवल पांच प्रतिशत उपयोग करता है--साधारण आदमी। और जिनको हम असाधारण कहते हैं, महा प्रतिभाशाली कहते हैं, वे भी पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा का उपयोग नहीं करते हैं। बड़े से बड़े जीनियस पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा का उपयोग नहीं करते हैं। बड़े से बड़े जीनियस पंद्रह प्रतिशत बुद्धि का उपयोग करते हैं, जितनी उनके पास है। थोड़ा सोचें, अगर आदमी अपनी सौ प्रतिशत बुद्धि का उपयोग करें, तो यह जमीन बुद्धिमानों से भर जाए! अगर आप पांच प्रतिशत कर रहे हैं, अगर तीन गुना, पंद्रह प्रतिशत करें, तो आप भी आइंस्टीन और बर्ट्रेंड रसल की हैसियत के आदमी हैं। और वह केवल पंद्रह प्रतिशत है। आप भी अगर सौ प्रतिशत का उपयोग करें, तो ऐसी प्रतिभा जमीन पर कभी हुई ही नहीं है। लेकिन खोपड़ी ऐसे ही सड़ जाती है, उसका उपयोग भी नहीं हो पाता!
और बुद्ध की प्रतिभा तो कुछ भी नहीं, हम फिर भी पांच प्रतिशत का उपयोग
कर लेते हैं। आत्मा की प्रतिभा का हम कितना उपयोग करते हैं? कभी करोड़ों में एक बुद्ध उपयोग करता है। बाकी करोड़ उपयोग करते ही नहीं, शून्य प्रतिशत भी नहीं। बुद्धि का उपयोग पांच प्रतिशत करता है साधारण आदमी, आत्मा का तो उपयोग ही नहीं करता है! और बुद्धि का भी पांच प्रतिशत उपयोग इसलिए करता है कि ये जो उपद्रव की चीजें इकट्ठी कर ली हैं, उनके लिए जरूरी होता है, नहीं तो वह उसका भी न करें।
इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि अमीर घर में अक्सर बुद्धिहीन बच्चे पैदा होते हैं। अगर गधे खोजने हों, तो अमीर घरों में खोजने जाइए। उसका कारण है, क्योंकि पांच प्रतिशत की भी करने की कोई जरूरत नहीं, तो क्यों करें? गरीब बच्चे ज्यादा तेज मालूम पड़ते हैं। तेजी का कारण यह नहीं है कि वे तेज हैं; उनकी तेजी का कारण यह है कि उनके पास कुछ भी नहीं है--न मकान है, न गाड़ी है, न धन है; यह सब चाहिए। उसके लिए पांच प्रतिशत वे भी थोड़ी उछल-कूद मचाते हैं। अमीर घर में यह सब है। ये जो पांच प्रतिशत का उपयोग करते हैं, मुश्किल से मरते-मरते तक उपलब्ध कर पाएंगे। वह उसे वैसे ही मिला हुआ है,

इसलिए अमीर घर के बच्चे बुद्धि से शिथिल हो जाते हैं। वे पांच प्रतिशत का उपयोग भी नहीं करते हैं। वे करें भी क्यों? सच तो यह है कि अमीर आदमी को करना ही नहीं चाहिए। यह तो गरीबों का काम है। जैसे गरीब आदमी शारीरिक श्रम करता है, और अमीर आदमी नहीं करता है। यह भी तो गरीब का काम है, वह करे क्यों? ऐसे ही वह बौद्धिक श्रम भी नहीं करता, यह भी गरीब का ही काम है। इसलिए दुनिया में बड़े मेधावी व्यक्ति जो पैदा होते हैं, वे मध्यम-वर्ग से आते हैं। अमीर घरों से कम प्रतिभाशाली लोग आते हैं। मध्यम-वर्ग से आते हैं। गरीब के घर से भी कम आते हैं, क्योंकि पांच प्रतिशत का भी उपाय करने को नहीं मिलता, कि वे पांच प्रतिशत प्रतिभा का भी उपयोग कर लें। इसकी सुविधा भी नहीं मिलती। अमीर को सारी सुविधा मिलती है, इसलिए कोई जरूरत नहीं होती। दोनों के बीच में जो मिडिल क्लास है, मध्यम-वर्ग है, उसको थोड़ी सुविधा भी मिलती है कि वे उपयोग कर सकें। और उपयोग करना चाहता है, क्योंकि उसे दिखाई पड़ता है कि जो उसके पास नहीं है, वह उसके पास हो सकता है। इसलिए वे बुद्धि का उपयोग समय और तू करते हैं।
अगर सच में ही दुनिया में किसी दिन समाजवाद आ जाए और सभी को मिलने लगे उनकी जरूरत के अनुसार, और सबको समान मिलने लगे, तो शायद आदमी पांच प्रतिशत बुद्धि का भी उपयोग करेगा नहीं। वह भी खो देगा। उसकी भी आवश्यकता नहीं होगी। इसका डर पैदा हो रहा है, क्योंकि अब कंप्यूटर बन गए हैं, जो मनुष्य की बुद्धि का काम कर सकते हैं। ऐसे यंत्र बन गए हैं, इसलिए इस बात का डर है। जैसे, आपको ख्याल में न हो, जिन मुल्कों में विद्यार्थियों को टाइप रायटर मिल गए, उनकी हस्तलिपि बिल्कुल बिगड़ गई, समाप्त हो गई! हाथ से वे कुछ भी लिखें, तो उनकी खुद की समझ में नहीं आता। यंत्र ने काम सम्हाल लिया है। फाउंटेन पेन जब नहीं था, तो अक्षरों में जो सौंदर्य था, वह अब नहीं है। टाइपरायटर अगर मिल जाए सबको करने को, तो अक्षर बिल्कुल शून्य हो जाएंगे। अगर आज नहीं कल कंप्यूटर ने सारा काम करना शुरू कर दिया बुद्धि का--और
वह आपसे लाख गुना ज्यादा काम कर सकता है, तो आपकी बुद्धि की क्या जरूरत रही? इतनी जरूरत रही कि कंप्यूटर कैसे चलाया जाए। उसकी चलाने भर की बुद्धि काफी होगी, बाकी सब काम कंप्यूटर कर लेगा। तो शायद आदमी पांच प्रतिशत का भी उपयोग न करे।
और आत्मा के मामले में तो हम उपयोग करते ही नहीं, हमारी सौ प्रतिशत आत्मा पैक्ड, बंद वापिस लौट जाती है, खुलती ही नहीं। कभी कोई एक बुद्ध खोलता है। इससे डरने का कारण नहीं है कि हमारी क्षमता नहीं है। हमारी भी क्षमता है, लेकिन विफल होने के लिए तैयार होना चाहिए।

जो आदमी विफलता से बहुत डरता है, वह कभी भी सफल नहीं होता। जो विफलता
से डरता है, वह कदम ही नहीं उठता कि कहीं विफल न हो जाएं। जो डरता है कि भूल-चूक न हो जाए, भूल-चूक तो नहीं होती, लेकिन यात्रा भी नहीं होती। विफलता की तैयारी होनी चाहिए, तो ही कोई सफल हो सकता है। इसलिए बच्चे सीख लेते हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, सीखने की पात्रता कम हो जाती है। क्योंकि बच्चे विफलता से नहीं डरते हैं, उन्हें अभी पता नहीं कि विफलता में और सफलता में कोई खास फर्क है, अभी वे सीख लेते हैं। जैसे-जैसे आपको पता चलता है कि कहीं विफल न हो जाऊं, सीखना मुश्किल हो जाता है।
अगर एक बच्चे को कोई पराई जुबान सिखानी हो, दूसरे की भाषा सिखानी हो,
वह जल्दी सीख लेता है। आप नहीं सीख पाते, क्योंकि आपको सदा डर लगा रहता है कि कहीं कोई गलती, कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए।
"इस आत्मा की यात्रा पर अगर विफल भी हो गया, तो डर मत। साहस मत छोड़, लड़े
जा और बार-बार युद्ध में जुटता रह।"
दस विफलताएं मिल कर सफलता बन जाती हैं, सफलता कुछ और है भी नहीं। जो आदमी दस विफलताओं में भी साहसपूर्वक बढ़ता चला जाता है, सफलता उसे उपलब्ध हो जाती है। सफलता विफलता के विपरीत नहीं है--सब विफलताओं का सार-निचोड़ है। यह जरा उलटा लगेगा। सफलता विफलता का विरोध नहीं है, विफलताओं का सार-निचोड़ है। जो जल्दी रुक जाता है, दो-चार विफलताओं में भी घबड़ा जाता है, वह

कभी सफल नहीं हो पाता है। क्योंकि उसे यह कला ही पता नहीं कि सभी विफलताएं जुड़कर सफलता बन जाती हैं।
प्रतीक्षा चाहिए। धैर्य और साहस। और जितनी बड़ी यात्रा हो अंतर की यात्रा है, वहां तो बहुत विफल होने का साहस चाहिए।
"जिसके घावों से उसका कीमती जीवन-रक्त बह रहा हो, ऐसा निर्भीक योद्धा प्राण त्यागने के पहले शत्रु पर फिर-फिर आक्रमण करेगा और उसे उसके दुर्ग से निकाल बाहर करेगा। कर्म करो, तुम सब जो निष्फल और दुखी हो, उसकी तरह ही कर्म करो और निष्फल होने के बाद भी अपनी आत्मा के सभी शत्रुओं को महत्वाकांक्षा, क्रोध, घृणा और अपनी वासना की छाया तक को--निकाल बाहर करो।"
"याद रहे कि तू मनुष्य की मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा है, अतः तेरे लिए प्रत्येक विफलता भी सफलता है।"
यह सूत्र बड़ा कीमती है, स्वर्ण-सूत्र है। इसे हम ऐसा समझें--
कोई आदमी अगर बुरा करने में सफल भी हो जाए तो वह विफलता है। बुराई में पाई गई सफलता विफलता है। सफलता दिखाई पड़ती है, लेकिन आपको पता नहीं है कि आपकी आत्मा भीतर विफल हो गई। एक आदमी चोरी में सफल हो जाता है, पर चोरी की सफलता में उसकी आत्मा टूट जाती है, और नष्ट हो जाती है। बाहर सफलता दिखाई पड़ती है, भीतर विफलता हो गई। सस्ते में कीमती चीज बेच दी। उसकी हालत ऐसी है, जैसे किसी पर क्रोध में आ गया और पास का हीरा जोर से फेंक कर मार दिया पत्थर समझ कर। सफल तो हो गया चोट पहुंचाने में, लेकिन जो खो दिया चोट पहुंचाने में उसका उसे पता ही नहीं है।
बुराई में आदमी जब सफल होता है, तो भीतर टूट जाता है, नष्ट हो जाता है।
और जो वह चूक रहा है वह बहुत ज्यादा है, जो मिल रहा है वह कुछ भी नहीं है। इससे उलटी घटना भी घटती है। भलाई में जब कोई आदमी विफल हो जाता है, तो भी सफल होता है। क्योंकि भलाई में विफल हो जाना
भी गौरवपूर्ण है। भलाई करने की कोशिश की, यह भी क्या कम है? और भलाई करके विफल होने की हिम्मत की, यह क्या कम है? और भलाई में विफल होकर भी, फिर भलाई जारी रखी--निश्चित भीतर आत्मा निर्मित होती चली जाएगी। आत्मा एक गहन अनुभव है--धैर्य का, प्रतीक्षा का, साहस का, श्रम का और भरोसे का।
सुना है मैंने, एक मुसलमान फकीर इब्राहीम कहता था कि मैं उस आदमी की तलाश में हूं, जो मुझे भलाई में विफल कर दे। उस आदमी की तलाश में हूं जो मुझे भलाई में विफल कर दे। विफल से उसका मतलब यह था कि जिसकी वजह से मुझे यह भरोसा आ जाए कि आदमी इतना बुरा है कि उसकी भलाई करना उचित नहीं है। जिंदगी में बहुत लोगों ने उसे धोखे दिए, उसकी चीजें छीन लीं, उसका सामान चुरा ले गए, उसे चोटें पहुंचाई, लेकिन हर बार वह हंसता था और वह कहता था-- तुम कुछ भी करो, लेकिन मैं इनसान पर भरोसा न खोऊंगा। मैं इतना ही समझूंगा कि किसी से भूल हो गई, लेकिन कभी यह न समझूंगा कि आदमी बुरा है।
अगर एक आदमी आपको धोखा दे देता है--एक आदमी! इस जमीन पर तीन अरब आदमी हैं। एक आदमी आपको धोखा दे देता है, आप कहते हैंः आदमी का कोई भरोसा नहीं! आदमी का कोई भरोसा नहीं है अब आप किसी आदमी पर भरोसा न करेंगे। अब आप सदा सावधान रहेंगे, कि कहीं कोई धोखा देने की कोशिश तो नहीं करता है, क्योंकि एक आदमी ने आपको धोखा दे दिया! और तीन अरब आदमियों के संबंध में आपने निर्णय ले लिया। बड़े जल्दी आपकी भलाई विफल हो जाती है और आप विफलता में भरोसा कर लेते हैं।
भलाई में कितनी ही विफलता मिले, और अंतर्यात्रा में कितनी ही चूकें
हो जाएं और कितनी ही बार गिरना हो जाए, घबड़ाना मत; उस यात्रा पर सभी विफलताएं सफलताएं बन जाती हैं। उस तरफ चलना ही बड़ी सफलता समय और तू है। उस तरफ भूलें करना भी बड़ा गौरव है, बड़ा गुण है। चोर होकर कुशल हो जाना भी अच्छा नहीं और ध्यानी होकर अकुशल बना रहना भी अच्छा है।
"फिर याद रहे, कि तू मनुष्य की मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा है"
तो यह एक और भी कीमती धारणा है। धारणा ही नहीं, एक कीमती सत्य है कि जब
भी एक आदमी मुक्त होता है इस पृथ्वी पर, तो सारे लोगों की मुक्ति का रास्ता साफ होता है। और एक आदमी भी जब जमीन पर गिरता है, पतित होता है, बुरा होता

है, तो वह सभी लोगों को भी किसी न किसी ढंग से बुरा कर जाता है, उसकी छाया सभी पर पड़ जाती है। हम इकट्ठे हैं, हम जुड़े हैं और हम एक-दूसरे में आंदोलित होते रहते हैं।
जब कोई एक बुद्ध पैदा होता है, तो सारी पृथ्वी भी उसके बुद्धत्व से आंदोलित होती है। होना ही चाहिए। एक फूल भी खिलता है, तो उसके साथ चारों तरफ का वातावरण खिल जाता है। एक कमल को खिला हुआ देखें, उसके साथ पूरी झील भी खिल जाती है, उसके साथ झील के किनारे भी खिल जाते हैं। एक कमल को अगर गौर से देखें, तो उस क्षण में सारा जगत उसके साथ खिलता है, क्योंकि फूल सारे जगत का हिस्सा है। हम न देख पाएं, क्योंकि हमारे पास आंखें छोटी हैं, और समझ ना के बराबर है और हम गहरे में नहीं उतर सकते, यह दूसरी बात है। फिर जब बुद्ध जैसा फूल खिलता हो तो हमें चाहे दिखाई पड़े या न पड़े, यह सारा जगत किसी बोझ से हल्का होता है। बुद्ध के होने के बाद आप जो हैं, वह दूसरे आदमी हैं, बुद्ध के होने के पहले आप दूसरे आदमी थे।
लोग मेरे पास आते हैं कभी और पूछते हैं कि क्या फायदा हुआ बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट से; क्या फायदा होगा आप से; सब बातें हैं, सब खो जाती हैं, आदमी जैसा है, वैसा ही बना रहता है; क्यों मेहनत करते हैं? क्यों व्यर्थ परेशान होते हैं? किनके लिए परेशान हो रहे हैं? बुद्ध परेशान हुए, क्राइस्ट परेशान हुए--क्या फायदा है?
उन्हें पता नहीं। उन्हें पता हो भी नहीं सकता कि बुद्ध के पहले के आदमी में, और बुद्ध के बाद आदमी में जमीन और आसमान का फर्क है, लेकिन फर्क बड़ा सूम है। बुद्ध के खिलने के साथ आदमी का भविष्य दूसरा हो गया, नियति बदल गई। बुद्ध के बाद अब इतिहास कभी वही नहीं हो सकता, जो बुद्ध के पहले था। मार्ग से एक पत्थर हट गया, रास्ता साफ हो गया। अब आप न चलें आपकी जिम्मेवारी है, लेकिन रास्ते पर रुकावट कम है। एक आदमी चल चुका। और एक आदमी ने चलकर बता दिया है कि ऐसा भी हो सकता है। यह हो सकता है कि बुद्धत्व आ जाए। यह एक बड़ी संभावना है। और यह संभावना भविष्य में है। देखें जमीन पर जब भी कोई इस तरह का विराट व्यक्तित्व पैदा होता है, तो सारी पृथ्वी पर उसकी अनुगूंज सुनाई पड़ती है।
पांच सौ वर्षों में, बुद्ध के समय सारी पृथ्वी पर बुद्धत्व की अनुगूंज सुनाई पड़ी। जब बुद्ध भारत में पैदा हुए, तो महावीर थे। सिर्फ बिहार में, एक छोटे से प्रांत में, जो सदा का दीन है; जो उसके पहले भी दीन था, उसके बाद भी दीन हो गया, कुछ वर्षों के लिए बुद्ध के साथ-साथ बिहार में जैसे सारे कमल खिल गए। सिर्फ छोटे से बिहार में आठ तीर्थंकर थे। अदभुत उनकी प्रतिभा थी और यह जानकर हैरानी होगी कि वे एक-दूसरे के विरोध में थे, तो भी एक-दूसरे के खिलने के साथ ही खिले थे।
ठीक उसी समय यूनान में पायथागोरस था, ठीक बुद्ध के जैसे व्यक्ति की स्थितिवाला आदमी। थोड़े दिन बाद साक्रेटीज था, प्लेटो था, अरस्तू था। चीन में लाओत्सु था, च्वांगत्सु था, कनफ्यूशियस था, मेन्शीयस था। उस छोटे से समय में सारी जमीन में, सारी पृथ्वी पर, छोटे बड़े कई कमल खिले! फिर वैसा कभी नहीं हुआ।
जब भी एक व्यक्ति भी बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो उसकी झंकार बहुत वीणाओं पर बजती है। अनेक अपनी यात्राओं पर हजारों मील आगे बढ़ जाते हैं। जो अपनी मंजिल के बिल्कुल करीब थे, एक छलांग में बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हैं। जो बहुत दूर थे, वे करीब आ जाते हैं। जो बिल्कुल सोए हैं, वे भी करवट बदलते हैं। जिनकी नींद महा गहन थी, उनका भी स्वप्न क्षण भर को टूटता है। लेकिन अनंत घटनाएं घटती हैं।
यह सूत्र कहता हैः "याद रहे, तू मनुष्य की मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा है"
यह मुक्ति का युद्ध तेरा अपना अकेला नहीं है, यह पूरी मनुष्यता का
है। तेरे साथ, तुझमें, तेरे द्वारा, पूरी मनुष्यता भी लड़ रही है; तू तो
लड़ ही रहा है। एक लहर जो ऊपर उठती है--लहर तो ऊपर उठ ही रही है, उसके साथ सागर भी तो ऊपर उठ रहा है। अगर लहर किसी दिन चांद को छू ले, तो सागर ने भी तो चांद को छू लिया।

"तो याद रहे, तू मनुष्य की मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा है, अतः तेरे लिए प्रत्येक विफलता भी सफलता है। और प्रत्येक निष्ठापूर्ण प्रयत्न, समय में पुरस्कृत होता है।"
जल्दी मत करना पुरस्कार की, और जल्दी मत समझ लेना कि मैं विफल हो गया। क्योंकि सभी चीजें समय चाहती हैं, और हर चीज का समय है। बीज आज बोए जाएं, तो आज ही अंकुर नहीं बन जाते। प्रतीक्षा करेंगे बीज ठीक मौसम की, ठीक वर्षा की, ठीक सूरज की। ठीक समय पर अंकुरित होंगे, ठीक समय पर पकेंगे, ठीक समय पर खिलेंगे। तो धीरज रखना, जो भी तूने निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया है, वह समय पर पुरस्कृत होता है। इस जगत में कोई भी अपुरस्कृत नहीं रहता।
अस्तित्व का नियम है, जो भी चलता है, वह पाता है। जो भी बोता है, वह काटता है। लेकिन थोड़े धैर्य की जरूरत है, क्योंकि समय लगेगा। कोई भी बीज छलांग लगा कर वृक्ष नहीं हो सकता।
"शिष्य की आत्मा में जो पवित्र अंकुर लगते हैं, और अनदेखे बढ़ते हैं उनकी डालियां प्रत्येक परीक्षा से गुजर कर बड़ी होती हैं। और सरकंडे की तरह वे झुक जाती हैं, लेकिन कभी टूटती नहीं हैं और न वे कभी नष्ट हो सकती हैं। और जब समय आता है, तब उनमें फूल भी आ खिलते हैं।"
कई बार पता ही नहीं चलता बीज का। बीज का पता भी कैसे चलेगा? आज आप ध्यान कर रहे हैं। हो सकता है आज आपको पता भी न चले कि क्या हो रहा है भीतर? शायद कोई ख्याल भी न आए कि कोई बीज आपकी अंतरात्मा में प्रविष्ट हो गया। वर्ष, दो वर्ष बाद समय पाकर, अनुभव की धूप पाकर, अवसर की वर्षा पाकर, बीज अंकुरित होने लगेगा। तब भी अंकुर आपको दिखाई न पड़ेगा। अंकुर अदृश्य है, जब तक कि शाखाएं न आ जाएं और जब तक कि पत्ते आपके चारों तरफ छायाएं न फैलाने लगें। आपको शायद तब तक ठीक-ठीक पता न चलेगा, जब तक दूसरों को पता न चलने लगे। जब दूसरे आपकी सुगंध को अनुभव करने लगें और कहने लगें कि कहां से पाई यह सुगंध, क्या हुआ? जब दूसरे थके-मांदे धूप से आएं और आपके पास आकर शीतल हो जाएं, और कहें कि कैसी शीतलता है तुम्हारी! किस वट-वृक्ष की? तुम्हारे नीचे विश्राम करने का मन होता है--कि जब दूसरों के दुख-ताप तुम्हारे पास आकर अचानक तिरोहित हो जाएं, और तुम्हारी मौजूदगी औषधि बन जाए और जब दूसरे तुमसे कहने लगें कि क्या हुआ है? शायद तब तुम्हें पता चले।
बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं अंकुर। और हर संघर्ष--जो इन अंकुरों को ऐसा लगता है कि कहीं तोड़ न डाले। हर हवा का झोंका, जिसमें लगता है कि कहीं यह वृक्ष उखड़ न जाए। वह झोंका भी वृक्ष से संघर्ष करके मजबूत कर जाता है। अगर कोई हवा का झोंका वृक्ष को न टकराए, तो वृक्ष कभी भी टूट सकता है। हर झोंका चुनौती देता है वृक्ष को। और वृक्ष चुनौती को झेल लेता है, झोंका निकल जाता है, वृक्ष फिर खड़ा हो जाता है। लोचपूर्ण रहना सरकंडे की तरह। लाओत्से ने कहा हैः अकड़े हुए वृक्ष मत बन जाना, नहीं तो उखाड़ दिए जाओगे।
अकड़ना मत। अपनी इस भीतर की यात्रा में अकड़ कर मत जाना, नहीं तो कोई भी तूफान तुम्हें उखाड़ कर रख देगा। विनम्र रहना। और जब तूफान आए, तो ऐसे झुक जाना, जैसे घास झुक जाती है। और तूफान तुम्हारा कुछ बिगाड़ न पाएगा, तुम्हें ताजा कर जाएगा, तुम्हें नया प्राण दे जाएगा, तुम्हारी धूल झाड़ जाएगा, तुम्हें सबल कर जाएगा। और जब तूफान चला जाएगा, तब तुम फिर खड़े हो जाओगे आकाश में--और भी स्वस्थ, और भी ताजे, और भी नाचते हुए, और भी मदमस्त। अस्तित्व से मदमस्त होना घास की तरह।
यह सूत्र कहता हैः जैसे सरकंडा झुक जाता है, लेकिन कभी टूटता नहीं, वैसे ही इस भीतर के बीज को अगर विनम्र, प्रतीक्षारत, प्रार्थनापूर्ण भाव से बढ़ाया तो यह कभी टूटेगा नहीं और कभी नष्ट न होगा। और जब समय आएगा, तब उसमें फूल खिल जाएंगे। तुम जल्दी मत करना, तुम फूलों को खींचने की कोशिश मत करना, क्योंकि कोई भी फूल खींच कर नहीं निकाले जा सकते। समय के पहले कुछ भी नहीं हो सकता। जल्दी नासमझी है। आग्रह, कि अभी हो जाए, उपद्रव करेगा। प्रतीक्षा करना और चीजों को होने देना। मौका देना कि ठीक अपने मौसम में चीजें खिल जाएं। समय आता है, तो उनमें भी फूल आ खिलते हैं।
"लेकिन यदि तू तैयारी करके आया है, तो भय की कोई बात नहीं है।"

"यहां से सीधे वीर्य द्वार के लिए रास्ता साफ हो जाता है, सप्तद्वारों में यह पांचवां द्वार है।"
"अब तू उस राह पर है, जो ध्यानाश्रय या छठे बोधि-द्वार को जाती है।" वीर्य-द्वार पर हम कल सुबह बात करेंगे।

समाधि के सप्त द्वार
चौदहवां प्रवचन

तितिक्षा

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि, 16 फरवरी, 1973

ध्यान-द्वार संगमरमर के कलश जैसा है--सफेद और पारदर्शी। उसके भीतर एक स्वर्णाग्नि जलती है, वह प्रज्ञा की शिखा है, जो आत्मा से निकलती है।
तू ही वह कलश है।
अब तूने अपने को इंद्रियों के विषयों से विच्छिन्न कर लिया है, तूने दर्शन-पथ तथा श्रवण-पथ की यात्रा कर ली है, और अब तू ज्ञान के प्रकाश में खड़ा है। अब तू तितिक्षा भी की अवस्था को उपलब्ध हो गया।
ओ नारजोल (सिद्ध), तू सुरक्षित है।
पापों के विजेता, एक बार किसी सोवानी अर्थात-स्रोतापन्न ने सातवें मार्ग को पार कर लिया है, तब समस्त प्रकृति आनंद-पूर्ण आश्चर्य से भर जाती है और पराजित अनुभव करती है। रजत-तारा अब जलते इशारों से रजनीगंधा को यह समाचार बताता है; झरना अपने कलकल स्वर में कंकड़ियों को यह कथा सुनाता है; सागर की काली लहरें गर्जन करके यही बात फेनिल चट्टानों को बताती हैं; गंध-भरी हवाएं घाटियों के कान में इसका ही गीत गाती हैं, और चीड़ के शानदार वृक्ष बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से गुनगुनाते हैंः बुद्ध का उदय हुआ है--आज के बुद्ध का।
अब वह पश्चिम में उज्जवल स्तूप की तरह खड़ा है, जिसके मुख पर शाश्वत भाव का उदीयमान सूर्य अपनी प्रथम महागौरवमयी किरणों को बरसा रहा है। उसका मन एक शांत और असीम सागर की तरह तटहीन अंतरिक्ष में फैलता जा रहा है। और वह जीवन और मृत्यु को अपने मजबूत हाथों में धारण किए है।

समाधि का पांचवां द्वार हैः वीर्य। इस संबंध में कुछ बातें जान लें, फिर हम छठवें द्वार की चर्चा में उतरें।
वीर्य के संबंध में पहली बात तो यह जान लेनी चाहिए कि वीर्य के दो अंग हैं। एक वीर्य की देह और एक वीर्य की आत्मा--ऊर्जा। समस्त योग की प्रक्रियाओं में, तंत्र की साधनाओं में, पृथ्वी पर अनेक-अनेक रूपों में पैदा हुए धर्म की व्यवस्थाओं में, वीर्य का ऊर्ध्वगमन, वीर्य का ऊपर की तरफ उठना, काम-केंद्र से सहस्रार तक पहुंचना, इसे अनिवार्य कहा है। इससे बड़ी उलझन पैदा होती है। वैज्ञानिक बुद्धि बहुत अड़चन में पड़ जाती है। जो शरीर-शास्त्र को समझते हैं, वे इस बात पर भरोसा नहीं कर पाते हैं। क्योंकि यह बात असंभव है।
काम-केंद्र पर जो वीर्य इकट्ठा है, उसके सहस्रार तक जाने का न तो कोई मार्ग है, न कोई उपाय है। देह में ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जिससे वीर्य उठ सके ऊपर। वीर्य का तो पतन ही हो सकता है, देह-शास्त्र की दृष्टि से; उत्थान नहीं हो सकता, क्योंकि नीचे जाने का ही मार्ग है, ऊपर जाने का कोई मार्ग नहीं है। शरीर-शास्त्र की दृष्टि से, आधुनिक सब खोजों की दृष्टि से, तंत्र, योग, धर्म की सब धारणाएं गलत हो जाती हैं। जब मार्ग ही नहीं है, तो वीर्य का उत्थान नहीं हो सकता, ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता। और जो उस चेष्टा में लगे हैं, वे व्यर्थ के काम में लगे हैं। जो आधुनिक शरीर-शास्त्र को पढ़ लेते हैं, उनकी आस्था तंत्र और योग से तत्क्षण उठ जाती है। स्वाभाविक है, क्योंकि शरीर में कोई व्यवस्था ही नहीं है नाड़ियों की, कि वीर्य ऊपर जा सके।
यह ठीक है और जहां तक विज्ञान जानता है, वहां तक यह बात बिल्कुल ही उचित है। ऐसा नहीं हो सकता है। लेकिन कुछ और बात है, जो विज्ञान से चूक जाती है। और जब तक वह समझ में न आ जाए, तब तक आज के मस्तिष्क को वीर्य का ऊर्ध्वगमन समझ में नहीं आ सकता। जैसे, शरीर है आपके पास। विज्ञान तो शरीर को स्वीकार करता है, आपकी आत्मा को नहीं। और आपके भीतर जो जीवन है, वह शरीर

से प्रकट तो होता है, लेकिन शरीर ही नहीं है। और जैसा यह शरीर के संबंध में सच है, ऐसा एक-एक वीर्य कोष्ठ के संबंध में भी सच है।
एक वीर्य-कण दो चीजों से बना है। तभी तो आपका पूरा शरीर भी दो चीजों से
बन पाता है--एक तो वीर्य-कण की देह--दिखाई पड़ने वाली और एक वीर्य-कण की आत्मा है, ऊर्जा है--न दिखाई पड़ने वाली। संभोग में वीर्य-कण जैसे ही स्त्री योनि में प्रवेश करते हैं, दो घंटे तक जीवित रहते हैं। अगर इस दो घंटे के बीच में उन्होंने स्त्री अंडे को उपलब्ध कर लिया, पा लिया, तो जो वीर्य-कण स्त्री अंडे के निकट पास पहुंचकर स्त्री अंडे में प्रवेश कर जाएगा, जन्म हो गया--एक नए व्यक्तित्व का। लेकिन लंबी यात्रा है वीर्य-कणों के लिए। वीर्य-कण बहुत छोटे हैं, आंख से दिखाई पड़ने वाले नहीं हैं। और दो घंटे
का उनका जीवन है। अगर दो घंटे तक वे स्त्री अंडे तक नहीं पहुंच जाते हैं, तो मृत हो जाते हैं। इसलिए बड़ी तेजी से भागते हैं। पर बहुत छोटे हैं, कितनी ही तेजी से भागें, यात्रा-पथ उनके लिए काफी लंबा है, और समय बहुत छोटा है। प्रतियोगिता वहीं से शुरू हो जाती है। वह जो प्रतियोगिता आप पूरे संसार में देखते हैं, वह उसका ही फैलाव है। क्योंकि एक संभोग में लाखों वीर्य-कण छूटते हैं और उनमें से एक पहुंच पाता है। लाखों नष्ट हो जाते हैं। बीच में भयंकर संघर्ष है, बड़ी प्रतियोगिता है। और एक भी सदा नहीं पहुंच पाता, कभी- कभी पहुंच पाता है। शेष समय तो सभी नष्ट हो जाते हैं। दो घंटे में वीर्य-कण मर जाता है।
इस बात को थोड़ा ध्यान से समझ लें।
इसका मतलब यह हुआ कि वीर्य-कण जीवित भी होते हैं और मुर्दा भी होते हैं। तो जीवित वीर्य-कण में और मुर्दा वीर्य-कण में क्या फर्क है? कुछ फर्क होना चाहिए। जो किसी कण को जीवित बनाए है, और फिर किसी क्षण में मुर्दा बना देता है। तंत्र की, योग की दृष्टि से वही फर्क है।
वीर्य के दो अंग हैं। जब तक वीर्य जीवित है, तब तक उसमें दो चीजें हैं-- उसकी देह भी है, और उसकी ऊर्जा, आत्मा भी है। दो घंटे में ऊर्जा मुक्त हो जाएगी, वीर्य कण मुर्दा पड़ा रह जाएगा। अगर इस ऊर्जा-कण के रहते ही स्त्री- कण से मिलन हो गया, तो ही जीवन का जन्म होगा। अगर इस ऊर्जा के हट जाने पर मिलन हुआ, तो जीवन का जन्म नहीं होगा। इसलिए वीर्य-कण तो केवल देह है, वाहन है। वह जो ऊर्जा है, जो उसे जीवित बनाती है, वही असली वीर्य है। वीर्य-कण की देह तो उत्थान को उपलब्ध नहीं हो सकती, उसका तो पतन ही होगा। क्योंकि वह पृथ्वी का हिस्सा है, पदार्थ है। पदार्थ का कोई उत्थान नहीं है। पदार्थ नीचे ही गिरेगा। वह जो देह है वीर्य-कण की, तो नीचे जमीन खींच ही रही है उसे, लेकिन उस छोटे से न दिखाई पड़ने वाले वीर्य-कण में जो जीवन की ऊर्जा है, वह ऊपर की तरफ भाग रही है। उसके लिए मार्ग की कोई जरूरत नहीं है। वह अदृश्य है। अगर यही जीवन-ऊर्जा स्त्री-कण से मिल जाएगी, तो एक व्यक्ति का जन्म हो जाएगा। अगर यही ऊर्जा योग और तंत्र की प्रणाली से मुक्त कर ली जाए वीर्य-कण से, तो आपके सहस्रार तक पहुंच सकती है। और जब सहस्रार तक पहुंचती है यह वीर्य-ऊर्जा, तो आपके लिए नए लोक का जन्म होता है। आप भी नए हो जाते हैं। आप का पुनर्जन्म हो जाता है।
इस वीर्य-ऊर्जा के जाने के लिए कोई स्थूल, भौतिक मार्ग आवश्यक नहीं है। यह बिना भौतिक मार्ग के यात्रा कर लेती है। इसलिए जिन चक्रों की हम बात करते हैं, जिन सप्त चक्रों की, वे शरीर में नहीं हैं। वे सात चक्र दृश्य नहीं हैं। इसलिए किसी परीक्षण, किसी वैज्ञानिक विश्लेषण में उनको नहीं पाया जा सकेगा। वे चक्र अदृश्य मालूम पड़ते हैं। और उन चक्रों से ही यह ऊर्जा ऊपर की तरफ उठती है। इस ऊर्जा का नाम "वीर्य" है। आप जिसे सामान्यतः वीर्य कहते हैं, वह केवल पदार्थ है, वाहन है।
ऐसा समझें कि एक बीज है। एक बीज को आप तोड़ें तो उसके भीतर किसी पौधे का कोई अस्तित्व नहीं है। कितनी ही जांच-परख करें बीज को तोड़कर, उसके भीतर कोई वृक्ष छिपा है, इसके खोजने का कोई भी उपाय नहीं है। लेकिन वृक्ष जरूर छिपा है; क्योंकि बीज को जमीन में गाड़ दें--और अंकुरित हो जाता है, और वृक्ष निकलना शुरू हो जाता है। बीज में वृक्ष था, लेकिन अदृश्य था, दिखाई नहीं

पड़ता था। बीज दिखाई पड़ता था, वह देह थी। वृक्ष होने की जो क्षमता है, ऊर्जा है, शक्ति है, वह अदृश्य है।
शक्ति सदा अदृश्य है, केवल देह दिखाई पड़ती है।
फिर पौधा पैदा हुआ, तब भी जो आपको दिखाई पड़ता है, वह भी देह है।
क्योंकि वे जो आपको दिखाई पड़ रहे हैं--हरे पत्ते, शाखाएं, वह नहीं है पौधा। हरे पत्तों और शाखाओं के भीतर से जो आकाश की तरफ उठ रहा है, वह प्राण है। जो जमीन से दूर हट रहा है, जो ऊपर की तरफ जा रहा है, वह आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। आपको दिखाई पड़ रहा है केवल वाहन। वह जो भीतर यात्रा कर रहा है प्राण, वह आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। आप वृक्ष को काट भी डालें, तो भी उसका पता नहीं चलेगा। लेकिन आप वृक्ष को बढ़ते हुए देख कर कहते हैं, जीवित है! एक वृक्ष सूख जाता है और बढ़ना बंद हो जाता है, आप कहते हैं, मुर्दा हो गया! जीवन का लक्षण क्या है?
जीवन का लक्षण है ग्रोथ, जीवन का लक्षण है बढ़ाव, जीवन का लक्षण है फैलाव। इसलिए हमने जीवन को ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता जाता है; बड़ा होता जाता है, बड़ा होता जाता है, अनंत तक बड़ा होता जाता है। जो दिखाई पड़ता है, वह उसकी देह है। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वही सहारा है। एक वृक्ष जब सूख गया हो, तो क्या सूख गया उसमें? शाखाएं वही हैं, सब कुछ वही है, जड़ें वही हैं, लेकिन कोई पक्षी प्राण का उड़ गया है। अब बढ़ती नहीं होती। अब चीजें फैलती नहीं हैं।
वृक्ष ही बढ़ता है ऐसा नहीं, पहाड़ भी बढ़ते हैं। हमारा हिमालय अभी भी बढ़ रहा है, अभी भी जवान है। कुछ पहाड़ बूढ़े हो गए हैं, जैसे सतपुड़ा है, विंध्या है, ये बूढ़े हो गए हैं। अब वे नहीं बढ़ रहे हैं। कुछ पहाड़ मर गए हैं, जिनकी सिर्फ देह रह गई है। हिमालय अब भी ऊपर उठ रहा है, अब भी बढ़ रहा है, अभी जीवित है।
हिमालय के प्रति इस मुल्क का इतने आदर का भाव उसकी ऊंचाई के कारण नहीं है, उसके जीवन के कारण है। अगर हमने हिमालय को महादेव का, शिव का निवास बनाया है, तो सिर्फ इसलिए कि इस पृथ्वी पर जीवन की बढ़ती का वह प्रतीक है। और विराट प्रतीक है। और बढ़ता ही चला जाता है। अभी भी जवान है, अभी भी उसकी बढ़ती नहीं रुकी है। लेकिन जो दिखाई पड़ते हैं, वे तो पत्थर हैं। लेकिन उन पत्थरों के भीतर जरूर कोई ऊर्जा छिपी है, जो उठ रही है, आकाश की ओर बढ़ रही है।
यह समस्त जीवन के संबंध में सच है। और बीज के संबंध में जो मैंने कहा, वही वीर्य के संबंध में है। क्योंकि वीर्य बीज है, जैसे पौधों का बीज है, ऐसे आदमी का बीज है। उस बीज को तोड़कर भीतर की ऊर्जा का पता नहीं चलता। क्योंकि तोड़ते ही वह ऊर्जा आकाश में लीन हो जाती है। उस ऊर्जा का दो तरह से पता चल सकता है।
एक ढंग है कि वीर्य का कण, रज के कण से--पुरुष का कण, स्त्री के कण से मिले, तो जीवन प्रगट हो जाएगा, एक बच्चा जन्म लेगा। क्योंकि पुरुष का कण और स्त्री का कण दोनों अधूरे हैं, आधे-आधे हैं। और एक से जीवन का जन्म नहीं हो सकता। जीवन के लिए पूर्णता चाहिए। जैसे ही स्त्री और पुरुष का कण मिलता है, एक पूर्ण बन गया, एक छोटी इकाई पैदा हो गई--जो जब आधी नहीं है, अब जो बढ़ सकती है। एक उपाय तो है वीर्य-कण के भीतर छिपे जीवन को मुक्त करने का, कि उसे विपरीत रजकण से मिला दें।
एक और भी उपाय है, इस वीर्य-कण को प्रकट करने का। तब दो देहें--वीर्यकण
की और रजकण की--दो देहें नहीं मिलतीं, बल्कि वीर्यकण की और रजकण की ऊर्जा मिल जाती है--सिर्फ ऊर्जा।
आधुनिक मनोविज्ञान अब स्वीकार करता है कि कोई पुरुष, न तो केवल पुरुष है, और न कोई स्त्री, केवल स्त्री है। दोनों के भीतर दोनों हैं। होना भी चाहिए, क्योंकि आपका जन्म होता है स्त्री, पुरुष से मिल कर। इसलिए न तो आप पुरुष हो सकते हैं और न स्त्री पूरे-पूरे। आप आधे-आधे होंगे। आपकी जो पहली इकाई निर्मित होती है, उसमें आधी स्त्री है और आधा पुरुष है। फिर चाहे अब आप स्त्री हों और चाहे पुरुष, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपकी जो मिलावट है, आपकी जो बुनियादी आधार-शिला है, उसमें आधा स्त्री का दान है, आधा पुरुष का।

और यह दान कभी नष्ट नहीं हो सकता, आप कुछ भी बन जाएं, आपमें आधी स्त्री होगी और आधा पुरुष होगा। आपके भीतर दो ऊर्जाएं मिली हैं, दो शरीर मिले हैं। और इन दोनों शरीरों का जोड़ है, और दो ऊर्जाओं का जोड़ है, जिससे आप एक व्यक्ति बने।
आपका वीर्य-कण दो तरह की आकांक्षाएं रखता है। एक आकांक्षा तो रखता है बाहर की स्त्री से मिल कर, फिर एक नये जीवन की पूर्णता पैदा करने की। एक और गहन आकांक्षा है, जिसको हम अध्यात्म कहते हैं, वह आकांक्षा है, स्वयं के भीतर की छिपी स्त्री या स्वयं के भीतर छिपे पुरुष से मिलने की। अगर बाहर की स्त्री से मिलना होता है, तो संभोग घटित होता है। वह भी सुखद है, क्षण भर के लिए। अगर भीतर की स्त्री से मिलना होता है, तो समाधि घटित होती है। वह महासुख है, और सदा के लिए। क्योंकि बाहर की स्त्री से कितनी देर मिलिएगा? वह मिलन छूट जाता है क्षण भर में। क्षण भर को भी मिलन हो जाए तो बहुत मुश्किल है। देह ही मिल पाती है, मन नहीं मिल पाते; मन भी मिल जाए, तो आत्मा नहीं मिल पाती। और सब भी मिल जाए तो मिलन क्षण भर ही हो सकता है। भीतर की स्त्री से मिलना शाश्वत हो सकता है। उस शाश्वत मिलने के कारण ही समाधि फलित होती है।
बाहर की स्त्री से मिलना है, तो वीर्य-कण की जो देह है, उसके सहारे ही मिलना पड़ेगा, क्योंकि देह का मिलन तो देह के सहारे ही हो सकता है। अगर भीतर की स्त्री से मिलना है तो देह की कोई जरूरत नहीं है। वीर्य-कण की देह तो अपने केंद्र में, काम-केंद्र में पड़ी रह जाती है; और वीर्य-कण की ऊर्जा उससे मुक्त हो जाती है। वही ऊर्जा भीतर की स्त्री से मिल जाती है। इस मिलन की जो आत्यंतिक घटना है, वह सहस्रार में घटित होती है। क्योंकि सहस्रार ऊर्जा का श्रेष्ठतम केंद्र है, और काम-केंद्र देह का श्रेष्ठतम केंद्र है।
काम है निम्नतम केंद्र और सहस्रार है उच्चतम केंद्र। ऊर्जा शुद्ध हो जाती है सहस्रार में पहुंच कर; सिर्फ ऊर्जा रह जाती है, प्योर इनर्जी। और सहस्रार में आपकी स्त्री प्रतीक्षा कर रही है। और आप अगर स्त्री हैं, तो सहस्रार में आपका पुरुष आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। यह भीतरी मिलन है। इस मिलन को ही हमने अर्धनारीश्वर कहा है।
हमने शंकर की मूर्ति बनाई है--आधा पुरुष और आधी स्त्री की। आधा अंग पुरुष का है और आधा अंग स्त्री का है। यह इस गहन मिलन की सूचना है। और जो अर्धनारीश्वर का मिलन है, यह होता है कैलाश में, गौरीशंकर पर। वह जो आपके भीतर श्रेष्ठतम शिखर है हिमालय का--सहस्रार, कैलाश, गौरीशंकर, जो भी नाम दें, वहां मिलन घटित होता है।
निम्नतम तल है काम-केंद्र का, वहां तो पशु भी मिल लेते हैं, वहां मिलन होता है संभोग का। श्रेष्ठतम केंद्र है मिलन का, समाधि का, वहां कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर अपने भीतर की स्त्री या अपने भीतर के पुरुष को खोज पाता है। और जिस दिन यह घटना घटती है, उसी दिन पूर्ण ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है; उसके पहले नहीं हो सकता है। जब भीतर की स्त्री मिल गई, तो फिर बाहर की स्त्री की कोई चिंता नहीं रह जाती है। जब भीतर का पुरुष मिल गया, तब फिर बाहर के पुरुष की खोज नहीं रह जाती है। और जब तक यह मिलन नहीं होता, तब तक यह खोज जारी ही रहेगी। वीर्य का द्वार इस प्रक्रिया का द्वार है।
कैसे हम अपने वीर्य-कण में छिपी हुई जीवन-ऊर्जा को मुक्त करें, और कैसे हमारे सहस्रार में छिपे हुए हमारे ही विपरीत केंद्र से इसका मिलन करा दें?
एक मित्र ने प्रश्न पूछा है कि जब वे ध्यान करते हैं, यह सक्रिय ध्यान करते हैं, तो कुछ समय के लिए उनकी काम-वासना बिल्कुल तिरोहित हो जाती है। उससे उनको डर पैदा हो गया है। पूछा है कामवासना तिरोहित हो जाती है और शक्ति बहुत मालूम पड़ती है। चेष्ठा भी करें, तो काम-कृत्य में नहीं उतर सकते कुछ समय के लिए। तो उन्हें घबड़ाहट हो गई कि कहीं वह इससे किसी नपुंसकता को तो उपलब्ध नहीं हो जाएंगे, कोई इंपोटेंसी तो नहीं हो जाएगी। और शक्ति बहुत मालूम पड़ती है, जितनी कभी भी नहीं मालूम पड़ती, इतनी मालूम पड़ती है। लेकिन काम-कृत्य में नहीं उतर सकते।

सौभाग्यशाली हैं। डरें न आप। यही चाहिए कि शक्ति ज्यादा मालूम पड़े और काम-कृत्य में न उतरा जा सके। इसका अर्थ है, शक्ति ऊपर की तरफ दौड़ रही है; इसलिए काम-केंद्र को शक्ति उपलब्ध नहीं हो रही है। और इस प्रक्रिया का पूरा प्रयोजन यही है कि आपके वीर्य-कण नीचे पड़े रह जाएं, और वीर्य-कणों से वीर्य-ऊर्जा मुक्त हो जाए, एनर्जी मुक्त हो जाए, और ऊपर की तरफ दौड़ने लगे। जब इनर्जी ऊपर की तरफ दौड़ती होगी, ऊर्जा ऊपर की तरफ जा रही होगी, तब आप काम-केंद्र का उपयोग नहीं कर सकते, तब काम-केंद्र वस्तुतः नपुंसक हालत में है। पर यह सौभाग्य है।
जीसस को माननेवाले साधुओं का एक संप्रदाय है, अपने को "आनक्स आफ जीसस" कहता है--जीसस के नपुंसक। बड़ी मीठी बात है। क्या आपको पता है कि ब्रह्म को हमने नपुंसक लिंग में रखा है। ब्रह्म को न हम पुल्लिंग में रख सकते हैं, न स्त्री लिंग में। या तो वह दोनों है, या तो वह दोनों नहीं है। इसलिए ब्रह्म को हमने इस मुल्क में नपुंसक लिंग में रखा है, सोचकर।
नपुंसकता दो तरह की है कि आपके पास वीर्य-शक्ति ही न हो--यह निम्नतम स्थिति है। एक और नपुंसकता है--कि शक्ति आप के पास विराट हो, लेकिन काम-केंद्र से मुक्त हो गई हो, और ऊपर की यात्रा पर निकल गई हो। वैसी नपुंसकता धन्यभाग्य है, क्योंकि वही ब्रह्मचर्य है। वही ब्रह्मचर्य है कि आपमें ऊर्जा तो पूरी है लेकिन वासना ही नहीं उठती। ऊर्जा विराट है, लेकिन नीचे की तरफ बहने का भाव नहीं उठता। सक्रिय ध्यान से ऐसा होगा।
उन मित्र ने यह भी पूछा है कि समझ में नहीं आता कि "हू" की आवाज से काम-केंद्र पर कैसे चोट लगती होगी। उन्होंने पूछा है कि श्वास तो नाभि तक ही जाती है, उसके नीचे नहीं जाती, तो फिर इस श्वास में "हू" की जो प्रतिध्वनि गूंजती है, वह नीचे तक कैसे जाती होगी?
बहुत बातें हैं।
पहली, आप सिर्फ श्वास नाक से ही नहीं लेते हैं, पूरे शरीर से लेते हैं। रोआं-रोआं श्वास ले रहा है। और अगर आपकी नाक खुली छोड़ दी जाए, और सारे शरीर को पेंट करके सब रोएं बंद कर दिए जाएं, तो आप कितनी ही श्वास लें, तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकते हैं। क्योंकि आप श्वास सब जगह से ले रहे हैं। और सब जगह से लेना जरूरी है। क्योंकि आपका रोआं-रोआं जीवित है, वह भी तो श्वास ले रहा है, आपका पूरा शरीर श्वास ले रहा है। आपके शरीर में एक ऐसा टुकड़ा भी नहीं है, जो बिना श्वास के हो।
तो जब "हू" कि हुंकार आप करते हैं, तो वह हुंकार सिर्फ आपके हृदय में
और आपकी नाभि में, जहां तक आपकी श्वास जाती है, वहीं तक नहीं गूंजती, वह हुंकार धीरे-धीरे जहां श्वास आपके शरीर में प्रवेश करती है, रोएं-रोएं तक, वहां-वहां तक गूंज जाती है।
और जैसे श्वास रोएं-रोएं में छिपी है, वैसे ही काम-वासना भी रोएं-रोएं में छिपी है। काम-केंद्र पर तो कन्सनटरेटेड है, एकाग्र है, लेकिन छिपी तो सब तरफ है। शरीर में सिर्फ काम-केंद्र ही नहीं है, और इरोटिक जोन्स भी हैं, और अंग भी हैं शरीर के जो कामोत्तेजना से भर जाते हैं। स्तन हैं, वे भी कामोत्तेजना से भर जाते हैं। काम भी काम-केंद्र पर कन्सनटरेटेड है, वहां सर्वाधिक है, लेकिन फैला है पूरे शरीर में। जैसे श्वास फैली है, ऐसे ही काम-वासना भी फैली है। जब आप चोट करते हैं हुंकार की, तो यह हुंकार की चोट जहां-जहां श्वास जाती है, वहां-वहां तक विस्तीर्ण हो जाती है। आपके भीतर जहां-जहां वायु है, वहां-वहां यह ध्वनि गूंज जाती है, विस्तीर्ण हो जाती है।
इसलिए तो इतना आग्रह है मेरा कि बहुत जोर से करें कि जरा भी, एक भी हिस्सा इस ध्वनि से वंचित न रह जाए, और आपके सारे शरीर की काम-ऊर्जा पर चोट पड़ जाए। और जगह-जगह से काम-ऊर्जा इस चोट से मुक्त होने लगे। यह हैमरिंग है, हथौड़े की तरह हम बीज को तोड़ रहे हैं। भीतर तो बीज वहीं पड़ा रह जाए और बीज की ऊर्जा मुक्त हो जाए। और ऊर्जा का नियम है कि मुक्त होते ही, ऊर्जा ऊपर की तरफ दौड़ती है। ऊर्जा दौड़ती ही ऊपर की तरफ है, जैसे लपट आग की ऊपर की तरफ दौड़ती है। सब ऊर्जाएं ऊपर की तरफ दौड़ती हैं। सब पदार्थ नीचे की तरफ गिरते

हैं। क्योंकि पदार्थ पर ग्रेवीटेशन का, गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पड़ता है। ऊर्जा पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
और जब ऐसा होने लगे कि आपकी कामवासना लगे कि नहीं उठती है, तो प्रभु को धन्यवाद देना। और चिंता मत ले लेना और चिंता से डर कर ध्यान करने से मत रुक जाना। जल्दी ही भीतर समाधि घटित होगी। और तभी पता चलेगा कि जिस शक्ति से समाधि मिल सकती थी, उसको हम संभोग में व्यर्थ खोते रहे। लेकिन जब तक वह नहीं मिली, तब तक संभोग ही समाधि मालूम पड़ता है। जब वह मिलेगी, तभी तुलना हो सकती है।
तो बुद्ध और महावीर अगर आप पर बहुत दया से भर जाते हैं, तो उस दया का बड़े से बड़ा कारण तो यह है कि आप हीरे खो रहे हैं, और प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं पा रहे हैं, ना के बराबर। इन्हीं हीरों से वह खरीदा जा सकता है, जो फिर कभी नहीं खोएगा। मनुष्य के जीवन की जो महत्तम यात्रा है, वह संभोग से समाधि की ओर है। और जब तक हम संभोग से समाधि की ओर नहीं पहुंच जाते, तब तक गंतव्य नहीं मिला, तब तक हम भटक रहे हैं।
अब हम इस सूत्र को लें।
"छठवां द्वार ध्यान-द्वार संगमरमर के कलश जैसा है--सफेद और पारदर्शी। उसके भीतर एक स्वर्ण-अग्नि जलती है, वह प्रज्ञा की शिखा है, जो आत्मा से निकलती है। वीर्य मुक्त हो जाए काम-केंद्र से, तो ध्यान बनना शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे हम ऊपर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे ध्यान होने लगता है। संभोग में भी ध्यान होता है। शायद इसलिए हमारे मन में संभोग की इतनी प्रबल आकांक्षा है; वह ध्यान की ही खोज है। हमें और कुछ पता नहीं, इसलिए पहले द्वार को हम सब कुछ समझ लेते हैं। संभोग ध्यान की पहली घटना है, निम्नतम है। है ध्यान की ही।
फिर जैसे-जैसे वीर्य-ऊर्जा एक केंद्र से दूसरे केंद्र में उठती है, ध्यान और गहरा हो जाता है। तीसरे केंद्र में और गहरा हो जाता है। चौथे केंद्र में और गहरा हो जाता है; गहरा होता जाता है। पांचवें केंद्र से ध्यान की शिखा बहुत साफ हो जाती है। पांचवां केंद्र आज्ञाचक्र है, जिसको मैं तृतीय नेत्र आपसे कहता हूं। उसे रगड़ें वह पांचवां केंद्र है। जब काम की ऊर्जा वहां पहुंचती है, तो बड़ा उज्जवल ध्यान होने लगता है। पूर्ण उज्जवलता तो सातवें द्वार पर आती है।
"ध्यान का द्वार है संगमरमर के कलश जैसा। सफेद और पारदर्शी है। उसके भीतर एक स्वर्ण अग्नि जलती है। वह प्रज्ञा की शिखा है, जो आत्मा से निकलती है।"
ज्ञान शास्त्र में नहीं, शब्द में भी नहीं, ज्ञान है आपके भीतर छिपे ध्यान के कलश में। उस ज्ञान का नाम प्रज्ञा है, वह जो शिखा भीतर जल रही है ध्यान के कलश में। और ध्यान पारदर्शी कलश है, शुद्ध संगमरमर का। बाहर भी उसकी किरणें दिखाई पड़ती हैं। जो लोग ध्यान को उपलब्ध हो जाते हैं, उनके शब्दों में, उनकी वाणी में, उठने-बैठने में प्रज्ञा की झलक आने लगती है। वह जो भी छिपा है, बाहर भी बहने लगता है।
"तू ही वह कलश है।"
"ध्यान का वह कलश तू है।"
"अब तूने अपने को इंद्रियों के विषयों से विच्छिन्न कर लिया है। तूने दर्शन-पथ तथा श्रवण-पथ की यात्रा कर ली है और अब तू ज्ञान के प्रकाश में खड़ा है। अब तू तितिक्षा की अवस्था को उपलब्ध हो गया है।"
वीर्य के पांचवें द्वार के बाद, ये घटनाएं अपने आप घट जाती हैं। यह उसके परिणाम हैं कि व्यक्ति इंद्रियों से विच्छिन्न हो जाता है। इंद्रियों से हमारा जोड़ संभोग की आकांक्षा के कारण है। कामवासना, हमारी इंद्रियां और हमारे बीच जोड़ है। जब कामवासना ही मुक्त हो जाती है, तो इंद्रियों से हमारा संबंध विच्छिन्न हो जाता है।
हाथ से मेरा संबंध क्या है?
मेरा हाथ से संबंध दो तरह का है। एक तो वह है, जो मेरे हाथ की हड्डी टूट जाए और फ्रेक्चर हो जाए, तो डाक्टर जानता है कि क्या संबंध है। वह हड्डी को फिर जोड़ देगा। वह मेरा देह का देह से संबंध है। एक और संबंध है मेरे हाथ का

जो वास्तविक संबंध है, जिसको कोई डाक्टर नहीं जोड़ सकता, कोई डाक्टर नहीं तोड़ सकता। वह संबंध है, मेरे स्पर्श की वासना, यह हाथ से मैं छूता हूं। हाथ से मेरे दो संबंध हैं--एक मेरे देह का संबंध है कि हड्डियों से हड्डियां जुड़ी हैं, तो वह यांत्रिक है; एक दूसरा संबंध है मेरे स्पर्श की वासना का। वस्तुतः उसके कारण ही मैं हाथ से जुड़ा हूं। जिस दिन मेरे स्पर्श की वासना पूरी तरह समाप्त हो जाए, उस दिन हाथ से मैं नहीं जुड़ा हूं, हाथ भला मुझ से जुड़ा हो। जो हाथ के संबंध में सही है, वह सब इंद्रियों के संबंध में सही है।
जननेंद्रियों से आप जुड़े हैं चमड़ी से, हड्डी से; वह अलग बात है। गहरा जोड़ तो आपकी काम-वासना का है। इसलिए कभी आपने ख्याल किया कि मन में काम का विचार उठा कि जननेंद्रियां तत्काल प्रज्वलित हो जाती है। मन में विचार उठा नहीं कि जननेंद्रिय प्रभावित हुई नहीं। एक विचार का जोड़ है भीतर, वासना का जोड़ है। वह वासना का जोड़ जैसे ही ऊर्जा ऊपर उठनी शुरू होती है, टूटता जाता है। फिर हाथ रह जाता है, लेकिन छूने की वासना नहीं रह जाती। तब आप चीजें उठा सकते हैं, छू भी सकते हैं, लेकिन छूने की कामना तिरोहित हो जाती है। चीजें छुई जाएंगी, लेकिन छूने का कोई मोह, कोई पागलपन आपके भीतर नहीं है। इंद्रियों का आप उपयोग कर सकेंगे, लेकिन इंद्रियां अब आपकी गुलाम हैं, मालिक नहीं हैं। और यह घटना तभी घट सकती है।
इसको कोई उलटे ढंग से घटाना चाहे, तो मुश्किल में पड़ जाता है। कोई इस
डर से कि यह हाथ में छूने की वासना है, इसलिए हाथ काट डालो और आंख में सौंदर्य देखने की वासना है, इसलिए आंख फोड़ डालो--यह भी लोग करते हैं, यह पागलपन है। क्योंकि आंख फोड़ डालने से भी वह जो देखने की वासना थी, वह नहीं छूटेगी; अंधी आंखों के भीतर भी खड़ी रहेगी, फूटी आंखों के भीतर खड़ी रहेगी। आप आंख बंद कर लें, इससे क्या होता है? सपने देखेंगे आप। जो बाहर देखते थे, वह अब भीतर ही देखने लगेंगे। सारा संसार भीतर आ जाएगा। अगर सुंदर स्त्री को देखने की कामना थी, आंख फोड़ ली इस डर से कि न होगी आंखन रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। इतना आसान नहीं है बांसुरी का बंद होना। बांस की वजह से बांसुरी बजती ही नहीं। बांसुरी बजती है भीतर किसी राग की वजह से। बांस न होगा, तो कहीं और बजेगी, किसी और ढंग से बजेगी--बजेगी। अगर बांस न होगा तो बाहर प्रकट न होगी, भीतर ही बजती रहेगी। बांस से बांसुरी बजती होती तो बड़ी आसान बात थी। बांस को तोड़ देते, बांसुरी का बजना भी टूट जाता। बांस को हम उठाते ही इसलिए हैं, बांसुरी बनाते ही इसलिए हैं कि भीतर वह बज रही है पहले से, उसको प्रगट करना है।
इंद्रियां बांस की पोंगरी हैं और भीतर से जो रस वासना का बह रहा है, वही असली चीज है। बांस को तोड़ने में मत लगना, नासमझ उसमें लगते हैं। भीतर के रस को ही मुक्त करने में लगना। बांसुरी पड़ी ही रह जाएगी, बजना बंद हो जाएगा। होठ पर ही रखी रहे बांसुरी तो बजना बंद हो जाएगा।
अगर भीतर की वासना से मुक्त होना है, तो वीर्य को ऊपर की तरफ ले चलना है, वीर्य को नीचे के केंद्रों से मुक्त करना है; अपने आप इंद्रियों से संबंध विच्छिन्न होने लगेगा।
सूत्र कहता है कि तूने यहां तक पहुंच कर, वीर्य के मार्ग तक पहुंच कर, दर्शन-पथ, श्रवण-पथ की यात्रा कर ली।
जो भी देखने योग्य था, वह देख लिया, जो भी सुनने योग्य था, वह सुन लिया।
यह भीतर के संबंध में है। जो वीर्य के द्वार पर पहुंच गया, उसने जो भी देखने योग्य है भीतर के जगत में, वह देख लिया; जो भी सुनने योग्य था, वह सुन लिया।
अब तू ज्ञान के प्रकाश में खड़ा है।
अब न सुन रहा है तू, न देख रहा है तू--अब तू खुद ही प्रकाश में डूबा
हुआ है। अब इतना भी फासला नहीं है कि सुनना और देखना। अब तू खुद ही ज्ञान हुआ जा रहा है, लीन हुआ जा रहा है।
तितिक्षा का अर्थ हैः अब तुझे दुख और सुख समान हैं। अब तुझे दुख और सुख में कोई प्रयोजन नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि अब सुख का पता नहीं चलेगा, दुख का पता नहीं चलेगा। अगर बुद्ध के पैर में भी कांटा चुभाइएगा, तो

दर्द पता चलेगा। शायद आपको जितना पता चलता, उससे भी ज्यादा चलेगा। क्योंकि बुद्ध की संवेदनशीलता, सेंसिटिविटी परम है। यह तो पता चलेगा। कांटा चुभेगा
तो दर्द पता चलेगा; लेकिन दर्द दुख नहीं देगा, वह अलग बात है। बुद्ध के हाथ में एक सुकोमल फूल रखिएगा, तो उस सुकोमल फूल की नाजुकता, उसकी कोमलता, उसकी गंध, उसका सौंदर्य सब पता चलेगा। यह सब प्रतीति होगी, यह सब अनुभव बनेगा, लेकिन इससे कोई सुख नहीं होगा।
क्या मतलब इसका कि कांटा गड़ेगा तो दुख नहीं होगा? कांटा गड़ेगा, तो कष्ट होगा, दुख नहीं होगा।
कष्ट बाहरी घटना है, शारीरिक घटना है, दुख उसकी व्याख्या है। जब कांटा पैर में गड़ता है, तो यह तो कष्ट होगा ही। कष्ट का मतलब प्रतीति होगी। पैर खबर देगा, पैर के स्नायु तत्काल खबर भेजेंगे, संदेश भेजेंगे मस्तिष्क को कि कांटा गड़ा। लेकिन मस्तिष्क इसकी व्याख्या नहीं करेगा। मस्तिष्क यह नहीं कहेगा कि ऐसा नहीं होना चाहिए, या मस्तिष्क यह नहीं कहेगा कि ऐसा अब कभी न हो; मस्तिष्क यह नहीं कहेगा कि मैं शिकायत करता हूं परमात्मा से कि कांटा क्यों गड़ा? मस्तिष्क इसे स्वीकार कर लेगा कि ठीक है।
हाथ में फूल हो, खबर मिलेगी, लेकिन मस्तिष्क व्याख्या नहीं करेगा कि
यह फूल रोज-रोज ऐसा ही मेरे हाथ में हो, कि कल नहीं होगा तो मैं दुखी हो जाऊंगा; कि कल नहीं था तो मेरी जिंदगी बेकार थी, अब मेरी जिंदगी में अर्थ है; ऐसी व्याख्या नहीं करेगा।
सुख-दुख व्याख्याएं हैं।
कष्ट, सुविधाएं, असुविधाएं तथ्य हैं।
तथ्य पता चलता रहेगा, व्याख्या विलीन हो जाएगी।
सुख-दुख हमारी कामनाएं हैं; सुविधाएं, असुविधाएं बाह्य जीवन के तथ्य हैं।
तितिक्षा का अर्थ हैः अब बाहरी घटनाएं भर पता चलेंगी, उनके कारण भीतर कोई घटना निर्मित नहीं होगी, कोई आग्रह, कोई अपेक्षा भीतर निर्मित नहीं होगी। कांटा गड़े तो ठीक, हाथ में फूल हो तो ठीक। बुद्ध जैसे भीतर थे कांटे के गड़ने के पहले, वैसे कांटा गड़ने पर भी रहेंगे। बुद्ध जैसे थे फूल तो ठीक, हाथ में आने के पहले, बुद्ध भीतर वैसे ही रहेंगे। उस भीतर के लोक में बाहर की घटनाओं से कोई भी रूपांतरण नहीं होगा। भीतर वही स्थिति बनी रहेगी। यह भीतर वही स्थिति बनी रहेगी, चाहे बाहर कुछ भी घटे। इसका नाम है तितिक्षा। "ओ नारजोल, अब तू सुरक्षित है।"
सूत्र कहता है, ओ सिद्ध।
नारजोल तिब्बती शब्द है सिद्ध के लिए।
"ओ नारजोल, अब तू सुरक्षित है।"
वीर्य ऊपर की तरफ चल पड़ा, अब असुरक्षा नहीं है। अब तक डर था। वीर्य की यात्रा ध्यान बन गई, अब डर नहीं है, अब तू सुरक्षित है।
पापों के विजेता अब पाप जीत लिए गए।
"एक बार जब किसी स्रोतापन्न ने सातवें मार्ग को पार कर लिया है, तब समस्त प्रकृति आनंद-पूर्ण आश्चर्य से भर जाती है और पराजित अनुभव करती है।"
अब आगे की एक झलक यह सूत्र देता है। छठवां द्वार है ध्यान। अब सातवां
ही बचा है, अब मंजिल बिल्कुल पास है। अब एक कदम और है कि ध्यान का कलश भी टूट जाएगा, और रह जाएगी शुद्ध प्रज्ञा। अभी झलक मिल रही है। जैसे एक लालटेन हो, कितना ही शुभ्र हो कांच, कि कितना ही शुद्ध और पारदर्शी; दिखाई भी न पड़ता हो, तो भी जरा सा फासला अभी कायम है। कांच की एक दीवाल है और उसके भीतर है ज्योति।
ध्यान कांच की दीवाल है, समाधि कांच की दीवाल का भी टूट जाना है।
पर कांच की दीवाल भी दीवाल है। अभी भी थोड़ा फासला है। और कांच कितना
ही शुद्ध हो, शुद्धि भी बीच में खड़ी हो, तो वह भी अवरोध है। वह भी टूट जाएगी। सातवें में सब अवरोध गिर जाएंगे; मात्र प्रज्ञा, मात्र बोध, अवेयरनेस, चैतन्य, जिसको हमने सच्चिदानंद कहा है, वही भर शेष रह जाएगा। इस

सातवें द्वार की घटना तब घटती है, जब कोई स्रोत में प्रविष्ट, नदी की धारा में बहा।
स्रोतापन्न या सोवानी--यह बौद्ध तिब्बती शब्द है। सोवानी का अर्थ है,
जो नदी में प्रविष्ट हुआ था पहले द्वार पर, वह अब सातवें द्वार को पार कर जाता है। तब समस्त प्रकृति आनंदपूर्ण आश्चर्य से भर जाती है और पराजित अनुभव करती है।
इसे थोड़ा समझें, बहुत कीमती है, बहुत गूढ़ है, और हमारे ख्याल में न आए, क्योंकि हमें पता भी नहीं है कि क्या हो रहा है हमारे भीतर।
जब आप क्रोधित हो जाते हैं, तब प्रकृति जीतती है और आप हारते हैं। जब
आप काम-वासना से भर जाते हैं, तो प्रकृति जीतती है और आप हारते हैं। तब पृथ्वी की शक्तियां जीत जाती हैं। और ऊपर उड़ने वाली ऊर्जा, ऊपर जाने वाली ऊर्जा झटककर नीचे गिर जाती है। संभोग के बाद सभी को जो एक उदासी, एक विषाद और एक पश्चात्ताप का भाव घेर लेता है, वह प्रकृति से पराजय के कारण। क्रोध के बाद क्रोधी से क्रोधी आदमी को भी लगता है कि गलत हुआ, न होता तो अच्छा था। क्यों लगता है ऐसा? और आदमी क्रोधी है, आदमी दुष्ट प्रकृति का है, कठोर है; उसको भी लगता है कि बुरा हुआ! क्या बुरा लगा? क्या उसे यह बुरा लगता है कि मेरे क्रोध के कारण दूसरे को चोट पहुंची?
नहीं, वह काफी कठोर है, दुष्ट है। दूसरे को तो चोट पहुंचाने में उसको
रस आता है, उसे पश्चात्ताप नहीं होता। पश्चात्ताप यह होता है कि मैं हारा। जब भी क्रोध उसे पकड़ लेता है, तो उससे कोई बड़ी ताकत जैसे उसे खींचकर चला देती है और वह अपने वश में नहीं रह जाता, इसका पश्चात्ताप होता
है।
संभोग से जो पश्चात्ताप होता है, वह यह नहीं कि संभोग में कोई दुख है; संभोग में सुख का क्षण है, पश्चात्ताप यह होता है कि मुझसे विराटतर शक्ति ने मेरी गर्दन पकड़ ली और मुझे चला दिया और मैं कुछ भी न कर पाया। पश्चात्ताप हार का है, एक पराजय का है।
पाप हम कहते ही उसे हैं, जिसके पीछे आप को हार की प्रतीति हो।
और पुण्य हम कहते ही उसे हैं, जिसके पीछे आपको जीत की प्रतीति हो। जिस काम के करने से आपको भीतर गौरव का अनुभव हो और लगे कि मैं मुक्त हुआ, कोई प्रबल शक्ति मुझे खींचती नहीं, मैं खुद शक्तिशाली हो गया हूं, उस प्रतीति का नाम पुण्य है।
उस प्रतीति का नाम पाप है, जब आपको लगे कि किसी और ने मुझसे कुछ करवा लिया, मैं अपना मालिक न रहा।
गुलामी का बोध पाप है, मालकियत का बोध पुण्य है।
इसलिए हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। सिर्फ इसलिए कि अब वह धीरे- धीरे स्वामित्व की तरफ बढ़ रहा है, और धीरे-धीरे उसके भीतर जो दासता का तत्व है, उसे वह निकाल बाहर करेगा, नष्ट करेगा और हर मौके को अपनी मालकियत, अपना स्वामित्व बनाएगा।
जन्मों-जन्मों तक हम हारते हैं, पराजित होते हैं। प्रकृति मान ही लेती है कि हम जीत नहीं सकते। सोचें आप खुद ही, इसी जिंदगी को सोचें, दूसरी जिंदगी का तो आपको पता भी नहीं है। इसी जिंदगी में तो कितनी बार तय किया है कि नहीं करेंगे क्रोध, और फिर-फिर किया है। एक भी बार नहीं जीत पाए।
तो आपके भीतर जो क्रोध की ऊर्जा है, जो पृथ्वी की कशिश है आपके भीतर, जमीन की तरफ खींचने की जो ताकत है, वह आश्वस्त हो गई है कि तुम्हारी बातों का, तुम्हारे वचनों का, तुम्हारी कसमों का कोई मूल्य नहीं है। तुम नाहक बकवास किया करते हो। क्योंकि जब भी होता है वही होता है, जो प्रकृति चाहती है। आपके किए क्या होता है। तो जन्मों-जन्मों से प्रकृति आश्वस्त है आपसे, कि आप भरोसे के आदमी हैं। आप कितने मंदिर जाओ, पूजा-प्रार्थना करो, कितनी कसमें खाओ, कितने गुरुओं के चरणों में भटको; प्रकृति जानती है कि तुम नाहक यहां-वहां समय गंवा रहे हो, आखिर तुम मेरे ही शरण हो, और सब करके तुम मेरे ही शरण आ जाते हो। सुबह का भटका सांझ तक घर लौट आता है; ज्यादा देर नहीं लगती। प्रकृति को आपकी बातों से कोई चिंता पैदा नहीं होती।

इसलिए जब पहली दफा कोई व्यक्ति नारजोल की, सिद्धि की अवस्था में पहुंचता है, और काम-ऊर्जा स्पर्श कर लेती है ऊपर के केंद्रों का, तो समस्त प्रकृति आनंदपूर्ण आश्चर्य से भर जाती है, और पराजित अनुभव करती है। आनंदपूर्ण आश्चर्य से भर जाती है और पराजित अनुभव करती है।
ये बड़े विपरीत शब्द हैं। पराजित अनुभव करती है; क्योंकि सदा वह विजेता थी और आप हारे हुए थे। पहली दफा आप जीत गए, और प्रकृति हार गई। इसलिए पराजित अनुभव करती है। लेकिन दुख का अनुभव नहीं करती है, आनंदपूर्ण अनुभव करती है।
क्यों?
एक रहस्य है। और वह यह है कि जिसको आप गुलाम बनाते हैं, आप भी उसके गुलाम बन जाते हैं। किसी को गुलाम बनाना आसान नहीं, गुलाम बनाने में खुद भी गुलाम बनना पड़ता है।
सुना है मैंने, एक आदमी एक गाय को बांध कर ले जा रहा था, और रास्ते में उसे मिल गया एक सूफी फकीर--फरीद! फरीद ने अपने शिष्यों से कहा कि इस आदमी को घेर लो, मैं कुछ तुम्हें ज्ञान दूंगा। वह गाय वाला आदमी घिर गया और उसके शिष्य घेर कर खड़े हो गए। फरीद को ऐसे ही शिक्षा देने की आदत थी। उसने कहा कि देखो, मैं तुमसे पूछता हूं कि इसमें गुलाम कौन है--यह आदमी या गाय? शिष्यों ने कहा कि वह कोई पूछने की बात है, गाय गुलाम है; यह आदमी मालिक है। तो फरीद ने कहा
कि यह अगर सच है, तो यदि इन दोनों के बीच का संबंध तोड़ दिया जाए, तो गाय आदमी को खोजेगी, कि आदमी गाय को खोजेगा?
आदमी गाय को खोजेगा। फिर गुलाम कौन है? जिसको हम बांधते हैं, उससे हम बंध भी जाते हैं। और बड़ी सूम गुलामी पैदा हो जाती है। मालिक भी गुलाम होता है सूम में। मालिक तो वही होता है, जो किसी को गुलाम नहीं बनाता।
तो प्रकृति भी आपको गुलाम बनाए हुए है। लेकिन जिस दिन आप मुक्त होते हैं, उस दिन वह भी आनंद से भर जाती है; क्योंकि वह भी आपसे मुक्त हुई। पृथ्वी को भी झंझट आपकी मिटी। आप कुछ छोटी झंझट नहीं हैं। अपने लिए ही झंझट हैं, ऐसा नहीं है। आप इस पूरी पृथ्वी के लिए झंझट हैं। आप उपद्रव के स्रोत हैं। आपको बांध-बांध कर ही रखना पड़ता है। जिस दिन आप मुक्त होते हैं, आपको बांधने की जरूरत ही चली जाती है।
समस्त प्रकृति आनंदपूर्ण आश्चर्य से भर जाती है। आनंद भी होता है, और आश्चर्य भी कि तुम और यह कर सके! तुमसे कोई आशा न थी, तुम बड़े भरोसे के न थे, तुम भी यह कर सके! इतने जन्मों तक भटक कर भी तुम जीत सके, इतने जन्मों की पराजित होने की आदत को भी तुम तोड़ सके! स्वभावतः एक गहन आश्चर्य छा जाता है।
रजत-तारा--बड़े मीठे वचन हैं।
"रजत-तारा अब जलते इशारों से रजनी-गंधा को यह समाचार बताता है, झरना अपने कल-कल स्वर में कंकड़ियों को यह कथा सुनाता है, सागर की काली लहरें गर्जन करके यही बात फेनिल चट्टानों को बताती हैं, गंध-भरी हवाएं घाटियों के कान में इसका ही गीत गाती हैं, और चीड़ के शानदार वृक्ष बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से गुनगुनाते हैंः बुद्ध का उदय हुआ है--आज के बुद्ध का।"
यह हमें कठिन लगेगा, और लगेगा शायद काव्य है। लगेगा कि कवि की कल्पना है। अगर ऐसा लगा, तो आप मुद्दा चूक गए, तो आप समझ न पाए कि बात क्या है। ऐसे सूत्रों को लिखनेवाले लोग कविताओं में नहीं उलझते। ऐसे सूत्रों को जाननेवाले लोग कल्पनाओं से नहीं खेलते। ए तथ्य हैं। कहने का ढंग काव्यपूर्ण है, क्योंकि यह तथ्य ही काव्यपूर्ण है।
जिस दिन बुद्ध का जन्म होता है--कोई एक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो उसके साथ ही इस सारी प्रकृति में झनझनाहट फैल जाती है। यह घटना असाधारण है। यह कोई छोटी घटना नहीं है। जैसे एक ज्वालामुखी फूट पड़ता है, सारी पृथ्वी कंपन से भर जाती है। यह भी एक ज्वालामुखी का विस्फोट है; पदार्थ का नहीं, चेतना का। इसकी तरल-तरंग सारी प्रकृति को स्पर्श करेगी। कुछ भी अछूता न रह जाएगा। बुद्ध की घटना एक्सप्लोजन है, विस्फोट है। इस घटना में चैतन्य का कण-कण प्रभावित होगा, आच्छादित हो जाएगा।

और यह सारा जगत चैतन्य से बना है। इसमें पत्थर की भी आत्मा है। हम नहीं देख पाते, क्योंकि हमारी आंखें पथरीली हैं। यहां पत्थरों की भी आत्माएं हैं, यहां झरनों की भी आत्माएं हैं। यहां सागर की भी आत्मा है। यहां जो भी है चारों तरफ, सब आत्मवान है। और जब बुद्धत्व की घटना घटती है और एक व्यक्ति समस्त बंधनों के बाहर हो जाता है, और एक व्यक्ति परम स्वतंत्रता को उपलब्ध होता है, और एक व्यक्ति समस्त अहंकार, समस्त रोगों से मुक्त होता है, एक व्यक्ति के जब सारे बंधन गिर जाते हैं, तो यह काव्य सत्य हो जाता है, यह तथ्य हो जाता है।
"रजत-तारा अपने जलते इशारों से रजनी-गंधा को यही समाचार बताता है"
रात खिला है रजनी-गंधा का फूल, तारे उससे भी यही कहते हैं--बुद्ध का जन्म हुआ!
"झरना अपने कल-कल स्वरों में, कंकड़-पत्थरों से यही कथा सुनाता है! सागर की काली लहरें गर्जन करके यही बात फेनिल चट्टानों से कह जाती हैं! गंध भरी घाटियां इसी का गीत गुनगुनाती हैं। चीड़ के शानदार वृक्ष बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से गुनगुनाते हैंः बुद्ध का उदय हुआ--आज के बुद्ध का।" "अब वह पश्चिम में उज्जवल स्तूप की तरह खड़ा है, जिसके मुंह पर शाश्वत भाव का उदीयमान सूर्य अपनी प्रथम महा गौरवमयी किरणों को बरसा रहा है। उसका मन एक शांत और असीम सागर की तरह तटहीन अंतरिक्ष में फैलता जा रहा है। और वह जीवन और मृत्यु को अपने मजबूत हाथों में धारण किए हुए है।
ऐसा नवजात बुद्ध जैसे खड़ा है पश्चिम में, मुख उसका पूरब की तरफ है, और बुद्धत्व के उदय का सूर्य, बाल-सूर्य, प्रज्ञा का सूर्य अपनी पहली किरणें उस पर डाल रहा है।
"अब वह पश्चिम में उज्जवल स्तूप की तरह खड़ा है, जिसके मुंह पर शाश्वत भाव का उदीयमान सूर्य अपनी प्रथम महा गौरवमयी किरणों को बरसा रहा है। उसका मन एक शांत और असीम सागर की तरह तटहीन अंतरिक्ष में फैलता जा रहा है।" इस सूरज के उदय होने के साथ ही उसकी चेतना फैल रही है। जैसे-जैसे यह सूरज फैल रहा है और जैसे-जैसे इस सूरज की किरणों का ताना-बाना फैल रहा है, वैसे- वैसे उसकी चेतना भी फैलती जा रही है। क्योंकि यह सूर्य कहीं बाहर का सूर्य नहीं, उसकी चेतना का ही सूर्य है। अंतहीन अंतरिक्ष बन जाएगी उसकी आत्मा, उसकी कोई सीमाएं न होंगी। क्षण भर की देर है। और वह जो व्यक्ति था, खो जाएगा। वह द्वीप खो जाएगा। सागर ही रह जाएगा। वह अब तक सीमा में बंधा था, अब नहीं होगा। असीम ही रह जाएगा।
बुद्ध ने कहा है ज्ञान के हो जाने पर, जिस मकान में मैं अब तक जन्मों- जन्मों रहता आया, उसकी दीवालें गिर गई हैं। अब तो भीतर का शून्य आकाश ही शेष रह गया है।
जिसे हम समझते हैं अपना होना, वह हमारी दीवालों के कारण है। एक दिन दीवालें गिर जाएंगी। इस छठवें द्वार के बाद आखिरी दीवाल गिर रही है, वह कांच की दीवाल, पारदर्शी दीवाल। अब ध्यान भी मिट जाएगा, सिर्फ चैतन्य रह जाएगा। और चैतन्य असीम है, उसकी कोई सीमा नहीं है।
"जीवन और मृत्यु को वह अपने मजबूत हाथों में धारण किए हुए है।" अब जीवन और मृत्यु दोनों के पार हो गया है। जीवन और मृत्यु दोनों उसके हाथ में हैं। न वह जीवन है, न वह मृत्यु है।
जब तक हम जीवन से बंधे हैं, तब तक मौत से भी बंधे हैं। और जब तक जीवन चाहते हैं, तब तक हमें मौत भी मिलती रहेगी। जब तक जन्म है, तब तक मौत होगी। अब इस बुद्ध के हाथ में जीवन और मृत्यु, दोनों इसके हाथ में हैं। यह स्वयं दोनों से अलग और पृथक है। यह तीसरा है। इसका कोई नाम नहीं है। इसे हम अमृत-जीवन कहते हैं। वह केवल इस पृथ्वी की भाषा में। इस पृथ्वी में जीवन की आकांक्षा से भरे हुए लोगों की समझ में आ सके, इसलिए। अन्यथा न वह जीवन है, न वह मृत्यु। वह दोनों के पार शाश्वतता है। इस छठवें द्वार के बाद उस शाश्वतता में छलांग लग जाएगी। सीमित असीम हो जाएगा, और बूंद सागर हो जाएगी।
वीर्य से ध्यान का द्वार खुलता है, ध्यान से समाधि का।

समाधि के सप्त द्वार
पंद्रहवां प्रवचन

बोधिसत्व बन!

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि, 16 फरवरी, 1973

हां, वह शक्तिशाली है। वह जीवंत शक्ति, जो उसमें मुक्त हुई है और जो शक्ति वह स्वयं है, माया के मंडप को देवताओं के भी ऊपर महान ब्रह्मा और इंद्र के ऊपर भी उठा सकती है। अब वह निश्चित ही अपने महा पुरस्कार को उपलब्ध करेगा।
क्या वह, जिसने महा माया को जीत लिया है, इन वरदानों को अपने ही विश्राम और आनंद के लिए, अपने ही सुअर्जित सुख और गौरव के लिए उपयोग नहीं करेगा?
नहीं, ओ निसर्ग के गुह्य-विद्या के साधक, यदि कोई पवित्र तथागत के चरण-चिह्नों पर चले तो वे वरदान और शक्तियां उसके लिए नहीं हैं।
क्या तू उस नदी को बांध देगा, से उसके मूल उद्गम को वापस भेज देगा?
यदि तू कठिन श्रम से उपलब्ध ज्ञान की उस स्रोतस्विनी को, स्वर्ग में जन्मी प्रज्ञा को प्रवाहमान रहने देना चाहता है, तो तुझे उसे एक ठहरा हुआ सरोवर बनने से बचाना होगा।
जान कि यदि तुझे अमित युग के अमिताभ का सहयोगी बनना है, तो तुझे प्राप्त प्रकाश को, जुड़वें बोधिसत्वों की तरह तीनों लोक पर विकीर्णित करना होगा।
जान कि अति-मानवीय-ज्ञान और देव-प्रज्ञा की इस धारा को, जिसे तूने अर्जित किया है, स्वयं से, आलय (परम सत्ता) की नहर के द्वारा, दूसरी नदी में प्रवाहित कर देना है।
ओ, गुह्य-मार्ग के यात्री, नारजोल (सिद्ध) जान कि इसके शुद्ध व ताजे जल
से समुद्र की तीखी लहरों को--उस शोक समुद्र की खारी लहरों को जो मनुष्य के आसुंओं से बना है--मधुर बनाना है।
आह, जब तू एक बार उस सबसे ऊंचे आकाश का ध्रुव तारा बन गया है, तब उस स्वर्गीय प्रभा-मंडल को अंतरिक्ष की गहराइयों से, अपने सिवाय सब के लिए बिखेरना है। प्रकाश सबको दे, किसी से भी ले मत।
आह, जब एक बार तू पर्वत की घाटियों में शुद्ध तुषार जैसा हो गया है, जो ठंडा है और स्पर्श के लिए संवेदना-शून्य है, किंतु जो उसके हृदय में सोने वाले बीज के लिए गर्म और रक्षाकारी है, तब उस तुषार को स्वयं ही हड्डियों को छेदनेवाले उन उत्तर के हिमपातों को पी जाना होगा ताकि उनके तीखे व क्रूर दांतों से धरती की रक्षा की जा सके। उसी धरती में वह फसल छिपी पड़ी है, जिससे भूखों को भोजन मिलेगा।

सूत्र के पहले एक प्रश्न--
पूछा है किसी नेः बुद्ध और महावीर, कृष्ण और जीसस, मोहम्मद, लाओत्सु, रजनीश, मतलब सभी पुरुष ही! तो किसी स्त्री ने बुद्धत्व की खबर दुनिया तक क्यों नहीं पहुंचाई? क्या बोधिसत्व बनना स्त्री की दृष्टि से कठिन है? इस संबंध में बहुत सी बातें समझनी पड़ेंगी।
एक तो स्त्री और पुरुष बुनियादी रूप से भिन्न हैं। भिन्न से अर्थ ऊंचे-नीचे हैं, ऐसा नहीं है; दोनों समान हैं, लेकिन विपरीत हैं। ऊंचा-नीचा कोई भी नहीं है। दोनों समान हैं; लेकिन विपरीत ध्रुव हैं। एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं। और यह उनकी विपरीतता जरूरी है। इन दो विपरीतताओं से मिल कर ही तो जन्म होता है, जीवन की धारा बहती है। वे विपरीत हैं, इसलिए उनमें आकर्षण है। वे विपरीत हैं, इसलिए उनमें प्रेम भी है और कलह भी है। प्रेम है, क्योंकि आकर्षण है। कलह है, क्योंकि वे विपरीत हैं। स्त्री और पुरुष के बीच कभी भी सुलह नहीं हो पाती है। हो नहीं सकती है। उनकी विपरीतता के कारण खिंचाव है, और विपरीतता के कारण ही आकर्षण भी है।

पुरुष अधूरा है, स्त्री के बिना; स्त्री अधूरी है, पुरुष के बिना। पुरुष पूरा होना चाहता है स्त्री के साथ। स्त्री पूरी होनी चाहती है-- पुरुष के साथ। अकेले पूरा होना बहुत कठिन है। जब तक कि भीतर की यात्रा शुरू न हो जाए, तब तक बाहर की पूर्णता की खोज चलती है। लेकिन जिससे हम पूरे होना चाहते हैं, वह हमारे विपरीत है। विपरीत है, तो एक निश्चित कलह भी मौजूद है, एक तनाव भी है। पास भी आते हैं, और दूर भी जाते हैं। दूर जाते हैं, और पुनः पास भी आते हैं। और हर पास आना, फिर पुनः दूर जाने का उपाय हो जाता है।
स्त्री और पुरुष के बीच कोई स्थिर संबंध निर्मित नहीं हो पाता। हो भी नहीं सकता। सब संबंध अस्थिर होंगे। इसलिए सारा संसार स्त्री-पुरुष के संबंध जैसा है, अस्थिर है--अभी कुछ, अभी कुछ। क्षण भर पहले सुखद मालूम पड़े जो संबंध, क्षण भर में दुखद हो जाएगा। क्षण भर पहले जहां प्रेम है, क्षण भर बाद घृणा हो जाएगी। यह स्वाभाविक है। इसको बदलने का भी कोई उपाय नहीं है, ऐसा है; जब तक कि व्यक्ति अंदर की तरफ यात्रा पर न निकल जाए। तो पहली बात यह समझ लेना जरूरी है कि स्त्री और पुरुष विपरीत हैं और भिन्न हैं। इसलिए उनके गुण भी विपरीत हैं और भिन्न हैं।
शरीर से समझें, तो भीतर की बात भी समझ में आ जाएगी। क्योंकि शरीर का जो ढंग है, वही भीतर के व्यक्तित्व का भी ढंग है। पुरुष आक्रमक है और स्त्री अनाक्रमक है। पुरुष सक्रिय है और स्त्री निष्क्रिय है। पुरुष प्रेम करता है और स्त्री प्रेम लेती है। जैविक तल पर भी, बायोलॉजी के तल पर भी, पुरुष देता है वीर्यकण, स्त्री अंगीकार करती है। वहां भी देने वाला पुरुष है, लेने वाली स्त्री है। वहां भी पुरुष पहल करता है, इनिशिएटिव लेता है।
कोई स्त्री किसी पुरुष से जा कर सीधा नहीं कहती कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। प्रतीक्षा करती है कि पुरुष उससे कहे। उसका निमंत्रण भी मौन है, निष्क्रिय है। पुरुष को ही पहल करनी पड़ती है। सक्रिय पुरुष को ही होना पड़ता है। पुरुष को ही निवेदन करना पड़ता है कि मुझे प्रेम है। स्त्री उस निवेदन पर हां या ना भरेगी। लेकिन निवेदन नहीं करेगी। और जो स्त्री किसी पुरुष से निवेदन करेगी कि मुझे तुमसे प्रेम है, उस पुरुष की उत्सुकता उस स्त्री में नहीं हो सकती है। क्योंकि वह स्त्री पुरुष जैसा व्यवहार कर रही है। वह स्त्री ही न रही, आक्रमक हो गई।
पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का तालमेल चीन में बहुत पुराने दिनों
से दो शब्द उपयोग में आते रहे हैं--यिन और यांग। यिन स्त्री है और यांग पुरुष। स्त्री है खाई की तरह, पुरुष है पर्वत-शिखर की तरह।
स्त्री है ग्राहक। जरूरी है कि वह ग्राहक हो, क्योंकि गर्भ उसमें निर्मित होगा। पुरुष गर्भ नहीं खींच सकता है, गर्भ नहीं रख सकता है। बच्चे के जन्म में पुरुष का एक क्षण का संबंध होता है। स्त्री का संबंध बहुत गहरा है। बच्चा उसके भीतर बड़ा होगा। बढ़ेगा, उसका अंग है; उसका खून, हड्डी, मांस, मज्जा है। इसलिए मां और बच्चे के बीच जो निकटता है और आत्मीयता है, वह पिता और बच्चे के बीच नहीं हो सकती है। मां और बच्चे जैसे एक ही चीज का विस्तार हैं। तो उसे ग्राहक होना तो जरूरी है। वह आक्रमक नहीं है। वह गर्भ धारण करती है।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि यही उसके भीतर का भी ढंग है। अब इसे समझें, कि इसका अध्यात्म से क्या लेना-देना है।
स्त्री अगर शिष्य हो, तो उससे श्रेष्ठ शिष्य खोजना मुश्किल है।
स्त्री का शिष्यत्व श्रेष्ठतम है। कोई पुरुष उसका मुकाबला नहीं कर सकता है। क्योंकि समर्पण की जो क्षमता उसमें है, वह किसी पुरुष में नहीं है। जिस संपूर्ण भाव से वह अंगीकार कर लेती है, ग्रहण कर लेती है, उस तरह से कोई पुरुष कभी अंगीकार नहीं कर पाता, ग्रहण नहीं कर पाता।
इधर मेरा भी रोज का अनुभव है। स्त्रियों के समर्पण से कोई पुरुष के समर्पण की तुलना नहीं की जा सकती। और जब कोई स्त्री स्वीकार कर लेती है, तो फिर उसमें रंचमात्र भी उसके भीतर कोई विवाद नहीं होता है, कोई संदेह नहीं होता है; उसकी आस्था परिपूर्ण है। अगर वह मेरे विचार को या किसी के विचार को स्वीकार कर लेती है, तो वह विचार भी उसके गर्भ में प्रवेश कर जाता है।

वह उसके हड्डी, मांस का हिस्सा हो जाता है। वह उस विचार को भी, बीज की तरह, गर्भ की तरह अपने भीतर पोसने लगती है। कोई पुरुष यह नहीं कर सकता।
पुरुष अगर स्वीकार भी करता है, तो बड़ी जद्दोजहद करता है, बड़े संदेह खड़ा करता है, बड़े प्रश्न उठाता है। और अगर झुकता भी है, तो वह यही कह कर झुकता है कि आधे मन से झुक रहा हूं, पूरे मन से नहीं झुक रहा हूं। क्या करूं, कोई उपाय नहीं है।
मेरे पास आकर पुरुष कहते हैं--सीधी सच्ची बात है, वे कहते हैं--पूरे मन
से समर्पण नहीं हो रहा है। एक हिस्सा विरोध में है, एक हिस्सा पक्ष में है। क्योंकि पुरुष आक्रमक है, समर्पण उसके लिए अति कठिन है। और स्त्री ग्राहक है, समर्पण उसके लिए अति सरल है। तो शिष्यत्व की जो ऊंचाई स्त्री को उपलब्ध होती है, वह पुरुष को कभी नहीं उपलब्ध होती।
पुरुष में जो श्रेष्ठतम शिष्य है, वह भी स्त्रियों में निकृष्टतम शिष्य के करीब पहुंच पाता है। इसलिए शिष्य तो बहुत अदभुत स्त्रियों ने पैदा किए हैं। लेकिन शिष्यों के नाम तो जाने नहीं जाते इतिहास में, नाम तो गुरुओं के जाने जाते हैं। महावीर के पास चार शिष्य अगर थे, तो उसमें तीन शिष्याएं थीं और एक शिष्य था। चालीस हजार महावीर के संन्यासी थे। उसमें तीस हजार संन्यासिनियां थीं, और दस हजार संन्यासी थे। बुद्ध के पास भी शिष्यों का अनुपात यही था। चार में तीन स्त्रियां, एक पुरुष!
जीसस को जिस दिन सूली लगी, उस दिन सारे पुरुष छोड़ कर चले गए। जिन्होंने जीसस को सूली पर से उतारा, वे दो स्त्रियां थीं। यह बड़ी मजे की बात है। मेरी मेग्दलीन एक वेश्या थी। उसकी वजह से ही जीसस को बहुत परेशानियां झेलनी पड़ीं। क्योंकि लोगों ने कहा कि जीसस जैसा महापुरुष और मेरी मेग्दलीन के घर रुक जाए--वेश्या के घर! तो समाज की नीति, आचार को बड़ा धक्का लगा था। जिन शिष्यों ने जीसस से कहा था कि इस मेरी मेग्दलीन को छोड़ दें, इस एक के पीछे अकारण हमारे विचार को नुकसान पहुंच रहा है, तो जीसस हंसे थे, मुस्कुराए थे, कुछ बोले नहीं थे। और जिस रात जीसस पकड़े गए, उस रात वे ही शिष्य, जिन्होंने कहा था मेरी मेग्दालिन को हटा दें मार्ग से, इसके पीछे विचार को नुकसान पहुंचता है, तो जीसस ने कहा था, सुबह होने के पहले, उसके पहले कि मुर्गा बांग दे, तुम सब मुझे छोड़ कर चल जाओगे और जिसे तुम छोड़ने को कह रहे हो, वही भर शेष रह जाएगी।
और ऐसा हुआ। जिस रात जीसस पकड़े गए और जब दुश्मन उन्हें ले जाने लगे, तो उनका एक शिष्य ल्यूक पीछे-पीछे भीड़ में हो लिया। बाकी सब तो हट गए, क्योंकि खतरा था--उनकी जान का भी। एक, ल्यूक, पीछे-पीछे हो लिया। दुश्मन ने देखा कि कोई एक अजनबी आदमी हमारे बीच है। उन्होंने पूछा कि तू कौन है? तू जीसस का साथी तो नहीं? तो ल्यूक ने कहा कि कौन जीसस? मैं तो पहचानता ही नहीं। जीसस ने पीछे मुड़ कर--उनके हाथ बंधे थे, दुश्मन उन्हें पकड़े हुए थे--पीछे मुड़ कर कहाः सुन, अभी मुर्गे ने बांग भी नहीं दी और तूने एक दफे इनकार कर दिया। सूली से भी जिस स्त्री ने उतारा, वह मेरी मेग्दलीन थी।
शिष्यत्व की जिस ऊंचाई पर स्त्रियां पहुंच सकती हैं, पुरुष नहीं पहुंच सकते। क्योंकि निकटता की जिस ऊंचाई पर स्त्रियां पहुंच सकती हैं, पुरुष नहीं पहुंच सकता--स्वीकार की, समर्पण की। पर शिष्याओं के नाम तो बहुत जाहिर नहीं हो सकते हैं। शिष्य आखिर शिष्य हैं। नाम तो गुरुओं के ही होंगे।
और चूंकि स्त्रियां बहुत अदभुत रूप से, गहन रूप से, श्रेष्ठतम रूप से, शिष्य बन सकती हैं, इसलिए गुरु नहीं बन सकतीं। क्योंकि शिष्य का जो गुण है, वही गुरु के लिए बाधा है। गुरु को तो आक्रमक होना पड़ेगा। गुरु तो शिष्यों को मिटाएगा, तोड़ेगा, नष्ट करेगा। वह स्त्री के बस की बात नहीं है। स्त्री बना सकती है, ग्रहण कर सकती है, संभाल सकती है; बीज को अपने भीतर आरोपित करके गर्भ बना सकती है, जन्म दे सकती है, नष्ट नहीं कर सकती। आक्रमक नहीं हो सकती है।
और गुरु का तो सारा कृत्य ही आक्रमण है। वह तो तोड़ेगा, मिटाएगा, नष्ट करेगा; क्योंकि पुराने को न मिटाए, तो नये का जन्म नहीं हो सकता है। तो गुरु तो अनिवार्य रूप से विध्वंसक है; क्योंकि उसी से सृजन लाएगा। वह आपकी

मृत्यु न ला सके, तो आपको नया जीवन न दे सकेगा। स्त्री की वह क्षमता नहीं है। वह आक्रमण नहीं कर सकती, समर्पण कर सकती है। समर्पण उसे शिष्यत्व में तो बहुत ऊंचाई पर ले जाता है, लेकिन स्त्री कितनी ही बड़ी शिष्या हो जाए, वह गुरु नहीं बन सकती। उसका शिष्य होने का जो गुणधर्म है, जो खूबी है, वही तो बाधा बन जाती है कि वह गुरु नहीं हो सकती है।
अगर स्त्री कभी गुरु बने, तो पुरुषों में जो निकृष्टतम गुरु होता है, स्त्रियों में श्रेष्ठतम गुरु उसके पास पहुंचता है, उससे ज्यादा नहीं। पुरुष की अड़चन है शिष्य बनने में। लेकिन अगर वह शिष्य बन जाए--बहुत अड़चन है--अगर बन जाए तो उसके गुरु बनने की क्षमता है। शिष्य बनने में उसे बहुत कठिनाई होगी, लेकिन गुरु बनने में उसे जरा भी कठिनाई नहीं होगी। स्त्री को शिष्य बनना एकदम सुगम है, लेकिन गुरु बनना एकदम कठिन है।
इसी कारण से बुद्ध ने, और भी कारणों के साथ यह भी एक महत्वपूर्ण कारण
था कि बहुत समय तक स्त्रियों को दीक्षा न दी। और इनकार किया कि मैं स्त्रियों को दीक्षा न दूंगा। कारण बहुत थे, एक कारण यह था कि बुद्ध का ख्याल था और बात सही है कि स्त्री को कितना ही श्रम लो, उसके साथ उसका श्रम उसी के साथ समाप्त हो जाएगा। वह गुरु नहीं बन सकती है। जल्दी शिष्य बन जाती है, जल्दी समर्पित हो जाती है, जल्दी उपलब्ध भी हो सकती है, लेकिन उपलब्धि उसी के साथ खो जाती है। वह उपलब्धि विस्तीर्ण नहीं हो सकती है। एक पुरुष को निर्मित कर लो तो, तो एक पुरुष करोड़ों लोगों के लिए दान-दाता हो जाएगा। करोड़ स्त्रियों को भी तैयार कर लो, तो भी वे अपने में ही खो जाएंगी और शांत हो जाएंगी। उनसे दान नहीं मिल सकता।
तो बुद्ध का यह ख्याल दूर तक सही था कि मेरा श्रम पुरुषों पर ही होने दें। उतना ही श्रम करके मैं पुरुष को तैयार कर लूं, तो वे दूर तक इन बीजों को ले जाएंगे और फैला देंगे। सीधा मुझे स्त्रियों से मेहनत नहीं करना है।
इसमें और भी बातें समझ लेने जैसी हैं।
स्त्री की उत्सुकता स्वयं के बाहर ना के बराबर होती है, होती ही नहीं।
पुरुष की उत्सुकता दूसरे में बहुत ज्यादा होती है। पुरुष है एक्सटरेवर्ट, स्त्री है इंटरेवर्ट। स्त्री होती है अंतर्मुखी, पुरुष है बहिर्मुखी।
सामान्यतः इसे हम ऐसा समझें।
अगर आप स्त्री को प्रेम भी करते हैं, तो स्त्री, कभी प्रकाश में प्रेम किया जाए, वह पसंद नहीं करती है; अंधेरा चाहिए। और स्त्री को जब आप प्रेम करते हैं, तो वह तत्क्षण आंख बंद कर लेती है; वह आंख खुली नहीं रखती। पुरुष चाहता हैः प्रेम का क्षण प्रकाश में हो। और पुरुष यह भी चाहता है कि उसकी आंखें खुली रहें। पुरुष प्रेम के क्षण में भी, संभोग के क्षण में भी आंखें खुली रखता है। वह स्त्री के चेहरे को भी देखना चाहता है, जिसे वह प्रेम करता है। संभोग के क्षण में भी उसके चेहरे को देखना चाहता है। क्यों? क्योंकि अगर उस चेहरे पर उसे प्रसन्नता दिखाई पड़ती है, तो ही वह प्रसन्न होता है। वह बहिर्मुखी है। स्त्री अपनी आंख बंद कर लेती है, और भीतर अपन स्वार्थ, होता है। उसके व्यक्तित्व में वह बात है, इसमें भला-बुरा कुछ भी नहीं है। तथ्य इतना है कि वह अपने में उत्सुक है। तो अगर स्त्री को हम किसी दिन परम-ज्ञान पर भी पहुंचा दें, तो परम-ज्ञान के बाद वह बोधिसत्व नहीं बन सकती है, क्योंकि परमज्ञान के बाद वह लीन हो जाएगी, उस महाशून्य में। बुद्धत्व की दो अवस्थाएं हैं। दो प्रकार से व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है। एक है, जिसको अर्हत कहा है, और दूसरा, जिसे बोधिसत्व कहा है।
अर्हत का मतलब होता है, ऐसा बुद्ध, जो बुद्ध होने के बाद जगत की चिंता नहीं करेगा, महा-निर्वाण में लीन हो जाएगा। उसके बंधन गिर गए, उसका दुख समाप्त हो गया, पीड़ित हैं। उसके शत्रुओं का नाश हो गया, इसलिए उसको नाम दिया अर्हत। उसके जितने शत्रु थे, वह नष्ट हो गए। अब वह महाशून्य में लीन हो जाएगा। बुद्धत्व में कोई कमी नहीं है उसके, लेकिन वह दूसरों के लिए नाव नहीं बनता है। उसका काम पूरा हो गया।
स्त्री प्रेम में आंख बंद कर लेती है, समाधि में भी आंख बंद कर लेती है। और जब परम समाधि उपलब्ध होती है, तो वह बिल्कुल भूल जाती है कि कोई

बाहर बचा है, वह भीतर लीन हो जाती है। बुद्धत्व तो उपलब्ध हो जाता है स्त्री को, लेकिन बोधिसत्व नहीं बनती है।
बोधिसत्व का मतलब है, ऐसा बुद्ध, जो स्वयं जान गया हो, लेकिन अभी लीन नहीं होगा। पीठ फेर लेगा लीनता की तरफ और पीछे जो लोग रह गए, उनके लिए रास्ता बनाएगा, उनको साथ देगा, उनके लिए नाव निर्मित करेगा, उनको नाव में बिठाकर मांझी बनेगा, उनको यात्रा-पथ पर लगाएगा।
तो बोधिसत्व स्त्री अब तक नहीं हो सकी, और कभी हो भी नहीं सकेगी। वह स्त्री के व्यक्तित्व में बात नहीं। अर्हत हो सकती है, बुद्ध हो सकती है। लेकिन समझें। जो व्यक्ति स्वयं लीन हो जाएगा शून्य में, उसका इतिहास में कोई चिह्न नहीं छूटेगा। क्योंकि इतिहास में उसका चिह्न छूटेगा, जो दूसरों को उस शून्यता की तरफ ले जाएगा। इतिहास तो वे लोग निर्मित करते हैं, जो दूसरों में उत्सुक हैं। जो खुद में उत्सुक हैं, वे इतिहास निर्मित नहीं करते हैं। उनका कोई पता नहीं चलेगा, वे खो जाते हैं। इसलिए हमें बुद्धों का पता है, बुद्ध स्त्रियों का पता नहीं है।
स्त्रियां भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुई हैं, लेकिन वे गुरु नहीं बन सकीं। गुरु बनना उनके लिए वैसे ही असंभव है, जैसे पुरुष को मां बनना असंभव है। कोई नहीं पूछता कि अब तक कोई पुरुष मां क्यों नहीं बन सका? बनने की कोई बात ही नहीं है। पुरुष पिता बन सकता है, मां नहीं बन सकता। स्त्री शिष्य बन सकती है, गुरु नहीं बन सकती है। यही स्वाभाविक है, और इससे अन्यथा होने का उपाय नहीं है। इसी अंतर्मुखता के कारण स्त्री बहुत क्षुद्र मालूम पड़ती है, निम्न मालूम पड़ती है। उसके जो सोच-विचार के ढंग हैं, वह संकीर्ण, नैरो मालूम पड़ते हैं। पर इसमें उसका कोई कसूर नहीं है। उसकी उत्सुकता अपने पड़ोस में, अपने घर में, अपने बच्चे में ऐसी होती है।
पुरुष की उत्सुकता न पड़ोस में होती है ज्यादा; न बच्चों में होती है, न
घर में होती है। वह स्त्री के दबाव में इनमें उत्सुकता लेता है। उसकी उत्सुकता होती है--वियतनाम में क्या हो रहा है, रूस में क्या हो रहा है, अमरीका में क्या हो रहा है? दूर, विस्तीर्ण। इसमें कुछ गुण नहीं है। बस, मैं यह कह रहा हूं, यह स्वभाव है, यह तथ्य है। स्त्री को फिकर होती है, पड़ोस की स्त्री कैसे कपड़े पहने हुए है, और वह इसलिए फिकर होती है कि उसके कपड़े से वह अपने को तोल रही है। स्त्री अपने से केंद्रित है। और इसलिए कभी-कभी उसे हैरानी होती है पुरुषों की बातें सुन कर कि ये कहां की बातें कर रहे हैं! वियतनाम से क्या लेना-देना? दिल्ली में क्या हो रहा है, इसमें क्या अर्थ है? ये फिजूल की बातें हैं। और इसलिए कोई पुरुष, स्त्री से बातचीत में रस नहीं लेता। क्योंकि स्त्री की बातचीत क्षुद्र होती है, सीमित होती है।
बर्नार्ड शा ने कहीं कहा है कि सुंदरतम स्त्री से भी बातचीत करो, तो
ऊब पैदा होती है। वह चुप रहे, उतना ही अच्छा है। उसका कारण है, क्योंकि पुरुष की बातचीत में जो रस है, वह स्त्री को उस बातचीत में रस नहीं है। उनके जो आयाम हैं, अलग-अलग हैं। स्त्री भी परेशान होती है पुरुषों की बातें सुन कर कि कहां की बकवास में लगे हुए हैं। और इतना विवाद करते हैं ऐसी बातों पर, जिनमें कोई सार ही नहीं है। क्या सार है कि कम्यूनिज्म ठीक है, कि सोशलिज्म ठीक है; कि बाइबल ठीक है, कि कुरान ठीक है? इसमें सार क्या है? स्त्री को लगता हैः ये व्यर्थ हवाई बातें हैं, और इनमें समय खोना,
और इनमें सिर खपाना, और इन पर लड़-मर बैठना और विवाद करना--स्त्री की बिल्कुल पकड़ में नहीं आता है। पुरुष को बिल्कुल समझ में नहीं आता है कि कपड़े! स्त्रियों की बातचीत दो-चार चीजों पर सीमित होती है--कपड़े हैं, बच्चे हैं, मकान है, कार है, जेवर हैं--ये उनकी बातचीत है! इस बातचीत से बाहर वह कहीं नहीं जातीं। लेकिन ये भी जो हमारी अंतर्मुखता और बहिर्मुखता है उसके संदर्भ में है, उसके कारण ऐसा होता है।
स्त्री जब परम-ज्ञान की तरफ भी चलती है, तब भी वह अंतर्मुखी ही होती है। और जिस दिन परम-ज्ञान घटित होता है, उस दिन बात समाप्त हो गई। अब उसे क्या चिंता कि और कितने लोग अज्ञान में पड़े हैं, और कितने लोग पीड़ा में हैं, और कितने लोग इस संघर्ष में लगे हैं कि उनको भी ज्ञान मिल जाए। स्त्री

को फिर इसकी कोई चिंता नहीं, बात पूरी हो गई। पुरुष को इसकी बड़ी चिंता है, उसकी दृष्टि सदा दूसरे पर पड़ रही है। इसके फायदे हैं, इसके नुकसान हैं। हर फायदे के साथ नुकसान जुड़ा है, और हर नुकसान के साथ फायदा है। चूंकि स्त्री की दूसरे में उत्सुकता नहीं है, ध्यान उसे शीघ्रता से घटित होता है। अपने में ही उसकी उत्सुकता है, इसलिए उसके मस्तिष्क में ज्यादा उपद्रव नहीं होता है। और जो उपद्रव होता है, वह इतना साधारण होता है कि उसे छोड़ने में अड़चन नहीं पड़ती है। न सिद्धांत, न वाद, न शास्त्र--यह सब उपद्रव नहीं होता है। स्त्री का मन एक लिहाज से हलका-फुलका होता है। उस पर बहुत बोझ नहीं होता है। स्त्री एक लिहाज से सरल होती है, और बच्चों जैसी होती है। इसलिए ध्यान उसे बहुत आसानी से घटित हो जाता है; क्योंकि ध्यान एक तरह का स्वार्थ है। जब मैं यह कहता हूं तो आपको कठिनाई होती है--एक तरह की सेलफिशनेस है! है भी, क्योंकि जहां इतना दुख है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि "गांव में गरीबी है, फलां जगह अकाल पड़ा है, यहां ए हो रहा है, और आप कहते हैं कि ध्यान करो! अभी कैसे ध्यान करें? अभी गरीबी है, अभी अकाल है, अभी देश में समाजवाद लाना है। अभी--अभी कैसे ध्यान करें!" यह पुरुष की स्वाभाविक जिज्ञासा है। उसको लगता है कि इतनी मुसीबतें चारों तरफ हैं, पहले इनको हल करें, फिर ध्यान कर लेंगे। लेकिन ध्यान रहे, ये मुसीबतें तो सदा हैं, और सदा रहेंगी। ऐसा दुनिया में कोई क्षण नहीं आया, जब बाहर बोधिसत्व बन! मुसीबतें न थीं। ऐसा कभी कोई क्षण नहीं आएगा, जब बाहर मुसीबतें न होंगी। हां, मुसीबत दूसरी होगी, यह हो सकता है। मुसीबतें होंगी। और अगर कोई आदमी यह कहता है कि ध्यान हम तब करेंगे, जब कि दुनिया में कोई मुसीबत न होगी, तो समझना वह ध्यान कभी भी, अनंतकाल में भी न कर सकेगा। लेकिन पुरुष को यह भाव उठता है कि कैसे ध्यान करें। अभी इतना चारों तरफ काम करने को बाकी है। तुम समाप्त हो जाओगे, काम तो बाकी रहेगा।
स्त्री को यह सवाल कभी नहीं उठता। मेरे पास इतनी स्त्रियां आती हैं, उनमें से कोई भी नहीं कहती कि यह मुसीबत है, फलां है, ढिकां है। उसकी उत्सुकता अपने में है। अगर उसे आनंद और शांति मिल सकती है, तो वह ध्यान को तैयार है। इससे सुविधा उसको एक है कि वह ध्यान में शीघ्रता से जा सकती है, उसके बाहरी उलझाव नहीं हैं। लेकिन तब एक नुकसान भी है। जिस दिन ध्यान उपलब्ध हो जाएगा, जिसको पहले से बाहरी उलझाव नहीं हैं, ध्यान की पूर्ण उपलब्धि पर वह इसकी चिंता में नहीं पड़ेगी कि बाहर दुनिया को शांति देनी है, आनंद देना है, ध्यान देना है, वह लीन हो जाएगी।
पुरुष को बहुत उपद्रव हैं--यह ठीक होना, वह ठीक होना; सारी दुनिया ठीक करने का ख्याल उसे है। जब सारी दुनिया ठीक होगी, तब वह ध्यान करेगा। तो इसलिए ध्यान वह कभी कर नहीं पाता। और अगर कभी कर पाता है, तो स्वभावतः जिस दिन उसको ध्यान का फल उपलब्ध होता है, उस दिन वह उसे उन लोगों तक पहुंचाना चाहता है, जिनके लिए वह सदा से चिंतित रहा था।
तो पुरुष अगर ध्यानी हो, तो बोधिसत्व हो सकता है आसानी से। स्त्री अगर ध्यानी हो, तो अर्हत हो सकती है आसानी से। ए दोनों स्थितियां समान हैं। स्थितियों में कोई भेद नहीं है, लेकिन स्थितियों के परिणाम संसार पर भिन्न होंगे। बोधिसत्व संसार को भी इस मार्ग पर ले जाने की चेष्टा करेगा।
अर्हत इस मार्ग पर ले जाने के लिए कोई चेष्टा नहीं करेगा। वह शांति से शून्य में विलीन हो जाएगा।
बौद्धों के दो धर्म हैं। एक का नाम है हीनयान और एक का नाम है महायान। महायान बोधिसत्वों को स्वीकार करता है, वह कहता है कि इतनी बड़ी नाव बनाओ कि सारा संसार उसमें पार कर सके। महायान का मतलब है बड़ी नाव।
हीनयान का मतलब है छोटी नाव, डोंगी, जिसमें एक ही आदमी बैठे और पार हो जाए। हीनयान कहता है कि यह सब व्यर्थ की बातचीत है कि दूसरे को तुम पार करो; क्योंकि कौन किसको पार कर सकता है? और जो पार नहीं होना चाहता, उसे पार करने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हीं पार हो जाओ, काफी है। कहीं दूसरों की चिंता में तुम्हीं इस किनारे पर मत रह जाना। और उचित यही है कि तुम्हें लोग पार होते देख लें, तो शायद उनको भी जाग जाए ख्याल पार होने का। कहीं

तुम भी इसी किनारे पर उलझे रहो उनके साथ, उनको पार करने में, तुमको भी इसी किनारे पर देख कर उनको जिज्ञासा भी न हो, अभीप्सा भी न जगे। तो हीनयान कहता है कि तुम्हें नाव मिल गई, कृपा करो, तुम पार हो जाओ। इस किनारे पर जिनको उत्सुकता है, वह तुमको पार जाते देख कर, पार होने की खोज कर लेंगे। तुम उनकी चिंता में समय नष्ट मत करो।
महायान कहता है कि इतनी छोटी-छोटी नाव में अगर लोग पार भी होते रहे तो
इस विराट सागर में कब शांति होगी, कब आनंद होगा? कभी नहीं हो पाएगा। यह तो एक चम्मच से जैसे कोई सागर को शुद्ध कर रहा हो, तो एक-एक चम्मच से सागर कब शुद्ध हो पाएगा? इस पूरे सागर को विराट आयोजन से शुद्ध करना है। वह विराट आयोजन बोधिसत्व का आयोजन है। वह उस महा करुणावान का है, जो किनारे पर रुक जाता है, अपनी नाव को ठोंक देता वहीं और कहता है, मेरी नाव तैयार है; लेकिन मैं तब तक न जाऊंगा, जब तक मैं और लोगों को राजी न कर लूं, चाहे मुझे अनंतकाल तक रुकना पड़े। इसलिए उस धर्म का नाम महायान है। महायानः बड़ी नाव का धर्म।
मेरी दृष्टि में हीनयान वाले लोग कहते हैं--वह बोधिसत्वों की सब बातचीत व्यर्थ है, कोई किसी को पार नहीं करवा सकता है। इसमें भी सचाई मालूम पड़ती है। किसी को पार करवाने की कोशिश करो, तब पता चलता है कि कितना उपद्रव का मामला है। जब मैं आपके साथ मेहनत करता हूं, तो मुझे हीनयान वालों की बात बिल्कुल ठीक लग रही है। वे ठीक कहते हैं, सच ही कहते हैं। यह कैसा उपद्रव है, किसी को पार करवाने की कोशिश! क्योंकि जिसे तुम मुक्त करना चाहते हो, वह मुक्त होना ही नहीं चाहता है। बल्कि तुम उसे मुक्त करना चाहते हो, तो वह तुम्हें समझता है कि तुम उसे परेशान कर रहे हो, तुम उसे हैरान कर रहे हो, कि तुम उसकी नींद में बाधा डाल रहे हो, कि तुम उसके सपने तोड़ रहे हो। और फिर वह तुमसे बदला लेने की कोशिश करता है, अगर उसका कोई सपना टूट जाए, उसे कोई अड़चन हो जाए। और अड़चन पच्चीस होंगी; क्योंकि तुम उसे उखाड़ रहे हो जड़ों सहित; जहां से वह जमा है, वहां से हटा रहे हो। उसको तो लगता है कि तुम मिटाने में लगे हो, दुश्मन हो। वह हजार तरह की अड़चनें खुद खड़ी करता है कि कहीं तुम उसे उखाड़ ही न दो बिल्कुल। तो हीनयान वाले भी ठीक कहते मालूम पड़ते हैं, दूसरे को पार कराना बड़ा मुश्किल है।
महायान वाले भी बात ठीक करते मालूम पड़ते हैं कि जब एक व्यक्ति पार हो
ही गया और उसे आनंद मिल ही गया, तो इस आनंद से ज्यादा आनंद उस शून्य में खोने से भी नहीं मिलनेवाला है। बात तो पूरी हो गई। अब कुछ हर्जा नहीं कि वह थोड़ी देर इस किनारे पर रुक जाए। इस किनारे से उसको अब कोई पीड़ा नहीं होनेवाली। जो उसने पा लिया है, वह अब छिन नहीं सकता है। क्या हर्ज है कि वह थोड़ी देर रुक जाए; लोग उसे अड़चन भी दें, तो उसे कोई खास अड़चन हो नहीं पाती है, भीतर तो उसे कोई पीड़ा पहुंच नहीं पाती है। लोग देर भी लगाएं--तब देर-अबेर भी क्या है उसके लिए। जिसने पा लिया है, उसके लिए समय मिट गया। और लोग अगर अनंत जन्मों तक उसे रोक रखें, तो भी हर्ज क्या है? क्योंकि अब समय का उसे कोई सवाल ही नहीं है। और अगर इस चेष्टा में कोई पार हो जाए, तो लाभ ही लाभ है; हानि कुछ भी नहीं है।
बोधिसत्व को कोई हानि नहीं हो रही है रुक कर। अगर लाभ भी न हुआ लोगों को, तो भी कोई हानि नहीं है। और अगर कोई लाभ भी हुआ, तो लाभ है। यह सौदा करने जैसा है, जिसमें हानि तो होनेवाली नहीं; अगर हो तो लाभ ही हो सकता है। न भी हो, तो हानि नहीं हो सकती है। तो महायान की भी बात ठीक लगती है। लेकिन महायान और हीनयान दोनों लड़ते हैं और एक-दूसरे को कहते हैं कि दूसरा गलत है। मैं नहीं कहता।
मैं मानता हूं कि मनुष्य में दो तरह के लोग हैं। और कोई गलत और सही नहीं है। कुछ लोग है स्त्रैण वृत्ति के, जिनमें स्त्रियां स्वभावतः ज्यादा हैं। अंतर्मुखी, जिनमें स्त्रियां स्वभावतः ज्यादा हैं। वे अपनी नाव पा जाएंगे, तो पार हो जाएंगे और मैं कहता हूं कि उन्हें पार हो जाना चाहिए। उस तरह की वृत्ति के लोगों को तट पर रुकने का कोई कारण नहीं है, कोई अर्थ भी नहीं है। पर कुछ लोग हैं, जो बहिर्मुखी हैं, पुरुष प्रकृति के। स्वभावतः पुरुषों में उस तरह के लोग ज्यादा हैं। वे रुकना चाहेंगे। यह

सवाल नहीं है कि क्या करना चाहिए; सवाल यह है कि आपकी नियति, आपका स्वभाव जो करवाए वही ठीक है। अगर आपका स्वभाव यह कहे कि मैं जब पहुंच गया अंतिम क्षण में, तो अब मैं नहीं रुकूंगा, मैं खो जाऊंगा, तो बिल्कुल खो जाएं। आपका स्वभाव कहे कि रुक जाएं, खोने के पहले कुछ खबर पहुंचा दें, कोई और भी शायद तैयार हो जाए, तो बराबर रुक जाएं। मैं न कहता हूं कि यह ठीक है, और न कहता हूं कि वह गलत है। इतना ही कहता हूं कि अपनी नियति के अनुकूल चलना ठीक है।
इसलिए स्त्रियां गुरु नहीं हो सकीं। और जब भी स्त्रियां गुरु होने की कोशिश करती हैं, तो बहुत क्षुद्र और साधारण गुरु हो पाती हैं। और बड़ी हैरानी की बात है कि अगर स्त्री गुरुओं के पास भी लोग जाते हैं, तो समझना चाहिए कि संसार से छुटकारा बहुत मुश्किल है। क्योंकि एक स्त्री का गुरु होना मुश्किल है, और हो तो बहुत साधारण कोटि की होनेवाली है। और फिर उसके भी तो शिष्य अगर लोग बन जाते हैं, तो फिर बहुत अड़चन है--बहुत अड़चन है। इसलिए बुद्ध और महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट पुरुष हैं। किसी और कारण से नहीं हैं। पुरुष के होने में गुरु होने की सुविधा है। स्त्री के होने में शिष्य होने की सुविधा है।
दोनों के फायदे हैं, दोनों के नुकसान हैं। ध्यान यही रखना कि अगर आप स्त्री हैं, तो अपनी नियति को स्वीकार करके उसी के अनुसार चलना। अगर आप पुरुष हैं, तो अपनी नियति को स्वीकार करके, उसी के अनुसार चलना। क्योंकि जो आप हैं, वहीं से यात्रा सुगम, सरल, और सहज है। अन्यथा होने की कोशिश से कष्ट और उपद्रव है। और परिणाम निश्चित नहीं हैं, संदिग्ध हैं।
इस सूत्र में प्रवेश के पहले थोड़ी सी बातें छठवें द्वार ध्यान के संबंध में औरः
ध्यान का अर्थ है चैतन्य की ऐसी दशा, जहां विचार की कोई तरंग कोई लहर न हो। जैसे सागर है, झील है और झील पर तरंगें हैं। यह एक दशा है। जब झील पर तरंगें हैं, इसे हम कहें तूफान, अशांति। ऐसे ही जब चेतना पर तरंगें हैं, विचार की, तो जो अवस्था है उसका नाम है मन। मन कोई अलग वस्तु नहीं है तरंगित चेतना का नाम है। जब झील शांत हो गई, लहरें सो गई और झील की छाती पर कोई कंपन न रहा, निष्कंप हो गई, एक मौन दर्पण बन गई या ऐसा समझें कि जम गई, बर्फ हो गई, अब कोई लहर नहीं उठती, अब कोई लहर उठ भी नहीं सकती--ऐसी ही जब चेतना विचार से शून्य और तरंग से रहित हो जाती है--बर्फ जम गई है झील की, तो जो अवस्था है, उसका नाम ध्यान है।
मन ध्यान का अभाव है।
ध्यान मन का अभाव है।
मन है तरंगित चेतना, ध्यान है निस्तरंगित चेतना।
यह छठवां द्वार हैः निस्तरंग हो जाना। क्योंकि जब तक हम निस्तरंग न
हो जाएं, तब तक तरंगें हमें बाहर की तरफ ले जाती हैं। हर तरंग हमें बाहर की तरफ ले जाती है। जैसे हर लहर किनारे की तरफ जाती है, ऐसे ही हर तरंग संसार की तरफ जाती है। जितनी बड़ी तरंग, उतनी जोर से संसार की तरफ जाती है। जब कोई तरंग नहीं रह जाती, तो हमारा संसार की तरफ जाना बंद हो जाता है। हमारी चेतना फिर संसार की तरफ नहीं जा सकती; क्योंकि जाने के लिए तरंगों का सहारा चाहिए। और जब चेतना बाहर नहीं जाती, तो फिर भीतर रह जाती है। जब बाहर जाने का द्वार नहीं मिलता, चेतना अपने में ठहर जाती है। उस अपने में ठहरी हुई चेतना का नाम है ध्यान।
हम जो भी यहां कर रहे हैं, वह यही कोशिश है कि मन कैसे निस्तरंग हो जाए। और जो मैं आपको कह रहा हूं कि आपके भीतर जो भी तरंगें हों, उनको बाहर निकाल दें, इसलिए कह रहा हूं। क्योंकि उनको भीतर दबाए रखें, तो मन निस्तरंग न हो सकेगा। उन्हें निकाल ही दें, उनको फेंक ही दें, उनको उलीच दें; कुछ बचे ही न भीतर तरगें पैदा करने को; हल्के हो जाएं, कोई उपद्रव भीतर न रह जाए। सब उपद्रव बाहर डाल दें, तो मन निस्तरंग हो सकेगा। इस मन की निस्तरंग अवस्था के बिना कोई स्वयं के ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता है। इसलिए दुनिया में इतने धर्म हैं, इतने पंथ हैं, इतने मार्ग हैं। उनमें हजार-हजार सिद्धांतों के भेद हैं, लेकिन ध्यान के संबंध में मतैक्य है!

कोई यह नहीं कह सकता है कि ध्यान के बिना, धर्म उपलब्ध होगा। मस्जिद में करो ध्यान, कि मंदिर में करो, कि गिरजे में करो, कि गुरुद्वारा में, इससे फर्क नहीं है कोई--ध्यान करो। क्राइस्ट का सहारा लो, कि कृष्ण का; महावीर का सहारा लो, कि मुहम्मद का इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है--ध्यान करो। कुरान पर सिर टेको, कि गीता पर, इससे बहुत फर्क नहीं है--ध्यान करो।
सारी दुनिया के धर्म अगर एक बात पर सहमत हैं, तो वह है ध्यान। और ध्यान
का मतलब है निस्तरंग करो चित्त को। मन को कर दो शून्य। विचारों से। कोई लहर आती न हो। उस लहरहीन अवस्था में जो घटित होगा, वह छठवां द्वार है।
अब हम सूत्र को लें।
"हां, वह शक्तिशाली है। वह जीवंत शक्ति, जो उसमें मुक्त हुई है और जो शक्ति वह स्वयं है, माया के मंडप को देवताओं के भी ऊपर महान ब्रह्मा और इंद्र के ऊपर भी उठा सकती है। अब वह निश्चित ही अपने महा पुरस्कार को उपलब्ध करेगा।"
ध्यान के साथ ही महाशक्ति उपलब्ध होती है। वह पुरस्कार है। जो मन से लड़ा, जिसने मन को जीता, जिसने मन को विसर्जित किया, वह अब स्वयं को उपलब्ध होने के करीब पहुंच रहा है। अब तक उसके पास जितनी शक्तियां थीं, सब उधार थीं। धन की थी, तो बाहर से मिली थी; शास्त्रों की थी, तो बाहर से मिली थी; शरीर की थी, तो भी बाहर से मिली थी। अब तक जितनी शक्तियां थीं, सब बाहर से मिली थीं। अब पहली दफा निस्तरंग होकर बाहर की शक्तियों से संबंध छूट गया है। अब उसका संबंध अपनी स्वयं की शक्ति से है--जिससे उसका जीवन जन्मा है। उससे जो उसके भीतर बह रही है और जीवंत है। अब प्राण के मूल से उसका संबंध निर्मित होगा। वह महाशक्ति के द्वार पर खड़ा है। ध्यान का वही पुरस्कार है।
"क्या वह, जिसने महा माया को जीत लिया है, इन वरदानों को अपने ही विश्राम और आनंद के लिए, अपने ही सुअर्जित सुख और गौरव के लिए उपयोग नहीं करेगा?"
यहीं से फर्क शुरू होता है। इस क्षण में ही पता चलेगा कि आप अर्हत होने के मार्ग पर हैं या बोधिसत्व होने के मार्ग पर। ब्लावट्स्की का झुकाव बोधिसत्व की तरफ है। इसलिए सूत्र में यहां से मार्ग बोधिसत्व का हो जाएगा, अर्हत का नहीं। यहां तक अर्हत और बोधिसत्व दोनों समान हैं, ध्यान की उपलब्धि तक। ध्यान की उपलब्धि होते ही महाशक्तियां उपलब्ध होती हैं। ब्लावट्स्की यही सवाल उठाती है कि क्या वह, जिसने महामाया को जीत लिया है, इन वरदानों को अपने ही विश्राम और आनंद के लिए, अपने ही सुअर्जित सुख और गौरव के लिए उपयोग नहीं करेगा?
"नहीं, ओ निसर्ग के गुह्य-विद्या के साधक, यदि कोई पवित्र तथागत के चरण-चिह्नों पर चले तो वे वरदान और शक्तियां उसके लिए नहीं हैं।"
"नहीं, ओ निसर्ग के गुह्य-विद्या के साधक"
गुरु शिष्य को कह रहा है कि नहीं। यहां से अर्हत और बोधिसत्व का मार्ग अलग-अलग हो जाता है। इसके पहले तक दोनों एक जैसे हैं। इसके बाद यह किताब, बोधिसत्व विचारों के अनुकूल है। महायान का विचार है। ध्यान के साथ जब शक्तियां उपलब्ध होंगी, तो सवाल यह है कि क्या इन शक्तियों के आनंद में मैं स्वयं लीन हो जाऊं? गुरु कह रहा है, नहीं। यदि कोई पवित्र तथागत के चरण चिह्नों पर चले, तो वे वरदान और शक्तियां उसके लिए नहीं हैं।
"नहीं, ओ निसर्ग के गुह्य-विद्या के साधक, यदि कोई पवित्र तथागत के चरण-चिह्नों पर चले, तो वे वरदान और शक्तियां उसके लिए नहीं हैं।
"क्या तू उस नदी को बांध देगा, जिसका जन्म सुमेरु पर हुआ है?"
"क्या तू बांध लेगा अपने ही साथ उस महाशक्ति को। क्या तू अपने स्वार्थ में उसकी सीमा बना लेगा।
"क्या तू उसके स्रोत को अपने लिए और अपनी ओर बहाएगा, या उसे शिखरशृंग
के पथ से उसके मूल उदगम को वापस भेज देगा?"
क्या तू सबमें बांट देगा? क्या अपने ही लिए संचित कर लेगा? क्या तू इस महानदी को एक बांध बना लेगा अपने ही सुख के लिए, या भेज देगा इसको वहां जहां अनेकों का सुख उससे फलित हो सके?

"यदि तू कठिन श्रम से उपलब्ध ज्ञान की उस स्रोतस्विनी को, स्वर्ग में जन्मी प्रज्ञा को प्रवाहमान रहने देना चाहता है, तो तुझे उसे एक ठहरा हुआ सरोवर बनने से बचाना होगा।"
तेरे आनंद के लिए तो इतना काफी है कि यह स्रोत एक सरोवर बन जाए, तू इसमें डूब जाए, लीन हो जाए। लेकिन तू इसे एक सरोवर मत बनाना, तू इसे एक नदी बनाना, जो बहे, जो प्रवाहमान हो। और न मालूम कितने लोगों के गांवों के किनारे से, और न मालूम कितने लोगों के प्राणों के किनारे से निकले, और न मालूम कितने लोगों को इसके शीतल जल का, इसके आनंद जल का अनुभव हो सके। इसकी एक बूंद भी किसी के पास पहुंच जाए, तो अच्छा है।
"जान कि यदि तुझे अमित युग के अमिताभ का सहयोगी बनना है"
"अगर तुझे बुद्धों का सहयोगी बनना है तो तुझे प्राप्त प्रकाश को, जुड़वें बोधिसत्वों की तरह तीनों लोकों पर विकीर्णित करना होगा।"
चीन में, जापान में, दो बोधिसत्वों की कथा है--जिन्होंने परम-ज्ञान को पाने के बाद तत्क्षण सारे ज्ञान को जगत में बांट दिया, और खुद शून्य होकर खड़े रह गए। जो आनंद उन्हें मिला था, सब बांट दिया। खुद बिल्कुल दीन हो कर खड़े रह गए। इतने श्रम से जो पाया था, वह बांट दिया। अपने पास कुछ भी न रखा। ऐसे दो बोधिसत्वों की कथा चीन और जापान में है। यह सूत्र कहता है कि क्या तू भी उन जुड़वां बोधिसत्वों की तरह अपने आनंद को, अपनी समाधि को, अपनी प्रज्ञा को बांट नहीं देगा? तुझे विकीर्णित करना होगा, अगर तू चाहता है कि तू भी बुद्धों का सहयोगी और साथी हो सके।
"जान कि अति-मानवीय-ज्ञान और देव-प्रज्ञा की इस धारा को, जिसे तूने अर्जित किया है, स्वयं से, आलय (परमात्मा) की नहर के द्वारा, दूसरी नदी में प्रवाहित कर देना है।"
यह जो तुझे मिला है, उसे प्रवाह देना है। उसे रोक नहीं लेना अपने लिए।
"ओ गुह्य-मार्ग के यात्री, नारजोल (सिद्ध), जान कि इसके शुद्ध व ताजे
जल से समुद्र की तीखी लहरों को--उस शोक समुद्र की खारी लहरों को, जो मनुष्य के आंसुओं से बना है--मधुर बनाना है।"
सारा जगत एक खारा सागर है--लोगों के आंसू और पीड़ाओं से निर्मित। क्या
तू इस खारे सागर की फिक्र छोड़ देगा? और इस दुख से भरे लोगों के संसार की तरफ बिल्कुल पीठ कर लेगा? क्योंकि तुझे आनंद मिल गया, तो क्या तू सोचता है, सभी को आनंद मिल गया? क्या औरों की पीड़ा तुझे न छुएगी? और तुझे न दिखाई पड़ेगा कि सागर जैसे लोगों के आसुंओं से ही भरा हो, ऐसा यह संसार है? क्या तू अपने पवित्र जल से इस सागर की लहरों को मीठा नहीं बनाएगा?
"आह, जब तू एक बार उस सबसे ऊंचे आकाश का ध्रुव तारा बन गया है, तब उस स्वर्गीय प्रभा-मंडल को अंतरिक्ष की गहराइयों से, अपने सिवाय सबके लिए बिखेरना है। प्रकाश सबको दे, किसी से भी ले मत।"
और जब कि तू ध्रुव तारे की तरह हो गया और ऊंचाई के आखिरी शिखर पर पहुंच गया, जिसके पार कोई ऊंचाई नहीं है। जो भी तुझे पाना था, पा लिया, और जो भी तुझे होना था, वह तू हो गया। अब तेरे लिए न पाने को कुछ, न कुछ होने को। क्या तू अब इसमें ही अपने को लीन कर लेगा? क्या तू मान लेगा कि यात्रा समाप्त हो गई?
निश्चित तेरी यात्रा समाप्त हो गई, लेकिन औरों की यात्रा शेष है। क्या तू इनको प्रकाश देना न चाहेगा? शून्य में खोने के पहले, महाशून्य में मिल जाने के पहले, ब्रह्म के साथ एक हो जाने के पहले, क्या तू ठिठक नहीं जाएगा द्वार पर ही, और इनकार नहीं कर देगा कि अभी मैं भीतर नहीं आता? क्योंकि अभी बाहर भटकते हुए लोग हैं, और मैं इनको मार्ग बता सकता हूं। क्योंकि मार्ग मैंने द्वार तक देख लिया है। अब मैं लौट जाऊंगा और उनको खबर दूंगा कि वे भी द्वार तक आ जाएं, द्वार का मुझे पता है।
और अगर द्वार के भीतर कोई प्रविष्ट हो जाए, तो फिर वापस नहीं लौट सकता। क्योंकि द्वार के भीतर प्रवेश का मतलब ही यह है कि वे सब साधन, जो संसार में काम आते थे, द्वार पर ही नष्ट हो जाते हैं। द्वार तक सारी चीजें शेष रहती हैं, शुद्ध होकर। यह आखिरी मौका है, एक क्षण कोई द्वार के भीतर प्रविष्ट हुआ कि फिर वापिस नहीं लौट सकता। द्वार पर ही ठहर जाना होगा।

"आह, जब एक बार तू पर्वत की घाटियों में शुद्ध तुषार जैसा हो गया है, जो ठंडा है और स्पर्श के लिए संवेदन-शून्य है, किंतु जो उसके हृदय में सोने वाले बीज के लिए गर्भ और रक्षाकारी है।"
तू बाहर से तो ठंडा हो गया है, शीतल, शून्य हो गया; लेकिन भीतर तेरे पास
एक बीज है महाप्रज्ञा का, तो उसके लिए तू बहुत गर्भ है, उष्ण है, उसे तू बचाए हुए है अपने हृदय में। "तब उस तुषार को स्वयं ही हड्डियों को छेदने वाली उन उत्तर के हिमपातों को पी जाना होगा, ताकि उनके तीखे और क्रूर दांतों से धरती की रक्षा की जा सके। उसी धरती में वह फसल छिपी पड़ी है, जिससे भूखों को भोजन मिलेगा।"
तू अपने लिए तो शांत और शून्य हो गया तुषार की भांति, लेकिन तुझे बीजों को घेर लेना होगा, और उनके लिए उतप्त रहना होगा। और उन बीजों को उस भूमि तक पहुंचा देना होगा--लोगों की हृदय-भूमि तक। क्योंकि अगर वह बीज उन तक न पहुंचा, तो वे भूखे पड़े हैं, वे भूखे हैं, वे जन्मों-जन्मों से भूखे हैं इस भोजन के लिए, जो तेरे हाथ में है, और तू बांट सकता है।
यह सूत्र बोधिसत्व-मार्ग का सूत्र है। उचित है कि कोई ज्ञान के उस महासागर के किनारे खड़े होकर न खोए, लौट आए। लेकिन फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि जो आपके लिए सहज हो, स्वाभाविक हो, वही उचित है। यह ब्लावट्स्की की आकांक्षा मधुर है, प्रीतिकर है, सुखद है कि कोई लौट आए, और बांट दे। लेकिन जो लौट सकता है, वही लौटता है; जो नहीं लौट सकता है, वह नहीं लौटता है। यह बात भी उसी को जमेगी मन में, जो लौट सकता है। यह बात उसको नहीं जमेगी मन में, जो लौट नहीं सकता। इससे अभिप्राय तो पता चलता है--कि सुखद है; पीछे संसार में इतने लोग दुखी हैं और पीड़ित हैं, वहां तक जाना जरूरी है। लेकिन खुद बुद्ध को ऐसा हुआ था।
बुद्ध को समाधि उपलब्ध हुई, वे परम-द्वार पर खड़े हो गए, सात दिन तक मौन रहे! मीठी कथा है कि इंद्र और ब्रह्मा उनके चरणों में आकर गिर पड़े, देवता उनके पास भीड़ लगा कर शोरगुल करने लगे और प्रार्थना करने लगे कि आप उठें और बोलें। क्योंकि जिस ज्ञान को सुनने के लिए सदियों-सदियों से लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं वह तुम्हें मिल गया, अब तुम चुप क्यों हो? अब तुम बोलो, और कह दो तुमने क्या पा लिया है?
ब्रह्मा भी, इंद्र भी वैसे ही प्यासे हैं। पूरा अस्तित्व प्यासा है--
इस जीवन के परम-रहस्य को जान लेने के लिए। तुम्हें पता लग गया--कहो, हम भी उसे जान लें।
बुद्ध ने कहा, कोई सार नहीं। कोई सार नहीं है कहने में। क्योंकि जो मैंने जाना है, एक तो वह कह कर कहा नहीं जा सकेगा। और अगर मैंने अथक चेष्टा करके कहा भी, तो उसे केवल वे ही लोग समझ सकेंगे, जो मेरे बिना कहे भी उसे जान ले सकते हैं। जो मेरे बिना कहे उसे जान नहीं सकते, वे समझ नहीं सकेंगे, इसलिए कहने में सार क्या है? जो मेरे बिना भी पहुंच जाएंगे, वही केवल समझ पाएंगे। बात ऐसी जटिल है। और उनको कहने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वे पहुंच ही जाएंगे, दिन दो दिन की देर लगेगी। मुझे व्यर्थ कष्ट में मत डालो। और जो मेरे बिना नहीं पहुंच सकते, वे मेरी बात समझ ही नहीं सकेंगे। इसलिए किससे मैं कहूं?
देवता उदास हो गए, उनकी आंखों में उदासी छा गई। तर्क ठीक था, उसे झुठलाया नहीं जा सकता था। फिर उन्होंने विचार-विमर्श किया आपस में कि हम किस तरह बुद्ध को राजी करें। फिर वे एक तर्क खोज कर लाए। और तर्क कीमती था, और बुद्ध को मान लेना पड़ा।
उन्होंने कहाः हम आपसे राजी हैं। सौ में अधिक लोग ऐसे ही हैं, जो आपकी बात समझ नहीं सकेंगे, उनसे कहना व्यर्थ है, हम राजी हैं। सौ में थोड़े से दो- चार ऐसे हैं, जो आपके बिना भी समझ ही लेंगे, उनसे भी कहना फिजूल है। लेकिन सौ में एकाध ऐसा भी है, जो दोनों के मध्य में खड़ा है, जिससे आप न कहेंगे, तो वह जन्मों-जन्मों तक भटक जाएगा। और जिससे आप कहेंगे, तो वह उपलब्ध भी हो सकता है। जो बिल्कुल किनारे पर आ खड़ा है, जिसे जरा से धक्के की जरूरत है। ऊंट पर आखिरी तिनका है, बैठने के करीब है, बस आखिरी तिनके का बोझ न मिला, तो हो सकता है जन्मों तक भटक जाए, आप उस एक के लिए बोलें।

बात ठीक लगी बुद्ध को कि अगर ए दोनों हैं तो इनके बीच में कोई न कोई जरूर होगा। जहां दो होते हैं, वहां तीसरा भी होता ही है। दोनों के बीच में कोई मध्य में खड़ा ही होगा। वह मध्यवर्ग जो है, उसके लिए बोलें। इसलिए बुद्ध बोले।
यह जो क्षण है समाधिस्थ स्थिति का, उस क्षण में प्रत्येक को ऐसा लगता
है कि अब क्या सार है--क्या कहना, क्या सुनना, किसको बताना? अब मुझे मिल गया--गूंगे का गुड़, उसका स्वाद लेना, और स्वाद में ही खो जाना।
यह सूत्र कहता हैः उस समय सावधानी रखना। जो महाशक्ति मिली है, अगर उपयोग आ सके, तो इसे बांटना। इसका सरोवर मत बनाना; इसको एक बहता प्रवाह बना देना।

समाधि के सप्त द्वार
सोलहवां प्रवचन

ऐसा है आर्य मार्ग

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; प्रातः, 17 फरवरी

और यदि तू सातवां द्वार भी पार कर गया, तो क्या तुझे अपने भविष्य का पता है? आने वाले कल्पों में स्वेच्छा से जीने के लिए तू बाध्य होगा, लेकिन मनुष्यों द्वारा न देखा जाएगा, और न उनका धन्यवाद ही तुझे मिलेगा। और अभिभावक-दुर्गभ भ को बनाने वाले अन्य अनगिनत पत्थरों के बीच तू भी एक पत्थर बन कर जीएगा। करुणा के अनेक गुरुओं के द्वारा निर्मित उनकी यातनाओं के सहारे ऊपर उठा और उनके रक्त से जुड़ा यह दुर्ग मनुष्य-जाति की रक्षा करता है। क्योंकि मनुष्य मनुष्य है, इसलिए यह उसे भारी विपदाओं और शोक से बचाता है।
साथ ही, चूंकि मनुष्य इसे नहीं देखता है, इसलिए वह न स्पर्श कर सकता है
और न प्रज्ञा की वाणी को सुन सकता है क्योंकि वह जानता ही नहीं है।
लेकिन ओ जिज्ञासु, निर्दोष आत्मा वाले तूने तो इसे सुना है और तू तो
सब कुछ जानता है इसलिए तुझे निर्णय करना है, अतः एक बार फिर से सुन।
हे सोवान के मार्ग, हे स्रोतापन्न, तू सुरक्षित है। देख, उस मार्ग पर जहां थके हुए यात्री को अंधकार का सामना करना होता है, जहां कांटों से छिद कर हाथ लहूलुहान हो जाते हैं, जहां पांव तीखे व कठोर पत्थरों से कट-फट जाते हैं, और जहां "काम" अपने शक्तिशाली शस्त्र चलाता है, वहां जरा सी दूरी ही पार कर एक बड़ा वरदान, महान पुरस्कार तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।
वह शांत और अकंप यात्री इस धारा पर बहता चलता है, जो निर्वाण को चली जाती है। वह जानता है कि जितने ही उसके पांव खून उगलेंगे, उतना ही वह स्वयं धुलकर स्वच्छ हो जाएगा। वह भलीभांति जानता है कि सात छोटे-छोटे और क्षणभंगुर जन्मों के बाद निर्वाण उसका है
ऐसा है ध्यान का मार्ग, जो योगियों का आश्रम है और जिस अपूर्व लय के लिए स्रोतापन्न लालायित है।
लेकिन, जब उसने अर्हत का मार्ग पार कर लिया तब कोई लालसा नहीं है।
वहां सदा के लिए क्लेश मिट जाता है और तनहा की जड़ें उखड़ जाती हैं। लेकिन, ओ शिष्य, रुक... अभी भी एक और शब्द कहना बाकी है। क्या तू ईश्वरीय करुणा को मिटा सकता है? करुणा कोई सदगुण नहीं है। यह नियमों का नियम है-- शाश्वत लयबद्धता, आलय की आत्मा। इसे ही तटहीन जागतिक तत्व, नित्य सम्यकत्व की प्रभा, सभी वस्तुओं का कौशल और सनातन प्रेम का विधान कहते हैं।
जितना ही तू इसके साथ एकात्म होता है, जितना ही इसके अस्तित्व में तेरा अस्तित्व घुलमिल जाता है, जितना ही तू इसके साथ एक होता है--जो है-- उतना ही तू स्वयं परिपूर्ण करुणा बन जाएगा।
ऐसा है आर्य मार्ग--पूर्णता के बुद्धों का मार्ग।

"और यदि तू सातवां द्वार भी पार कर गया, तो क्या तुझे अपने भविष्य का पता है? आने वाले कल्पों में स्वेच्छा से जीने के लिए तू बाध्य होगा, लेकिन मनुष्यों द्वारा न देखा जाएगा, और न उनका धन्यवाद ही तुझे मिलेगा।" बोधिसत्व की जो स्थिति है उसे समझें, तो यह सूत्र समझ में आएगा।
बोधिसत्व शरीर से मुक्त हो जाता है। जगत उसे देख नहीं पाता, लेकिन वह जगत को देख पाता है। जगत उसे समझ नहीं पाता, लेकिन वह जगत को समझ पाता है। और जगत को न मालूम कितने उपायों से वह सहायता भी पहुंचाता है। उसका कोई धन्यवाद भी उसे नहीं मिलता है। मिलने का कोई कारण भी नहीं, क्योंकि जिन्हें सहायता पहुंचाई जाती है, वे उसे देख भी नहीं सकते हैं।
यह सूत्र कह रहा हैः अगर तू सातवां द्वार भी पार कर गया, तो फिर एक धन्यवाद-रहित कार्य में तुझे पड़ जाना होगा। कोई तुझे धन्यवाद भी न देगा, कोई जानेगा भी नहीं कि तूने क्या किया, कोई पहचानेगा भी नहीं। कहीं

लिपिबद्ध न होगी तेरी बात। जो सहायता तूने पहुंचाई है, उसे तू ही जानेगा; वे भी नहीं जानेंगे, जिन्हें सहायता पहुंचाई गई।
स्वभावतः ऐसे कृत्य में कोई तभी उलझ सकता है, जब उसकी अस्मिता पूरी मिट गई हो। अहंकार तो एक ही बात में उत्सुक होता है कि मैं जाना जाऊं, माना जाऊं, कोई धन्यवाद स्वीकार करे, कोई अनुगृहीत हो। बोधिसत्व की अवस्था तो उपलब्ध होती है अहंकार के मिट जाने के बाद। तो अब यह सवाल नहीं है कि जिसको सहायता दी है, वह अनुगृहीत हो। अब तो सहायता देना ही अपने आप में पर्याप्त है। लेकिन यह सूत्र एक बात और कहता है, जो बड़ी अजीब और बड़ी विरोधाभासी है। यह सूत्र कहता हैः आनेवाले कल्पों में स्वेच्छा से जीने के लिए तू बाध्य होगा।
यह बड़ी उल्टी बात है--स्वेच्छा से जीने के लिए बाध्य! कोई तुझे मजबूर नहीं करेगा कि तू बोधिसत्व बन; कोई तुझे जोर-जबरदस्ती नहीं करेगा कि तू मनुष्यों की सेवा में लग, कि सोए हुए को जगा, कि भटके हुए को मार्ग पर ला; कोई तुझे बाध्य नहीं करेगा। तू चाहे तो खो सकता है महाशून्य में; तू चाहे तो लग सकता है इस महाकार्य में, महाकरुणा के कार्य में। इसलिए बड़े उल्टे शब्दों का प्रयोग किया है--स्वेच्छा से जीने को बाध्य होगा। लेकिन तेरी स्व-इच्छा ही तुझसे कहेगी कि तू जी, रुक, ठहर; खो मत जा, उनके काम पर अभी जिन्हें जरूरत है। यह तेरी स्वेच्छा की ही बाध्यता होगी।
बाध्यता तो होती है हमेशा अपनी मर्जी के बिना, कोई और जबरदस्ती करता है। बोधिसत्व की स्थिति में कोई जबरदस्ती प्रकृति की नहीं रह जाती। परमात्मा का भी कोई आग्रह नहीं रह जाता है--नियम के बाहर हो गया वह व्यक्ति। उसे अब चलाया नहीं जा सकता। वह चलना चाहे, तो चल सकता है। उसे रोका नहीं जा सकता, वह रुकना चाहे तो रुक सकता है।
हम सब इस जगत में चलते हैं कार्य और कारण के नियम में बंधे, काजेलिटि में बंधे। हम जो भी कर रहे हैं, वह हमें लगता है कि हम कर रहे हैं; लेकिन हम करते नहीं, हमसे करवाया जाता है। जब आपको क्रोध होता है तो क्या आपको लगता है कि आप क्रोध करते हैं? लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि मुझसे बहुत क्रोध हो जाता है, कैसे रोकूं? तो उनसे मैं पूछता हूं, क्या सच में तुम क्रोध करते हो? अगर तुम ही करते हो तो रोक सकते हो। लेकिन क्रोध कौन करता है, वह तो जैसे अवश, स्वेच्छा के विपरीत, मजबूरी में किया जाता है। आपसे करवा लिया जाता है, आप करते नहीं हो। करते होते, तब तो मालिक थे।
तो इसे ऐसा समझें कि अगर आपसे कोई कहे कि अभी क्रोध करके दिखाएं, तो आप क्रोध न कर सकेंगे। तो आप करते हैं, इस भ्रांति में मत रहना। और जब क्रोध हो रहा है, तब कोई कहे कि इसी वक्त रुक जाएं, तब आप रुक न सकेंगे। तब क्रोध आपको चला रहा है, आप क्रोध को चलाते हैं, ऐसा नहीं है। प्रेम आपको चला रहा है; आप प्रेम को रही है। और आप सोच रहे हैं कि मैं कर रहा हूं। अगर आप कर रहे होते--तो आप रोक कर देखिए, तो पता चल जाएगा। क्योंकि जो भी आप करते हैं, वह आप रोक सकते हैं। तो सुंदर स्त्री दिखाई पड़े और मन में वासना न उठे, ऐसा करके देखिए। पानी अगर यह मानता है कि वह भाप बन रहा है, तो उसे यह करना चाहिए कि नीचे आग जले और वह भाप न बने, तो पक्का हो जाएगा कि आग से नहीं भाप बन रहा है, अपनी स्वेच्छा से बन रहा है। गर्मी नीचे गिरती जाए, शून्य डिग्री के नीचे पहुंच जाए, और पानी इनकार करे, बर्फ न बने। धन आपके सामने पड़ा हो, हीरे-जवाहरातों का ढेर लगा हो, और आपके भीतर वासना न जगे उनके मालिक बन जाने की, तो समझना वासना आप कर रहे हैं।
जिसे हम रोक नहीं सकते, उसे हम कर रहे हैं, यह भ्रांति है।
जो हमारे बस में नहीं है, उसके हम बस में हैं। पर आदमी के अहंकार को चोट लगती है।
इस देश के मनुष्यों ने तो सदा कहा है कि आदमी भी प्रकृति के कार्य-कारण से बंधा चल रहा है। इसको हम नियति कहते हैं, भाग्य कहते हैं। आपके किए कुछ हो नहीं रहा है। और जब हमने यह कहा कि परमात्मा की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, तो उसका मतलब यह है कि आप अपनी मर्जी की बातें छोड़ दें; यह प्रकृति का विराट नियम ही सब हिला रहा है। पत्ता भी हिलता है, तो उस विराट नियम से हिलता है। आप इसमें बीच में अपने मैं को खड़ा मत करें। अगर यह भी

ख्याल में आ जाए, तो आपकी जिंदगी में क्रांति हो जाएगी। तब आप यह नहीं कहेंगे कि मैं क्रोध करता हूं। आप यही कहेंगे कि क्रोध होता है, प्रेम होता है, घृणा होती है, सुख होता है, दुख होता है।
अगर यह बात आपको बिल्कुल साफ समझ में आ जाए कि आपके भीतर भी प्रकृति
के अंधे नियम काम कर रहे हैं, और आप उनके मालिक नहीं हैं, तो मालकियत की पहली किरण आपके भीतर पैदा हो गई। यह समझ भी लेना कि मैं गुलाम हूं, मालकियत की शुरुआत है। और गुलाम अपने को यह समझ रहे हैं कि मैं तो मालिक हूं, तो फिर उसकी मालकियत कभी भी तय नहीं हो सकती क्योंकि वह भ्रांति में ही मरेगा। बोधिसत्व हमसे बिल्कुल दूसरा छोर है, जहां नियम धक्का देना बंद कर देते हैं, जहां पानी गरम करके भाप नहीं बनाया जा सकता, जहां पानी ठंडा करके बर्फ नहीं बनाया जा सकता। बोधिसत्व अहंकार के छूटते ही, विराग के जन्मते ही, ध्यान की उपलब्धि पर, प्रज्ञा की किरण के पैदा होते ही--धीरे-धीरे-धीरे जिस जगत में काम होता है नियमों का, उसके पार हो रहा है, स्वेच्छा के जगत में प्रवेश कर रहा है।
बुद्ध के जीवन की बड़ी मीठी कथा है। जब उनका जन्म हुआ, तो ज्योतिषियों
ने कहा कि यह व्यक्ति या तो सम्राट होगा या संन्यासी होगा। सब लक्षण सम्राट के थे। फिर बुद्ध तो भिक्षु हो गए, संन्यासी हो गए। और सम्राट साधारण नहीं, चक्रवर्ती सम्राट होगा, सारी पृथ्वी का सम्राट होगा।
बुद्ध एक नदी के पास से गुजर रहे हैं, निरंजना नदी के पास से गुजर रहे हैं। रेत पर उनके चिह्न बन गए, गीली रेत है, तट पर उनके पैर के चिह्न बन गए। एक ज्योतिषी काशी से लौट रहा था। अभी-अभी ज्योतिष पढ़ा है। यह सुंदर पैर रेत पर देख कर उसने गौर से नजर डाली। पैर से जो चिह्न बन गया है नीचे, वह खबर देता है कि चक्रवर्ती सम्राट का पैर है। ज्योतिषी बहुत चिंतित हो गया। चक्रवर्ती सम्राट का अगर यह पैर हो, तो यह साधारण सी नदी के रेत पर चक्रवर्ती चलने क्यों आया? और वह भी नंगे पैर चलेगा कि उसके पैर का चिह्न रेत पर बन जाए! बड़ी मुश्किल में पड़ गया। सारा ज्योतिष पहले ही कदम पर व्यर्थ होता मालूम पड़ा। अभी-अभी लौटा था निष्णात होकर ज्योतिष में। अपनी पोथी, अपना शास्त्र साथ लिए हुए था। सोचा, इसको नदी में डुबा कर अपने घर लौट जाऊं, क्योंकि अगर इस पैर का आदमी इस रेत पर भरी दुपहरी में चल रहा है नंगे पैर--और इतने स्पष्ट लक्षण तो कभी युगों में किसी आदमी के पैर में होते हैं कि वह चक्रवर्ती सम्राट हो--तो सब हो गया व्यर्थ। अब किसी को ज्योतिष के आधार पर कुछ कहना उचित नहीं है।
लेकिन इसके पहले कि वह अपने शास्त्र फेंके, उसने सोचा, जरा देख भी तो लूं, चल कर इन पैरों के सहारे, वह आदमी कहां है। उसकी शक्ल भी तो देख लूं। यह चक्रवर्ती है कौन, जो पैदल चल रहा है!
तो उन पैरों के सहारे वह गया। एक वृक्ष की छाया में बुद्ध विश्राम कर रहे थे। और भी मुश्किल में पड़ गया, क्योंकि चेहरा भी चक्रवर्ती का था, माथे पर निशान भी चक्रवर्ती के थे। बुद्ध की आंखें बंद थीं, उनके दोनों हाथ उनकी पालथी में रखे थे; हाथ पर नजर डाली, हाथ भी चक्रवर्ती का था। यह देह, यह सब ढंग चक्रवर्तियों का, और आदमी भिखारी था, भिक्षा का पात्र रखे, वृक्ष के नीचे बैठा था, भरी दुपहरी में अकेला था।
हिला कर बुद्ध को उसने कहा कि महानुभाव, मेरी वर्षों की मेहनत व्यर्थ किए दे रहे हैं--ए सब शास्त्र नदी में फेंक दूं, या क्या करूं? मैं काशी से वर्षों से मेहनत करके, ज्योतिष को सीख करके लौट रहा हूं। और तुममें जैसे पूरे लक्षण प्रगट हुए हैं, ऐसे सिर्फ उदाहरण मिलते हैं ज्योतिष के शास्त्रों में। आदमी तो कभी-कभी हजारों-लाखों साल में ऐसा मिलता है। और पहले ही कदम पर तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। तुम्हें होना चाहिए चक्रवर्ती सम्राट और तुम यह भिक्षापात्र रखे इस वृक्ष के नीचे क्या कर रहे हो?
तो बुद्ध ने कहा कि शास्त्रों को फेंकने की जरूरत नहीं है, तुझे ऐसा आदमी दुबारा जीवन में नहीं मिलेगा। जल्दी मत कर, तुझे जो लोग मिलेंगे, उन पर तेरा ज्योतिष काम करेगा। तू संयोग से, दुर्घटनावश ऐसे आदमी से मिल गया है, जो भाग्य की सीमा के बाहर हो गया है। लक्षण बिल्कुल ठीक कहते हैं। जब

मैं पैदा हुआ था, तब यही होने की संभावना थी। अगर मैं बंधा हुआ चलता प्रकृति के नियम से तो यही हो जाता। तू चिंता में मत पड़, तुझे बहुत बुद्ध-पुरुष नहीं मिलेंगे जो तेरे नियमों को तोड़ दें। और जो अबुद्ध है, वह नियम के भीतर है। और जो अजाग्रत है, वह प्रकृति के बने हुए नियम के भीतर है। जो जाग्रत है, वह नियम के बाहर है।
जाग्रत व्यक्ति का संकल्प होता है, उसकी स्वेच्छा होती है, वह जो चाहे करे। इसलिए यह सूत्र बड़े मजे की बात कहता है। यह कहता है, स्वेच्छा से जीने के लिए तू बाध्य होगा। कोई तुझे बाध्य न कर सकेगा कि रुक और सेवा कर, रुक और करुणा से लोगों को जगा; और सोए, पीड़ित, दुखी, विक्षिप्त लोगों की बीमारी दूर कर, उनके लिए औषधि बन, उनके लिए चिकित्सक बन। कोई तुझे बाध्य न करेगा, लेकिन तू स्वयं ही बाध्य होगा। यह तेरी स्वेच्छा ही होगी, तू स्वयं ही चुनेगा कि मैं रुक जाऊं।
"लेकिन तू मनुष्यों के द्वारा न देखा जाएगा, और न उनका धन्यवाद ही तुझे मिलेगा। और अभिभावक-दुर्ग को बनानेवाले अन्य अनगिनत पत्थरों के बीच तू भी एक पत्थर बन कर जीएगा। करुणा के अनेक गुरुओं के द्वारा निर्मित उनकी यातनाओं के सहारे ऊपर उठा और उसके रक्त से जुड़ा यह दुर्ग मनुष्य-जाति की रक्षा करता है। क्योंकि मनुष्य मनुष्य है, इसलिए यह उसे भारी विपदाओं और शोक से बचाती है।"
यह एक प्रतीक है सत्य समझने योग्य। पहली तो बात यह है कि बोधिसत्व का कृत्य दिखाई नहीं पड़ता। बोधिसत्व भी दिखाई पड़ जाए, तो भी उसका कृत्य दिखाई नहीं पड़ता। वह जो कर रहा है, वह सूम है। वह जो कर रहा है, वह आपके अचेतन में वहां काम कर रहा है, जहां का आपको भी पता नहीं है। उसके करने के अपने रास्ते हैं।
तिब्बत में एक शब्द है "तुलकू"। ब्लावट्स्की को भी तिब्बत में "तुलकू" ही कहा जाता है। "तुलकू" का अर्थ होता है ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी बोधिसत्व के प्रभाव में इतना समर्पित हो गया है कि बोधिसत्व उसके द्वारा काम कर सके। ब्लावट्स्की तुलकू बन सकी। स्त्री थी, इसलिए आसानी से बन सकी; समर्पित थी। जो लोग ब्लावट्स्की के पास रहते थे, वे लोग चकित होते थे। जब वह लिखने बैठती थी, तो आविष्ट होती थी, पजेस्ड होती थी। लिखते वक्त उसके चेहरे का रंग-रूप बदल जाता था। आंखें किसी और लोक में चढ़ जाती थीं। और जब वह लिखने बैठती थी तो कभी दस घंटे, कभी बारह घंटे लिखती ही चली जाती थी। पागल की तरह लिखती थी। कभी काटती नहीं थी, जो लिखा था उसको। यह कभी-कभी होता था। जब वह खुद लिखती थी, तब उसे बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। तो उसके संगी-साथी उससे पूछते थे, यह क्या होता है? तो वह कहती थी कि जब मैं "तुलकू" की हालत में होती हूं, तब मुझसे कोई लिखवाता है। थियोसाफी में उनको मास्टर्स कहा गया है। कोई सदगुरु लिखवाता है, मैं नहीं लिखती; मेरे हाथ किसी के हाथ बन जाते हैं; कोई मुझमें आविष्ट हो जाता है, और तब लिखना शुरू हो जाता है, तब मैं अपने वश में नहीं होती, मैं सिर्फ वाहन होती हूं। यह पुस्तक भी ऐसे ही वाहन की अवस्था में उपलब्ध हुई है।
कभी-कभी ऐसा होता था कि कुछ लिखा जाता था और उसके बाद महीनों तक वह अधूरा ही पड़ा रहता था। संगी-साथी ब्लावट्स्की के कहते कि वह पूरा कर डालो, जो अधूरा पड़ा है। वह कहती, कोई उपाय नहीं है पूरा करने का; क्योंकि मैं पूरा करूं, तो सब खतरा हो जाए; जब मैं फिर आविष्ट हो जाऊंगी, तब पूरा हो जाएगा। उसकी कुछ किताबें अधूरी ही छूट गई हैं, क्योंकि जब कोई बोधिसत्व चेतना उसे पकड़ ले, तभी लिखना हो सकता है।
ये जो बोधिसत्व हैं, ऐसी चेतनाएं जो परमद्वार पर खड़ी हैं; क्षीण होने के, विलीन होने के, शांत होने के, नष्ट हो जाने के द्वार पर खड़ी हैं-- महामृत्यु अभी घटने वाली है जिनके लिए, ये हजार तरह से काम करती हैं। किसी व्यक्ति में आविष्ट हो सकती हैं, किसी व्यक्ति को पता भी न चले, उसका उपयोग कर सकती हैं। इन सारी आत्माओं का तिब्बत में ख्याल है, और ख्याल सही है कि एक दुर्ग है, जो मनुष्य-जाति को घेरे हुए है चारों तरफ से।
आदमी जैसा है, वह बिल्कुल पागल है। और वह जो भी करता है, वह सब पागलपन
से भरा है। अगर आदमी को बिल्कुल उसके ही सहारे छोड़ दिया जाए, तो वह अपने को

भी नष्ट कर ले सकता है। वह जो भी कर रहा है वह सब उपद्रव से ग्रस्त है। उसे कुछ पता ही नहीं कि क्या
कर रहा है, और क्या हो रहा है। यह बोधिसत्वों का दुर्ग, उसे बार-बार मार्ग पर ले आता है, बार-बार उसे भटकने से बचाता है, बार-बार अनेक उपाय करके दिशा और दृष्टि देने की कोशिश करता है।
1 यह सूत्र कह रहा है कि जब तू सातवें द्वार को भी पार कर जाएगा, तब अपनी ही स्वेच्छा से तू भी इस महादुर्ग की एक इट बनना चाहेगा। अनेक गुरुओं की यातनाओं से निर्मित यह दुर्ग है। यह दुर्ग मनुष्य-जाति की रक्षा करता है। तिब्बत में हर बुद्ध-पूर्णिमा को एक विशेष पर्वत पर पांच सौ बौद्ध लामा इकट्ठे होते हैं। हर वर्ष बुद्ध-पूर्णिमा की रात, आधी रात बुद्ध की वाणी सुनाई पड़ती है। यह बोधिसत्व-वाणी है। एक नियत योजना के अनुसार, एक नियत घड़ी में बुद्ध की वाणी उपलब्ध होती है। नियत लोग, निश्चित लोग, जो उस वाणी को सुन सकते हैं--क्योंकि वाणी अशरीरी है--वे ही केवल वहां इकट्ठे होते हैं। पांच सौ से ज्यादा लामा वहां कभी इकट्ठे नहीं होते हैं। जब एक लामा उनमें से मर जाता है, समाप्त हो जाता है, तभी एक नये लामा को प्रवेश मिलता है। स्थान गुप्त रखा जाता है; क्योंकि कोई भी गैर-व्यक्ति वहां पहुंच जाए, तो बाधा पड़ सकती है उस घटना में। बुद्ध मरते वक्त वह निश्चित कर गए हैं।
सदगुरु अक्सर निश्चित कर जाते हैं कि उनके साथ, बाद में जब उनका शरीर
न होगा, तो कैसे संबंध स्थापित किया जाए। यह संबंध स्थापित करने के निश्चित सूत्र हैं और उनके ही अनुसार चला जाए, तो संबंध स्थापित होते हैं। जो परंपराएं अपने गुरु से संबंध स्थापित करती रहती हैं, वे जीवित हैं। बहुत सी परंपराएं हैं, जिनका संबंध सूत्र खो गया है, वे मृत हैं। जैसे जैनों की परंपरा है, वह मृत है। महावीर से संपर्क-सूत्र खो गया है। और जैनों में आज एक भी सिद्ध पुरुष नहीं है, जो महावीर से संपर्क-सूत्र स्थापित कर सके। इसलिए जैनों की जो भी गहन गूढ़-विद्या है, वह ढकी पड़ी है, उसको उघाड़ने का कोई उपाय नहीं है। जैन पंडित, जैन साधु और संन्यासी जो भी करते रहते हैं, वह सब बौद्धिक है; उसमें कोई आध्यात्मिक अनुभव नहीं है। इसलिए महावीर जैसे महाप्राण गुरु का भी संदेश जगत तक नहीं पहुंच सका। क्योंकि परंपरा छिन्न-भिन्न हो गई है। उपाय छोड़ कर गए हैं महावीर, जिन उपायों से उनसे संबंध स्थापित किया जा सकता है। लेकिन कोई उपाय काम में नहीं है।
बुद्ध की परंपरा आज भी जीवित है। आज भी संपर्क-सूत्र स्थापित करने वाले लोग हैं, जो आज भी बुद्ध की वाणी उपलब्ध कर सकते हैं। बुद्ध की वाणी शाश्वत उपलब्ध रहेगी, बुद्ध के आश्वासन हैं। जीसस का संबंध-सूत्र खो गया है। ईसाइयत औपचारिक धर्म हो कर रह गई है। चर्च हैं, पादरी हैं, पोप हैं, भारी विस्तार है। लेकिन विस्तार ही है, इस्टेबिलिशमेंट ही है; भीतर जो सत्व है, वह खो गया है। जीसस से संबंध नहीं रह गया है। तो ईसाइयत इतनी फैल गई, लेकिन फिर भी जीसस से कोई संबंध नहीं है। तो प्राण नहीं हैं भीतर। सैकड़ों परंपराएं पृथ्वी पर हैं। हर परंपरा किसी महागुरु, किसी बोधिसत्व की चेतना से चलती है। लेकिन उससे संबंध प्रस्थापित होता ही रहना चाहिए। क्योंकि युग बदलता है, समय बदलता है, भाषा बदलती है। फिर से पुनः संबंध स्थापित होना चाहिए कि बुद्ध अभी क्या कहेंगे। बुद्ध इस क्षण में क्या कहेंगे। बुद्ध का आज के लिए क्या संदेश होगा। अगर संबंध टूट जाए, तो दो हजार, ढाई हजार साल पहले बुद्ध ने जो कहा था, वह हमारे पास किताबों में रह जाता है। लेकिन ढाई हजार साल पहले की जो स्थिति थी, वह आज नहीं है। ढाई हजार साल पहले जिन लोगों से उन्होंने कहा था, वे लोग आज नहीं हैं। ढाई हजार साल पहले जो उन्होंने विधियां दी थीं, वे आज कारगर नहीं होंगी, क्योंकि आदमी बदल गया है, आदमी का मन बदल गया है।
जीवित परंपरा का अर्थ होता है कि बुद्ध से बार-बार संबंध स्थापित करके आज के लिए संदेश पाया जा सके। अगर यह न हो सके, तो परंपरा बोझ हो जाती है, और मुर्दा हो जाती है।

यह बोधिसत्व का जो दुर्ग है, हमारे चारों तरफ मौजूद है बहुत निकट, क्योंकि हमारे हृदय के पास है दुर्ग। इससे संबंध बनाया जा सकता है। लेकिन उस संबंध को बनाने के लिए पूर्ण समर्पण की दशा चाहिए।
मूर्तियां हैं, मंदिर हैं, चर्च हैं, गिरजे हैं, गुरुद्वारे हैं, वे सब प्रतीक हैं; संबंध स्थापित करने के एक तरह के यंत्र हैं, जिनसे संबंध स्थापित किया जा सकता है, जिन पर ध्यान एकाग्र करने से आप इस लोक से हटते हैं और उस लोक के लिए उन्मुख हो जाते हैं।
करीब-करीब आज पृथ्वी पर बोधिसत्वों का संपर्क क्षीणतम हो गया है। इधर पिछले कुछ दशकों में ब्लावट्स्की के प्रयास से बड़ा महाप्रयोग हुआ। और बड़ी चेष्टा हुई कि बोधिसत्व के दुर्ग से पुनः संबंध स्थापित हो जाए। थियोसाफी का पूरा का पूरा आंदोलन इस संबंध-सूत्र को स्थापित करने के लिए ही था, लेकिन प्रयास असफल हो गया; हो ही नहीं पाया, थोड़ा काम हुआ और सब अवरुद्ध हो गया। और आज कोई इतना बड़ा प्रयास दूसरा नहीं है, जो ज्ञान की जो शाश्वत धारा है, जो परंपरा है, ज्ञान के जो सूत्र सदा उपलब्ध कर लिए गए हैं, उनको पुनर्जीवित किया जा सके। और जरूरत बहुत ज्यादा है कि यह हो; और अगर यह न हो, तो आदमी भटक सकता है, खो सकता है। क्योंकि आदमी के पास बुद्धों का जो जीवंत दुर्ग है, अगर उससे ही हमारा संबंध विछिन्न हो जाए, तो हम भटकते ही चले जाएंगे, और गिरते ही चले जाएंगे।
आज आदमी की गिरावट का कारण न तो विज्ञान है, आदमी की गिरावट का कारण न
तो अनीति है--आदमी की गिरावट का एक ही कारण है कि अनंत-अनंत काल में जो शाश्वत सत्य की खोजें हैं और उन सत्यों की संपत्ति जिनके पास सुरक्षित है, उनसे हमारा संबंध क्षीण हो गया है। उस संबंध को पुनर्जीवित किया जा सके, तो ही मनुष्य को बचाया जा सकता है। अन्यथा यह पृथ्वी खाली कर देनी पड़ेगी। अन्यथा इस पृथ्वी पर आदमी के बचने की इस सदी के बाद कोई संभावना नहीं है। एक महा-आंदोलन की जरूरत है कि पृथ्वी के कोने-कोने में सभी धर्म-परंपराओं से संपर्क पुनर्जीवित किया जा सके। यह किया जा सकता है।
अगर आप समर्पित हैं और ध्यान में पूरी तरह डूबते हैं, तो आज नहीं कल अचानक आप पाएंगे कि आप एक दूसरे लोक में प्रवेश करने लगे, और दूसरे लोक की वाणी आपको सुनाई पड़ने लगी, और दूसरे लोक की आत्माएं आपसे संबंध स्थापित करने लगी हैं। वे सदा उत्सुक हैं, सिर्फ आपकी तरफ से द्वार खुला चाहिए। और तब आप पाएंगे कि आप नाहक ही परेशान हो रहे थे; जिनसे मार्गदर्शन मिल सकता है वे बहुत निकट हैं।
यह सूत्र कहता हैः साथ ही, चूंकि मनुष्य इसे नहीं देखता है, इसलिए वह न स्पर्श कर सकता है, और न प्रज्ञा की वाणी सुन सकता है क्योंकि वह जानता ही नहीं है।
"लेकिन ओ जिज्ञासु, निर्दोष आत्मा वाले, तूने तो इसे सुना है और तू तो
सब कुछ जानता है इसलिए तुझे निर्णय करना है। अतः एक बार फिर से सुन।"
"हे सोवान के मार्ग, हे स्रोतापन्न, तू सुरक्षित है। देख, उस मार्ग पर जहां थके हुए यात्री को अंधकार का सामना करना होता है।"
यह उसे याद दिला रहा है, यह सूत्र सिर्फ याद दिला रहा है। निर्वाण के पहले खो जाने की संभावना है। यह सूत्र याद दिला रहा है कि तू तो अब सुरक्षित है। अब तुझे तो कोई भय न रहा। तूने वह वाणी सुन ली, जो मुक्त करती है, और तूने वह सत्य स्पर्श कर लिया है। अब तुझे कोई दुख नहीं है। तेरे पैर निरंतर आनंद में बहे जा रहे हैं, लेकिन स्मरण कर उस मार्ग का, जहां तू कल चल रहा था, और जहां तुझे कोई सहारा न था, और जहां तुझे कोई मार्ग-दर्शन देने वाला नहीं था, उस मार्ग पर अभी भी थके हुए यात्री अंधेरे का सामना कर रहे हैं।
"जहां कांटों से छिद कर हाथ लहूलुहान हो जाते हैं, जहां पांव तीखे व कठोर पत्थरों से कट-फट जाते हैं और जहां "काम" अपने शक्तिशाली शस्त्र चलाता है, वहां जरा सी दूरी ही पार कर एक बड़ा वरदान, महान पुरस्कार तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।"
अगर तू जरा सा लौट कर पीछे देख तो जिस रास्ते पर तू कल तक था, वहां करोड़ों लोग हैं। जैसा तू भटकता था, वे भटक रहे हैं। जिन दुखों में तू डूबता

था, उसमें वे डूब रहे हैं। जिन पीड़ाओं को तू अपने हाथ से पकड़ कर भोगता था, वहां वे अपने ही हाथों से अपनी पीड़ाएं निर्मित कर रहे हैं और भोग रहे हैं। पीछे के नरक को देख, यह नरक अगर दिखाई पड़ जाए तुझे, तो तू उनकी सहायता के काम पड़ सकता
है।
"वह शांत और अकंप यात्री इस धारा पर बहता चला जाता है, जो निर्वाण को चली जाती है। वह जानता है कि जितने ही उसके पांव खून उगलेंगे उतना ही वह स्वयं धुलकर स्वच्छ हो जाएगा। वह भलीभांति जानता है कि सात छोटे-छोटे और क्षणभंगुर जन्मों के बाद निर्वाण उसका है।"
यह भी तुझे साफ है कि ज्यादा देर नहीं है तेरे महानिर्वाण में खो जाने
के लिए। शीघ्र ही थोड़े ही जन्मों में समस्त रूप में महाशून्य हो जाएगा। इसके पहले कि तू महाशून्य हो जाए, तू महाशून्य होने की जल्दी मत करना। "ऐसा है ध्यान का मार्ग, जो योगियों का आश्रय है और जिस अपूर्व लय के लिए स्रोतापन्न लालायित है।"
वह धारा में प्रवेश कर रहा है, साधक है, नया है, लालायित है--इस महाशून्य को जानेवाले मार्ग पर चलने के लिए।
लेकिन, जब उसने अर्हत का मार्ग पार कर लिया, तब कोई लालसा नहीं है।
अर्हत होते ही सारी लालसाएं शांत हो जाती हैं, सारी वासनाएं क्षीण हो जाती हैं। तब खतरा है, क्योंकि जब स्वयं की वासना क्षीण हो जाए, तो दूसरे की भी दिखाई नहीं पड़ती और जब स्वयं के दुख मिट जाएं, तो दूसरों के दुखों का कोई ख्याल नहीं रह जाता है।
हम वही जानते हैं जो हमारे भीतर होता रहता है। जो हमारे भीतर बंद हो गया, हम भूल जाते हैं कि वह दूसरों के भीतर अभी जारी है।
"वहां सदा के लिए क्लेश मिट जाता है"
अर्हत होते ही, सिद्ध होते ही सारा क्लेश मिट जाता है।
"और तनहा की जड़ें उखड़ जाती हैं।"
तृष्णा के सारे जाल टूट जाते हैं।
"लेकिन ओ शिष्य, रुक अभी भी एक और शब्द कहना बाकी है। क्या तू ईश्वरी करुणा को मिटा सकता है? करुणा कोई सदगुण नहीं है। यह नियमों का नियम है-- शाश्वत लयबद्धता, आलय की आत्मा। इसे ही तटहीन जागतिक सत्व, नित्य, सम्यकत्व की प्रभा, वस्तुओं का कौशल और सनातन प्रेम का विधान कहते हैं।" एक शब्द और है अर्हत के लिए। सूत्र कहता है कि एक शब्द और है, सब हो चुका, तेरी तृष्णा मिट गई। तेरी तृष्णा के साथ ही तेरे दुखों का सागर तिरोहित हो गया। खुद की तृष्णा ही खुद का दुख है। तुझे कुछ पाने को न बचा, तूने सब पा लिया। तू हो गया जो हो सकता था। तेरा फूल खिल गया, लेकिन एक आखिरी शब्द और है। और वह आखिरी शब्द है करुणा के संबंध में।
इसे हम समझ लें।
जिस जगत में हम रहते हैं, वहां वासना नियम है।
वासना का अर्थ हैः हम लेना चाहते हैं, पाना चाहते हैं, छीनना चाहते हैं। जिस जगत में हम रहते हैं, वहां वासना नियम है। इस जगत के पार होते ही वासना की जगह करुणा नियम हो जाती है।
वासना का अर्थ है लेना। करुणा का अर्थ है देना--वासना के ठीक विपरीत। वासना चाहती हैः देना कुछ भी न पड़े और सब मिल जाए। और करुणा चाहती है, लेना कुछ भी न पड़े, सब दे दिया जाए। यह वासना से करुणा में प्रवेश है। अर्हत की वासना नष्ट हो गई, अब वह चाहे तो सीधा शून्य में विलीन हो सकता है। लेकिन बोधिसत्व को, जो दूसरा मार्ग है वह कहता है, जो-जो वासना से तूने मांगा था, वह करुणा से लौटा दे। निपटारा पूरा कर दे। जिनसे तूने चाहा था, उनको दे दे। बिना दिए भी खोया जा सकता है, बिना बांटे भी खोया जा सकता है। कोई बांटने की अनिवार्यता नहीं है। अब कोई दबाव नहीं है, अब कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है कि बांट ही। सच तो यह है कि जब तक जोर-जबरदस्ती है बांटने की, तब तक हमारे पास बांटने को कुछ भी नहीं होता है। जिस दिन बांटने को मिलता है कुछ, उस दिन कोई जबरदस्ती नियमों की नहीं रह जाती। परम स्वतंत्र है चेतना, चाहे तो बांट सकती है।

यह सूत्र सकता हैः करुणा कोई सदगुण नहीं है।
यह कोई नैतिक गुण नहीं है।
"करुणा कोई सदगुण नहीं है। यह है नियमों का नियम--शाश्वत लयबद्धता, आलय की आत्मा। इसे ही तटहीन, जागतिक तत्व, नित्य सम्यकत्व की प्रभा, सभी वस्तुओं का कौशल और सनातन प्रेम का विधान कहते हैं।"
यह करुणा कोई नैतिकता नहीं है--जिस करुणा की यहां बात की जा रही है। यह करुणा कोई दया भी नहीं है कि दूसरों पर दया करें। क्योंकि दया में भी अहंकार मौजूद है। यह करुणा तो प्रेम का एक विधान है। इसमें कोई अस्मिता नहीं कि मैं दया करूं, तो श्रेष्ठ हो जाऊंगा। अब कोई श्रेष्ठता अर्हत के लिए बाकी न बची, उसने सारी श्रेष्ठता पा ली। अब देने से कुछ और ज्यादा नहीं हो जाएगा वह। अब बांटना उसके लिए कोई पुण्य नहीं है। उसने सब पुण्य पा लिए हैं। इसलिए सवाल उठता है कि अर्हत क्यों बांटे? क्योंकि हमारी भाषा में यह तकलीफ है कि हम सोचते हैं कि जब कुछ मिलनेवाला नहीं है उससे तो बांटें क्यों? तो बांटना क्या है? न कोई दबाव है, न मिलने की कोई आशा है, न कोई बढ़ती होनेवाली है। अर्हत से ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है, आखिरी शिखर छू लिया गया।
सूत्र कहता है, यह कोई दया नहीं है, इससे कुछ अर्जित होनेवाला नहीं है। लेकिन यह प्रेम का विधान है। जैसे वासना जगत का विधान है, ऐसे करुणा जगत के पार जानेवाले का विधान है। यह स्वेच्छा से चुना हुआ नियम है, इसलिए इसको नियमों का नियम कहा है, क्योंकि जो नियम स्वेच्छा से नहीं चुने जाते, वे आधारभूत नहीं हैं। यह अल्टीमेट ला है--ताओ। इससे ऊपर और कोई नियम नहीं जाता। मांगना ऊपर-ऊपर है, देना नीचे है। वासना सतह पर है, करुणा आधार में है।
"जितना ही तू इसके साथ एकात्म होता है, जितना ही इसके अस्तित्व में तेरा अस्तित्व घुलमिल जाता है, जितना ही तू इसके साथ एक होता है--जो है-- उतना ही तू परिपूर्ण करुणा बन जाएगा।"
"ऐसा है आर्य मार्ग--पूर्णता के बुद्धों का मार्ग।"
बुद्ध आर्य शब्द का बहुत उपयोग किए हैं। आर्य का अर्थ होता है श्रेष्ठतम। ऐसा है आर्यों का मार्ग--जो श्रेष्ठतम हैं, उनका मार्ग। ऐसा है पूर्णता को प्राप्त बुद्धों का मार्ग--कि वासना के जगत के बाद, वे करुणा के नियम को स्वेच्छा से चुन लेते हैं। यह चुनाव उनका है, कोई अपरिहार्यता नहीं है। परिपूर्ण स्वेच्छा है। स्वेच्छा से ही खड़े हो जाते हैं संसार में उनकी सहायता करने को, जो अभी भटक रहे हैं। इसलिए उन्हें समझने में हमेशा कठिनाई होती है। क्योंकि हमें लगता कि अगर एक बुद्ध भी आपको समझा रहा है, तो जरूर उसका मतलब होगा, कोई प्रयोजन होगा। क्योंकि हम प्रयोजन की ही भाषा समझ सकते हैं। हमारी कोई गलती भी नहीं है। अगर कोई आपको बदलने की भी कोशिश कर रहा है, तो जरूर उसका कोई प्रयोजन होगा, जरूर इससे उसे कुछ लाभ मिलता होगा, जरूर इसमें वह कुछ पा रहा होगा या पाने की कोई वासना रखता होगा। कोई प्रतिष्ठा, कोई पद, कोई यश, कोई महत्वाकांक्षा जरूर भीतर होगी। नहीं तो कौन किसके लिए परेशान होता है और क्यों परेशान होगा?
वासना की भाषा में जो जीते हैं उन्हें करुणा का कोई भी पता नहीं हो सकता है। इसमें भी कोई गलती नहीं है, कोई उपाय भी नहीं है। जैसे अंधे को कोई प्रकाश नहीं दिखता, वैसे वासनावाले को करुणा नहीं दिखाई पड़ती। करुणा भी अगर दिखाई पड़ती है, तो वह समझता है इसके भीतर कोई वासना जरूर छिपी है। इसलिए बुद्ध सदा ही गलत समझे जाएंगे। यह उनका भाग्य। गलत उनको समझा
ही जाएगा। क्योंकि वे जिनसे बात कर रहे हैं, उनकी भाषा और है, उनका नियम और है। लेकिन फिर भी वे चेष्टा में रत रहेंगे। क्योंकि जैसे-जैसे उन्हें दिखाई पड़ना शुरू होता है, अपनी पीड़ाओं का पथ, जिस पर वे गुजरे हैं अनेक-अनेक जन्मों में, वैसे ही उन्हें दिखाई पड़ने लगती हैं, अनेक-अनेक आत्माएं, उसी तरह की पीड़ाओं में गुजरती हुई।
ये सूत्र बोधिसत्व पैदा करने के सूत्र हैं। जो भी अर्हत के मार्ग पर
जा रहा है, उसे उनका स्मरण न हो, यह सूत्र ख्याल में न हो, तो वह लीन हो जाएगा। अनेक बुद्ध खो गए हैं शून्य में सीधे। यह सूत्र सिर्फ इस बात के

लिए गहरी चोट करने के लिए है कि इसका ख्याल बना रहे, तो महायान में जैसे ही साधक ध्यान में करीब पहुंचने लगता है, इस तरह के सूत्र उसका गुरु उसको देने लगता है। चूंकि अब डर का क्षण करीब आ रहा है। अब वह खतरनाक क्षण करीब आ रहा है, जब साधक चुंबक की तरह खींच लिया जाएगा शून्य में और खो जाएगा। ख्याल रखें, जब भी आनंद घटता है, तो कौन रुकता है? एक कदम भी कौन रुकना चाहता है? जब महा-आनंद निकट खड़ा हो, तो आप उसकी तरफ पीठ न कर पाएंगे। तब तो मन होगा कि कूद जाएं, डूब जाएं। उस समय इन सूत्रों का स्मरण बना रहे तो शायद कोई पीठ फेर कर खड़ा हो जाए और लौट कर संसार की तरफ देखे, जो पीछे रह गया है। देखते ही संसार का दूसरा नियम शुरू हो जाएगा करुणा का। लेकिन अगर न देखा, तो वह नियम काम नहीं करेगा। एक बार भी पीछे लौट कर देख लिया तो वासना तिरोहित हो गई, करुणा सक्रिय हो जाएगी, दूसरे नियम का सूत्रपात हो गया।
अर्हत के मार्ग पर, हीनयान के मार्ग पर, ठीक इससे उल्टे सूत्रों का काम होता है, क्योंकि हीनयान के साधक को समझाया जाता है कि जब महाशून्य करीब आए तो तू लौट कर पीछे मत देखना। क्योंकि अगर तूने लौट कर पीछे देखा, तो फिर युगों तक तुझे ठहरना पड़ेगा। ऐसा है आर्य मार्ग एक बार पीछे देख लिया, तो यह जो दृश्य है पीछे, वह हमें पता नहीं है कि वह दृश्य कितना भयंकर है। ऐसा समझें कि अगर मैं आपकी सारी वासनाओं को खोल कर देखूं। आपकी सारी पीड़ाओं को, हृदय के कांटों को, सबको उघाड़ कर रख लूं, तो जो मुझे दिखाई पड़ेगा, एक-एक आदमी एक-एक नरक है। ऊपर से लिपा-पुता है, ह्वट वाष्ड है, तो वह अलग बात है। ऊपर से दीवाल बना रखी है लीप-पोत कर, रंग-रोगन कर रखा है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। अगर हम आदमी को खोल दें तो नरक की मवाद बहनी शुरू हो जाए। अगर हम सारे जगत को जब कोई बोधिसत्व पीछे लौट कर देखता है, तो वहां मवाद का, पीड़ा का, दुख का, घृणा का, हिंसा का राज्य है।
तो हीनयान के साधक को आखिरी क्षण में कहा जाता है कि तू पीछे भर लौट कर
मत देखना, क्योंकि नदी जब गिरने लगती है सागर में, तो एक बार पीछे लौट कर देख लेती है, उस रास्ते को, जिस पर होकर आई है। तू लौट कर पीछे मत देखना, अन्यथा फिर तुझे किनारे पर रह जाना पड़ेगा अनेक-अनेक युगों तक। क्योंकि जो तुझे दिखाई पड़ेगा, वह तुझे, तेरी करुणा को पैदा करेगा।
अपना-अपना सूत्र चुन लेना चाहिए। और उस सूत्र को ध्यानपूर्वक मन में बिठाया जाना चाहिए गहरे-गहरे, ताकि अचेतन में प्रवेश कर जाए। और जब हम द्वार पर खड़े हों, तो हमारे काम आ जाए। अगर लगता हो कि हीनयान ही मार्ग है, लगता हो कि मुझे शून्य में ही चले जाना है, तो फिर इन सूत्रों से बचना चाहिए। और लगता हो कि उचित है यही, क्योंकि मेरा फिर कुछ खोएगा नहीं, अनंतकाल तक अगर रुका रहूं मैं किनारे पर, तो भी मुझे जो पाना था, वह पा लिया है। कुछ मेरा खोता नहीं, लेकिन मैं दूसरे के काम आ सकता हूं। और एक दूसरे करुणा के नियम के सूत्र हाथ में आते ही मैं सहयोगी और सहारा बन जाता हूं।

समाधि के सप्त द्वार
सत्रहवां प्रवचन

प्राणिमात्र के लिए शांति

ध्यान-शिविर, आनंद-शिला, अंबरनाथ; रात्रि, 17 फरवरी

इसके अतिरिक्त, उन पवित्र अभिलेखों का और क्या आशय, जो तुझसे यह कहलवाते हैंः
"ओम्, मेरा विश्वास है कि सभी अर्हत निर्वाण-मार्ग के मधुर फल नहीं चखते हैं।
"ओम्, मेरा विश्वास है कि सभी बुद्ध निर्वाण-धर्म में प्रवेश नहीं करते हैं।"
हां, आर्य-पथ पर अब तू स्रोतापन्न नहीं है, तू एक बोधिसत्व है। नदी पार
की जा चुकी है। सच है कि तू "धर्मकाया" के वस्त्र का अधिकारी हो गया है, लेकिन "संभोग काया" निर्वाणी से बड़ा है। और उससे भी बड़े हैं "निर्माण काया वाले"--कारुणिक बुद्ध
अब ओ बोधिसत्व, अपना सिर झुका और ठीक से सुन। करुणा स्वयं बोलती हैः
जब तक प्राणिमात्र दुख में हैं, क्या तब तक आनंद संभव है? क्या तू अकेला सुरक्षित होगा और सारा संसार रोता रहेगा?
अब तूने वह सुन लिया है, जो कहा गया था।
तू सातवें पद को उपलब्ध होगा और परम-विद्या के द्वार को पार करेगा, लेकिन क्या मात्र इसलिए कि दुख के साथ तेरा गठबंधन हो! यदि तुझे तथागत होना है, तो अपने पूववर्ती के चरण-चिह्नों पर चल और अंतहीन अंत तक अहंकारशून्य रह।
तू संबुद्ध है--अपना पथ चुन।
उस स्निग्ध प्रकाश को देख, जो पूर्वाकाश को प्लावित कर रहा है। उसकी प्रशंसा के प्रतीक के रूप में स्वर्ग और पृथ्वी गलबांही डाले खड़े हैं। और चतुर्मुखी अभिव्यक्त शक्तियों से--दहकती अग्नि और प्रवाहमान जल से, मधु- गंधी मिट्टी और बहती हवाओं से--प्रेम का मधुर संगीत उदभूत हो रहा है।
... जिसमें विजेता स्नान करता है, उस स्वर्ण प्रकाश के गहन व अगम्य चक्रवात से उठ कर समस्त निसर्ग की निशब्द आवाज हजार-हजार रागों में उदघोष करती हैः आनंद मना, ओ म्यालबा के मानवो, एक तीर्थयात्री दूसरे तट से लौट आया है।
एक नये अर्हत का जन्म हुआ है।
प्राणिमात्र के लिए शांति।

आनंद पाने का एक आनंद है, लेकिन फिर उस आनंद को बांटने का और ही आनंद है। जो मिला है, वह जब तक दिया न जाए, तब तक उसकी पूरी प्रतीति, उसका पूरा रस, उसका पूरा स्वाद भी नहीं मिलता। आनंद को बांट कर ही पता चलता है कि क्या मिला है।
जब परम स्थिति के निकट पहुंचता है साधक, शून्य होने का क्षण आ जाता है,
तब जो उसे मिलता है, वह अपार है, असीम है। उसे वह अकेला लेकर डूब सकता है, लेकिन ये सूत्र महायान के कहते हैं कि वह आनंद के अंतिम और मधुर फल से वंचित रह जाएगा। आनंद उसे पूरा मिल जाएगा, फिर भी आनंद के अंतिम मधुर फल से वंचित रह जाएगा। वह मधुर फल है आनंद को बांटने का।
एक आनंद है आनंद को पाने का, और फिर उससे भी विराटतर आनंद है--आनंद को बांटने का।
वह जो बांटना है, वह जो बिखेरना है आनंद के बीजों को, सभी बुद्ध उसे नहीं कर पाते। कुछ बुद्ध उसे कर पाते हैं, कुछ बुद्ध शून्य में खो जाते हैं। यह सूत्र इसी के संबंध में है। हम इसे समझें।
"इसके अतिरिक्त, उन पवित्र अभिलेखों का और क्या आशय है, जो तुझसे यह कहलवाते हैंः

"ओम मेरा विश्वास है कि सभी अर्हत निर्वाण-मार्ग के मधुर फल नहीं चखते हैं।"
सभी अर्हत निर्वाण-मार्ग के मधुर फल नहीं चखते हैं--मधुर फल निर्वाण मार्ग का, उस फल को बांट देने में है, उसे फैला देने में है। अपने लिए पाने के लिए तो संसार में सभी लोग जीते हैं। सांसारिक सुख अपने लिए पाना चाहते हैं। फिर ऐसे ही अध्यात्म के जगत में भी आध्यात्मिक आनंद अपने लिए पाना चाहते हैं। इसमें एक अर्थ में संसार की पुरानी आदत मौजूद है--अपने लिए पाने की। मिल भी जाता है, लेकिन संसार की एक पुरानी आदत जैसे काम करती चली जाती है--मैं ही केंद्र बना रहता हूं। अहंकार मिट गया अब, आत्मा बन गई केंद्र, लेकिन फिर भी मैं केंद्र हूं। झूठा अहंकार खो गया, सच्ची आत्मा मिल गई, फिर भी केंद्र मैं ही हूं। तो संसार का एक सूत्र जैसे काम ही कर रहा है कि मैं केंद्र हूं।
सभी अर्हत, सभी उपलब्ध व्यक्ति लौट कर इस आखिरी सूत्र को नहीं तोड़ देते कि मैं केंद्र नहीं हूं, अब केंद्र दूसरे हो गए। अब यह सारा अस्तित्व केंद्र है, और मैं इस अस्तित्व के लिए समर्पित हूं।
"मेरा विश्वास है कि सभी अर्हत निर्वाण मार्ग के मधुर फल नहीं चखते हैं।"
"ओम मेरा विश्वास है कि सभी बुद्ध निर्वाण-धर्म में प्रवेश नहीं करते हैं।"
सभी बुद्ध वापस लौट कर बांटते नहीं हैं, कोई बुद्ध कभी बांटता है।
जैनों ने उन बुद्धों को तीर्थंकर कहा है, जो बांटते भी हैं। जैनों का शब्द है तीर्थंकर, कीमती है। उस शब्द को समझने से बहुत आसानी होगी। जैनों के चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। ये चौबीस बुद्ध पुरुष--केवल चौबीस ही बुद्ध पुरुष हुए हैं, ऐसा नहीं है, ऐसे बहुत से जिन, बहुत से बुद्ध पुरुष हुए हैं। सम्यकत्व को, सम्यक ज्ञान को, अंतिम ज्ञान को, केवल-ज्ञान को उपलब्ध बहुत से अरिहंत हुए हैं। अर्हत बौद्धों का शब्द है, अरिहंत जैनों का शब्द है। अर्थ एक ही है। लेकिन तीर्थंकर चौबीस हुए हैं। अनंत-अनंत बुद्धों, जिनों, अर्हतों, अरिहंतों में से केवल चौबीस व्यक्ति लौट आए हैं। और उन्हें जो मिला है, उसे उन्होंने बांटने की कोशिश की है।
तीर्थंकर शब्द का अर्थ हैः घाट के बनाने वाले।
एक व्यक्ति जब बुद्ध होता है, तो दूसरे किनारे पहुंच गया। अगर वह लौटकर न आए वापस उस किनारे पर, जहां संसार है, जहां उसके संगी-साथी, मित्र, शिष्य, प्रियजन, जन्मों-जन्मों के संबंधी, अनेक-अनेक यात्राओं में उसके साथ, जहां उसका बड़ा परिवार है दुख में लीन, उस तट पर अगर कोई वापिस न लौटे, तो तीर्थ निर्माण नहीं होता। उस तट पर अगर कोई वापस लौट आए, तो वह घाट को बनाता है। अब उसे अनुभव है--दूसरे पार जाने का रास्ता कैसे जाता है और कहां से उतरें कि हम दूसरे पार सुगमता से पहुंच सकेंगे।
तो इस किनारे पर लौट कर वह घाट का निर्माण करता है, जहां से नाव दूसरे किनारे के लिए जा सके। उस घाट का नाम है तीर्थ। और उसको जो निर्माण करता है, उसका नाम है तीर्थंकर। उस किनारे गया हुआ लौट कर जब इस किनारे ऐसा घाट निर्मित करता है, जिससे दूसरे भी नाव पकड़ लें, और दूसरे तट की ओर चल पड़ें, ऐसा बुद्ध, ऐसा जिन, ऐसा अर्हत तीर्थंकर है। लेकिन सभी बुद्ध ऐसा नहीं करते, अति कठिन काम है।
उस पार का आनंद अवर्णनीय है। उस पार की शांति की कोई तुलना नहीं है।
उस पार महासुख है। उस पार रंचमात्र भी पीड़ा शेष नहीं रह जाती है। वहां से इस तरफ लौटना, अति असंभव कार्य है। दुख से सुख की तरफ जाना हो तो बहुत आसान है, सुख से दुख की तरफ आना बहुत कठिन है। नरक से स्वर्ग को जाने को तो कोई भी तैयार होगा, लेकिन स्वर्ग से कौन नरक की तरफ जाना चाहेगा? उस पार से इस तरफ लौटना अति दुर्गम है। इस तरफ से उस पार जाना ही तो अति दुर्गम है, फिर उस पार से इस पार लौटना तो बहुत ही महादुर्गम है; असंभव जैसा कृत्य है। इसलिए हमने तीर्थंकरों और बुद्धों को इतना सम्मान दिया है। उन्होंने असंभव किया हैः उस परम आनंद के अनुभव के बाद लौटना इस उत्तप्त जगत में, जहां सब जल रहा है और सब नरक है। हमें तो इसके नरक की प्रतीति ज्यादा नहीं

होती; क्योंकि हम इसी में बड़े हुए हैं, इसी में जीए हैं, यह हमारी श्वास-श्वास में भरा है। हम इसे जीवन ही मानते हैं। इस नरक की प्रतीति तो उसे ही होती है इसकी पूर्णता में, जो उस पार की झलक ले आया है।
तो जितना दुख आपको मालूम होता है, आपको पता नहीं, आप सोचते होंगे कि ऐसी भी क्या तकलीफ है। थोड़ी तकलीफ है माना। ऐसी क्या तकलीफ है कि कोई उस तरफ से लौटना ही न चाहे। हमें अंदाज नहीं है।
गरीब आदमी को जो तकलीफ है, अगर अमीर आदमी गरीब की जगह खड़ा हो, तो उसे जो तकलीफ पता चलेगी, वह गरीब को कभी पता नहीं चलेगी। वह तो अमीर को जब गरीब हो जाए, तब जो दुख पता चलेगा, वह उसी झोपड़े में रहनेवाले गरीब को बिल्कुल नहीं पता चलता। गरीब उसका आदी है। उसके पास तुलना का उपाय भी नहीं है। किससे तोले, किससे कहे कि यह दुख है, किस आधार पर उसको दुख कहे? यही जीवन है। कठिन है। लेकिन जिसने सुख जाना हो, उसके लिए महादुख है।
एक बार जिसने उस पार की झलक पा ली हो, उसके लिए इस पार का जगत "म्यालबा" है। यह तिब्बती शब्द है। "म्यालबा" का अर्थ है महा नरक। साधारण नरक नहीं, महानरक। इस महानरक की तरफ जो लौटता है, उसको तीर्थंकर, बोधिसत्व कहते हैं। स्वाभाविक है, उसको इतना सम्मान दिया गया।
"मेरा विश्वास है कि सभी बुद्ध निर्वाण धर्म में प्रवेश नहीं करते हैं।"
"हां, आर्य-पथ पर अब तू स्रोतापन्न नहीं है, तू एक बोधिसत्व है। नदी पार की जा चुकी है। सच है कि तू "धर्मकाया" के वस्त्र का अधिकारी हो गया है, लेकिन "संभोगकाया" निर्वाणी से बड़ा है। और उससे भी बड़े हैं "निर्माणकाया" वाले कारुणिक बुद्ध।"
तीन तरह की कायाओं का विचार बुद्ध चिंतना में है। तीन काया के शब्द ठीक से समझ लेना चाहिए।
एक शब्द है धर्मकाया। अभी हम एक शरीर में हैं, यह है पार्थिव स्थूल काया। इस स्थूल काया के बिना संसार में नहीं हुआ जा सकता है। संसार में होने के लिए यह शरीर जरूरी है। मोक्ष में, महा-शून्य में जब हम प्रवेश करते हैं, तो जो हमें घेरे होती है देह, उसका नाम है धर्मकाया। वह कोई शरीर नहीं है, सिर्फ प्रतीक है। जब महाशून्य में कोई प्रवेश करता है तो उसके आस-पास जो आभा होती है, जो अस्तित्व की श्वास होती है उसका नाम है धर्मकाया। धर्मकाया इसलिए कि वह हमारा स्वरूप है, धर्म है। उसे हमसे छीना नहीं
जा सकता है। उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। उसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है। वह हम ही हैं। वह हमारी आत्मा है। वह हमारा मौलिक अस्तित्व है, जिसको हम स्वभाव कहते हैं, वह आत्यंतिक स्वभाव है। उसमें से रत्ती भर अलग नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह हम ही हैं। जो भी अलग किया जा सकता है, वह स्वभाव नहीं है। स्वभाव का अर्थ है जिससे हम अलग हो सकते हैं और फिर भी हो सकते हैं तो वह स्वभाव नहीं है। स्वभाव तब है, जब जिससे हम अलग ही न हो सकें। अलग करने का उपाय भी न हो, तब स्वभाव है।
धर्मकाया का अर्थ हैः आत्यंतिक स्वभाव।
जब कोई शून्य में प्रवेश करता है, तो उससे सब छिन जाता है। जो भी पराया था, विजातीय था, फारेन था, जो उसका अपना नहीं था, वह सब छिन जाता है। बच रहता वही है, जो उसका
शुद्ध अस्तित्व है, प्योर एक्झिस्टेंस। उसका नाम है, धर्मकाया। उसके नीचे की काया का नाम है, संभोगकाया। और उससे भी नीचे की काया का नाम है, निर्वाणकाया।
धर्मकाया मिली कि व्यक्ति शून्य हुआ। धर्मकाया आखिरी है, फिर लौटना संभव नहीं है; क्योंकि लौटने के सारे साधन खो गए। लौटने के लिए वाहन चाहिए।
उससे नीचे के तल पर है संभोग काया। संभोग काया वैसी ही स्थिति है-- मध्य की। संभोग काया में खड़ा हुआ व्यक्ति धर्मकाया की सारी स्थिति को देख पाता है। एक कदम आगे धर्मकाया है, आखिरी है, वहां अंत होता है अस्तित्व का। वहां महा-शून्य और निर्वाण शुरू होता है। उसके बाद लौटना मुश्किल है।
संभोग-काया वह क्षण है, जहां से व्यक्ति देख पाता है कि अगर एक कदम और आगे

बढ़ा, तो फिर लौट नहीं सकूंगा। यहां से झलक मिलती है। यहां से आगे का दिखाई पड़ता है, वह महा-शून्य, स्वभाव का अनंत विस्तार, ब्रह्म-निर्वाण। वह यहां से दिखाई पड़ता है। लेकिन अगर साधक एक कदम और आगे बढ़ता है, तो वह उस निर्वाण के साथ एक हो जाएगा। आखिरी काया है, संभोगकाया। जो पराई है, वह छूट गई, तो फिर लौटा नहीं जा सकता।
जिनको बोधिसत्व होना है, उनको संभोग-काया के क्षण में ही ठहर जाना पड़ता है। जहां से दिखाई पड़ता है महा-शून्य। लेकिन अभी अंतर है, अभी स्वयं महा-शून्य नहीं हो गए हैं। अभी महा-शून्य भी प्रतीत होता है, दिखाई पड़ता है, उसका दर्शन होता है। अभी भी हम द्रष्टा हैं। अभी भी थोड़ी सी बारीक दूरी है। इतनी दूरी अगर बचाए रखें तो लौटना हो सकता है।
संभोग-काया से और भी पहले है एक कदम काया का, वह है निर्वाण-काया। संभोग-काया से कोई संसार में नहीं लौट सकता। अकेली संभोग-काया सिर्फ अंतराल है बीच का। जब कोई व्यक्ति निर्वाण काया में होता है, तो ही संसार के काम आ सकता है।
निर्वाण-काया, ऐसा समझ लें हम, संसार और निर्वाण के बीच का संबंध-सेतु है। निर्वाण-काया के माध्यम से कोई बुद्ध, अगर चाहे, तो जगत के उपकार में, करुणा के जगत में, जगाने में लग सकता है। निर्वाण-काया माध्यम है, जगत और निर्वाण के बीच। निर्वाण-काया और धर्म-काया के बीच में है संभोग-काया। अगर कोई निर्वाण-काया में ही रुका रहे, तो उसे धर्म-काया का अनुभव नहीं हो पाता, महाशून्य का अनुभव नहीं हो पाता--दूर है उसके एक कदम आगे बढ़कर संभोगकाया है।
संभोग-काया इसे इसलिए नाम दिया है कि स्वयं के और उस अनंत के बीच संभोग का अनुभव होता है। थोड़ा सा फासला रह गया है, अभी बिल्कुल एक नहीं हो गए हैं।
ऐसा समझें, जब एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से मिलता है गहन--दो तो बने रहते हैं, पर एक क्षण को ऐसा लगता है कि दो नहीं रहे, एक ही रह गया। वह है संभोग का क्षण। फिर भी दो तो रहते ही हैं। ऐसा लगता है एक क्षण को प्रतीति होती है--एक हलकी सी झलक, हवा का एक ताजा झोंका और ऐसा लगता है कि दो खो गए और एक तरंग हो गई। दो तरंगें मिल गई, दो गीत अपने में एक-दूसरे में डूब गए, दो नदियां एक-दूसरे में घुलमिल गई। एक क्षण को ऐसी जो प्रतीति होती है, उसे हम संभोग कहते हैं। इस अवस्था में संभोग-काया। इस काया को इसलिए कहा है कि इस काया में खड़े हुए व्यक्ति को, उस महा-शून्य के साथ क्षण भर को एक हो जाने का अनुभव होता है, एक हो नहीं जाता। एक हो जाए, तो फिर लौटना नहीं है। एक नहीं होता है, इसलिए लौट सकता है। संभोग-काया आखिरी पड़ाव है। उसके बाद लौटना नहीं है। संभोग-काया में जो सम्हल गया, जहां संभोग का अनुभव हुआ अस्तित्व के साथ--दूरी कायम रही, लेकिन मिलन हो गया। जैसे प्रेमी और प्रेयसी का मिलन। यहीं से सावधान होकर कोई नीचे उतर आए तो--तो निर्वाण काया है। अभी नीचे उतरा जा सकता है। अभी संबंध नहीं टूट गए हैं। निर्वाण-काया में रह कर ही कोई बोधि, बोधिसत्व रह पाता है।
तो यह सूत्र बहुत अदभुत है। यह कहता है कि नदी पार की जा चुकी है। और
सच है कि तू धर्म-काया के वस्त्र का अधिकारी हो गया। अब तू हकदार है महा- शून्य के साथ एक हो जाने के लिए, लेकिन संभोग-काया निर्वाणी से बड़ा है। तू रुक, निर्वाण में डूब जाना बिल्कुल सहज है, सभी डूब जाते हैं, उससे भी बड़ा कृत्य है कि तू संभोग-काया में रुक जाए। जहां एक होने के बिल्कुल करीब आ गया, वहां पीठ मोड़ ले, और लौट आए।
"और उससे भी बड़े हैं निर्वाण-काया में रहने वाले कारुणिक बुद्ध।"
लेकिन संभोग-काया में रह जाए तो संसार का कोई उपयोग नहीं है। उससे भी नीचे उतर आ, और जगत के आखिरी संबंध का जो सेतु है, उसको बना ले--निर्वाण-काया। और उस सेतु के माध्यम से जगत के प्रति करुणा से भरपूर कुछ करने में लग।
"अब ओ बोधिसत्व, अपना सिर झुका और ठीक से सुन। करुणा स्वयं बोलती हैः
जब तक प्राणिमात्र दुख में है, क्या तब तक आनंद संभव है?"

ये बौद्ध महायान के सार सूत्र हैं और बड़े गहन हैं। यह सूत्र कहता है
कि जब तक प्राणिमात्र दुख में हैं, तब तक क्या आनंद संभव है? तेरा दुख मिट गया, माना, लेकिन जब तक इस जगत में दुख है, क्या सच में ही तेरा दुख मिट गया? क्या तुझे इस जगत का दुख बिल्कुल स्पर्श नहीं करेगा? क्या इस जगत का दुख जिसका कि तू एक हिस्सा है, इस अस्तित्व की पीड़ा जिसका कि तू एक अंग है, तुझे नहीं छुएगी? और इस पीड़ा की तरंगें तेरे हृदय में भी प्रवेश नहीं कर जाएंगी? क्या ये सच में ही संभव है, इस अस्तित्व में दुख बना रहे और तू आनंद को उपलब्ध हो जाए? तूने अपना आनंद पा लिया, पर और हैं, बहुत हैं, जो दुखी हैं, क्या यह दुख बिल्कुल ही तुझे विस्मृत हो जाएगा? क्या तू भूल ही जाएगा कि अस्तित्व में दुख अभी शेष है--यह प्रश्न है।
यह प्रश्न है कि जब तक प्राणिमात्र दुख में हैं, क्या तब तक आनंद संभव है?
"क्या तू अकेला सुरक्षित होगा, और सारा संसार रोता रहेगा?
"अब तूने वह सुन लिया है जो कहा गया था।
"तू सातवें पद को उपलब्ध होगा और परमविद्या के द्वार को पार करेगा, लेकिन क्या मात्र इसलिए कि दुख के साथ तेरा गठबंधन न हो!"
क्या सारी यात्रा बस इतनी ही थी कि दुख से तेरा संबंध टूट जाए?
"यदि तुझे तथागत होना है, तो अपने पूववर्ती के चरण-चिह्नों पर चल और अंतहीन अंत तक अहंकार शून्य रह।"
"तू संबुद्ध है" अपना पथ चुन।" अब तू सिर्फ खोजने की बात मत सोच। बहुत हैं, जो दुखी हैं, उनका भी स्मरण कर। और जैसे तुझसे पहले तथागत गौतम बुद्ध ने स्वयं को रोक लिया--तब तक के लिए, जब तक यह अंतहीन संसार आनंद को उपलब्ध नहीं हो जाता, ऐसा महा-संकल्प लिया--ऐसा तू भी महा-संकल्प ले।"
"अब तू संबुद्ध है"--अब तू जाग गया।"
"--अपना पथ चुन।"
अब तू सिर्फ आनंद में आकर्षित होकर मत डूब।
इसे हम ऐसा भी समझ सकते हैं, महायान की दृष्टि से ऐसा है ही कि यह आखिरी वासना है कि मैं आनंद में डूब जाऊं। मेरा आनंद मिल गया, बात समाप्त हो गई।
इसे भी तोड़ दे। मेरा भी क्या? जब तक दुख है, तब तक मेरे-तेरे की बात ही
मत कर। जब तक आनंद ही आनंद न हो जाए, और कोई भी दुख न रह जाए, तब तक तू रुक। और तू रुक सकता है, तेरी सामर्थ्य है। क्योंकि तू संबुद्ध है, जागा हुआ है, नियम के बाहर हो गया। अब तेरे ऊपर कोई भी जोर-जबरदस्ती नहीं। अब तू स्वयं भगवान है। अब तो कोई कारण नहीं जो तुझे धक्का दे रहा हो कि तू ऐसा कर, वैसा कर। अब तू जो करना चाहे, कर सकता है। इस क्षण में तुझे इतनी बड़ी सत्ता और शक्ति मिली है कि तू जो चाहे कर सकता है। इसका उपयोग कर।
या कि सिर्फ इसका इतना ही उपयोग करेगा कि तेरा दुख मिट जाए? तेरा दुख मिट गया, बस बात समाप्त हो गई?
"उस स्निग्ध प्रकाश को देख, जो पूर्वाकाश को प्लावित कर रहा है। उसकी प्रशंसा के प्रतीक के रूप में स्वर्ग और पृथ्वी गलबांही डाले खड़े हैं।" एक झलक उस स्थिति की है कि अगर तू लौट आए और पीठ फेर ले इस महाआनंद की तरफ और ध्यान करे उनका, जो दुख में हैं। यह उसकी एक झलक है। उस स्निग्ध प्रकाश को देख, जो पूर्वाकाश को प्लावित कर रहा है।
अगर तू वापस लौट आए, तो सारा पूरब का आकाश प्रकाश से भर जाएगा, तेरे लौटते ही। जहां सदा से अंधेरा है, वहां प्रकाश का एक सूर्य उदय होगा।
"उस स्निग्ध प्रकाश को देख, जो पूर्वाकाश को प्लावित कर रहा है। उसकी प्रशंसा के प्रतीक के रूप में स्वर्ग और पृथ्वी गलबांही डाले खड़े हैं।" तेरा स्वागत करेगी पृथ्वी, तेरा स्वागत करेगा स्वर्ग। गलबाहें डाले खड़े हैं कि तू आ रहा है।
"और चतुर्मुखी अभिव्यक्त शक्तियों से--दहकती अग्नि और प्रवाहमान जल से, मधु-गंधी मिट्टी और बहती हवाओं से--प्रेम का मधुर संगीत उदभूत हो रहा है।"

देख कि तू वापस लौट रहा है उस जगत में, जहां दुख है, अंधकार है। जैसे पूरब में फिर से आध्यात्मिक अर्थों में एक सूरज का जन्म हो रहा है। स्वर्ग और पृथ्वी गलबांही डाले तेरा स्वागत कर रहे हैं। दहकती अग्नि और प्रवाहमान जल से, मधुगंधी मिट्टी और बहती हवाओं से, तेरे लिए प्रेम का संगीत उदभूत हो रहा है।
"सुन जिसमें विजेता स्नान करता है, उस स्वर्ण प्रकाश के गहन व अगम्य चक्रवात से उठ कर समस्त निसर्ग की निःशब्द आवाज हजार-हजार रागों में उदघोष करती हैः आनंद मना, म्यालबा के मानवो, एक तीर्थयात्री दूसरे तट से वापस लौट आया है।"
हे महानरक के निवासियोम्यालबा का अर्थ है महानरक। हमारी पृथ्वी म्यालबा है।
"सुन जिसमें विजेता स्नान करता है, उस स्वर्ण प्रकाश के गहन व अगम्य चक्रवात से उठ कर समस्त निसर्ग की निःशब्द आवाज हजार-हजार रागों में उदघोष करती हैः आनंद मना, ओ म्यालबा के मानवो, एक तीर्थयात्री दूसरे तट से लौट आया है।"
"एक नये अर्हत," एक नये बोधिसत्व, एक नये बुद्ध का जन्म हुआ है। "प्राणिमात्र के लिए शांति।"
आदमी है दुख में, सुख खोजता है। जितना सुख खोजता है, उतना दुखी होता जाता है। जब बोध जगता है कि मेरे सुख की खोज ही मेरे दुख का कारण है, तो साधना का जन्म होता है। तब आदमी सुख नहीं खोजता, दुख से नहीं बचना चाहता, सुख-दुख दोनों से उठना चाहता है।
सांसारिक आदमी है वह, जो दुख में है, और सुख खोजता है।
संन्यासी है वह, जो समझ गया कि दुख से बचने और सुख को खोजने में ही दुख है।
तो संन्यासी है वह, जो सुख और दुख से ऊपर उठने का रास्ता, मार्ग खोजता है।
सिद्ध है वह, जो पहुंच गया उस जगह, जहां सुख और दुख के पार हो गया।
सुख दुख के पार होते ही आनंद घटित हो जाता है।
सिद्धत्व आनंद की अवस्था है।
बोधिसत्व है वह, जो इस आनंद को पाकर खो नहीं जाता, चुप नहीं हो जाता, बैठा नहीं रहता; वरन जो दुख में हैं, उनके लिए वापस लौट आता है।
सुना है मैंने कि जापान के एक कारागृह में एक अनूठी घटना वर्षों तक घटती रही। एक फकीर बार-बार चोरी करता और सजा पाता रहता। लोग चकित थे। फकीर ऐसा साधु था असाधारण कि कोई भरोसा ही न करता था कि वह साधु और कभी चोरी करेगा। गुण उसके ऐसे थे बुद्धत्व के और चोरी की बात का कहीं तालमेल न था। और चोरी भी बहुत छोटी-मोटी! और यह जिंदगी भर चला! बूढ़ा हो गया तो उसके शिष्यों ने कहा कि अब तो बंद करो यह उपद्रव। हमारी कल्पना में भी नहीं आता कि किसलिए यह चोरी करते हो! हम मान भी नहीं सकते हैं कि तुम चोरी करते हो; लेकिन सब गवाह हो जाते हैं, सबूत हो जाते हैं, और तुम्हारी सजा हो जाती है। और तुम्हारे पीछे हम भी बदनाम हो जाते हैं कि तुम किसके शिष्य हो, वह आदमी फिर जेल में चला गया। और तुम अब आखिरी बार छूट आए हो, उम्र भी कम बची है, स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, अब तुम कृपा करके यह उपद्रव बंद करो। और तुम्हें जो चाहिए हम सदा देने को तैयार हैं; चोरी की तुम्हें जरूरत नहीं है। और तुम चोरी भी ऐसी छोटी-छोटी करते हो कि भरोसा नहीं आता कि क्या करते हो!
तो उसने कहा कि जिंदगी भर मैंने कहा नहीं, अब तुमसे कहता हूं--चोरी मैं सिर्फ इसलिए करता हूं, ताकि भीतर जाकर चोरों को बदल सकूं। उन तक पहुंचने का और कोई उपाय नहीं है। वहां बहुत चोर दुखी हो रहे हैं। वहां बहुत अपराधी और पापी हैं। उनको कौन बदले? और कैसे बदले? और अगर मैं गुरु की तरह जाकर उनको उपदेश दूं, तो उनको नहीं बदल सकता।
क्योंकि जो अपना नहीं है, उसके प्रति कोई सम्मान पैदा नहीं होता है।
जो अपने ही जैसा नहीं होता है, उससे कोई संबंध निर्मित नहीं होते हैं। एक गुरु की तरह, एक साधु की तरह जाकर मैं खड़ा हो जाऊं, तो उनके मन में मेरे

प्रति एक फासला और एक दूरी रहती है कि मैं साधु हूं और वह चोर है। शायद मेरी मौजूदगी उनकी निंदा भी बन जाती है। शायद मेरे कारण उनको पीड़ा और दुख भी हो। शायद अकारण मैं उनकी पीड़ा का कारण भी बन जाऊं। तो मैं चोर होकर ही जाना पसंद करता हूं। मैं फिर उनके जैसा हो गया। उनकी ही काल-कोठरियों में बंद, उनकी ही तरह जंजीर मेरे हाथ में, मैं भी एक चोर, वे भी एक चोर। फिर हम एक-दूसरे की भाषा समझ सकते हैं। और फिर उनकी ही भाषा में मैं उनको बदलने की कोशिश करता हूं। फिर तुम मुझे रोकोगे। जब तक मैं हूं, मेरा यही काम है कि वे जो पीड़ा और पाप से घिरे हैं, उन्हें बाहर लाऊं। बोधिसत्व उस किनारे से ऐसा ही व्यक्ति है लौटता हुआ इस किनारे पर। और अगर उसे यहां लौटना है, और इस किनारे के लोगों को सहायता पहुंचानी है, तो उसे इस किनारे की कुछ भाषा कायम करनी होगी। इस किनारे के लोगों से कुछ संबंध स्थापित करना होगा। निर्वाण-काया वही संबंध है इस जगत के लोगों से। और इस जगत के लोगों की भाषा क्या है? इस जगत के लोगों की भाषा वासना है।
तो बुद्ध को अगर बोधिसत्व बनना है, तो उसे अपनी करुणा को वासना बनाना पड़ेगा। उसे यह प्रगाढ़ वासना करनी पड़ेगी कि मैं दूसरों को सहयोग दे सकूं, साथ दे सकूं, मार्गदर्शन दे सकूं।
जैनों में कहा जाता है कि तीर्थंकर वही आदमी होता है, जिसने तीर्थंकर कर्म का बंधन किया हो। इसको भी कर्म कहते हैं। यह भी एक पाप है। क्योंकि दूसरों को जगाने की चेष्टा भी, दूसरों को बदलने की चेष्टा भी, दूसरों को रूपांतरित करने की चेष्टा भी, एक चेष्टा तो है, और एक वासना तो है। तो जिसने दूसरों को जगाने की वासना को बचा लिया हो, वही तीर्थंकर बन सकता है। इतनी तो उसे वासना रखनी ही पड़ेगी कि मैं दूसरों के काम आ जाऊं। इतनी वासना का धागा बना रहे, वही वासना निर्वाण-काया है। तो फिर वह हमसे जुड़ा है बहुत हल्के धागों से। कभी भी टूट सकता है धागा। कोई मजबूत जंजीर नहीं है। और फिर अपने ही हाथ से बंधा है। अगर इस तट पर किसी को रहना है, तो इस तट के साथ उसको कुछ खूंटियां, कुछ सूत्र, कुछ धागे, कुछ रस्सियां बांधनी पड़ेंगी। मैंने सुना है कि रामकृष्ण को भोजन से अति लगाव था, अतिशय। ऐसा ज्यादा
था कि रामकृष्ण के आसपास के लोग चिंतित हो जाते थे। और शारदा तो बहुत बार रामकृष्ण को झिड़कती थी कि यह बंद करो बच्चों जैसा काम। क्योंकि ब्रह्मचर्चा चलती होती और अचानक रामकृष्ण बीच से उठकर किचन में, चौके में पहुंच जाते, और वे कहते, क्या बना है? आज क्या बन रहा है? शारदा कहती कि ब्रह्मचर्चा छोड़ कर यहां चौके में आकर ऐसे प्रश्न उठाना आपको शोभा नहीं देता परमहंस देव। शिष्य भी समझाते, लोगों में ऐसी खबर पहुंचती है, तो लोग कहते हैं, यह रामकृष्ण कैसा ज्ञानी है? इनको भोजन की इतनी फिकर! अज्ञानियों को भी इतनी फिकर नहीं। थाली लेकर शारदा आती तो उठ कर खड़े होकर वे थाली देखने लगते, उनके चेहरे पर बड़े आनंद का भाव थाली को देख कर आ जाता! एक दिन कोई नहीं था। शारदा तो कई बार झिड़क चुकी थी। उस दिन बहुत नाराज
हो गई, और उसने कहा कि समझ के बाहर है यह बात, तुममें और भोजन के प्रति ऐसा रस। रामकृष्ण ने कहा कि आज तक छिपाए रखा कि कहने से तुम्हें कठिनाई होगी और दुख होगा। तुम नहीं मानती हो और तुम उलझती जाती हो, तो कहे देता हूंः ध्यान रखना जब तक मैं भोजन में रस ले रहा हूं, तभी तक मैं इस शरीर में हूं, जिस दिन भोजन में रस न लूं, तू समझ जाना और खबर कर देना कि तीन दिन के भीतर ही मेरा शरीर छूट जाएगा।
फिर भी किसी ने बहुत गंभीरता से न लिया, क्योंकि हम बहुत बाद में बातें गंभीरता से लेते हैं। तब शारदा ने भी सुना-अनसुना कर दिया। औरों ने भी सुना, बात आई-गई हो गई। फिर एक दिन तब याद आई वर्षों बाद, शारदा थाली लेकर आई। रामकृष्ण लेटे थे--तो उन्होंने करवट बदल ली दूसरी तरफ। यह असंभव था। भोजन में उनका रस ऐसा था कि वह करवट बदल लें और पीठ कर लें, यह असंभव था। अचानक शारदा को याद आया, हाथ से थाली छूट कर गिर पड़ी। रोने लगी, उसने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं, आपने पीठ क्यों फेर ली? रामकृष्ण ने कहा कि तुम्हीं तो सब सदा कहते थे, अब आज वही कर रहा हूं, जो तुम्हारी आकांक्षा थी। ठीक तीन दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई।

शरीर में अगर बांध कर रखना हो किसी बोधिसत्व को, तो शरीर की कोई वासना पकड़नी होगी, नहीं तो वह तत्क्षण छूट जाएगा। पर यह वासना पकड़ी जा रही है, इसमें भी वह मालिक है। यह वासना उसे नहीं पकड़ रही है। एक तो ऐसा है कि किनारे की खूंटी आपको पकड़े हुए है, और आप खूंटी के बस में हैं। और एक ऐसा है कि आपने खूंटी किनारे की पकड़ रखी है अपने हाथ से; क्योंकि आप धारा में बह जाना नहीं चाहते, इस किनारे पर कुछ काम आना चाहते हैं। जिस दिन चाहें, उस दिन, उस क्षण छोड़ सकते हैं। खूंटी की कोई पकड़ आप पर नहीं है, आप ही खूंटी को पकड़े हुए हैं।
भोजन में आपका भी रस है। आप यह मत सोचना कि आप भी रामकृष्ण जैसे हैं। रामकृष्ण और आपके भोजन के रस में भी फर्क है। यह प्रयोजित है, जाना-माना है, आयोजित है। रामकृष्ण जान रहे हैं कि इस शरीर को अगर पकड़े रखना है कि कुछ देर काम आ जाए, तो इस शरीर की भाषा में कुछ सूत्र, सेतु, मार्ग पकड़ रखना पड़ेंगे। यह मैंने उदाहरण के लिए कहा।
उस क्षण में जब कोई शून्य में खोने के करीब आ गया, तब अगर उसे जगत के साथ कोई संबंध रखना है, तो सिर्फ करुणा की वासना में अपने को रोक रखना पड़ेगा। यह सूत्र करुणा की वासना जगाने के लिए है।
अंत होता है इस पुस्तक का--"प्राणिमात्र के लिए शांति।"
बुद्ध ने निरंतर बार-बार कहा है अपने लिए शांति मत मांगना, प्राणि- मात्र के लिए मांगना। अपने लिए आनंद मत मांगना, प्राणिमात्र के लिए आनंद मांगना। अपने लिए प्रार्थना मत करना, प्राणिमात्र के लिए प्रार्थना करना। क्यों? क्योंकि इन्हीं प्रार्थनाओं, इन्हीं मांगों, इन्हीं आकांक्षाओं-अभीप्साओं से तुम्हारे भीतर वह सूत्र निर्मित होता जाएगा, जो अंतिम क्षण में, जब तुम शून्य में खोने लगोगे, तो तुम्हें वापिस खींच सकेगा।
प्राणिमात्र का स्मरण--इसे पहले से ही बुद्ध को मानने वाला साधक प्रार्थना करता है, प्रार्थना के बाद कहता है, प्राणिमात्र को शांति। जो मुझे मिला, वह प्राणिमात्र में बंट जाए; जो मैंने पाया वह अकेला मेरा न हो, सबका हो जाए। यह वह निरंतर कहता जाता है, ताकि इसकी गहन-रेखा बन जाती है भीतर। और जिस दिन महा-आनंद भी आता है, तब तत्क्षण इस पुरानी गहन-रेखा, लीक के कारण, उसके मन में भाव उदय होता है--जो मुझे मिला है, वह सब प्राणिमात्र में बंट जाए। जो शांति मुझे मिली है, वह सबकी हो जाए। जो आनंद मुझे मिला है, वह सबका हो जाए। जो शांति मुझे मिली है, वह सबकी हो जाए। जो आनंद मुझे मिला है, वह सबका हो जाए। यह स्मरण आते ही वह लौटकर जगत की तरफ देखता है, और सेतु निर्मित हो जाता है। उस सेतु का नाम है निर्वाण-काया।
अंतिम दिन है, जाने के पहले कुछ बातें और भी मैं आपसे कहना चाहूंगा।
एक, जो कि आप यहां कर रहे थे, वह केवल प्रयोग है, ताकि ख्याल में आ सके
कि क्या करना है। इतना मात्र कर लेने से कुछ हल न हो जाएगा, उसे जारी रखना पड़ेगा। तो लौट कर जारी रखें। अन्यथा मैं देखता हूं कि आप शिविर में कर लेते हैं, शांति मिलती है, सहजता आती है, निर्दोष थोड़ी सी झलक आती है, एक ताजी हवा का झोंका आता है, और अच्छा लगता है। फिर वापस घर लौट कर आप पुरानी आदतों में जीने लगते हैं। फिर कभी किसी शिविर में आ जाएंगे, फिर कर लेंगे। ऐसे बार-बार करेंगे और बार-बार खोते रहेंगे, तो बहुत गहरे परिणाम न होंगे। इसे तो खोदते ही जाना है। यह कुआं इतना गहरा है कि इसे अगर खोदा दो-चार दिन, फिर छोड़ दिया चार-छह महीने, फिर कूड़ा-करकट भर कर जमीन पुरानी हो जाएगी, फिर सतह वही हो जाएगी। फिर खोद लिया दो-चार हाथ, फिर छोड़ दिया। तो कुआं कभी भी न खुदेगा और वह जल जिसकी तलाश है, कभी न मिलेगा। इसे खोदते ही जाएं। बार-बार अलग जगह खोदेंगे, तो श्रम भी होगा, समय भी नष्ट होगा, शक्ति भी जाएगी, और परिणाम भी न होंगे।
रूमी ने एक दिन अपने शिष्यों को एक दफा कहा कि तुम मेरे साथ आओ, तुम कैसे हो, मैं तुम्हें बताता हूं। वह अपने शिष्यों को ले गया एक खेत में, वहां आठ बड़े-बड़े गड्ढे खुदे थे, सारा खेत खराब हो गया था। रूमी ने कहा, देखो इन गड्ढों को। यह किसान पागल है, यह कुआं खोदना चाहता है, यह चार-आठ हाथ गड्ढा खोदता है, फिर यह सोच कर कि यहां पानी नहीं निकलता, दूसरा खोदता है।

चार हाथ, आठ हाथ खोद कर, सोच कर कि यहां पानी नहीं निकलता, यह आठ गड्ढे खोद चुका है। पूरा खेत भी खराब हो गया, अभी कुआं नहीं बना। अगर यह एक गड्ढे पर इतनी मेहनत करता, जो इसने आठ गड्ढों पर की है, तो पानी निश्चित मिल गया होता।
तो एक दफा संकल्प करें, एक जगह सतत खोदते चले जाएं, तो ही आपको जीवन के जल-स्रोत मिलेंगे। यहां जो सीखा है उसे प्रयोग करें, ताकि दूसरे शिविरों में आप आएं, तो वहीं से शुरू न करना पड़े, जहां से पहले शिविर में शुरू किया था। आप कुछ खोद कर लाएं, तो फिर हम और गहरी खुदाई कर सकें। और हर बार शिविर आपके लिए नए द्वार खोल सकता है, लेकिन आप पुराने द्वार पर काम करते रहे हों, तभी।
तो पहली बात तो यह स्मरण रखें कि ध्यान एक भीतरी खुदाई है, जिसको सतत जारी रखना जरूरी है।
दूसरी बात ध्यान रखेंः
यहां तो आसान है कर लेना। घर पर भय लगेगा, पड़ोस है, आसपास लोग हैं, हंसेंगे, चिल्लाएंगे, रोएंगे, तो क्या कहेंगे लोग? एक बात सदा ख्याल रखें कि वैसे भी कोई आपके बाबत अच्छा कहता नहीं है। इस भ्रांति में आप रहना ही मत कि लोग आपके संबंध में बहुत अच्छा सोच रहे हैं। उससे ही यह तकलीफ शुरू होती है कि कहीं अपनी अच्छी प्रतिमा न गिर जाए। वह कहीं है ही नहीं। आप सोचें, आपके मन में पड़ोसी की अच्छी प्रतिमा है? आपके मन में किसकी अच्छी प्रतिमा है? किसके मन में आपकी होनेवाली है? यह नाहक की भ्रांति है, इसमें पड़ना ही मत।
और अच्छा यही होगा कि घर में लोगों को बता देना कि ऐसा प्रयोग मैं कर रहा हूं, चिंता लेने की जरूरत नहीं है। अगर आसान हो, तो पास-पड़ोस में भी जाकर बता आना कि ऐसा मैं एक प्रयोग कर रहा हूं, थोड़ी आवाज करूं, चिल्लाऊं तो आप बहुत चिंतित मत होना। तो आप हलके होकर कर सकेंगे प्रयोग। लोग जानते हैं, दो-चार दिन में समझ जाते हैं कि ठीक है, जिन लोगों से आपको डर है, अगर आप प्रयोग करते रहे उनका भय छोड़ कर, तो महीने दो महीने के भीतर वे आपसे पूछेंगे कि हमें भी सिखा दें। क्योंकि दो महीने में आपकी बदलाहट हो जाएगी। अभी आपकी कोई प्रतिमा नहीं है लोगों के पास, लेकिन अगर आपने ध्यान किया, तो निश्चित आपकी प्रतिमा होगी। क्योंकि आपकी शांति की खबर मिलनी शुरू हो जाती है। फूल खिलते हैं, छिप नहीं सकते। सूरज निकलता है, तो अंधे तक को भी उसका उत्ताप पता चलने लगता है, न भी दिखाई पड़े तो भी--तो भी पक्षियों के गीत कहने लगते हैं कि सुबह हो गई।
आप ध्यान में गहरे उतरेंगे, तो आपकी शांति, आपका आनंद, आपका प्रेम, आपकी करुणा सब बढ़ेगी। आपका क्रोध, आपकी घृणा, आपकी ईर्ष्या घटेगी। आप अपने पड़ोस में, अपने परिवार में, अपने संबंधियों के बीच, नये आदमी बन जाएंगे। मगर अगर अभी से आप डरते हैं कि कहीं कोई यह न समझे कि मैं पागल हूं, कहीं कोई यह न समझे कि कहीं कोई वैसा न समझ ले--इस भ्रांति को छोड़ दें।
किसी को एक तो चिंता नहीं है बहुत ज्यादा आपके संबंध में सोचने की। कभी आपने ख्याल किया, सब अपने-अपने संबंध में सोचते हैं। किसको फुर्सत है कि आपके संबंध में सोचे? आप किसके संबंध में कितना सोचते हैं? और अगर पड़ोस में कोई चिल्लाने लगे जोरों से, तो एक दफा सोचेंगे, शायद दिमाग खराब हो गया है। फिर फुरसत है कि उस पर लगे रहें? लेकिन अगर यह चिल्लाने वाला आदमी आपको दूसरे दिन इसकी शकल में फर्क दिखने ले, साल-छह महीने के भीतर यह आदमी एक शांति का स्रोत बन जाए, तो आप ही इससे पूछेंगे कि वह तरकीब क्या है चिल्लाने की, जिससे तुम शांत हो गए हो? तब जल्दी न करना, प्रतीक्षा करना, अपने में परिवर्तन की। तभी आपकी कोई प्रतिमा निर्मित होती है। अभी कोई प्रतिमा नहीं है, अभी आपको ख्याल है।
तीसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है। घर पर आप अकेले होंगे, लेकिन अकेले होने की जरूरत नहीं। जिस भांति आप यहां मेरे सामने बैठ कर ध्यान कर रहे हैं, अगर इसी भांति आपने ख्याल रख लिया कि मैं सामने बैठा हूं और आप ध्यान कर रहे हैं, तो आप मेरी मौजूदगी इतनी ही पाएंगे जितनी आप यहां पाते हैं। और तब निर्भय होकर आप प्रयोग कर सकते हैं। निर्भय होकर प्रयोग कर सकते हैं।

और आपकी निर्भयता प्रयोग के लिए बहुत जरूरी है। आप डरें--अकेले हैं, कुछ खतरा न हो जाए--कोई खतरा न होगा। आप जाने के पहले सारे खतरे, सारे भय मेरे पास छोड़ जाएं।
और आपसे मांगता ही केवल इतना हूं जाते क्षणों में कि आपका जितना दुख, जितनी चिंता, जितनी पीड़ा, जितना संताप है, वह मुझे दे दें।
उसको साथ मत ढोए फिरें। उसको साथ रखने की कोई जरूरत नहीं है। आपसे धन नहीं मांगता, आपसे तन नहीं मांगता, आपसे कुछ और नहीं मांगता हूं। आपके पास जो भी पीड़ा है, जो भी उपद्रव है, जो भी संताप है, सब मुझे दे दें। उससे मुझे अड़चन न होगी, आप निर्भार हो जाएंगे। और आप जिस चीज से दुखी हो रहे हैं, जिस शक्ति से दुखी हो रहे हैं नासमझी के कारण--सब नासमझी मुझे दे दें। मैं आपको वही शक्ति वापिस लौटा दूंगा। वह आनंद हो जाएगी, वह शांति हो जाएगी, वह करुणा हो जाएगी।
आप घर पहुंचते हैं, तो ज्यादा समय न खोएं। यहां जो सिलसिला पैदा हुआ है, यहां जो हवा बनी है और मन को जो रुझान पैदा हुआ है, वह खो जाए, इतना समय न गंवाएं, घर जाकर तत्क्षण ध्यान में लग जाएं। एक घंटा रोज ध्यान में दे दें। जिंदगी के आखिर में आप पाएंगे, बाकी समय सब व्यर्थ गया, यह जो ध्यान में लगाया था समय, वही केवल आपके काम आया, वही बचा है, वही सार्थक हुआ है। और मुझे स्मरण रखें, कोई भय न होगा। और भीतर जब प्रवेश करेंगे, तो कभी लगेगा कि कहीं मौत न हो जाए। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, मौत का अनुभव होना शुरू होगा। जरा भी न घबड़ाएं, घबड़ा कर वापस न लौटें। अगर मौत भी भीतर आती हो तो कहें कि ठीक है, स्वीकार है, मैं बढ़ता हूं। और मैं आपके साथ हूं।